# प्राकृतिक भूगोल तथा भूतत्व

की

# पृष्ठभूमि

[ A BACKGROUND OF PHYSICAL GEOGRAPHY AND GEOLOGY ]

द्वितीय परिवर्धित तथा संशोधित संस्करण

[ प्रयाग एवं सागर विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत ]

रचयिता

जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव

एम० ए०, एम० एस०-सी०, पी० ई० एस०

भूमिका लेखक

डा० रामलोचन सिंह—अध्यक्ष भूगोल विभाग—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

डा० सितांशु मुकर्जी—अध्यक्ष भूगोल विभाग—नागपुर विश्वविद्यालय

डा० विद्यासागर दुबे—प्राध्यापक भूगर्भ विभाग—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशक

सरोज प्रकाशन

कटरा, प्रयाग-२

प्रकाशक
रामच[illegible] अग्रवाल
सरोज प्रकाशन
प्रयाग २

# भूमिका

हमारे स्वतन्त्र भारत में हिन्दी के सर्वमान्य भाषा हो जाने पर भी इस भाषा में वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों की कमी है। इस दिशा में श्री जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव प्रयत्नशील दिखलाई पड़ते हैं। हिन्दी में भूगोल की अनेक पुस्तकें लिखकर श्रीवास्तव जी ने विषय की काफी सेवा की है।

वर्तमान समय में विशेषकर देश में हिन्दी के प्रसार के कारण भूगोल के विद्यार्थियों को प्राकृतिक भूगोल के अध्ययन में अधिक कठिनाई उठानी पड़ती है और प्राकृतिक भूगोल जैसे वैज्ञानिक तथा जटिल विषय पर हिन्दी में पुस्तकों का अभाव अधिक खटकता है। श्रीवास्तवजी ने अपने अध्ययन-काल में भूगोल के साथ-साथ भूगर्भशास्त्र का भी अध्ययन किया है, अतः वे प्रस्तुत पुस्तक लिखने के उपयुक्त अधिकारी हैं। इस पुस्तक मे प्राकृतिक भूगोल के प्रायः प्रत्येक अंग पर यथेष्ठ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। कालिज के विद्यार्थी इससे विशेष लाभान्वित होंगे।

श्रीवास्तवजी ने अँग्रेजी शब्दों का रूपान्तर करने में संस्कृत से अधिक सहायता ली है। भूगोल की पुस्तकों मे रेखा-चित्रों की बहुलता अनिवार्य है— इस दृष्ठिकोण से भी यह पुस्तक सराहनीय है।

मेरी हार्दिक शुभ-कामना है कि श्रीवास्तवजी अपनी साधना में सफल हों।

राम लोचन सिंह
प्रधानाध्यापक, भूगोल-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी
अक्षय-नौमी
सन १९५५ ई०

# प्रथम संस्करण का निवेदन

राष्ट्रभाषा हिन्दी मे उच्च-कक्षाओ के योग्य भूगोल विषयक उत्तम ग्रन्थो का नितान्त अभाव है। दूसरी ओर, हिन्दी क्षेत्र के अनेक विश्वविद्यालयो में इस विषय के पठन-पाठन का उपक्रम हिन्दी माध्यम द्वारा ही हो रहा है। ऐसी अवस्था मे मैंने अमर भारती के एक अकिचन सेवक के नाते 'प्राकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि' प्रस्तुत करने का तुच्छ प्रयास किया है।

× × ×

इस ग्रन्थ को मैने चार खण्डो में बाँट दिया है—(१) स्थलमडल (२) जलमडल, (३) वायुमडल तथा (४) सिद्धान्त एव वाद। इनके शीर्षक है—क्रमश: अवनि, उदधि, अन्तरिक्ष तथा भूसैद्धान्तिकी।

आज से छै वर्ष पूर्व जब मै रौबर्टसन कालिज जबलपुर मे अध्यापन का कार्य करता था, तभी मैने 'जलधि' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी थी। किन्ही मानवजन्य परिस्थितियों के कारण उसका प्रकाशन सभव न हो सका। प्रस्तुत द्वितीय खड 'उदधि', जलधि का ही सक्षिप्त एवं सशोधित रूप है। इसी प्रकार सन् १९५०-५१ में नागपुर विश्वविद्यालय की एम० ए० कक्षा का अध्यापन कार्य करते समय मैने 'भूसैद्धान्तिकी' शीर्षक एक ग्रन्थ लिखा था। इसमें मैने भूगोल एव भूगर्भ शास्त्र के प्राय: सभी सिद्धान्तो की रूपरेखायें प्रस्तुत करने की चेष्टा की थी। विन्ध्य-प्रदेश शासन ने इसी ग्रन्थ पर 'लाल-पुरस्कार' प्रदान किया था। प्रस्तुत चतुर्थ खंड 'भूसैद्धान्तिकी' की काट-छाँट है। मेरा एक विचार और था जलवायु विज्ञान सम्बन्धी पचम खण्ड प्रस्तुत करने का। इसके अन्तर्गत जलवायु के वृत्तों (Phenomena) की तथा ससार के जलवायु-विभागों की विवेचना होती, किन्तु ऐसी दशा में यह ग्रन्थ इस विषय के हिन्दी के अन्य ग्रन्थों की तुलना में असाधारण रूप से बडा हो जाता। अतएव, मुझे यह विचार त्याग देना पडा।

प्रस्तुत पुस्तक के कुछ अश सपरिवर्तित रूप में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में भी प्रकाशित हो चुके है—उदाहरण के लिय भूसैद्धान्तिकी के अनेक प्रकरण 'विज्ञान' (विज्ञान परिषद्, प्रयाग) में।

× × ×

इस कृति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नाकित है :—

(१) ग्रन्थारम्भ में विस्तृत विषय-सूची दी गई है, जिससे पाठक को अन्तंवस्तु का सरलता से बोध हो सके।

(२) विषय का प्रतिपादन अत्यन्त सक्षेप में किया गया है। आधुनिक प्रवृत्ति के अनुरूप तो यह है ही, परीक्षा की दृष्टि से भी यह उपयोगी है।

(३) भौगोलिक तथ्य अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किये गये है।

(४) उदाहरण यथासभव भारतवर्ष से ही दिये गये है।

(५) स्पष्टीकरण के लिये अधिक से अधिक चित्रो की व्यवस्था की गई है। हिन्दी की वर्तमान भूगोल विषयक पुस्तको में किसी में भी इतने चित्र नही है।

(६) नवीन से नवीनतम वृत्तों (Phenomena) एव सिद्धान्तों का समावेश कर दिया है।

(७) भूगोल मे नियत पाठ्यक्रमो और परीक्षा मे पूछे गये प्रश्नो को केन्द्र मानकर इस कृति की रचना हुई है।

(८) सर्वत्र राष्ट्रभाषा का व्यवहार किया गया है। प्रयुक्त भाषा सस्कृत-मयी एव प्राञ्जल होते हुए भी सर्वत्र बोधगम्य है।

(९) विषय विन्यास मेरा अपना है।

(१०) परिच्छेदो अथवा खण्डो के अन्त मे विभिन्न परीक्षाओ मे पूछे गए प्रश्नो की सूची दे दी गई है।

× × ×

मेरे सक्षेप मे लिखने का एक कारण यह भी है, कि यदि मै अधिक विस्तार से लिखता तो यह स्वाभाविक ही था कि पारिभाषिक शब्द भी अधिक मात्रा में आते जिससे ग्रन्थ की क्लिष्टता बढ़ जाती। पुस्तक को यथासम्भव सरल एव सुबोध बनाने के लिये मैंने अपनी मौलिक कृति का पाँच बार पुनरीक्षण (Revision) किया है। क्लिष्टता की दुहाई देनेवाले पाठको के लिये भले ही मैंने अन्तर्वस्तु का इस प्रकार प्रस्तुतीकरण सरल कर दिया हो, किन्तु यदि आप मेरे सच्चे हृदय से पूछे तो मैं यह अनुभव करता हूँ कि मैंने पुस्तक का जितना ही बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है, अन्तर्वस्तु यथार्थता से उतना ही दूर हटता चला गई है। भविष्य मे जब पाठक पारिभाषिक शब्दो से यथेष्ट परिचित हो जायगे—सम्भवत. तब मैं अपनी मूल कृति प्रस्तुत कर सकूँ।

× × ×

प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध मे मै दो शब्द कहना चाहूंगा। वर्तमान समय मे आलोचना की यह निराली प्रणाली निकली है, कि पारिभाषिक शब्दो की आड लेकर किसी भी कृति की निन्दा करना। मैंने भौगोलिक शब्दो के हिन्दी समानार्थी अधिकाशत. डा० रघुवीर के महाकोश से लिये हैं। इस महाकोश के शत प्रतिशत शब्द न सही, तो अधिकाश निश्चितत यथार्थ अर्थ के द्योतक हैं। शेष शब्दो का स्थान कालान्तर मे, उपयुक्त शब्द स्वय ले लेंगे। जब भी मेरे समक्ष पारिभाषिक शब्दो की समस्या आई, मैंने अनेक विद्वानो एव सस्थाओं से सहायता की प्रार्थना की, किन्तु कोई माई का लाल सहायता के लिये आगे न बढ़ा—हा विनाशात्मक आलोचना (Destructive criticism) के लिये सभी आगे हैं। जहाँ तक मेरे सीमित ज्ञान का सम्बन्ध है, इस समय भारतवर्ष मे, उच्च-विज्ञानो के पारिभाषिक शब्दो के लिए डा० रघुवीर के महाकोश के अतिरिक्त कोई अन्य सहायक ग्रन्थ अस्तित्व मे नही है। केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारो (मध्य प्रदेश के अतिरिक्त), सम्मेलन, नागरी-प्रचारिणी आदि द्वारा प्रकाशित शब्दावलिया नितान्त अल्प और निम्न स्तर के छात्रो के लिये ही उपयोगी है।

एक सज्जन ने मुझसे शिकायत की कि आपने जान-बूझकर क्लिष्ट शब्द प्रयुक्त किये हैं, Erosion के लिये आप 'कटाव' का प्रयोग कर सकते थे पर आपने 'अपक्षरण' जैसा क्लिष्ट शब्द प्रयुक्त किया है। मैंने उनसे नम्र निवेदन किया कि भूगोल मे Erosion से थोडे ही भिन्न अर्थ मे और भी अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं जैसे Corrasion, Abrasion आदि, उनके लिये आप कौन से शब्द प्रयुक्त करेंगे। तब उन्होने डा० रघुवीर के महाकोश की उपयुक्तता स्वीकार कर ली। भूगोल एव भूगर्भशास्त्र के अधिकारी विद्वान् डा० रघुवीर की शब्दावली का समर्थन स्वय नहीं

अपितु संस्तुति भी करते हैं। भारतीय भौमिकीय सर्वेक्षण विभाग (Geological Survey of India) के सचालक डाक्टर एम० एस० कृष्णन् की ऐतिहासिक भौमिकी पर प्रामाणिक रचना का अभिनवकाल में हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। यह अनुवाद उन्ही की विदुषी कन्या ने, जो मद्रासी होते हुए भी हिन्दी की कुशल विद्वान हैं, किया है। उसमे भी डा० रघुवीर के कोश का उपयोग किया गया है। डा० कृष्णन जैसे भूगर्भ एव प्राकृतिक भूगोल के शिखर के विद्वान् द्वारा डा० रघुवीर के महाकोश का समर्थन एव उपयोग—प्रस्तुत पुस्तिका में प्रयुक्त शब्दावली के पक्ष मे सबसे बडा पोषक (Support) है। अल्पज्ञो की आलोचना के भय से पुस्तक को बाजारू बनाना मुझे स्वीकार नही।

× × ×

भाषा के विषय मे भी मेरा अपना दृष्टिकोण है। मेरी यह दृढ धारणा है कि भूगोल ही नही, किसी भी वैज्ञानिक विषय के अध्ययन के लिये पाठको को अपना स्तर ऊँचा करना होगा—ये वैज्ञानिक विषय सर्वजन सुलभ होने के लिये स्वय अपना स्तर नीचा न करेगे। बोलचाल की भाषा मे किसी गभीर विषय पर वैज्ञानिक स्तर की पुस्तक लिखना असभव है। जिसने भी इस दिशा मे थोडा भी प्रयास किया होगा, उसने इसका अनुभव अवश्य किया होगा। फिर भी, यदि किसी सज्जन को मेरी भाषा क्लिष्ट लगे तो वे अँग्रजी मे भूगोल के प्रामाणिक ग्रन्थ—Woolridge, S. W. and Morgan, R S—The Physical Basis of Geography An Outline of Geomorphology का मुलाहिजा फरमावे और फिर कहे कि मेरी कृति वास्तव मे क्लिष्ट है।

× × ×

इस ग्रन्थ की रचना मे मेरी अन्य सीमाये भी रही हैं। उदाहरण के लिये अध्यापन कार्य करते समय मैंने यह अनुभव किया है, कि बी० ए० कक्षा के कला के छात्रो के मस्तिष्क में विज्ञान एव गणित के तथ्य कठिनता से प्रविष्ट होते हैं। मैंने शिला सम्बन्धी प्रथम प्रकरण टिरैल की शिलाशास्त्र (Petrology) के आधार पर तैयार किया था, किन्तु जब मैंने देखा कि कला के छात्रो को शिलाओ के नाम तक नही याद होते—सरचना आदि की बात तो अलग रही—तब मैंने उसे अलग कर दिया और प्रस्तुत परिच्छेद लिखा। मुझे इससे तनिक भी सन्तोष नही। फिर भी, वर्तमान परिस्थितियो मे, मैंने ग्रन्थ का श्रीगणेश—छात्रो की दृष्टि में क्लिष्ट प्रकरण से न कर अपनी दृष्टि में नितान्त असन्तोषप्रद प्रकरण से ही करना उचित समझा। भविष्य में, जब पाठको के हृदय से क्लिष्टता का भूत निकल जायगा, मै शिलाविषयक अपने प्रथम प्रयास को प्रस्तुत करूँगा।

पुस्तक के विस्तार को घटाने के लिये मैंने वर्णनात्मक भाग को अत्यन्त सक्षेप मे दिया है जैसे मैदान, पठार अथवा झील की मानवीय महत्ता। इन विषयो पर मोटे-मोटे ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। शब्दो की यह मितव्ययता मैंने भौगोलिक सिद्धान्तो के विवेचन मे नही की है। अनेक कारणो से, जिनमे कुछ का उत्तर-दायित्व मुझ पर भी है—इस पुस्तक के प्रकाशन में असामान्य रूप से दीर्घकाल लगा है। फिर भी मुद्रण सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं। इसका एक कारण यह भी था, कि मेरे आदेशों के विपरीत, अन्तिम प्रूफ मुझे दिखलाये बिना ही पुस्तक छाप दी गई। सहृदय पाठको से यही निवेदन है कि वे इस समय क्षीर-नीर विवेक से काम ले और त्रुटियो के लिये मुझे क्षमा प्रदान करें। दूसरे सस्करण में इन त्रुटियों का परिहार अवश्य कर दिया जायगा।

हिन्दी में अपने ढंग का यह प्रथम ग्रन्थ हो सकता है, किन्तु मौलिकता का मिथ्या अभिमान मैं नही करना चाहता। वस्तुत. इस प्रकार का कोई ग्रन्थ सर्वांगित: मौलिक हो भी नही सकता। अँग्रेजी के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थो मे जो बिखरा पडा है—मै उसे ही सक्षिप्त, क्रमबद्ध तथा यथासभव भारतीय उदाहरणो द्वारा पुष्टकर व्याख्यान के रूप में अपने छात्रों को देता हूँ। ये व्याख्यान ही प्रस्तुत पुस्तिका की आधारभूत सामग्री है। स्थानाभाव के कारण उन्हे और भी सक्षेप मे प्रस्तुत किया गया है।

जिन कृतियो से सहायता ली गई है, उनकी सूची यत्र-तत्र दे दी गई है। भौतिक भूगोल के क्षेत्र में मुझे फिलिप लेक ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। उनकी रचना मेरी दृष्टि मे सर्वोत्कृष्ट एव अनुपम है। कदाचित मेरी यह कृति उनकी छाया से मुक्त नही रह सकी है। उनके प्रति मेरा ऋण इतना छोटा नही है कि आभार-प्रदर्शन से मार्जित हो जाय।

× × ×

गुरुवर स्वर्गीय डा० एच० एल० छिब्बर ने उदधि खण्ड के प्रकरणो के शीर्षक सुझाये है। उन्हे शत शत प्रणाम। आदरणीय प्रिन्सिपल श्री हृदयनारायण सिंह जी एम० एल० सी० से मुझे प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है। उन्हे धन्यवाद देना धृष्टता होगी। टी० डी० डिग्री कालिज जौनपुर के पुस्तकाध्यक्ष श्री रणञ्जयसिह मेरे ऊपर विशेष कृपालु रहे है। उन्ही के सौजन्य से मुझे अधिकाश सहायक ग्रन्थ सुलभ हो सके है। अनेक देवी-दवताओ ने पुस्तक के प्रणयन में अन्य रीतियो से सहयोग दिया है। कु० सुषमा सिन्हा, श्रीरामचन्द्र शर्मा तथा श्री सतीशचन्द्र ने रेखाचित्रो के निर्माण मे, श्री शमशेर-बहादुर सिह, श्री राजेन्द्रप्रसाद मोदी तथा कुमारी प्रभात सरकार ने लेखन कार्य में तथा मेरी सुयोग्य छात्रा कु० रूबिना कोलम्बोवाला ने अन्तर्वस्तु के सम्बन्ध में सहायता दी है। ये सभी मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र है।

सरस्वती-विहार नागपुर के सचिव डा० लोकेशचन्द्रजी डी० लिट० का मै विशेषरूप से आभारी हूं। इस ग्रन्थ मे प्रयुक्त सम्पूर्ण पारिभाषिक शब्दावली आपकी अनन्य अनुकम्पा का अगमात्र है।

श्रद्धेय गुरुवर डा० रामलोचनसिह पी-एच० डी० (लन्दन), अध्यक्ष भूगोल विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने अपना अमूल्य समय देकर पुस्तक को आद्योपान्त पढा, सशोधन किये, मूल्यवान सुझाव दिये तथा भूमिका लिखने की कृपा की। उनके प्रति मै अपनी सादर श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

पाठको से यह प्रार्थना है कि वे इस कृति की न्यूनताये दोष एव अभाव तथा अपने अमूल्य सुझाव निसकोच मुझे सूचित करदे, जिससे अगले सस्करण मे सुधार किया जा सके। इस कृपा के लिये मै उनका अत्यन्त आभारी रहूँगा।

मेरी इस साधना द्वारा विद्यार्थी-वर्ग का यदि कुछ भी लाभ हो सका, तो मुझे हार्दिक सन्तोष होगा।

—जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव

प्रयाग

ज़वाहर-जयन्ती १९५५

# द्वितीय संस्करण की भूमिका

'प्राकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि' का द्वितीय परिवर्धित एव सशोधित सस्करण प्रस्तुत है। प्रथम संस्करण प्रकाशन के दो वर्ष के अन्दर ही समाप्त हो गया था। अनेक कारणो से नवीन सस्करण के प्रकाशन मे असाधारण विलम्ब हो गया। एतदर्थ, मै क्षमा प्रार्थी हूँ।

प्रथम सस्करण मे आद्योपात सशोधन, परिष्करण एव परिवर्धन करने के अतिरिक्त निम्नलिखित परिवर्तन किये गये है :—

(१) शिलाओ के प्रकरण मे उनका आर्थिक महत्व समाविष्ट कर दिया गया है। कुछ सामान्य शिलाओ का वर्णन भी जोड दिया गया है।

(२) भूपर्पटी की गतियो के प्रकरण मे 'भजित एव विभगित भूदृश्य' बढा दिया गया है।

(३) नदी की क्रिया के प्रकरण मे 'जलप्रपातो की उत्पत्ति तथा वर्गीकरण' ~~निहित कर~~ दिया गया है।

(४) प्रवाह-व्यवस्थाओ की सख्या दस से बढा कर सोलह कर दी गई है।

(५) हिमनदियो के अध्याय मे हिमनदियो के अपक्षरण के नियम का उल्लेख कर दिया गया है।

(६) पवन के कार्य के अन्तर्गत मरुस्थलीय भूदृश्य, मरुस्थलीय अपक्षरण-चक्र तथा लौयस प्रदेश मे अपक्षरण-चक्र की विस्तृत विवेचना निहित कर दी गई है।

(७) 'कार्स्ट प्रदेश मे अपक्षरण-चक्र' फिर से लिखा गया है।

(८) स्थलमण्डल के अन्तर्गत चार नवीन परिच्छेद बढाये गये है—(१) बालुकाश्म भूदृश्य, (२) द्वीप, (३) मिट्टियाँ तथा (४) भारतवर्ष के भौम्याकारिकीय विभाग।

(९) महासागरीय अन्वेषण के अध्याय मे नवीनतम अभियानो का उल्लेख कर दिया गया है।

(१०) अन्ध, प्रशान्त तथा हिन्द महासागरो के नितल का वर्णन फिर से लिखा गया है।

(११) 'महासागरो की जलराशियाँ' शीर्षक नवीन परिच्छेद लिखा गया है।

(१२) तरगो के प्रकरण मे तटीय भूदृश्य की सचित्र विवेचना बढा दी गई है।

(१३) ज्वार-भाटा के अध्याय मे चन्द्रमा और सूर्य की आकर्षण-शक्ति के अनुपात को गणित की सहायता से निर्धारित किया गया है।

(१४) तट-रेखाओ तथा महासागरीय निक्षेपो के वर्णन फिर से लिखे गये है तथा उनके विस्तार बढा दिये गये है।

(१५) स्थानीय तथा मौसमी हवाओं और ऑधियो की सख्या मे अभिवद्धि कर दी गई है।

(१६) 'वायुराशियाँ और अग्र' शीर्षक नवीन परिच्छेद लिखा गया है।

(१७) 'जलवायुओ का वर्गीकरण' शीर्षक नूतन प्रकरण मे जलवायुओ को नौ आधारो पर वर्गीकृत किया गया है।

(१८) तडित-झझाओ की विस्तृत विवेचना की गई है।

(१९) पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय मे ६ विचारधाराओ को बढाकर १२ कर दिया गया है।

(२०) अनेक पुराने चित्रो के स्थान पर नवीन चित्र दे दिये गये है। चित्रो की सख्या बढ कर लगभग ४०० हो गई है।

स्वर्गीय डा० रामनाथ जी दुबे डी० लिट भू० पू० अध्यक्ष भूगोल विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय का मै आजीवन ऋणी रहूँगा, जिन्होने बिना मेरे अथवा प्रकाशक के मिले हुए तथा पुस्तक की प्रादर्श प्रति(Specimen copy) पाये बिना ही इस कृति को प्रयाग विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के लिये स्वीकृत कर अपनी सच्ची गुण-ग्राहकता का परिचय दिया।

डा० मुजफ्फर अली अध्यक्ष भूगोल विभाग सागर विश्वविद्यालय, डा० पी० दयाल अध्यक्ष भूगोल विभाग पटना विश्वविद्यालय, डा० मु० नसीर खान अध्यक्ष भूगोल बिभाग प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रो० किदवई अध्यक्ष भूगोल विभाग नागपुर विश्वविद्यालय, डा० मेहरोत्रा अध्यक्ष भूगोल विभाग जबलपुर विश्वविद्यालय, डा० मुहम्मद यूनुस अध्यक्ष भूगोल विभाग राजकीय महाविद्यालय नैनीताल, प्रो० बी० एन० गगूली अध्यक्ष भूगोल विभाग राजकीय महाविद्यालय ज्ञानपुर, डा० कृपानाथ वर्मा अध्यक्ष भूगोल विभाग हमीदिया कालिज भोपाल, प्रो० ब० जी० तामस्कर अध्यक्ष भूगोल विभाग विदर्भ महाविद्यालय अमरावती, प्रो० डी० जी० नरखडे नागपुर महाविद्यालय, डा० इन्द्रपाल गुप्त बी, आर, कालिज आगरा, प्रो० महात्मासिह गोरखपुर विश्वविद्यालय प्रो० केशव पाण्डे छत्तीसगढ महाविद्यालय रायपुर, प्रो० रामलखन द्विवेदी प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रो० नर्वदेश्वर प्रसाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रो० ललित कुमार सिह चौधरी अध्यक्ष भूगोल विभाग बी० एन० एस०डी० कालिज कानपुर, प्रो० बिहारीलाल मिश्र गया कालिज गया, प्रो० बी० एल० अग्रवाल जबलपुर, प्रो० एन० के० गौड छतरपुर तथा भूगोल के अन्य विद्वानो और अध्यापको का मै अपने प्रति सद्भावना के लिये हार्दिक आभारी हूँ। अन्त मे, मै भूगोल के उन सभी शिक्षक-बन्धुओ एव मननशील छात्रो के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ, जिन्होने मेरी रचना को अपना कर मेरा प्रोत्साहन बढाया।

मातृनवमी १९६०

४५ सिविल लाइन्स रीवा (म० प्र०) —जनार्दनप्रसाद श्रीवास्तव

# सहायक उपकरण

इस ग्रन्थ के उत्कृष्ट अध्ययन के लिये आवश्यक उपकरणो की सूची :—

१ प्रक्षेपक (Projector)

२. निम्नलिखित शिलाओ के प्रादर्श—

ग्रेनाइट, सैण्डउस्टोन, शेल, शिस्ट, ब्रैशिया, कौंगलोमरेट, चूने का पत्थर, सगमरमर, डोलराइट, बेसाल्ट, स्लेट, सर्पेण्टाइन

३ भजन, विभगन, नदी की क्रिया, अपक्षरण-चक्र तथा विभिन्न प्रकार के भूदृश्यो (जैसे ज्वामुखीय, कार्स्ट आदि) से सम्बन्धित प्रतिकृतियाँ (मौडैल)

४ प्रमुख भारतीय तथा स्थानीय मिट्टियों के नमूने

५ मौसम सम्बन्धी यत्र

(क) तापमापक

(ख) आर्द्रतामापक

(ग) बैरोमीटर

(घ) वर्षामापक

६ चार्ट

(क) भौमिकीय युग

(ख) प्रमुख प्राकृतिक प्रदेश

(ग) जलवायु-विभाग

(घ) वायुमण्डल के स्तर

(ङ) प्राकृतिक रूपधेय

७ सिद्धान्तों की प्रायोगिक पुष्टि के उपकरण जैसे—

(क) होम्स का गिरि-निर्माण का सिद्धान्त

(ख) फैरैल का नियम

८ अन्य उपकरण जैसे—

हाइड्रोक्लोरिक एसिड की बोतल

शिलाओ की परीक्षा सम्बन्धी उपकरण जैसे—घनत्व, कठोरता, चूर्ण के वर्ण को निर्धारित करनेवाले उपकरण, चतुर्नींक (Tetrahedron) की प्रतिकृति आदि

# विषय-सूची

## खण्ड ४ भूसैद्धान्तिकी



## परिशिष्टावली

खण्ड १

# अवनि

## [ THE LITHOSPHERE ]



संयुक्त राज्य अमरीका के व्योमिंग प्रदेश का बड़ा खोखला
(Big Hollow)

[सन्दर्भ पृष्ठ ९०

परम पूज्य पिताजी के चरण-कमलों

में

सादर समर्पित

[ पृष्ठ १ के सामने



चित्र १—भेड़ाघाट (जबलपुर) की संगमरमर की चट्टानें

## प्रथम परिच्छेद

# शिलायें (ROCKS)

### १. शिला की परिभाषा

सामान्यत 'शिला' शब्द से कठोर पदार्थ का आभास होता है, किन्तु भूगोल एव भूगर्भशास्त्र मे 'शिला' का अर्थ बडा व्यापक है। इसके अन्तर्गत भूपर्पटी के समस्त ठोस पदार्थ आ जाते हैं, चाहे वे कठोर हो अथवा कोमल। शिला की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है —

'भूपर्पटी से निकला हुआ कोई भी प्राकृतिक एव ठोस पदार्थ 'शिला' है चाहे वह ग्रेनाइट (Granite) के समान कठोर हो अथवा मृत्तिका (Clay) के समान मृदुल।'

शिलाये निश्चित रासायनिक यौगिक (Chemical Compounds) नही होती, अपितु वे प्राय अनेक खनिजो का मिश्रण (Mixtures) होती है। उदाहरण के लिये चूने का पत्थर (Limestone) मुख्यत चूने का कार्बोनेट होता है और मृत्तिका (Clay) मुख्यत अल्यूमीनियम का सिलीकेट होता है, किन्तु अनेक चूने के पत्थरो में मृत्तिका अधिक अनुपात मे पाई जाती है तथा अनेक मृत्तिकाओ मे चूने का कार्बोनेट अधिक अनुपात मे पाया जाता है।

### २. शिलाओं का वर्गीकरण

शिलाओ के तीन प्रमुख भेद है :—

(१) आग्नेय शिलायें (Igneous Rocks)
(२) निसादीय अथवा जलज शिलाये (Sedimentary Rocks)
(३) परिवर्तित अथवा रूपान्तरित शिलाये (Metamorphic Rocks)

#### (१) आग्नेय शिलाये (Igneous Rocks)

विद्वानों ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक विचारधाराये प्रस्तुत की है। इन बिचारधाराओ मे अधिकाँश इस विषय मे एकमत हैं कि पृथ्वी किसी समय तरल अवस्था मे थी। इस तरल पदार्थ के घनीभवन से जो शिलाये सबसे पहले बनी, उन्हे हम प्राथमिक (Primary) अथवा आग्नेय (Igneous) शिलायें कहते हैं। अन्य शब्दो मे, हम उन शिलाओ को आग्नेय शिलाये कहते हैं, जो द्रव के घनीभूत होने से बनी है। इन शिलाओं का मणिभीय (Crystalline) होना स्वाभाविक ही है। यद्यपि अधिकाश आग्नेय शिलाये पृथ्वी की आरभिक अवस्था में बनी, तथापि प्रत्येक युग मे इनका निर्माण होता रहता है। यह कथन आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायगा।

आग्नेय शिलाओ का वर्गीकरण

आग्नेय शिलाओ के वर्गीकरण के अनेक आधार हो सकते है —

### (१) स्थिति के अनुसार वर्गीकरण

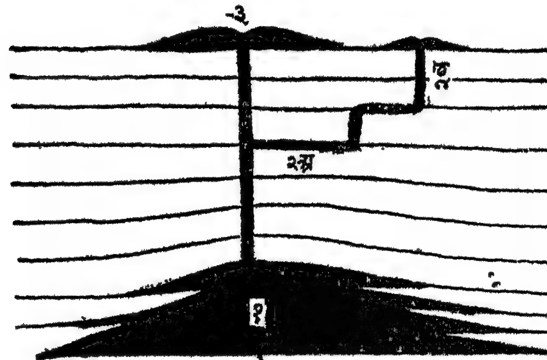
पृथ्वी के अभ्यन्तर में अनेक ऐसे कक्ष है, जिनमे शिलाद्रव अथवा लावा भरा हुआ है। अनेक कारणो से (जैसे ऊपर के दबाव के घट जाने से) यह लावा भूपृष्ठ की ओर अग्रसर होता है। जैसा कि चित्र २ से स्पष्ट होगा, लावा भूपर्पटी के निर्बल भागो से अर्थात् सन्धियो[1] (Joints) एव तल्प-तलो[2] (Bedding planes) से होता हुआ ऊपर उठता है। जब यह लावा पर्पटी को फोडकर ऊपर आ जाने मे समर्थ होता है, तब हम यह कहते है कि ज्वालामुखी का उद्गार हुआ है। ऊपर उठता हुआ लावा तीन स्थितियो मे घनीभूत हो सकता है —

(१) या तो वह बिना ऊपर उठे कक्ष ही मे जम जाता है।

(२) अथवा वह भूपृष्ठ की ओर प्रवाहित होते समय मार्ग में तल्प-तलो विदरो अथवा सन्धियो मे घनीभूत हो जाता है।

(३) अथवा वह भूपृष्ठ के ऊपर आकर जम जाता है।

इस आधार पर हम आग्नेय शिलाओ को तीन वर्गों मे बाट सकते है :—




चित्र २—आग्नेय शिलाओ का वर्गीकरण

(१) अधोघनित शिलाये (Plutonic Rocks)—जब लावा पृथ्वी के अभ्यन्तर मे स्थित कक्ष मे अथवा बहुत गहरे घनीभूत होता है, तब जो शिलाये बनती है, उन्हे हम अधोघनित शिलाये (Plutonic Rocks) कहते है (चित्र २ मे १)। इस दशा मे लावा बहुत धीरे ठण्डा होता है, अतएव इन शिलाओ में मणिभ (Crystals) पूर्णरूप से विकसित होते है। इसका उदाहरण ग्रेनाइट (Granite) है।

(२) उपाधोघनित शिलाये (Hypabyssal Rocks)—जब लावा मार्ग में सन्धियो अथवा तल्प-तलो मे घनीभूत होता है, तब जो शिलाये अस्तित्व मे आ जाती

१ शिलाओ मे पाई जाने वाली दरारे, जो प्राय, उदग्र होती है।

२ स्तृत शिलाओ के दो उत्तरोत्तर स्तरो के मध्य मे विद्यमान सस्पर्श का समतल।

हैं, उन्हे हम उपाधोधनित (Hypabyssal Rocks) शिलाये कहते है। उपाधो-घनित शिलाओ के पुन दो विभाग किए जा सकते हैं —

(१) रालभित्ति (Dyke)—लम्बवत् सन्धियो मे घनीभूत लावा को हम रालभित्ति (Dyke) कहते है। (चित्र २ मे २ ब)

(२) रालपट्ट (Sill) क्षैतिज विदरो अथवा तल्प-तलो (Bedding planes) में घनीभूत लावा को हम रालपट्ट (Sill) कहते है। (चित्र २ मे २ अ)

यह तो स्पष्ट ही है कि उपाधोघनित शिलाये अधोघनित शिलाओ की तुलना मे कम मणिभीय होगी। इनके बनने मे लावा अपेक्षाकृत जल्दी ठण्डा होता है। उदाहरण डोलराइट (Dolerite)

(३) ज्वालामुखीय शिलाये (Volcanic Rocks) जब लावा भूपृष्ठ पर आकर घनीभूत होता है, तब उससे जो शिला बनती है, उसे हम ज्वालामुखीय शिला कहते हैं (चित्र २ मे ३)। इस दशा में लावा बहुत शीघ्रता से ठण्डा होता है, फलत जो शिला बनती है, उसमे मणिभ नही होते है। ऐसी शिलायें अमणिभीय (Non-Crystalline) अथवा कॉचीय ( Glassy ) होती है। उदाहरण बेसाल्ट (Basalt)

## (२) भूपृष्ठ के सन्दर्भ में वर्गीकरण

पृथ्वी के धरातल के सन्दर्भ में आग्नेय शिलाओ को दो विभागो मे बॉटा जा सकता है —

(१) बहिर्वर्ती शिलाये (Extrusive Rocks)–ये भूपृष्ठ के ऊपर पाई जाती है। उदाहरण बेसाल्ट (Basalt)।

(२) अन्तर्वर्ती शिलाये (Intrusive Rocks)—ये भूपृष्ठ के नीचे पाई जाती है। कभी-कभी जब अपक्षरण द्वारा इनके ऊपर का आवरण नष्ट हो जाता है, तब ये भूपृष्ठ पर प्रकट हो जाती है। उदाहरण ग्रेनाइट (Granite)

## (३) संरचना के आधार पर वर्गीकरण

शिलाओ मे वर्तमान सिलिका (Silica) की मात्रा के विचार से आग्नेय शिलाओ के चार भेद किए जा सकते हैं —

(१) आम्लिक आग्नेय शिलाये (Acid Igneous Rocks)—इनमें सिलिका की मात्रा (भार मे) ६५ प्रतिशत से अधिक होती है।

(२) माध्यमिक आग्नेय शिलाये (Intermediate Igneous Rocks)—इनमे सिलिका की मात्रा ५५% से ६५% तक होती है।

(३) क्षारीय आग्नेय शिलाये (Basic Igneous Rocks)—इनमे सिलिका की मात्रा ४५% से ५५% तक होती है।

(४) अतिक्षारीय आग्नेय शिलाये (Ultrabasic Igneous Rocks)-इनमे सिलिका की मात्रा ४५% से कम होती है।

आम्लिक आग्नेय शिला का उदाहरण ग्रेनाइट (Granite) है और क्षारीय आग्नेय शिला का बेसाल्ट (Basalt)। सामान्यत आम्लिक शिलाये हल्के वर्ण की होती है और उनमे ऋतुक्षरण ( Weathering) अपेक्षाकृत कम होता है। इसके विपरीत क्षारीय शिलायें अधिकतर गहरे रग की होती है और वे ऋतुक्षरण से शीघ्र प्रभावित होती है।

(२) निसादीय अथवा जलज शिलायें (Sedimentary or Aqueous Rocks)

निसादीय शिलाये वे शिलाये है, जो पूर्ववर्ती शिलाओ के अवसादो से बनती है। ये पूर्ववर्ती शिलाये पृथ्वी के इतिहास की आरभिक अवस्था मे केवल आग्नेय शिलाये थी, किन्तु कालान्तर मे इनका स्थान सभी प्रकार की शिलाओ ने ले लिया। जल, हिमानी, वायु आदि अभिकर्ता इन शिलाओ का अपक्षरण करते है और फिर अपक्षरित पदार्थ का परिवाहन करके अन्यत्र कही स्तरो के रूप मे सचित कर देते है। इस प्रकार अस्तित्व मे आई हुई शिलाओ को हम निसादीय शिलाये (Sedimentary Rocks) कहते है। इनका दूसरा नाम जलज शिलाये (Aqueous Rocks) भी है, जो भ्रामक है क्योकि इनकी रचना केवल जल की क्रिया से नही होती है, वरन् हिमानी, वायु आदि अभि-कर्ता भी इनकी सृष्टि के लिए उत्तरदायी है। स्तरों मे व्यवस्थित पाये जाने से इन्हे स्तृत शिलाये (Stratified Rocks) भी कहते है। यह नाम भी पूर्णत यथार्थ नही क्योकि निसादीय शिलाओ के अन्तर्गत जीवो के कर्परो (Shells) और ककालो (Skeletons) तथा पेड-पौधो के अवशेषो से बनी शिलाये भी आती है, जिनमे स्तर नही पाए जाते।

भूपर्पटी के अधिकाश भाग पर निसादीय शिलाओ का आवरण है। ये धरातल का लगभग ७५ प्रतिशत भाग ढके हुए हैं। यद्यपि इनका विस्तार इतना अधिक है, तथापि इनसे भूपर्पटी का केवल ५ प्रतिशत भाग निर्मित है। इससे स्पष्ट है कि इनकी गहराई बहुत कम है।

## जलज शिलाओ का वर्गीकरण

जलज शिलाओ के वर्गीकरण के मुख्यत दो आधार हो सकते है —(१) सरचना तथा (२) उत्पत्ति।

### (१) सरचना के अनुसार वर्गीकरण

सरचना की दृष्टि से जलज शिलाओ को निम्नलिखित चार विभागो मे बाटा जा सकता है —

| विभाग | सरचना | उदाहरण |
|---|---|---|
| १. सैकतमय (Arenaceous) | सिकता अथवा बालू कण (Sand particles) | बालुकाश्म (Sandstone) |
| २. मृण्मय (Argillaceous) | मृत्तिका (Clay) | शेल (Shale) |
| ३. चूर्णमय (Calcareous) | कैलशियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate) | चूने का पत्थर (Limestone) |
| ४. प्रागारमय (Carbonaceous) | कार्बन (Carbon) | कोयला (Coal) |

कुछ निसादीय शिलाये ऐसी है, जो उपर्युक्त वर्गीकरण मे नही आती है.—

**सपिण्ड** ( Conglomerate )—अष्टीला ( Pebbles ) जैसे शिलाओ गोलाकार टुकडो के परस्पर चिपक जाने से यह शिला बन जाती है।

**सकोणाश्म** (Breccia)—ये शिला पत्थर के नोकदार टुकडो के परस्पर चिपक जाने से बन जाती है।

### (२) उत्पत्ति के अनुसार वर्गीकरण

उत्पत्ति के विचार से जलज शिलाओ को निम्नलिखित विभागो मे बाँटा जा सकता है —

(१) **सागरीय निक्षेप** (Marine Deposits)—ये शिलाये सागर अथवा महासागर मे निक्षेपित होती हैं।

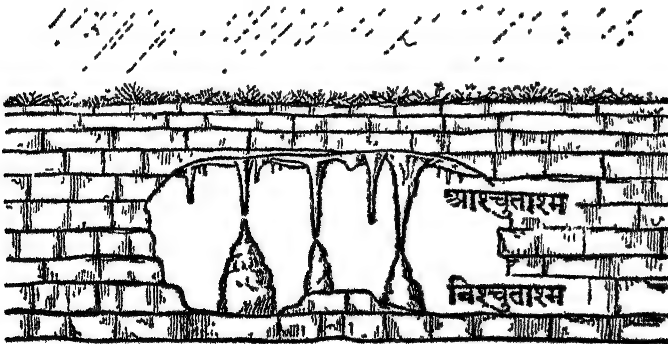
(२) **झील निक्षेप**—(Lacustrine Deposits)—ये शिलाये झीलो मे निक्षेपित होती हैं।

(३) **सरिता निक्षेप**—(Riverine Deposits)—सरिताओ के बाढ क्षेत्र मे ऐसी शिलायें बन जाती है।

(४) **वायु निक्षेप**—(Aeolian Deposits)—वायु द्वारा परिवाहित सिकता कण एकत्र होकर कभी-कभी कठोर चट्टानो मे परिणत हो जाते है। उदाहरणार्थ लौयस (Loess)।

(५) **हिमानी निक्षेप**—(Glacial Deposits)—हिमनदियो द्वारा निक्षेपित पदार्थ समाद्रित होकर शिलाओ का रूप ले लेता है। हिमानीनिक्षेप का एक उदाहरण ड्रमलिन (Drumlin) है, जो उल्टी नाव की आकृति का हिमनदी कृत निक्षेप है। विशेष विवरण के लिए हिमनदी का प्रकरण देखिए।

(६) **रासायनिक निक्षेप**—(Chemically formed Deposits)—ये शिलाये रासायनिक प्रक्रियाओ के फलस्वरूप बन जाती है। उदाहरणार्थ—यदि पानी मे कार्बन डाइआक्साइड घुली हो तो उसमे चूने के पत्थर को घोल लेने की क्षमता आजाती है, यह घुला हुआ चूने का पत्थर अनेक रूपो मे निक्षेपित होता है जैसे चूने के पत्थर की कन्दराओ मे छत से लटकते हुए स्तम्भ पाए जाते है, जिन्हे




चित्र ३—आश्चुताश्म (Stalactites) एव निश्चुताश्म (Stalagmites)

आश्चुताश्म (Stalactites) कहते है और नितल पर स्थापित स्तम्भ भी पाए जाते है, जिन्हे निश्चुताश्म (Stalagmites) कहते हैं। विशेष विवरण के लिये भूमिगत जल का प्रकरण देखिए।

(७) अवयवी अथवा आगिक निक्षेप (Organic Deposits)—जानवरो (जैसे मूगे का कीडा) तथा पेड पौधो के अवशेषो से इन शिलाओ का निर्माण होता है।

## (३) परिवर्तित अथवा रूपान्तरित शिलाये (Metamorphic Rocks)

कभी कभी ताप दबाव अथवा रासायनिक प्रक्रियाओ के कारण आग्नेय और जलज शिलाओ मे इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है, कि उनके अनेक मौलिक लक्षण लुप्त हो जाते है और नवीन लक्षण प्रकट हो जाते है। इन्हे तब हम परिवर्तित अथवा रूपान्तरित शिलाये (Metamorphic Rocks) कहते है। उदाहरण—

(१) ताप (Heat) के माध्यम द्वारा चूने का पत्थर (Limestone) सगमरमर (Marble) मे परिणत हो जाता है।

ताप
चूने का पत्थर (Limestone)————→सगमरमर (Marble)

(२) दबाव (Pressure) के कारण शेल (Shale) शिस्ट (Schist) मे परिणत हो जाती है।

दबाव
शेल (Shale)————————→शिस्ट (Schist)

सामान्यत परिवर्तित शिलाये मणिभीय (Crystalline) होती है। इस दृष्टि से इनमे और आग्नेय शिलाओ मे यह अन्तर है, कि इनमें मणिभ समानान्तर स्तरो मे व्यवस्थित रहते है और आग्नेय शिलाओ मे उनकी कोई व्यवस्था नही होती।

शिलाओ मे परिवर्तन की क्रिया (Metamorphism) ऋतुक्षरण (Weathering) की ठीक उल्टी है। इन दोनो क्रियाओ से शिलाओ मे अन्तर हो जाते है—परिवर्तन द्वारा साधित अन्तर सृजनात्मक होता है और ऋतुक्षरण द्वारा साधित अन्तर विनाशकारी। ऋतुक्षरण की क्रिया के कारण सुन्दर-सुन्दर शिलाये भद्दी लगने लगती है और कालान्तर मे वे नष्ट-भ्रष्ट होकर धूलि मे परिणत हो जाती हैं। इसके विपरीत परिवर्तन से चूने के पत्थर जैसी काली भद्दी और अनाकर्षक शिला सगमरमर जैसी सुन्दर एव नयनाभिराम शिला मे परिणत हो जाती है।

### शिलाओ मे परिवर्तन (Metamorphism) के भेद

शिलाओ मे होने वाले परिवर्तन का वर्गीकरण दो आधारो पर किया जा सकता है —

(१) अभिकर्ता (Agency) के अनुसार
(२) प्रभावित होने वाले क्षेत्र के विस्तार के अनुसार

### (१) अभिकर्ता के अनुसार

(१) **तापीय परिवर्तन** (Thermal Metamorphism)—इस दशा मे परिवर्तन का मुख्य कारण ताप होता है, जैसे चूने के पत्थर का सगमरमर में परिणत हो जाना—

ताप
चूने का पत्थर————————→सगमरमर

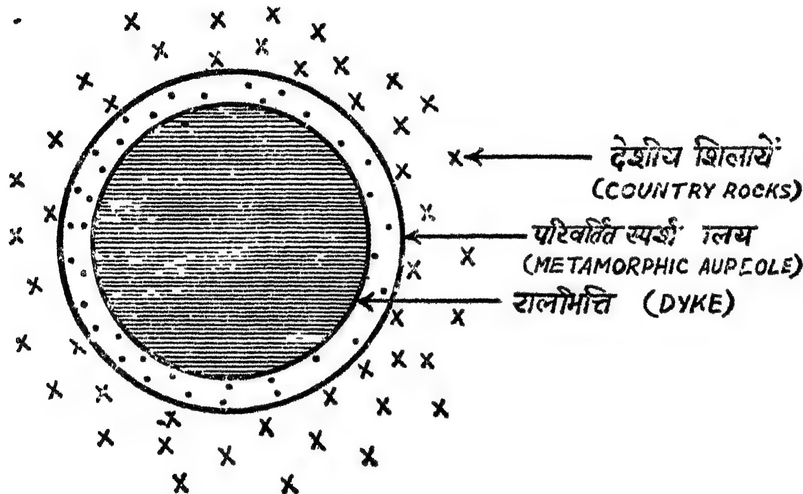
(२) **गत्यात्मक परिवर्तन** (Dynamic Metamorphism)—इस दशा मे परिवर्तन का मुख्य कारण दबाव होता है, जैसे शेल (Shale) का शिस्ट (Schist) में परिणत हो जाना—

दबाव

शेल (Shale) ——————————→ शिस्ट (Schist)

**(१) प्रभावित होनेवाले क्षेत्र के विस्तार के अनुसार**

(१) **सस्पर्शीय परिवर्तन** (Contact Metamorphism)—भूपर्पटी मे जब लावा ऊपर उठता है, तब वह अपने चारो ओर की शिलाओ को प्रभावित करता है उष्ण लावा के सस्पर्श से चारो ओर की चट्टाने झुलस जाती है। यही नही, लावा की धारायें भी उनमे प्रविष्ट हो जाती है और इस प्रकार रासायनिक प्रक्रियायें भी घटित होती है। रालभित्ति के चारो ओर स्थित परिवर्तित शिला के कटिबन्ध




चित्र ४—सस्पर्शीय परिवर्तन (Contact Metamorphism)

को परिवर्तित स्पर्श वलय (Metamorphic aureole) कहते है। सौराष्ट्र मे अनेक बैथोलिथ (Batholiths) पाये जाते है। उनके चारो ओर सस्पर्शीय परिवर्तन के प्रमाण मिलते है।

(२) **प्रादेशिक परिवर्तन** (Regional Metamorphism)—कभी कभी परिवर्तन की क्रिया बडे विस्तृत क्षेत्र मे होती है। उदाहरण के लिये जब भजित पर्वत (Folded Mountains) बनते है, तब भूपर्पटी के एक वृहद् कटिबन्ध की शिलाओ मे परिवर्तन होता है। हिमालय पर्वत का मध्यवर्ती अक्ष ऐसी ही परिवर्तित शिलाओ से बना है।

## परिवर्तित शिलाओ का वर्गीकरण

परिवर्तित शिलाओ के वर्गीकरण के अनेक आधार हो सकते है :—

(१) मूल शिलाओ के आधार पर

(२) परिवर्तन के अभिकर्ता (Agency of metamorphism) के अनुसार

### (१) मूल शिलाओ के आधार पर

मूल शिलाओं के आधार पर परिवर्तित शिलाओ के दो विभाग किए जा सकते हैं —

(१) **परि-जलज शिलायें** (Meta-sedimentary Rocks)—उन परिवर्तित शिलाओ को कहते है, जो जलज शिलाओ के परिवर्तन से बनती है जैसे सगमरमर

चूने क पत्थर ————————→ सगमरमर
(जलज शिला) (परि-जलज शिला)

(२) **परि-आग्नेय शिलाये** (Meta-Igneous Rocks)—उन परिवर्तित शिलाओ को कहते है, जो आग्नेय शिलाओं के परिवर्तन से बनती है जैसे सर्पेन्टीन (Serpentine)

गैब्रो (Gabbro) ————————→ सर्पेन्टीन (Serpentine)
(आग्नेय शिला) (परि-आग्नेय शिला)

### (२) परिवर्तन के अभिकर्ता के अनुसार

इस दृष्टि से परिवर्तित शिलाओ को दो वर्गों मे बाटा जा सकता है —

(१) तापीय परिवर्तन (Thermal Metamorphism) की शिलायें—जैसे सगमरमर

ताप
चूने का पत्थर ————————→ सगमरमर

(२) गत्यात्मक परिवर्तन (Dynamic Metamorphism) की शिलायें जैसे शिस्ट (Schist)

दबाव
शेल (Shale) ————————→ शिस्ट (Schist)

### (३) प्रभावित होने वाले क्षेत्र के विस्तार के अनुसार

इस आधार पर परिवर्तित शिलाओ के दो विभाग किए जा सकते है —

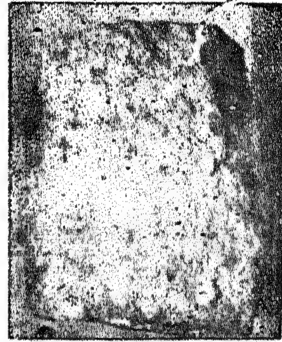
(१) सस्पर्शीय परिवर्तन की शिलाये—जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, सस्पर्शीय परिवर्तन मे उष्ण शिला-द्रव अथवा लावा अन्य ठोस शिलाओं का सस्पर्श करते हुए ऊपर उठता है, जिससे वे झुलस जाती है और कभी कभी उनमें लावा की धारायें भी प्रविष्ट हो जाती है, जिससे रासायनिक प्रक्रियाये भी घटित हो जाती है। इसका एक उदाहरण चूने के पत्थर मे प्रविष्ट रालभित्ति (Dyke) है। राल्भित्ति के किनारे के निकट चूने का पत्थर सगमरमर मे परिणत हो जाता है। यह संस्पर्शीय परिवर्तन का ही फल है।

(२) प्रादेशिक परिवर्तन की शिलायें—जब परिवर्तन की प्रक्रिया विस्तृत प्रदेश मे घटित होती है, तब जो परिवर्तित शिलाये बनती है, उन्हे हम प्रादेशिक परिवर्तन की शिलाये कहते है। उदाहरणार्थ पैन्सिलवानिया (सयुक्त राज्य अमेरिका) मे पर्वत-कारक बलो (Orogenic forces) के दबाव से तथा घर्षण के ताप से विस्तृत क्षेत्र मे चूने का पत्थर सगमरमर मे और शेल (Shale) स्लेट (Slate) मे परिणत हो गई है।

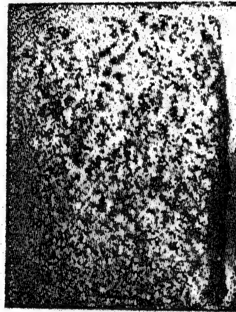
[ पृष्ठ ८ के सामने



चूने का पत्थर



संगुजित बालुकाश्म



ग्रेनाइट

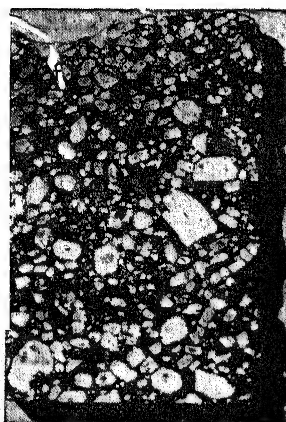


कौंगलोमरेट



पट्टीदार बालुकाश्म

चित्र ५—९ शिलाओं के कुछ प्रकार



ट्रैकाइट पौरफिरी



शिस्ट



शेल



संगमरमर



बेसाल्ट

चित्र १०—१४—शिलाओं के कुछ प्रकार

## ३ शिलाओं का आर्थिक महत्व

शिलाओ का आर्थिक महत्व बहुत अधिक है। उनसे अनेक प्रत्यक्ष तथा परोक्ष लाभ है। वे अनेक दिशाओ मे मनुष्य के लिये लाभदायक है —

(१) **कृषि**—कृषि की सफलता बहुत-कुछ मिट्टी पर निर्भर है। मिट्टी शिलाओ के वियोजन से बनती है। अतएव प्रत्येक मिट्टी के गुण उसकी मूल शिला (Parent rock) के अनुरूप होते है। उदाहरण के लिये बम्बई प्रदेश की काली मिट्टी, जो कपास के उत्पादन के लिये आदर्श समझी जाती है लावा-निक्षेप के वियोजन से बनी है।

(२) **जल पूर्ति**—मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओ मे वायु के पश्चात् जल ही सबसे महत्वपूर्ण है। जलपूर्ति शिलाओ की प्रकृति और सरचना पर निर्भर है। प्राकृतिक निर्झरो और पातालतोड कुओ की स्थिति शिलाओ की संरचना से ही निर्धारित होती है। सामान्य कुओ मे पानी के समतल की गहराई जलवायु के अतिरिक्त शिलाओ की प्रकृति पर भी निर्भर है।

(३) **शक्ति के साधन**—कोयला और पैट्रोल जैसे महत्वपूर्ण शक्ति के साधन शिलाओ मे ही छिपे रहते है।

(४) **इमारती पत्थर**—हमे शिलाओ से ही प्राप्त होते है। विन्ध्य श्रेणियो के क्षेत्र मे अधिकाश मकान पूर्णत विन्ध्य बालुकाश्म (Vindhyan Sandstone) से बने पाये जाते है। अनेक ऐतिहासिक इमारते तथा गढ शिलाओ की ही रचनाये है। आगरा का प्रसिद्ध ताजमहल मकराने (जोधपुर) सगमरमर से बना है। कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल भी मकराने के सगमरमर की रचना है। आगरे और दिल्ली के किले तथा लाहौर और दिल्ली को जामा मस्जिदें विन्ध्य-बालुकाश्म (Vindhyan Sandstone) से बने है। दक्षिण मे मैसूर, त्रिचनापली आदि के प्रसिद्ध मन्दिर ग्रेनाइट शिला से बने है। अजन्ता, एलोरा और एलिफैण्टा की प्रसिद्ध गुफाये बेसाल्ट (Basalt) से बनी है। 'बाघ' की गुफाये स्थानीय चूने के पत्थर मे बनी है।

(५) **सडक बनाने की गिट्टी**—शिलाओ को तोडकर ही बनाई जाती है।

(६) **उद्योगो में**—सीमेण्ट, काच, चूने आदि के उद्योग मुख्यत शिलाओ पर ही निर्भर है।

(७) **नमक**—मनुष्य के भोजन का अभिन्न अग है। पश्चिमी पाकिस्तान मे नमक का एक पहाड ही है, जिसे साल्ट रेज (Salt Range) कहते हैं।

(८) **खनिज तथा बहुमूल्य पत्थर**—अधिकाश खनिज तथा रत्न चट्टानो मे आबद्ध पाये जाते है। उदाहरण के लिये पन्ना मे हीरा सपिण्ड (Conglomerate) मे पाया जाता है।

(९) **अन्य छोटे मोटे उपयोग**—शिलाओ से बर्तन, मूर्त्तिया, हथियार तथा अनेक नित्योपयोगी पदार्थ बनाये जाते है। चित्रकारी मे शिलाये उपयोग मे आती हैं।

---

## द्वितीय परिच्छेद

# भूपर्पटी की गतियाँ

## (EARTH MOVEMENTS)

### १. भू पर्पटी की गतियों का वर्गीकरण

समुद्वर्तन (Diastrophism) शब्द के अन्तर्गत भूपर्पटी की समस्त गतिया आ जाती है।

भूपर्पटी की गतियो को हम मोटे तौर पर दो प्रमुख विभागो मे बाट सकते है —

१—पर्वतकारक गतिया (Orogenic or Mountain-Building Movements).

२—महाद्वीपकारक गतिया—(Epeirogenic or Continent-Building Movements)

निम्नाकित सारिणी भूपर्पटी की गतियो का सरल वर्गीकरण प्रस्तुत करती है—

भूपर्पटी की गतियाँ

**पर्वतकारक** (Orogenic)—ये गतिया उन बलो के कारण होती है, जो क्षैतिज दिशा मे क्रियाशील होते है। इन गतियो के फलस्वरूप निम्नलिखित प्रक्रियाये घटित होती है:—

(१) भजन (Folding)
(२) विभगन (Faulting)
(३) विभजन (Warping)

**महाद्वीपकारक** (Epeirogenic)—ये गतिया उन बलो के कारण होती है, जो लम्बवत् दिशा मे क्रिया-शील होते है। इन गतियो के फलस्वरूप धरातल के समतल मे परिवर्तन हो जाते है। इन्हे पुन दो उपविभागो मे बाटा जा सकता है —

(१) **आकस्मिक गतियाँ**—इनके फलस्वरूप धरातल का भाग विशेष अचानक ऊपर उठ जाता है या नीचे धँस जाता है।

(२) **मन्द एव दीर्घकालिक गतियाँ** इनके फलस्वरूप धरातल मे मन्द वेग से दीर्घकाल मे अधोगति अथवा निमज्जन (Subsidence), ऊर्ध्वगति अथवा उन्मज्जन (Elevation) अथवा समतल के दोलन (Oscillations of level) होते है।

### २. पर्वतकारक गतियाँ (Orogenic Movements)

पर्वतकारक गतियाँ उन बलो के कारण होती हैं जो क्षैतिज दिशा मे क्रियाशील होते है। इन गतियो से भजन (Folding) विभगन (Faulting) और विभजन (Warping) होता है।

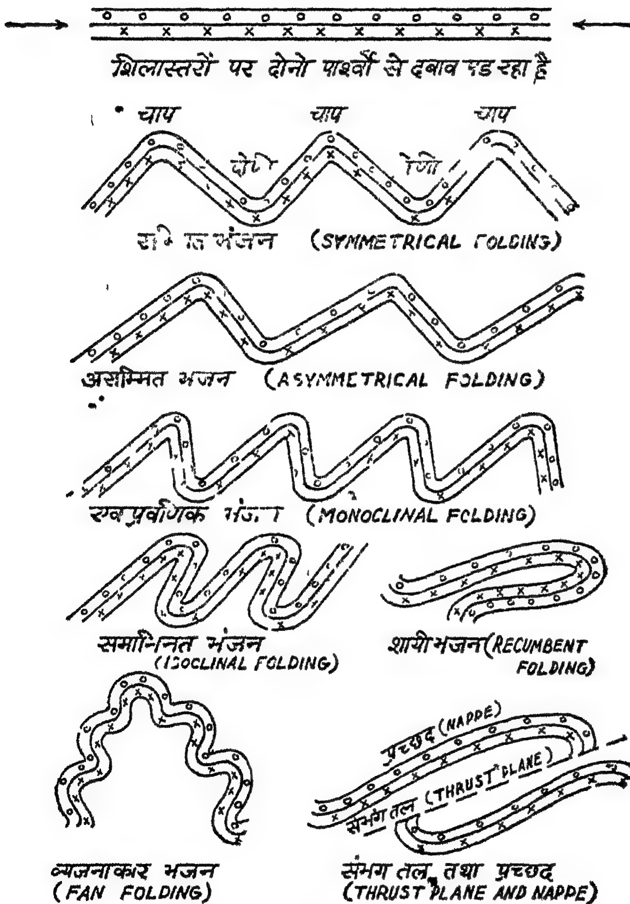
## (१) भजन (Folding)

जब शिलाओ के क्षैतिज स्तरो पर दो विपरीत दिशाओ से दबाव पड़ता है, तब उनमे मोड पड जाते है। यही भजन (Folding) है। चित्र १५ से यह कथन स्पष्ट होगा। इन मोडो या भजो (Folds) के ऊपर उठे हुए भागो को हम भज-चाप (Anticline) कहते है और नीचे धँसे हुए भागो को भज-द्रोणी (Syncline)।

### भजन-क्रिया (Folding) का वर्गीकरण

भजन की मुख्य प्रकारे निम्नलिखित है —

(१) **सम्मित भजन** (Symmetrical Folding )—जब प्रत्येक भज के दोनो बाहु समान रूप से झुके रहते है।




चित्र १५—भजन-क्रिया का वर्गीकरण

(२) **असम्मित भजन** (Asymmetrical Folding)—जब प्रत्येक भज का एक बाहु दूसरे की अपेक्षा कम या अधिक झुका रहता है।

(३) **एकप्रवणिक भजन** ( Monoclinal Folding )—जब प्रत्येक भज का एक बाहु लम्बवत (Vertical) होता है।

(४) **समाभिनत भजन** (Isoclinal Folding)—जब प्रत्येक भज के दोनो बाहु परस्पर समानान्तर होते हैं।

(५) **शायी भजन** ( Recumbent Folding )—जब भज के दोनो बाहु प्राय क्षतिज होते है। स्पष्ट है, कि इसके निर्माण के लिए एक दिशा से लगने वाला पार्श्विक दबाव अपने विपरीत दिशा से लगने वाले पार्श्विक दबाव से बहुत अधिक होगा।

(६) **व्यजनाका भजन** ( Fan Folding )—जब पार्श्विक दबाव के आधिक्य से भजित क्षेत्र का मध्यवर्ती भाग ऊपर उठ जाता है और मेहराब जैसी आकृति बन जाती है।

## सभग तल (Thrust Plane) तथा प्रच्छद (Nappe)

कभी २ जब भजन की क्रिया सम्पन्न होती है, तब पार्श्विक दबाव के अधिक्य मे पर्पटी मे दरार पड जाती है और उसके अनुरूप पर्पटी का एक खण्ड फिसलकर दूसरे खण्ड के ऊपर चढ जाता है। इस प्रकार फिसलने की गति को हम सभग (Thrust) कहते है और वह जिस समतल के अनुरूप होती है उसे हम सभग तल (Thrust Plane) कहते है। पर्पटी के उस खण्ड को जो ऊपर चढ जाता है, प्रच्छद (Nappe) कहते है। Nappe शब्द फ्रान्सीसी भाषा का है और इसका शाब्दिक अर्थ है—मेज का बिछावन।

## (२) विभगन (Faulting)

कभी-कभी वृहद् पार्श्विक दवाव के कारण कठोर शिलास्तर मुडने के स्थान पर टूट जाते है और इस प्रकार एक दरार अस्तित्व मे आ जाती है। इस क्रिया को हम विभगन (Faulting) कहते है और इस दरार को विभग समतल (Fault Plane)। जैसा कि चित्र १६ से स्पष्ट होगा, दवाव के कारण विभग समतल के एक पार्श्व के शिलास्तर दूसरे पार्श्व के शिलास्तर की अपेक्षा ऊपर उट जाते हैं। सक्षेप मे, भूपर्पटी की ऐसी दरार अथवा विदर को जिसके एक पार्श्व के शिलास्तर दूसरे पार्श्व के शिलास्तरो की अपेक्षा ऊपर उठ जाते हैं हम विभग (Fault) कहते हैं।

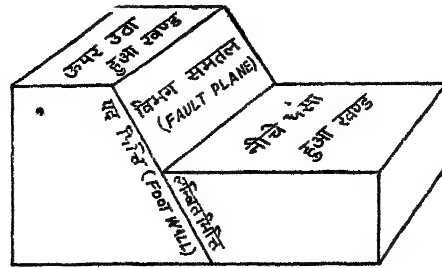
विभगन की प्रक्रिया एव वर्गीकरण के समझने के लिये कुछ शब्द विशेष जान लेना समीचीन होगा—

(१) विभग समतल (Fault Plane)—उस समतल को कहते हैं, जिसके अनुरूप शिलास्तरो की गति होती है।

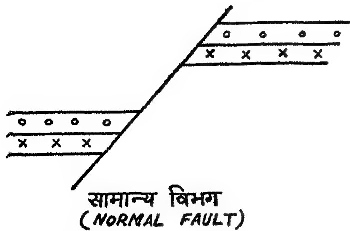
(२) विभग समतल का अभिनति कोण (Dip)—विभग-समतल क्षैतिज-दिशा के प्रति जो कोण बनाता हैं, उसे हम विभग-समतल का अभिनति कोण (Dip of the Fault Plane ) कहते हैं।

(३) ऊपर उठा हुआ खण्ड ( Upthrown side) और नीचे धँसा हुआ खण्ड ( Downthrown side)—ऊपर उठा हुआ खण्ड शिलास्तर का वह भाग

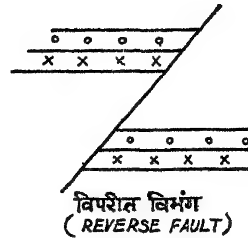
है, जो विभग-समतल की दूसरी ओर के शिलास्तर की अपेक्षा ऊपर उठा रहता है। वास्तव मे, क्षेत्र (Field) मे यह निर्धारित करना कि शिलास्तर के कौन से भाग मे गति हुई है बडा कठिन है।



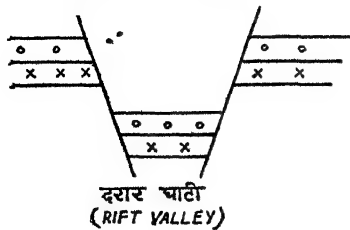

*विभंगन से सम्बन्धित शब्दावली*



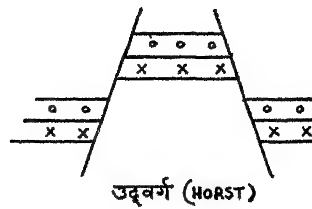
सामान्य विभग (NORMAL FAULT)



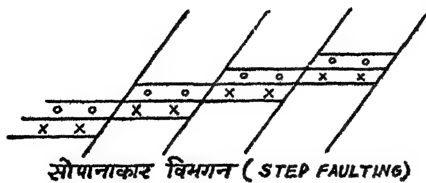
विपरीत विभंग (REVERSE FAULT)



दरार घाटी (RIFT VALLEY)



उद्वर्ग (HORST)



सोपानाकार विभगन (STEP FAULTING)

चित्र १६—विभगो का वर्गीकरण

(४) लम्बित-भित्ति (Hanging Wall)—विभग-समतल के ऊपरी पृष्ठ को लम्बित-भित्ति (Hanging Wall) कहते है।

(५) पद-भित्ति (Foot Wall)—विभग समतल के निचले पृष्ठ को पद-भित्ति (Foot Wall) कहते है।

## विभगो का वर्गीकरण (Classification of Faults)

विभगो के प्रमुख प्रकारे निम्नाकित है —

(१) **सामान्य विभग** (Normal Fault)—इसमे लम्बित भित्ति (Hanging Wall) धँसे हुए खण्ड की ओर होती है।

(२) **विपरीत विभग** (Reverse Fault)—इसमें लम्बित भित्ति ऊपर उठे हुए खण्ड की ओर होती है।

(३) **दरार घाटी** (Rift Valley or Graben)—दो सामान्य विभगो के मध्य मे धँसे हुए स्थलखण्ड को हम दरार घाटी (Rift Valley) कहते है।

(४) **होर्स्ट** (Horst)—यह दरार घाटी का ठीक उल्टा है। जब दो सामान्य विभगो के मध्य का स्थलखण्ड ऊपर उठ जाता है, तब उसे हम होर्स्ट (Horst) कहते है।

(५) **सोपानाकार विभगन** (Step Faulting)—जब अनेक उत्तरोत्तर एव समानान्तर विभगो मे ऊपर उठने या नीचे धँसने की गति एक ही दिशा मे होती है, तब उसे हम सोपानाकार विभगन (Step Faulting) कहते है।

### (३) विभजन (Warping)

कभी २ महाद्वीपकारक गति के फलस्वरूप भूपृष्ठ के वृहत् क्षेत्र मुड़ कर ऊपर उठ जाते है या नीचे धँस जाते है। ऐसे क्षेत्र सैकडो मील लम्बे और चौड़े होते है। ऊपर उठे हुए क्षेत्र को हम भू-चाप (Ge-anticline) कहते है और नीचे धँसे हुए क्षेत्र को भूद्रोणी (Geo-syncline)। इस प्रकरण के पूर्वांश मे भज-चाप (Anti-cline) एव भज-द्रोणी (Syncline) का उल्लेख हो चुका है। यहाँ पर इनका भेद स्पष्ट कर देना उचित होगा। भज-चाप अथवा भज-द्रोणी मे शिलाओ के अपेक्षाकृत बहुत कम (अर्थात् लगभग दो तीन) स्तर प्रभावित होते है, किन्तु भूद्रोणी अथवा भूचाप मे भूपर्पटी की वृहत् मोटाई निहित होती है। उत्तरी अमेरिका का पश्चिमी मैदान भूचाप (Ge-anticline) का द्योतक है और बाल्टिक सागर भू-द्रोणी (Geo-syncline) का। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि भूचाप अथवा भूद्रोणी मे अनेक छोटे २ भज (Folds) एव विभग (Faults) विद्यमान हो सकते है।

## ३ महाद्वीपकारक गतियाँ (Epeirogenic Movements)

महाद्वीपकारक गतिया उन बलो के कारण होती है, जो लम्बवत् दिशा मे क्रियाशील होते है। इनसे धरातल के समतल मे अन्तर हो जाते है, अर्थात् वह ऊपर उठ जाता है अथवा नीचे धँस जाता है।

महाद्वीपकारक गतियो को पुन. दो उपविभागो मे विभाजित किया जा सकता है —(१) आकस्मिक (Sudden) एव (२) मन्थर (Slow) तथा दीर्घकलिक (Secular)

### (१) आकस्मिक गतियाँ (Sudden Movements)

आकस्मिक गतियो से भूकम्प होते है, जिनसे भूपृष्ठ के समतल मे अन्तर हो जाते है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है —

### (क) उन्मज्जन (Elevation)

(१) सन् १८८५ ई० के न्यूजीलैण्ड के भूकम्प से धरातल का कुछ भाग ९ फुट ऊपर उठ गया।

(२) सन् १८२२ ई० के चिली के भूकम्प से तट रेखा ३ फुट से लेकर ४ फुट तक ऊपर उठ गई।

### (ख) निमज्जन (Subsidence)

(३) सन् १८९१ ई० के जापान के भूकम्प से धरातल का कुछ भाग एक ओर २० फुट नीचे धँस गया।

(४) सन् १८१९ ई० के कच्छ के भूकम्प से २००० वर्गमील का वृहत् क्षेत्र १२ से लेकर १५ फुट तक नीचे धँस गया और अन्तर्देशीय सागर (Inland Sea) मे परिणत हो गया। साथ ही साथ ६०० वर्ग मील का अन्य क्षेत्र ऊपर उठ गया। इस ईश्वरनिर्मित बाँध को आज भी हम 'अल्लाह-बाँध' कहते है।

## (२) मन्थर एव दीर्घकालिक गतियाँ (Slow and Secular Movements)

इनसे धरातल मे तीन प्रकार के अन्तर होते है —

(क) धीरे-धीरे ऊपर उठना (Elevation)

(ख) धीरे-धीरे नीचे धँसना (Subsidence)

(ग) समतल के दोलन ( Oscillations of Level )—अर्थात् एकान्तर पर धरातल का ऊपर उठना और नीचे धँसना। यह क्रिया भी क्रमश धीरे-धीरे होती है।

### (क) समतल का उन्मज्जन (Elevation of Level)

इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है —

(१) बलूचिस्तान के मेकरान तट पर सागर समतल से १०० फुट की ऊँचाई पर स्थित क्षेत्र मे महासागरीय जीवो के कर्पर (Shells) उपलब्ध हुए हैं।

(२) काठियावाड के तट पर कगुकाश्म (Miliolite) नामक एक चूने का पत्थर पाया जाता है। इसका नाम कगुकाश्म (Miliolite) इसलिये पडा कि इसकी रचना कगुक (Miliola) नाम के पादछिद्रि ( Foraminifer ) के अवशेषो से हुई है। यह तो निर्विवाद है कि कगुक केवल सागर मे पाये जाते हं, स्थल म नही। उक्त प्रदेश मे चोटीला नाम के पर्वत की ११७३ फुट ऊँची चोटी पर कगुकाश्म (Miliolite) पाया गया है।

(३) पूर्वीतट पर उडीसा, आन्ध्र और मद्रास मे अनेक स्थानो मे उन्मज्जन हुआ है। इन क्षेत्रो मे सागर-समतल से ५० से लेकर १०० फुट की ऊँचाई तक सामुद्रिक जीव चूर्णप्रावारा ( Mollusca ) के कर्पर पाये गये ह।

(४) इसी प्रकार स्कॉटलैण्ड मे भी तट के उन्मज्जन के चिह्न मिले है।

### (ख) समतल का निमज्जन (Subsidence)

इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है —

(१) सन् १८७८ ई० मे जब बम्बई द्वीप के पूर्वी तट पर खुदाई अथवा उत्खनन (Excavation) का कार्य हो रहा था, तब वहाँ पृथ्वी मे धँसे हुए बहुत से वृक्ष पाये गये। ३० एकड के क्षेत्र मे ३८२ वृक्ष मिले, जिनमे २२३ अपनी मूलस्थिति मे लम्बवत् खडे थे। ये वृक्ष उच्चतम ज्वार के समतल से ३३ फुट नीचे पाये गए। स्पष्ट है, कि इस दशा मे धरातल कम से कम ३३ फुट नीचे धँस गया है।

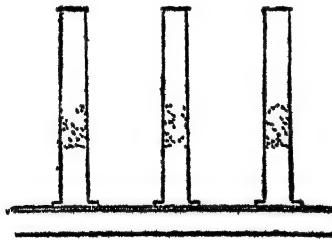
(२) इसी प्रकार वालीमुकम की खाडी मे टिन्नवैली तट पर एक अन्य धँसे हुए वन का पता चला है।

(३) पाण्डिचेरी के पीट-निक्षेप ( Peat Deposits ) धरातल के निमज्जन के द्योतक है। यह निमज्जन प्रातिनूतन ( Pleistocene ) और अभिनव (Recent) काल मे हुआ है।

(४) ब्रिटिश द्वीप समूह मे भी निमज्जन के प्रमाण मिलते है, जिनमे विदित होता है कि निकट भूतकाल मे उत्तरी सागर का दक्षिणी भाग 'निम्न समतल का वन' (Low Lying Forested Area) था।

### (ग) समतल का दोलन (Oscillation of Lovel)

इसका एक सुन्दर उदाहरण नेपिल्स मे सिरापिस का मदिर ( Temple of (Scrapis ) है। इस मदिर के खण्डहर के अध्ययन से यह विदित होता है कि यहा के धरातल मे निमज्जन और उन्मज्जन दोनो ही गतिया क्रम से घटित हुई है। इस मदिर मे तीन खम्भे है। धरातल से लेकर १२ फुट की ऊँचाई तक ये खम्भे चिकने है। फिर १२ फुट से लेकर २१ फुट की ऊँचाई तक इनमे सामुद्रिक जीवों द्वारा निर्मित छिद्र वर्तमान है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त मदिर २१ फुट के चिह्न तक समुद्रमें डूबा हुआ था, १२ फुट के चिह्न तक ये खम्भे ज्वालामुखीय धूलि (Volcanic Dust) मे धँसे हुए थे, जिससे सामुद्रिक जीव इनमें छेद न कर सके। कालान्तर मे य मदरहि सागर-नितल के उन्मज्जन के कारण समुद्र से बाहर निकल आया।



चित्र १७—सिरापिस के मन्दिर के खण्डहर

## ४. भंजित एवं विभंगित भूदृश्य

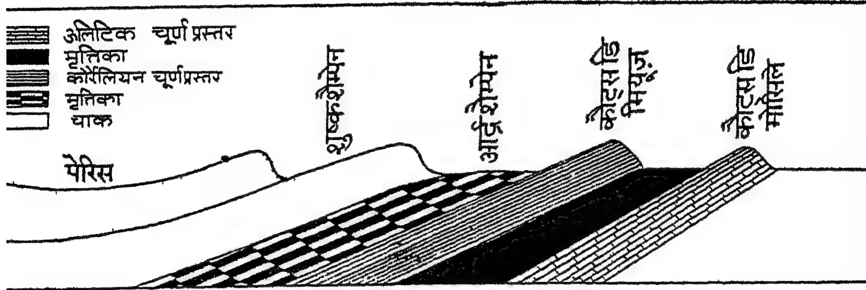
(Folded and Faclted Todography)

ऐसे भूदृश्य को जिसमे भजन (Folping) एव विभगन (Faulting) की क्रियाओ से अस्तित्व मे आये हुये भूरूपों की बहुलता एव प्रमुखता हो, हम भजित

## ४. भंजित एवं विभंगित भूदृश्य
## (Folded and Faulted Topography)

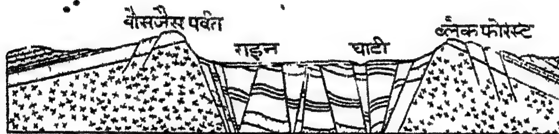
ऐसे भूदृश्य को, जिसमे भजन एव विभगन की क्रियाओ (Folding and Faulting) से अस्तित्व मे आये हुए भूरूपो की बहुलता एव प्रमुखता हो, हम भजित एव विभगित भूदृश्य कहते हैं। स्पष्ट है, कि ऐसे भूदृश्य मे निम्नलिखित रूपधेय पाये जायगे —

(१) विभिन्न प्रकार के भजित स्तर—सम्मित, असम्मित, एकप्रवणिक, समाभिनत, शायी, ब्यजनाकार आदि।




चित्र १८—भजिन भूरूप का एक उदाहरण—पेरिस बेसिन

(२) भजन से बने पर्वत।
(३) भजन तथा आग्नेय क्रिया के सयुक्त फल से बने रूपधेय जैसे फैकोलाइट।
(४) भजन से बनी झीले।




चित्र १९—विभगित भूरूप का एक उदाहरण—राइन घाटी

(५) विभिन्न प्रकार के विभग—सामान्य, विपरीत आदि।
(६) दरार घाटी।
(७) दरार घाटी मे पानी भर जाने से बनी झील अथवा सागर।
(८) होर्स्ट जो पठार अथवा पर्वत के रूप मे हो सकता है।
(९) विभगन से बनी तट-रेखा जो सीधी-सपाट होगी। आदि-आदि।

## तृतीय परिच्छेद

# भूकम्प (EARTHQUAKES)

### १ भूकम्प क्या है ?

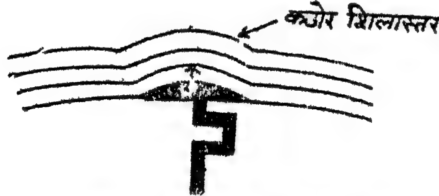
भूपृष्ठ के किसी भाग के अकस्मात् काप जाने को हम 'भूकम्प' कहते हैं।

### २. भूकम्प के कारण

भूकम्प आने के प्रमुख कारण निम्नलिखित है —
(१) ज्वालामुखी
(२) पृथ्वी का सिकुडना
(३) भूसन्तोल का सिद्धान्त
(४) विभगन की प्रक्रियाये
(५) डा० रीड का सिद्धान्त
(६) पृथ्वी के अन्दर गैसो का फैलना
(७) कृत्रिम भूकम्प के कारण

#### (१) ज्वालामुखी

ज्वालामुखी के विस्फोट के समय यह अत्यन्त स्वाभाविक है, कि उसका निकटवर्ती क्षेत्र काँप उठे। कभी-कभी ज्वालामुखी के क्षेत्र मे विस्फोट हुए बिना ही भूकम्प आ जाता है। यह इस प्रकार होता है। पृष्ठ से सैकडो मील नीचे पृथ्वी के अन्दर लावा विद्यमान है। द्रवित शिलाओ का नाम ही लावा है। कभी २ ऊपर के दवाव के घट जाने से या अन्य किसी कारणवश यह लावा धरातल की ओर बढता है। जैसा कि चित्र २० के द्वारा स्पष्ट है, यह लावा निर्बल भाग अर्थात् दरारो और सन्धियो से होता हुआ ऊपर उठता है। यदि इसके मार्ग मे कोई कठोर शिलाखण्ड आ जाता है, तो वह ऊपर नही जा पाता। शिलाखण्ड के विरुद्ध उसकी शक्ति क्रमश सचित होती रहती है। कालान्तर मे ऐसी अवस्था आ जाती है, कि उसकी सचित शक्ति शिलाखण्ड को हिला देती है। इस प्रकार शिलाखण्ड के ऊपर धरातल मे 'भूकम्प' आ जाता है।

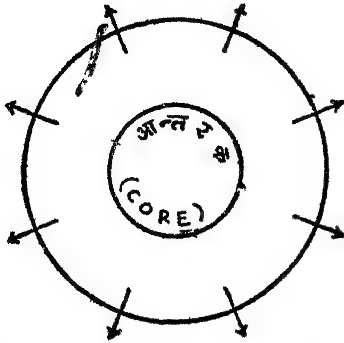


चित्र २०—ज्वालामुखी की क्रिया

#### (२) पृथ्वी का सिकुडना

अनेक विद्वानो की यह धारणा है, कि विकिरण (Radiation) की क्रिया द्वारा पृथ्वी का तापक्रम क्रमश घटता जा रहा है। ताप के क्षीण होने से पृथ्वी

सिकुडती है। सकोचन के समय भूपृष्ठ के अनेक भाग कॉप जाते है। अन्य शब्दो मे वहाँ भूकम्प आ जाता है।

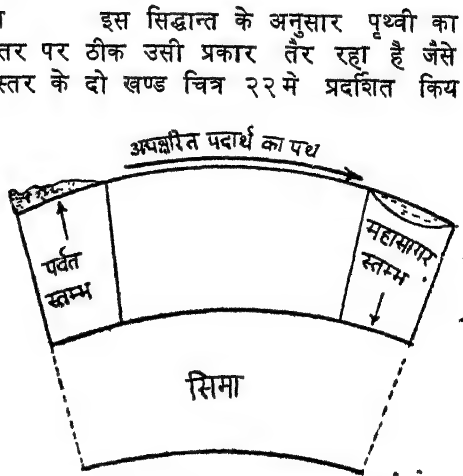



चित्र २१—पृथ्वी के ताप का विकिरण

आधुनिक अनुसन्धान इस धारणा के विरुद्ध है। इनके अनुसार भूपर्पटी मे बहुत से तेजोद्गर पदार्थ (Radio-active Substances) वर्तमान है। उनका वियोजन (Disintegration) होता रहता है, जिससे बहुत बडे परिमाण मे ताप उद्विकसित होता है। यह ताप विकिरण द्वारा खोये हुए ताप की पूर्ति कर देता है। तब पृथ्वी के सिकुडने का प्रश्न ही कहाँ रहा?

## (३) भूसन्तोल (Isostasy) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का सबसे बाहरी स्तर अपने नीचेवाले स्तर पर ठीक उसी प्रकार तैर रहा है जैसे पानी मे कॉर्क तैरता है। बाहरी स्तर के दो खण्ड चित्र २२ मे प्रदर्शित किये गए है—एक पर्वतीय क्षेत्र का द्योतक है, दूसरा महासागर का। नदियाँ पर्वतो को घिसती रहती है और घिसे हुए पदार्थ को सागर मे एकत्र करती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि पर्वतीय भाग का भार क्रमश घटता रहता है और महासागरीय भाग का भार क्रमश बढता रहता है। भार घट जाने मे पर्वतीय भाग ऊपर उठता है ओर भार बढ जाने से महासागरीय भाग नीचे धँसता है। भूपर्पटी के विभिन्न भागो के इस प्रकार ऊपर उठने और नीचे धँसने से भी भूकम्प आ जाते है।




चित्र २२—भूसन्तोल का व्यतिक्रम

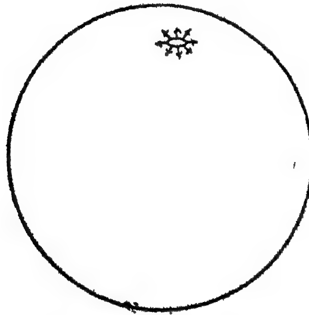
## (४) विभगन (Faulting) की प्रक्रियाये

जब भूपर्पटी के किसी भाग पर दो विपरीत दिशाओ से दवाव लगता है, तो उसमे मोड पड जाते है। भूगोल मे इसे भजन (Folding) कहते है। कभी २ शिलाओ के कठोर होने से तथा दवाव की मात्रा अधिक होने से शिलाखण्ड मे दरार पड जाती है और एक खण्ड दूसरे खण्ड के ऊपर दरार के अनुरूप चढ जाता है। भूगर्भशास्त्र मे इस क्रिया को विभगन कहते है। यह अनेक प्रकार का होता है। जब कभी भी विभगन की प्रक्रिया होती है, तब भूकम्प अवश्य आता है। उत्तरी भारत मे इस प्रकार की एक लम्बी दरार कश्मीर से ब्रह्मा तक चली गई है। इसे मुख्य सीमा स्थित विभग (Main Boundary Fault) कहते है। इसके कारण उत्तरी भारत मे भूकम्प बहुत आते है।

### (५) डा० रीड का सिद्धान्त

इनके अनुसार जब किसी शिलाखण्ड पर किसी दिशा मे दबाव पडता है, तब वह अपने स्थितिस्थापकता (Elasticity) के गुण के कारण उसे विपरीत दिशा मे वापस लौटा देता है। इस प्रकार भी कभी-कभी भूकम्प आ जाते है।

### (६) पृथ्वी के अन्दर गैसो का फैलना



चित्र २३—पृथ्वी के अन्दर गैसो का फैलना

कभी कभी पृथ्वी के अन्दर विद्यमान गैसो के फैलने से (चित्र २३) अथवा पानी के भाप मे परिणत होने से उत्पन्न हुए दबाव के कारण भी भूकम्प आ जाते है।

### (७) कृत्रिम भूकम्प के कारण

कृत्रिम भूकम्प का कारण मनुष्य है। हिरोशिमा मे जब एटम बम का धडाका हुआ, तो पृथ्वी काँप उठी। रेल के चलने से प्राय: रेलमार्ग और पुल मे कम्पन होता है।

## ३ भूकम्प का वर्गीकरण

भूकम्प का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है। कारण के आधार पर भूकम्प की दो श्रेणियाँ की जा सकती है —

(१) कृत्रिम अथवा मनुष्यकृत भूकम्प—जैसे बम-विस्फोट के कारण किसी भूभाग का काप जाना। इस प्रकार के भूकम्प महत्त्वहीन और नगण्य है।

(२) प्राकृतिक भूकम्प—ये प्राकृतिक कारणो से होते है। उन्हे पुन दो विभागो मे बाँटा जा सकता है—(क) कुछ भूकम्पो का सम्बन्ध ज्वालामुखी के उद्गार से होता है। जापान मे आने वाले भूकम्प इसी प्रकार के है। (ख) भूपर्पटी मे होने वाली गतियो के फलस्वरूप भी भूकम्प आते है। भारतवर्ष मे आने वाले अधिकाश भूकम्प इसी श्रेणी के है। ज्वालामुखी से सम्बन्धित भूकम्प इतने विनाशकारी नही होते, जितने भूपर्पटी की गतियो के कारण आने वाले भूकम्प होते है।

स्थिति के अनुसार भूकम्प की दो श्रेणियाँ की जा सकती है —(१) स्थल मे आने वाले भूकम्प तथा (२) समुद्र के गर्भ मे आने वाले भूकम्प, यद्यपि कारण की दृष्टि से इनमे कोई भेद नही है।

समुद्र के गर्भ मे जब भूकम्प होता है, तब उससे बडी भयानक लहरे उत्पन्न हो जाती है, जो तटीय नगरो को बहुत हानि पहुँचाती है। जापान मे इन लहरो को ट्सूनामिस (Tsunamis) कहते है।

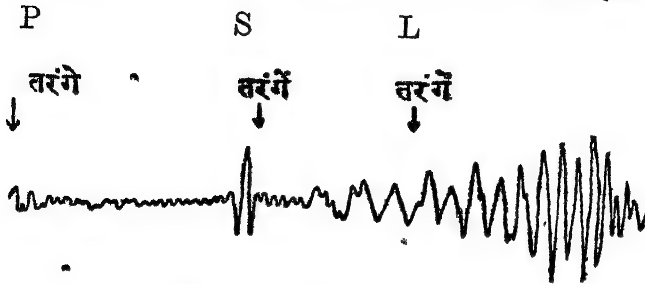
## ४ भूकम्प की प्रक्रिया

भूकम्प का उद्गम (Seismic Focus)—धरातल से प्राय. पचास-साठ मील नीचे होता है। उद्गम से भूकम्प की लहरे पृष्ठ की ओर अग्रसर होती है। ये लहरे तीन प्रकार की होती है.—

(१) प्राथमिक (Primary or P) अथवा अनुदैर्घ्य (Longitudinal)

लहरे—इनका गति-वेग सबसे अधिक होता है। इनका औसत वेग ३ ३ मील प्रति सैकण्ड है। भूपृष्ठ पर ये सबसे पहले पहुँचती हैं।

(२) गौण (Secondary or S) अथवा अनप्रस्थ (Transverse) लहरे—इनका गतिवेग प्राथमिक लहरो का लगभग आधा होता है और ये उनके पीछे २ चलती है। प्राथमिक लहरो की तुलना मे इनसे क्षति अधिक होती है।




चित्र २४—भूकम्प की तरगे

(३) पृष्ठ की लहरे (Surface or L waves)—जब प्राथमिक और गोण लहरे धरातल पर पहुँच जाती है, तब पृष्ठ की लहरे अस्तित्व मे आती है। इनका गतिवेग सबसे कम होता है, किन्तु इनसे क्षति बहुत होती है।

भूकम्प की लहरे सामान्यत धरातल के उस स्थान पर सबसे पहले पहुँचती है, जो उद्गम के ठीक ऊपर होता है। इस विन्दु को भूकम्पशास्त्र (Seismology) मे अभिकेन्द्र ( Epi-centre ) कहते है। यह स्वाभाविक ही है कि अभिकेन्द्र मे भूकम्प के आघात की मात्रा सबसे अधिक होती है।

भूकम्प की लहरे पृथ्वी की आन्तरिक रचना पर भी प्रकाश डालती है। इस सम्बन्ध मे हम आगे विचार करेंगे।

भूकम्प-लेखक (Seismograph)—नामक यत्र से हमे इन लहरो का ज्ञान होता है। चित्र २५ मे भूकम्प-लेखक प्रदर्शित किया गया है। भूकम्प आने के पूर्व इसमे लगी पेन्सिल कागज पर अपने आप चलने लगती है और उसमे ये लहरे अकित हो जाती है। चित्र २४ मे भूकम्प की लहरे दिखलाई गई है। इन अकनो के अध्ययन से आने वाले भूकम्प के सम्बन्ध मे निष्कर्ष निकाले जाते है और उनके विपय मे भविष्यवाणी की जाती है।

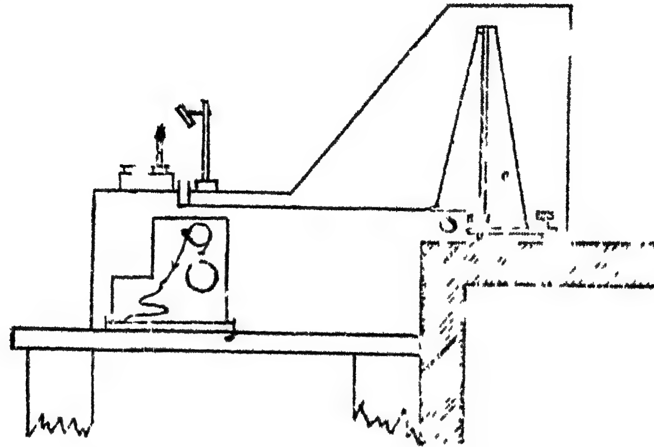
भूकम्प लेखक के अकनो से ज्ञात होता है कि पृथ्वी के किसी न किसी भाग में भूकम्प नित्य ही आते रहते है। ये भूकम्प इतने हल्के होते है कि हमे उनका अनुभव नही होता।

भूकम्प–मानचित्रो मे दो प्रकार की रेखाये प्रयुक्त होती है —

(१) भूकम्प समकालीन रेखाये (Homo-seismal Lines)—ये वे कल्पित रेखाये है, जो उन स्थानो को मिला देने से वन जाती है, जहाँ भूकम्प का अनुभव एक ही समय होता है।

(२) भूकम्प समाघात रेखाये (Iso-seismal Lines)—ये वे कल्पित

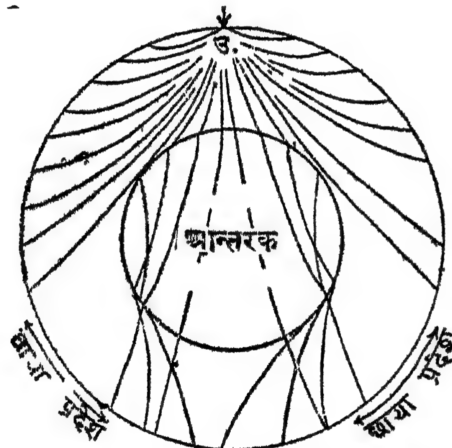
रेखाये है, जो उन स्थानो को मिला देने से बनती है, जहाँ भूकम्प के आघात की मात्रा समान हो।



चित्र २५—भूकम्पलेखक (Seismograph)

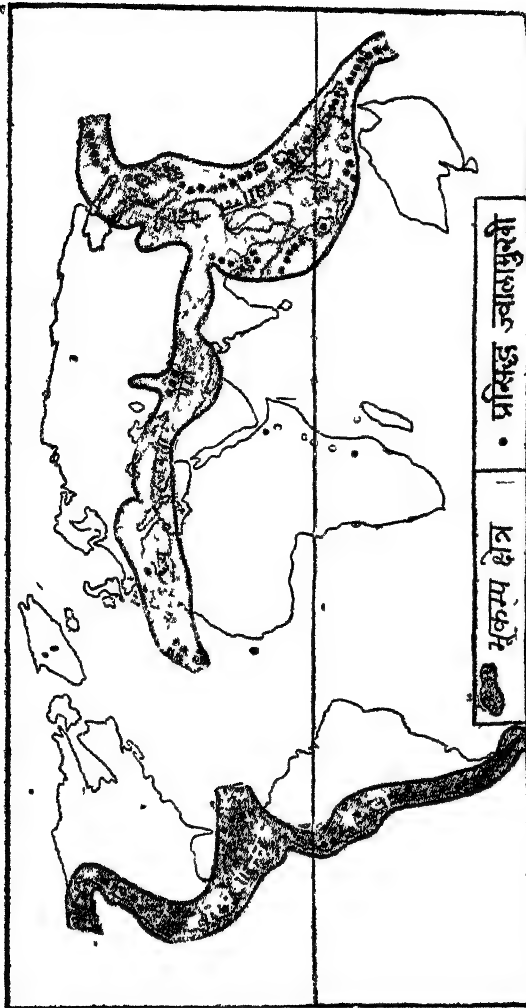
## ५. भूकम्प और पृथ्वी की आन्तरिक रचना

विज्ञान के इतने उन्नतिशील होजाने पर भी हमारे पास पृथ्वी के अभ्यन्तर के अध्ययन के लिये कोई भी विश्वसनीय साधन नही है। सछिद्रण (Bore hole) द्वारा अधिक से अधिक दस मील की गहराई का अध्ययन किया जा सकता है। पृथ्वी का अर्ध-व्यास चार हजार मील है। इसे दृष्टि मे रखते हुए दस मील की संख्या अत्यन्त नगण्य है। पृथ्वी के अन्तर के सम्बन्ध में आधुनिक अध्ययन भूकम्प की लहरों पर ही आधारित है। तरगो की गति के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे जिन स्तरो मे होकर आई है, उनकी सरचना, घनत्व आदि क्या है। यह कथन इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए किसी लडके को यह आदेश दिया जाय कि वह मैदान मरुस्थल और कीचड प्रत्येक मे एक-एक मील दौडे। स्पष्ट है, कि वह मैदान की दूरी शीघ्र ही पूरी कर लेगा। मरुस्थल में उसे अपेक्षाकृत अधिक समय लगेगा और कीचड मे तो पैर फँसने के कारण उसे बहुत




चित्र २६—पृथ्वी में भूकम्प की तरगो के पथ

समय लग जायगा। अतएव यदि हमे यह ज्ञात हो कि लडके को दौडने मे कितना समय लगा तो हम तुरन्त ही यह बतला सकते है कि वह मैदान मे दौडा है या मरूस्थल में




चित्र २७—पृथ्वी पर भूकम्प का वितरण

या कीचड में। ठीक यही दशा भूकम्प की लहरो की भी है। उनके अध्ययन से हम पृथ्वी की आन्तरिक रचना का अनुमान लगा सकते है। प्रकाश की किरणो की भांति भूकम्प की लहरो मे भी वर्त्तन (Refraction) होता है अर्थात् ऐसे तल पर जहाँ दो विभिन्न घनत्व के स्तर मिलते है, वे मुड जाती है। पृथ्वी के अन्तर के सम्बन्ध मे निष्कर्ष निकालते समय इसका भी विचार किया जाता है। लहरे जितनी बार मुडेंगी, स्तर के उतने ही विभेदन होगे।

## ६ भूकम्प का वितरण

### (१) पृथ्वी में

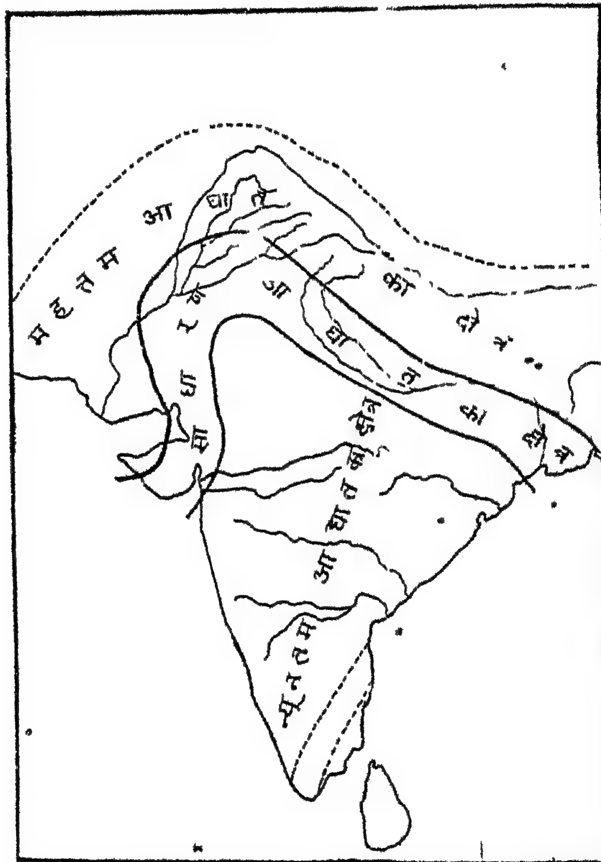
जैसा कि चित्र २७ द्वारा स्पष्ट है पृथ्वी पर भूकम्प की दो पेटियाँ विद्यमान हैं-

(१) परिप्रशान्त पेटी ( Circum-Pacific Belt )—यह पेटी प्रशान्त महासागर के चारो ओर तट पर वर्तमान है।

(२) मध्य जगत पेटी ( Mid-World Belt)—यह पेटी दक्षिणी योरप, उत्तरी अफ्रीका और मध्य एशिया से गुजरती है और आगे जाकर परिप्रशान्त पेटी मे मिल जाती है।

### (२) भारतवर्ष मे

चित्र २८ मे भारतवर्ष के भूकम्प के कटिबन्ध प्रदर्शित किये गए है.—



चित्र २८—भारतवर्ष मे भूकम्प की पेटियाँ

(१) सबसे उत्तर मे महत्तम आघात का क्षेत्र (Zone of maximum

intensity ) है। यहाँ भूकम्प सबसे अधिक आते है और उनसे क्षति भी बहुत अधिक होती है।

(२) बीच मे साधारण आघात का कटिबन्ध (Zone of comparative intensity ) है। यहाँ भूकम्प अपेक्षाकृत कम आते है और उनसे हानि भी साधारण होती है।

(३) दक्षिण मे न्यूनतम आघात का कटिबन्ध ( Zone of minimum intensity ) है। इस क्षेत्र मे भूकम्प बहुत ही कम आते है और उनसे क्षति भी बहुत कम होती है।

उपर्युक्त कथन से प्रकट है कि भारतीय उपमहाद्वीप मे भूकम्प की दृष्टि से उत्तरी भारत विशेषकर पाकिस्तान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भूकम्प बहुत आते है और उनसे हानि भी बहुत होती है। अनुभव द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है। क्वेटा, बिहार और आसाम के भूकम्प अभी विस्मृत नही हुए है। भूकम्प की दृष्टि से दक्षिणी भारत महत्त्वहीन है। उत्तरी भारत में भूकम्प अधिक आने के अनेक कारण है। हिमालय पर्वत के ऊपर उठने की क्रिया अभी समाप्त नही हुई है। उसके ऊपर उठने से निकटस्थ क्षेत्र का काँप जाना स्वाभाविक ही है। मुख्य सीमास्थित विभग ( Main Boundary Fault ) पर जो दक्षिणी हिमालय के अनुरूप कश्मीर से ब्रह्मा तक चला गया है, शिलाखण्डो के ऊपर उठने और नीचे जाने की गतियाँ होती रहती है। इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत की शिलाओ का भूसन्तोल विषयक सन्तुलन (Isostatic Equilibrium) अभी तक स्थापित नही हो सका है।

## (७) भूकम्प का प्रभाव

भूकम्प के प्रभाव का वर्णन करने के लिये मोटे ग्रन्थ लिखे जा सकते है और वास्तव में लिखे भी गए है। यहाँ पर सकेतमात्र ही पर्याप्त होगा। विशेष अध्ययन के लिये भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग द्वारा प्रकाशित अभिलेख एव सस्मरण (Records and Memoirs of the Geological Survey of India) बहुमूल्य है।

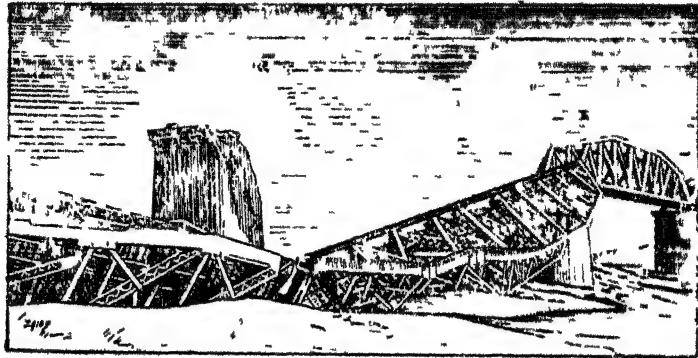
### (१) हानियाँ

(१) भूकम्प से धन-जन का बहुत विनाश होता है। इस सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है। आसाम के विगत भूकम्प की स्मृति अभी ताजी है। जन-विनाश का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इटली के सन् १९०८ के भूकम्प मे जिसकी अवधि केवल २३ सैकण्ड थी, डेढ लाख से भी अधिक व्यक्ति काल के गाल में चले गए। सम्पत्ति के विनाश का अनुमान जापान के सन् १९२३ के भूकम्प से लगाया जा सकता है। यद्यपि इसकी अवधि भी कुछ सैकण्ड ही थी, तथापि अप्रत्याशित रूप से इसके कारण जो आग लगी, केवल उससे पन्द्रह खरब डालर की सम्पत्ति स्वाहा हो गई। १ मार्च १९६० के अगादिर ( मोरक्को ) के भूकम्प से १०,००० से अधिक व्यक्ति काल कवलित हुए, ४०,००० व्यक्ति बेघरबार होगये तथा सम्पूर्ण नगर मिट्टी के ढेर मे परिणत होगया।

(२) भूकम्प के कारण प्रशान्त महासागर मे स्थित क्रैकेटोआ नामक टापू सदा के लिये समुद्र के गर्भ मे समा गया और उसके साथ ही उसकी समस्त सम्पत्ति धन, जन, जीव, पादप अनन्त मे विलीन हो गए।

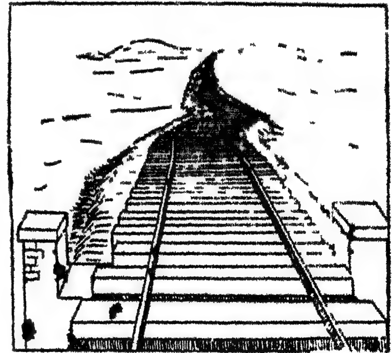


चित्र २९—भूकम्प के कारण पृथ्वी का फट जाना।



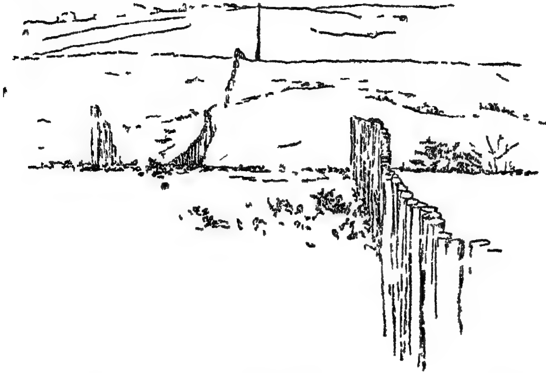
चित्र ३०—भूकम्प के फलस्वरूप पुल का टूट जाना.

(३) भूकम्प से मकान नष्ट हो जाते है, पेड उखड जाते है, पुल टूट जाते है, (चित्र ३०), नदियो मे बाढ जा आती है, पृथ्वी फट जाती है, (चित्र २९) दरारो से गरम पानी, गन्धकमय गैसे .आदि निकलने लगती है, स्थलसर्पण (Land-slide) के कारण सडके अवरुद्ध हो जाती हैं, रेल की पटरियाँ टेढी हो जाती हैं, (चित्र ३१) रेल मार्ग धँस जाता है और अनेक विचित्र घटनाये होती है—जैसे बिहार के भूकम्प मे अनेक घटाघरो में मरोड पड गई थीं। कभी २ भूकम्प के कारण झरनो के पानी का रग, तापक्रम तथा वेग बदल जाता है।



चित्र ३१—भूकम्प के कारण रेल की पटरियों का टेढा हो जाना

(४) समुद्रान्तर भूकम्प का उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है। ट्यूनामिस तटीय क्षेत्रों मे विनाश ढा देती है। समुद्र के जहाज उलट-पलट जाते है।



चित्र ३२—भूकम्प के कारण सीमा-भित्ति का टूट कर खिसक जाना

## (२) लाभ

भूकम्प से केवल हानियाँ ही नही है, वरन् कुछ लाभ भी है जैसे —

(१) पृथ्वी के अन्दर के अनेक बहुमूल्य खनिज ज्वालामुखीय भूकम्प द्वारा धरातल पर आ जाते है। यदि भूकम्प न हो तो मनुष्य को उनका पता भी न चले।

(२) लावा द्वारा निर्मित भूमि कृषि की दृष्टि से बडी उपजाऊ होती है। दक्षिणी भारत की काली मिट्टी, जो कपास की उपज के लिए आदर्श है, इसका उदाहरण है।

(३) भूकम्प के कारण कभी २ पृथ्वी का कोई भाग अचानक ऊपर उठ जाता है। समुद्र मे नवीन द्वीप बन जाते है। पृथ्वी के धँस जाने से झीले अस्तित्व मे आ जाती है। सन् १८१९ के कच्छ के भूकम्प मे इस प्रकार एक झील और एक बाँध बन गया था। भूकम्प से हुए स्थलसर्पण (Landslide) द्वारा घाटियाँ पट जाती है और इस प्रकार कभी २ नदी के पथ के अवरुद्ध हो जाने से झीले बन जाती है। गढवाल की गोहना नामक झील इसी प्रकार बनी है।

(४) भूकम्प की लहरो के अध्ययन से हमे पृथ्वी की आन्तरिक रचना का ज्ञान होता है। इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

## ८· अभिनवकालीन भारतीय भूकम्प

हाल मे आए हुए भारतीय भूकम्पो मे मुख्य ये है—

(१) कच्छ (१६ जून १८१९)—इससे प्राय समस्त भारत प्रभावित हुआ। कलकत्ता तक मे इसके आघात का अनुभव किया गया। केवल भुज नगर मे दो सहस्त्र व्यक्ति काल कवलित हुए। अहमदाबाद मे सुलतान अहमद की विशाल मस्जिद, जिसे बने ४५० साल हो चुके थे, नष्ट हो गई। इस भूकम्प मे धरातल के ऊपर उठने से एक बाँध बन गया, जिसे अल्लाह बाँध की सज्ञा दी गई है। साथ ही पृथ्वी के धँसने से एक झील भी अस्तित्व मे आ गई।

(२) आसाम—(१२ जून १८९७)—१७,५०,००० वर्गमील के क्षेत्र मे इसका अनुभव किया गया। इसका अभिकेन्द्र शिलॉग के पठार मे था। शिलॉग गोलपारा, गोहाटी, तथा नौगॉव नगरो को बडी क्षति हुई। इसका भयानक प्रभाव कलकत्ता

पर भी पड़ा, जिससे १६०० व्यक्तियो की जाने गई। उत्तराघातों (Aftershocks) की शृखला दीर्घकाल तक चलती रही।

(३) कांगड़ा—(४ अप्रैल १९०५)—इसने १६,२५,००० वर्गमील के क्षेत्र को प्रभावित किया और इसमे बीस हजार व्यक्ति मरे। कांगड़ा धर्मशाला आदि नगर बिल्कुल नष्ट हो गए।

(४) बिहार (१५ जनवरी १९३४)—इसने १९,००,००० वर्ग मील के क्षेत्र को प्रभावित किया। अनेक स्थानो मे पृथ्वी फट गई और लोग उसके गर्भ मे समा गए। कम से कम १०,००० व्यक्ति मरे।

(५) क्वेटा (३१ मई १९३५)—इसने लगभग एक लाख वर्गमील के क्षेत्र को प्रभावित किया। लगभग २५००० व्यक्ति मरे। क्वेटा नगर को अपरिमित क्षति हुई।

(६) आसाम (१५ अगस्त १९५०)—इतिहास के पाच सबसे भयानक भूकम्पो मे इसकी गणना की जाती है। इससे १५,२०० वर्गमील का क्षेत्र तथा ४,६२,००० व्यक्ति प्रभावित हुए। इसका अनुभव आसाम, द० पू० तिब्बत, उत्तरी ब्रह्मा तथा द० प० चीन तक किया गया। पूना की भूकम्प प्रयोगशाला के अनुसार इसका अभिकेन्द्र २९° उ० ९७° पू० था। मुख्याघात चार मिनट से आठ मिनट तक ही रहा, किन्तु उत्तराघातो की शृखला कई दिनो तक चलती रही। इसके कारण स्थल-सर्पण (Land slides) बहुत हुए, सरिताओ–विशेषकर ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियो के पथ के अवरुद्ध हो जाने से अनेक भागो मे भयानक बाढ आई। आघात की तीव्रता की तुलना मे जनसख्या की हानि अपेक्षाकृत कम ही हुई। इस भूकम्प से लगभग एक सहस्र व्यक्ति मरे। सम्पत्ति की इससे विशेष हानि हुई। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि इस भूकम्प से एक करोड से अधिक की सम्पत्ति नष्ट हो गई। इसने लगभग एक लाख मकानो को तथा चाय के छै बगीचो को हानि पहुंचाई।

उपर्युक्त भूकम्पो मे से अधिकांश विभगन (Faulting) के कारण हुए है।

## ८ पूर्वोपाय

उपर्युक्त अध्ययन द्वारा हम यह जान गए कि किन क्षेत्रो मे भूकम्प अधिक आते है और किनमे कम। हमे इसका भी ज्ञान हो गया कि भूकम्प का प्रभाव किन प्रदेशो में अधिक होता है। अब प्रश्न यह है कि भूकम्प से बचने का उपाय क्या है। भूकम्प-लेखक (Seismograph) से भूकम्प की पूर्व सूचना तो मिल सकती है, किन्तु भूकम्प से रक्षा का उपाय क्या है? यद्यपि विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है, तथापि भूकम्प के रोकने में वह नितान्त असमर्थ है। समस्या यह है कि भूकम्प के क्षेत्रो मे किस पदार्थ के मकान बनाये जाँय, जिन्हे भूकम्प प्रभावित न कर सके।

ऐसी रचनाये जिन्हे भूकम्प प्रभावित न कर सके, दो प्रकार के पदार्थों से बनाई जा सकती है:—

(१) या तो उनका निर्माण स्थिति-स्थापक (Elastic) पदार्थों मे किया जाय, जो भूकंम्प की लहरो से काँप भले ही जाय किन्तु टूटे नही। बाँस और कागज के मकान इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। जापान मे इनका उपयोग बहुत होता है।

(२) अन्यथा इन्हे ऐसे दृढ पदार्थ से बनाया जाय, जिस पर भूकम्प की लहरो का कोई भी प्रभाव न पड सके। आधुनिक काल मे इस्पात और कांक्रीट के समुचित मिश्रण द्वारा इस प्रकार के मकान बनाये गए है। इस प्रकार के मकान केवल धनी व्यक्ति ही बनवा सकते है—उनका व्यय उठाना साधारण जनता के वश की बात नही है।

# चतुर्थ परिच्छेद

# ज्वालामुखी की क्रिया

## (VULCANICITY)

### १ विषय प्रवेश

वे सभी वृत्त (Phenomena) जो पृथ्वी के अभ्यन्तर से भूपृष्ठ की ओर प्रवाहित होने वाले लावा की गति से सम्बन्धित हैं, ज्वालामुखी की क्रिया के अन्तर्गत आते हैं।

ज्वालामुखी की क्रिया के दो विभाग किये जा सकते हैं :—

(१) अन्तर्वर्ती (Intrusive)—जो पृथ्वी के अन्दर होती है।

(२) बहिर्वर्ती (Extrusive)—जो पृथ्वी के धरातल पर होती है।

अन्तर्वर्ती क्रिया के कुछ प्रमुख रूप बैथोलिथ (Batholith) लैकोलिथ (Laccoliths), फैकोलाइट (Phacolites), लोपोलिथ (Lopoliths), रालोत्थ एव वर्तुलोत्थ (Stocks and bosses), रालपट्ट (Sills) तथा रालभित्ति (Dykes), हैं। इनकी विस्तृत विवेचना आगे की गई है।



चित्र ३३—विसूवियस ज्वालामुखी का उद्गार

बहिर्वर्ती क्रिया के अन्तर्गत ज्वालामुखी (Volcanoes), विदर-प्रवाह (Fissure flows), गरम सोते (Hot springs), गेसर (Geysers) तथा वातिमुख (Fumaroles) आते हैं। इनका वर्णन भी आगे किया गया है।

## २ बहिर्वर्ती वृत्त (Extrusive Phenomena)

### (१) ज्वालामुखी (Volcanoes)

#### (क) परिभाषा

भूपर्पटी के उन प्राकृतिक छिद्रो एव विदरो को जिनसे लावा (द्रवित शिलाये) भाप एव गैसे निकलती है, हम ज्वालामुखी कहते है।

#### (ख) वर्गीकरण

उद्गमन ( Eruption ) के विचार से ज्वालामुखियो के तीन प्रमुख भेद किये जा सकते है।

(१) विस्फोटीय ज्वालामुखी (Explosive Volcanoes)
(२) उत्स्यन्दी अथवा शान्त ज्वालामुखी (Effusive Volcanoes)
(३) मिश्रित ज्वालामुखी (Mixed Volcanoes)

**१ विस्फोटीय ज्वालामुखी** (Explosive Volcanoes)

जैसा कि इसके नाम से प्रकट है इस श्रेणी के ज्वालामुखियो का मुख्य लक्षण यह है कि इनमे धडाके के साथ विस्फोट होता है। इनके मुख से मुख्यत खण्डित शिलाये और गैसे निकलती है। उद्गमन के पदार्थों मे लावा, भस्म ( Ash) तथा अवस्कर ( Scoria ) की मात्रा बहुत कम होती है। जापान का फ्यूजीयामा नामक ज्वालामुखी इसका उदाहरण है।

**२ शान्त ज्वालामुखी** (Effusive Volcanoes)

इस प्रकार के ज्वालामुखी के मुख से केवल लावा एव गैसे शान्तिपूर्वक अर्थात् बिना शब्द किये हुए बाहर निकलते है। इनका मुख्य लक्षण यही है कि इनमे धडाका नही होता। इसका उदाहरण सिसिली का स्ट्रौमबोली ( Stromboli ) नामक ज्वालामुखी है।

**३ मिश्रित ज्वालामुखी** (Mixed Volcanoes)

जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, इस प्रकार का ज्वालामुखी उपर्युक्त दोनो श्रेणियो का मिश्रण है अर्थात् इस ज्वालामुखी मे कभी विस्फोट के साथ लावा निकलता है तो कभी शान्तिपूर्वक।

#### (ग) ज्वालामुखीय शकु (Volcanic Cones)

ज्वालामुखी के उद्गार से निकला हुआ पदार्थ भूपृष्ठ पर शकु के रूप मे एकत्रित हो जाता है। इसे ही हम ज्वालामुखीय शकु (Volcanic Cones) कहते है। ये शकु तीन प्रकार की होती है —

(१) आगारिक शकु ( Cinder Cones )—ये विस्फोटीय ज्वालामुखी के उद्गार से बनती है। इनमे खण्डित शिलाओ की मात्रा अधिक होती है। आकृति मे ये परिपूर्ण शकु ( Perfect Cone ) से मिलती जुलती है। इनके किनारे सीधे नही होते वरन् वे नतोदर प्रवण (Concave slope) का निर्माण करते है। चित्र ३८ (अ) से यह कथन स्पष्ट होगा।

(२) लावा निर्मित शकु ( Lava cones )—ये शान्त ज्वालामुखी के उद्गार से बनती है। इनकी रचना मुख्यत लावा-प्रवाह से होती है। इनमे खण्डित

शिलाये नही होती। लावा की सरचना के अनुसार इनकी आकृति मे विभेदन पाये जाते है —

(१) आम्लिक शकु ( Acid con s )—यदि लावा आम्लिक हुआ अर्थात् उसमे सिलिका की मात्रा ६५ प्रतिशत से अधिक हुई तो वह काफी गाढा होता है जिससे वह प्रपाती प्रवण वाली गुम्बद ( Steep sided domes ) का रूप ले लेता है (चित्र ३४ ब)।

(२) क्षारीय शकु (Basic cone)—यदि लावा क्षारीय हुआ अर्थात् उसमे सिलिका की मात्रा ६५ प्रतिशत से कम हुई तो वह काफी पतला होता है, जिससे वह दूर तक बह जाता है। अतएव क्षारीय शकु का व्यास अधिक होता है और प्रवण (Slope) मन्द (Gentle) होता है। अन्य शब्दो मे यह शकु आकृति मे ढाल (Shield) से मिलती जुलती है। (चित्र ३४ स)।

(३) मिश्रित शकु (Mixed cones)—ये मिश्रित उद्गमन से बनती है। जब विस्फोटीय उद्गमन होता है, तब खण्डित शिलाओ का एक स्तर एकत्र हो



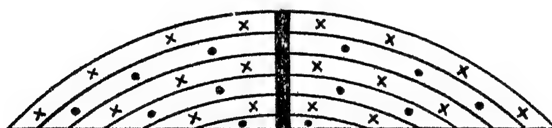
(अ) आगारिक शकु



(ब) आम्लिक लावा की शकु



(स) क्षारीय लावा की शंकु



(ड) मिश्रित शंकु

चित्र ३४—ज्वालामुखीय शकु

जाता है, तदन्तर जब शान्त उद्गमन होता है तब लावा का दूसरा स्तर बन जाता है। इस प्रकार एकान्तर पर खण्डित शिलाओ ओर लावा के अनेक स्तर अस्तित्व मे आते जाते है। चित्र ३८ (ड) से यह कथन स्पष्ट होगा।

## (घ) उद्गमन के पदार्थ

ज्वालामुखी के उद्गमन से जो पदार्थ वाहर निकलते है उनके तीन मुख्य विभाग किये जा सकते है —

### (१) ठोस पदार्थ

ज्वालामुखियो के अधिकाश उद्गार विस्फोटीय होते हैं। विस्फोट द्वारा खण्डित शिलायें दीर्घमात्रा मे वायुमण्डल मे ऊपर उछाल दी जाती हैं। इनमे से कुछ तो ज्वालामुखी के मुख मे पुन प्रविष्ट हो जाती है, किन्तु अधिकाश ज्वालामुखी के मुख ( Crater ) के चारो ओर के क्षेत्र को ढक लेती है। ज्वालामुखीय उद्गार की आरम्भिक अवस्था मे खण्डित शिलाओ की मात्रा अधिक होती है, क्योकि पृथ्वी के अभ्यन्तर से ऊपर उठने वाला लावा भूपर्पटी को तोड फोड कर ऊपर आता है, किन्तु कालान्तर मे लावा के अश की मात्रा बढ जाती है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकलने वाले ठोस पदार्थ कई प्रकार के होते हैं :—

(१) घनीभूत लावा के छोटे नुकीले टुकडो को **अश्मक** ( Lapilli ) कहते हैं।

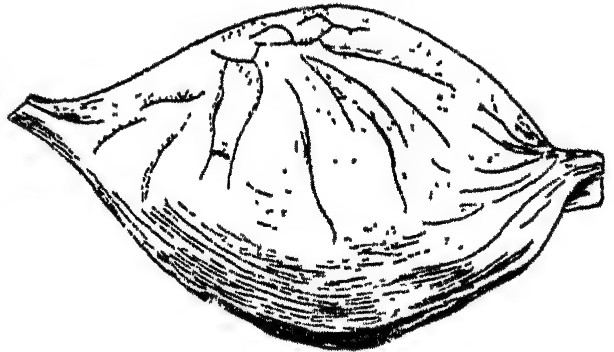
(२) खण्डित शिलाओं के अपेक्षाकृत बडे और नुकीले टुकडो को जो लावा द्वारा परस्पर चिपके रहते है, **ज्वालामुखीय सकोणाश्म** (Volcanic Breccia) कहते हैं।

(३) खण्डित पदार्थ के बहुत छोटे-छोटे टुकडों और चूर्ण को **ज्वालामुखीय अगार** (Volcanic cinder) अथवा **ज्वालामुखीय भस्म** (Volcanic Ash) कहते हैं।

(४) खण्डित पदार्थ के सूक्ष्मतम अश को **ज्वालामुखीय धूलि** (Volcanic Dust) कहते हैं।

(५) सकेन्द्रित धूलि (Concentrated Dust) को **टफ** (Tuff) कहते हैं।

(६) **ज्वालामुखीय बम**—ये घनीभूत लावा के गोल अथवा रुचिफलाकार ( Pear shaped) पिण्ड होते हैं। जब ज्वालामुखी का उद्गार होता है, तब तरल लावा हवा मे ऊपर फेंक दिया जाता है। भूमि पर गिरते समय यह लावा गोल या रुचिफलाकार पिण्डो का रूप ग्रहण कर लेता है।



चित्र ३५—ज्वालामुखीय बम

(७) **ज्वालामुखीय पक** (Volcanic Mud)—कभी-कभी ज्वालामुखी के उद्गार के पश्चात् मूसलाधार वर्षा होती है, जिससे ज्वालामुखीय धूलि कीच अथवा पक के रूप मे प्रवाहित होने लगती है। इस प्रवाह से बडी हानि होती है। सन् ७९ ई० में विसूवियस के उद्गार के अनन्तर ज्वालामुखीय पक के प्रवाह से हरकुलेनियम (Herculaneum) नामक नगर पूर्णत नष्ट-भ्रष्ट हो गया था।

## (२) द्रव पदार्थ

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, सरचना की दृष्टि से लावा के दो मुख्य भेद है —(१) आम्लिक (Acidic) एव (२) क्षारीय (Basic)।

(१) **आम्लिक लावा**—इसमे सिलिका की मात्रा अधिक होती है, अतएव यह काफी गाढा होता है। यह धीरे-धीरे प्रवाहित होता है और घनीभूत होने के पहले दूर तक नहीं जा पाता। इसका द्रवणाक (Melting Point) अधिक होता है।

(२) **क्षारीय लावा**—इसमे सिलिका की मात्रा ६५ प्रतिशत से कम होती है अतएव यह अपेक्षाकृत पतला होता है, जिससे घनीभूत होने के पूर्व यह मीलो बह जाता है। इसका द्रवणाक अपेक्षाकृत कम होता है।

कभी-कभी जमे हुए लावा का ऊपरी धरातल चिकना भी होता है, किन्तु अधिकतर वह खुरदुरा अथवा विषम होता है। यदि लावा कोलतार के समान गाढा हुआ तो वह अत्यन्त शीघ्र शीतल होने से रज्जु जैसी कुण्डलाकार आकृति ग्रहण कर लेता है। ऐसे लावा को हम रज्जु-राल (Ropy Lava) कहते हैं।

कभी-कभी लावा (आम्लिक और क्षारीय दोनो) मे से गैसो के बाहर निकलने से उनके बाहरी पृष्ठ मे छोटे छोटे से छेद बन जाते है। ऐसे छिद्रमय लावा को हम **छिद्रिष्ट लावा** (Spongy Lava) कहते है। जब इन छिद्रो की सख्या बहुत अधिक होती है, तब हम उसे **अवस्कर** (Scorea) कहते है। जब यह सख्या और भी अधिक होती है, जिससे लावा इतना हल्का हो जाता है, कि वह पानी मे तैरने लगता है, तब हम उसे अवस्कर (Scorea) न कहकर झामक (Pumice) कहते है।

## (३) गैसीय पदार्थ

ज्वालामुखी के उद्गार से जो गैसे बाहर निकलती है, उनमे प्रमुख ये है—

हाइड्रोजन सल्फाइड (Hydrogen Sulphide)
सलफर ट्राइऑक्साइड (Sulphur Trioxide)
हाइड्रोजन फ्लोराइड (Hydrogen Fluoride)
कार्बोनिक एसिड (Carbonic Acid)
जलवाष्प (Water vapour)
नाइट्रोजन (Nitrogen)
ऑक्सीजन (Oxygen) इत्यादि
सलफर डाइऑक्साइड, (Sulphur Di-oxide),
हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochloric Acid),
कार्बन मोनो ऑक्साइड (Carbon Monoxide),
कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon Dioxide),
अमोनियम क्लोराइड (Ammonium Chloride)
हाइड्रोजन (Hydrogen),

इनमे हाइड्रोजन क्लोराइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्वन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड एव हाइड्रोजन विशेष उल्लेखनीय है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकली हुई भाप बहुधा द्रवीभूत होकर जलवर्षा का रूप ले लेती है। इसका प्रमाण यह है कि अनेक ज्वालामुखियों के उद्गार के अनन्तर जलवृष्टि हुई है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि भाप प्रचूर परिमाण मे निकलती है।

कभी-कभी ज्वलनशील गैसे ( Inflammable gases ) जैसे हाइड्रोजन आदि इतनी अधिक मात्रा मे निसृत होती है कि उनके जलने से विशालकाय लव (Flame) उत्पन्न हो जाती है। इस सम्बन्ध मे कभी-कभी भ्रम भी हो जाता है। ज्वालामुखी क उद्गार से निकलने वाले शिलाओ के टुकडे अत्यधिक गरम हो जाने से लाल हो जाते है और बहुधा ऊपर निर्मित होने वाले मेघो पर उनकी छाया पडने मे लव का भ्रम होता है।

ज्वालामुखी से निकलने वाली गैसे अधिकाशत वायुमण्डल मे विलीन हो जाती है। कभी-कभी उनसे निकटवर्ती शिलाओ मे रासायनिक प्रक्रियाये (Chemical Reactions) घटित हो जाती है, जिसके फलस्वरूप अनेक खनिज जैसे (गन्धक आदि) सचित हो जाते है।

## (२) विदर प्रवाह (Fissure Flows)

कभी-कभी ज्वालामुखी के उद्गार से भूपृष्ठ मे चित्र ३६ के अनुरूप लम्बी और परस्पर समानान्तर दरारे बन जाती है। इन दरारो मे से लावा का शान्त निस्राव होता है। बहुधा इस प्रकार से निकले हुए लावा की बाढ से भूमि पट जाती है और पठार बन जाते है। इसका उदाहरण दक्षिणी भारत की काली मिट्टी का प्रदेश (चित्र ३७) है। इसका क्षेत्रफल लगभग २ लाख वर्गमील है। भूगर्भवेत्ताओ

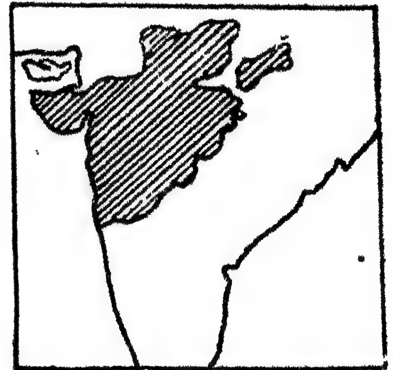


चित्र ३६—विदर प्रवाह

का कथन है कि आरम्भ मे इसका क्षेत्रफल ५ लाख वर्गमील के लगभग था किन्तु कालान्तर मे विभगन (Faulting) के कारण शेष भाग अरब सागर मे धँस गया।

## (३) गरम सोता (Hot Spring)

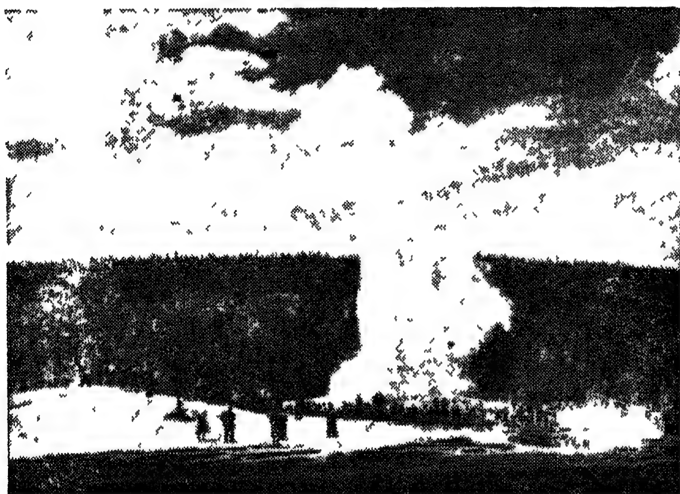
जब भूपर्पटी से गरम पानी निरन्तर निसृत होता है, किन्तु वह स्तम्भ के रूप मे ऊपर नही उठता, तब हम उसे गरम सोता (Hot Spring) कहते है। गरम सोते ऐसे क्षेत्रो मे भी पाये जाते है, जहाँ कभी भी ज्वालामुखी का उद्गार नही हुआ है, किन्तु ज्वालामुखीय क्षेत्रो मे ये बहुलता से पाये जाते है।



चित्र ३७—दक्षिणी भारत का काली मिट्टी का क्षेत्र

## (४) गेसर (Geyser)

ये उष्ण जल के ज्वालामुखी है। इनमे पानी स्तम्भ के रूप मे बाहर निकलता है। इन स्तम्भो की ऊँचाई दो सौ फुट तक पाई गई है। इनसे गरम पानी सदैव नही निकलता वरन् रुक-रुक-कर निकलता है। ऐसी धारणा है कि भूपर्पटी के अन्दर पतले सकरे लम्बवत् स्तम्भ के रूप मे भरा हुआ पानी जब नीचे से गरम होता है तब भाप के दबाव से वह स्तम्भ के रूप से ऊपर उछलता है। काँच की नली मे पानी भरकर और उसे नीचे से गरम करके इस कथन की प्रायोगिक पुष्टि की जा सकती है। न्यूजीलैंड मे गेसर बहुत पाये जाते है। सयुक्त राज्य अमरीका के यैलोस्टोन पार्क (Yellowstone park) मे भी गेसर बहुलता से पाये जाते है।



चित्र ३८—ओल्ड फेथफुल गेसर

## (५) वातिमुख अथवा सोलफातारा (Solfatara)

ज्वालामुखी के उद्गार के बहुत दिनो बाद जब उसके मुखसे लावा और राख निकलना बन्द हो जाता है, तब भी कभी-कभी उसके मुख से भाप और अनेक प्रकार की गैसे निकला करती है। जब ऐसी दशा होती है, तब हम यह कहते है कि अमुख ज्वालामुखी ने 'सोलफातारा अवस्था' प्राप्त कर ली है। 'सोलफातारा' शब्द सोलफतारा नामक नेपिल्स के एक ज्वालामुखी से लिया गया है, जिसका पिछला उद्गार सन् ११९८ ई० मे हुआ था। इसका एक अन्य उदाहरण बलूचिस्तान का कोहि-सुल्तान है। बगाल की खाडी मे स्थित बैरेन द्वीपसमूह (Barren Islands) में वातिमुख (Solfataras)) बहुत पाये जाते है।

## (६) पंक ज्वालामुखी (Mud Volcano)

जब किसी ज्वालामुखी के मुख से लावा के स्थान पर पकमय जल स्रवित होता

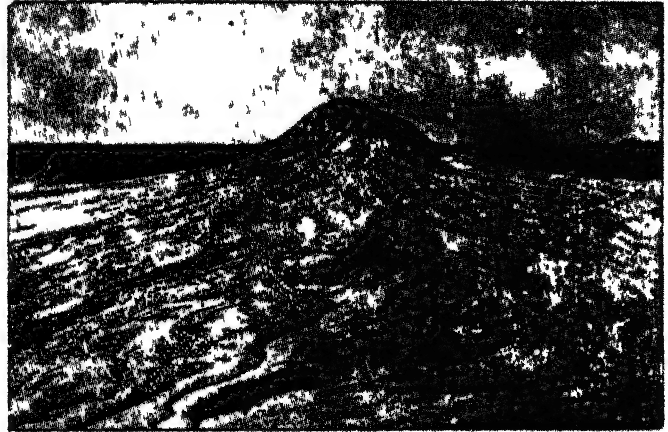
है, तब हम उसे पक ज्वालामुखी (Mud volcano) कहते है। पक ज्वालामुखी निम्नाकित क्षेत्रो मे पाये जाते है।

(१) जहाँ ज्वालामुखी की क्रिया समाप्त हो रही है। उदाहरणार्थ सिसली एव न्यूजीलैंड।

(२) जहाँ पृथ्वी के धरातल के नीचे भूगर्भ में गैसे विद्यमान हो, जैसे ब्रह्मा और बाकू के पेट्रोलियम के क्षेत्रो में।

(३) जहाँ भूगर्भ मे विद्यमान सडी हुई वनस्पति से उत्पन्न गैसो के कारण पक ऊपर उठने को बाध्य होता है जैसे मिसीसिपी का डेल्टा, बलूचिस्तान आदि।

कभी-कभी जब गेसर मृत्तिका (Clay) के स्तरो में से प्रवाहित होकर ऊपर उठता है, तब उसका पानी गन्दा हो जाता है और वह पक ज्वालामुखी सदृश प्रतीत होता है।



चित्र—३९ पक ज्वालामुखी

अब यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि पक ज्वालामुखी की उत्पत्ति का कारण पेट्रोलियम वाहक शिलास्तरो में से निकलने वाली गैसे हैं। ज्वालामुखी की प्रक्रिया से इसका कोई भी सम्बन्ध नही है। अतएव पंक ज्वालामुखी नाम ही अशुद्ध है।

## ३—अन्तवर्ती वृत (Intrusive Phenomena)

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, इसके अन्तर्गत बैथीलिथ (Bathyliths) लैक्कोलिथ (Laccoliths), फैकोलाइट (Phacolites), लोपोलिथ (Lopoliths) रालोत्थ एव वर्तुलोत्थ (Stocks and bosses), रालभित्ति (Dykes) तथा रालपट्ट (Sills) आदि स्थल के रूप आते हैं।

### (१) बैथीलिथ (Bathyliths)

ये घनीभूत लावा के विशालकाय अन्तर्वती पिण्ड हैं। इनकी आकृति प्रायः

गुम्बदाकार होती है। इनके पार्श्व धरातल मे बहुत गहराई तक धँसे रहते है। इनका आधार भूमिगत होने से दृष्टिगोचर नही होता। इनका विस्तार सहस्रो वर्गमील के क्षेत्र मे होता है। जहाँ तक सरचना का सम्बन्ध है, प्राय ये ग्रेनाइट (Granite) से बने होते है। उदाहरण—आयरलैण्ड का ग्रेट ग्रेनाइट मास (Great Granite Mass), राजस्थान का 'एरिनपुरा ग्रेनाइट' (Erinpura Granite) आदि।



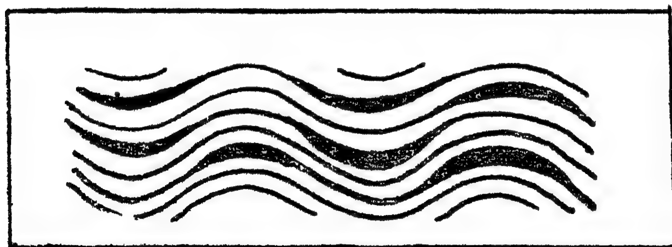

चित्र ४०—बैथीलिथ (Bathylith)

## (२) रालोत्थ एव वर्तुलोत्थ (Stocks and bosses)

गुम्बद सदृश आकृति के अपेक्षाकृत छोटे-छोटे पिण्डो को रालोत्थ तथा वर्तुलोत्थ (Stocks and bosses) कहते है। दान्ता नामक पूर्वकालीन भारतीय देशी राज्य मे ये बहुलता से पाये जाते है।

## (३) फैकोलाइट (Phacolites)

इनकी आकृति लैन्स (Lens) से मिलती जुलती है। ये भजित क्षेत्रो (Folded Regions) मे पाये जाते है। जैसा कि चित्र ४१ से स्पष्ट होगा, ये चाप एव द्रोणी के मध्यवर्ती भाग मे लावा के घनीभूत होने से बन जाते है।

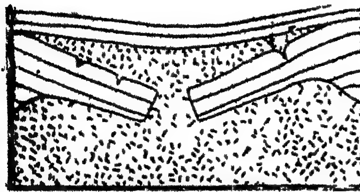


चित्र ४१—फैकोलाइट (Phacolites)

## (४) लोपोलिथ (Lopoliths)

लोपोलिथ वे अन्तर्वर्ती आग्नेय पिण्ड है, जिनकी आकृति तश्तरी जैसी होती है। चित्र ४२ से यह कथन स्पष्ट होगा। इनकी मुख्य पहचान यही है कि ये मध्य मे धँसे रहते है। इनमें और फैकोलाइट (Phacolites) मे यह अन्तर है, कि फैकोलाइट

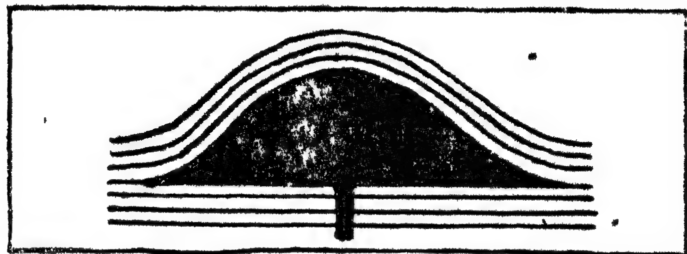
भजित क्षेत्रो (Folded Areas) मे ही पाये जाते है। इनकी मोटाई बहुधा व्यास का १/२ से लेकर १/१० तक होती है। उदाहरण— सयुक्त राज्य अमरीका का डुलुथ ग्रैब्रो मास (Duluth Gabbro Mass)।



चित्र ४२—लोपोलिथ

## (५) लैक्कोलाइट (Laccolites)

भूगर्भ से ऊपर उठने वाला लावा जब पर्पटी को फोडकर बाहर निकलने मे असमर्थ होता है, तब वह अपने दबाव से जलज शिलाओ द्वारा निर्मित भूपर्पटी के बाहरी स्तर को गुम्बद के रूप मे मोड देता है और उसके अन्दर घनीभूत हो जाता है। चित्र ४३ से यह कथन स्पष्ट होगा। इसे लैक्कोलाइट(Laccolite)कहते है। इसकी



चित्र ४३—लैक्कोलाइट (Laccolite)

तुलना फोडे से की जा सकती है। जब ऊपर की जलज शिलाये घिस जाती है, तब यह भूपृष्ठ पर प्रकट हो जाता है।

## (६) रालभित्ति (Dykes) एव (७) रालपट्ट (Sills)

इनका उल्लेख पूर्व मे हो चुका है। रालपट्ट (Sills) वे अन्तर्वर्ती आग्नेय पिण्ड है, जो जलज शिलाओ के तल्प-तलो (Bedding planes) मे लावा के घनीभूत हो जाने से अस्तित्व में आ जाते है।

रालभित्ति (Dykes), जैसा कि नाम से प्रकट है दीवाल जैसे अन्तर्वर्ती आग्नेय पिण्ड है, जो लम्बवत् सन्धियो (Vertical Joints) मे लावा के घनीभूत हो जाने से बन जाते है।

# ४. ज्वालामुखी की क्रिया के कारण

## (The Causes of Vulcanism)

ज्वालामुखी की क्रिया के कारणो का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत करेंगे :—

(१) ताप की उत्पत्ति
(२) तरल लावा की उत्पत्ति

(३) लावा का ऊपर उठना
(४) गैसो एव भाप का उद्गम

## (१) ताप की उत्पत्ति

ज्वालामुखी मे ताप निम्नलिखित कारणो से होता है —

(१) भूतापीय ( Geothermal )—यह सर्वमान्य सत्य है कि पृथ्वी का अभ्यन्तर अत्यन्त उष्ण है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ज्वालामुखी का अधिकाश ताप आद्य ( Primordial ) एव मौलिक है। ज्यो-ज्यो हम पृथ्वी के अन्दर प्रवेश करते है त्यो-त्यो तापक्रम बढता जाता है। प्रत्येक एक किलोमीटर की गहराई पर तापक्रम ३° सें० बढ जाता है। ताप की इस क्रमिक वृद्धि को हम 'भूतापीय प्रवणता' ( Geothermal Gradient ) कहते है। यह सर्वत्र समान नही है। भूपृष्ठ के विभिन्न भागो मे इसका मूल्य विभिन्न है। ताप की इस वृद्धि का कारण पृथ्वी के अन्तर का उष्ण होना ही है।

(२) रासायनिक प्रक्रियाये ( Chemical Reactions )—पृथ्वी के अन्दर अनेक रासायनिक प्रक्रियाये होती रहती है, जिनसे ताप का उद्भव होता है।

(३) तेजोद्गिरण की क्रिया ( Radio Activity )—पृथ्वी के अन्दर अनेक तेजोद्गर पदार्थ ( Radio-active Substances ) विद्यमान है। इनके वियोजन से दीर्घ मात्रा मे ताप विकसित होता है।

## (२) तरल लावा की उत्पत्ति

इसके सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भूपर्पटी की शिलाओ के भारी दबाव के कारण पृथ्वी के अन्दर शिलायें तरल अवस्था मे नहीं रह सकती, क्योकि दबाव के बढ जाने से उनका द्रवणाक ( Melting point ) बढ जाता है। कभी-कभी भूपर्पटी मे घटित होने वाली क्रियाओ से [ जैसे भजन (Folding), विभगन (Faulting) अथवा अपक्षरण (Erosion) के कारण ] भूपर्पटी का दबाव क्षीण हो जाता है। दबाव के घट जाने से द्रवणाक भी घट जाता है और तब ठोस शिलाये पिघल जाती है।

## (३) तरल लावा का ऊपर उठना

लावा के ऊपर उठने के दो मुख्य कारण है —
(१) भूपर्पटी की गतियाँ
(२) गैसो एव भाप का दबाव

भूपर्पटी की गतियो के कारण कभी-कभी दबाव घट जाता है। तरल लावा मे विद्यमान भाप एव गैसे भी दबाव के घट जानेसे फैलती है और लावा को उसी प्रकार ऊपर फेंक देती है जैसे सोडावाटर की बोतल के मुँह में लगी हुई डाट के हटाने पर पानी ऊपर उछलता है।

## (४) गैसो और भाप का उद्गम

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया, लावा के ऊपर उठने मे गैसो का विशेष हाथ रहता है। ज्वालामुखी के उद्गार से जो गैसे निकलती हैं, उनका ८० से ९५

प्रतिशत अश भाप होती है। अन्य उल्लेखनीय गैसो मे हाइड्रोजन, गन्धकमय गैमे, कार्बन डाइऑक्साइड तथा विभिन्न हाइड्रोकार्बन है। ऐसा विश्वास किया जाना है, कि ये सभी गैसे लावा मे वर्तमान रहती है। इसके अतिरिक्त भूमिगत-जल (Underground water) से भी भाप बनती है। जो ज्वालामुखी समुद्र के निकट पाये जाते है, उनमे निश्चित रूप से सागर जल से भाप उपलब्ध होती है। किन्ही क्षेत्रो मे, जब ऊपर उठता हुआ लावा चूने के पत्थर के सस्पर्श मे आता है तब उसमे कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा बढ जाती है। यही कारण है कि यह गैस ज्वालामुखीय क्षेत्रो मे बहुत पाई जाती है।

## ५ ज्वालामुखियों का वितरण

चित्र ४४ मे पृथ्वी के क्रियाशील एव अभिनव काल मे क्रियाशील ज्वालामुखी प्रदर्शित किये गये है। इसके अध्ययन से यह विदित होता है कि—

(१) ज्वालामुखी का वितरण बहुत कुछ भूकम्प की पेटी से मिलता जुलता है। इन दोनो मे मुख्य अन्तर ये है —(१) हिमालय प्रदेश मे भूकम्प बहुत आने है, किन्तु वहाँ ज्वालामुखियो का अभाव है तथा (२) आइसलैण्ड भूकम्प की पेटी मे नही आता, किन्तु वहाँ ज्वालामुखी बहुत पाये जाते है।

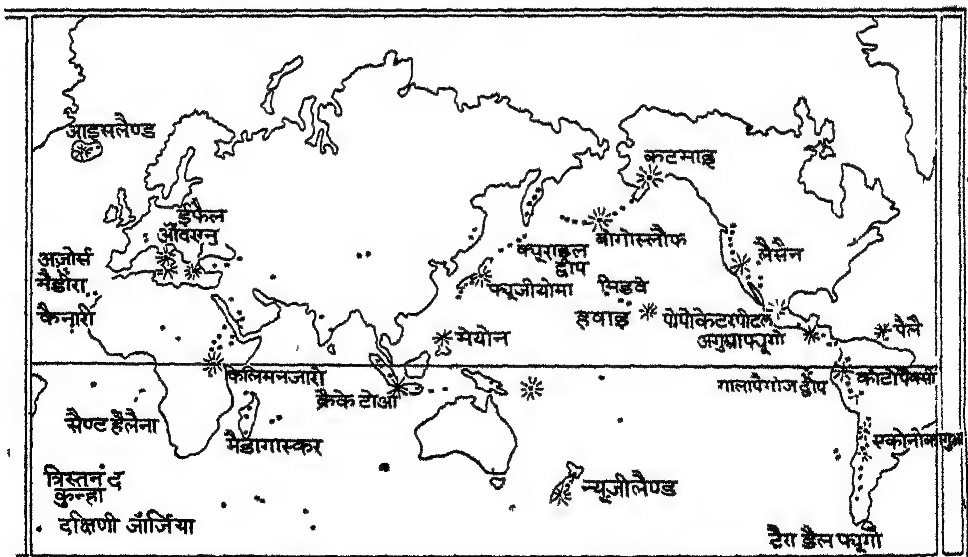
(२) वर्तमान ज्वालामुखी सागर अथवा महासागर के निकट पाये जाते है।

(३) ज्वालामुखी ऐसे क्षेत्रो मे पाये जाते है, जहाँ अभिनवकाल मे भूपर्पटी मे गति हुई हो, उदाहरणार्थ जहाँ नवीन पर्वत बने हो।

ससार मे ज्वालामुखी का वितरण तीन बडी और एक छोटी पट्टी के रूप मे हुआ है —

**बडी पेटियाँ**

(१) प्रशान्त महासागर के पूर्वी तट पर रॉकी एव एण्डीज पर्वतो के अनुरूप एक पेटी है।




चित्र ४४—ससार मे ज्वालामखियो का वितरण

(२) दूसरी पेटी प्रशान्त के पश्चिमी तट पर जापान, फिलिपाइन आदि द्वीपो के अनुरूप है।

(३) तीसरी पेटी मध्य-जगत मे नवीन भजित पर्वत श्रेणियो के अनुरूप चली गई है।

**छोटी पेटी**

इसका विस्तार पूर्वी अफ्रीका से लेकर दक्षिणी पश्चिमी एशिया तक है।

## ६ ज्वालामुखी का मानवीय महत्व

### (१) विनाश-कार्य अथवा हानियाँ

ज्वालामुखी का आकस्मिक उद्गार हो जाने से धन-जन की प्रचुर हानि होती है। लावा के प्रवाह से गाँव के गाँव चौपट हो गये है। ज्वालामुखी से निकलने वाली विषैली गैसो से भी बडा विनाश होता है। उदाहरण के लिये उत्तरी अमरीका के यैलोस्टोन पार्क (Yellowstone park) मे ज्वालामुखी से निकलनेवाली विषैली गैस के कारण वहाँ पर विचरण हेतु आने वाले जगली जानवर विशेषकर भालू अपनी जान गवाँ बैठते है। जावा मे भी इस प्रकार का एक क्षेत्र है, जिसे ठीक ही 'मृत्यु की घाटी' (Death Valley) की सज्ञा दी गई है। कभी-कभी ज्वालामुखी से निकलने वाली राख और धूलि से नीचे के गाँव और नगर पूर्णत दब जाते है। पौम्पेई एव हरकुलैनियम नामक रोमन नगर विसूवियस के उद्गार से निकलने वाली राख से दबकर भूगर्भ मे विलीन हो गये है। जब ज्वालामुखी का उद्गार सागर-नितल मे होता है, तब उसके फलस्वरूप सागरजल मे बडी भयानक लहरे उठती है और उनसे मछली एव अन्य सामुद्रिक जीवजन्तु विनष्ट हो जाते है। जलयानो को भी उनसे विशेष क्षति पहुँचती है।

### (२) लाभ

ज्वालामुखी से होने वाले प्रमुख लाभ निम्नाकित है —

**१ इनके उद्गार से उपजाऊ भूमि की सृष्टि होती है।**

(१) लावा के अपक्षरण से बनी हुई भूमि कृषि की दृष्टि से बडी उपजाऊ होती है। इसका भारतीय उदाहरण दक्षिण का काली मिट्टी का प्रदेश है, जो कपास के उत्पादन के लिये आदर्श है।

(२) ज्वालामुखीय राख से निर्मित भूमि भी बडी उर्वर होती है। यही कारण है कि एटना और विसूवियस के पदो पर हरे भरे खेत और बगीचे पाये जाते है।

(३) ज्वालामुखीय प्रदेशो से प्रवाहित होने वाली नदियाँ अपने साथ उर्वर उन्मृदा लाती है, जिसे वे नीचे के मैदानो मे बिछा देती है। उदाहरणार्थ नील नदी अबीसीनिया से ज्वालामुखीय अवसाद ( Sediments ) बहाकर लाती है और उसे मिश्र मे बिछा देती है।

**२ ज्वालामुखी के उद्गार से भूगर्भ में विद्यमान खनिज पदार्थ धरातल पर आ जाते हैं।**

यदि ज्वालामुखी न हो तो ये बहुमूल्य पदार्थ मनुष्य को कभी सुलभ ही न हो। ज्वालामुखी से मनुष्य को खनिज-पदार्थ अनेक रीतियो से प्राप्त होते है—

(१) बहुत से खनिज द्रवित अवस्था मे ज्वालामुखी के उद्गार के साथ धरातल पर आ जाते है।

(२) यदि गरम पानी मे कुछ गैसे घुली हुई हो तो उसमे कुछ खनिजो को घोल लेने की क्षमता आ जाती है। उदाहरण के लिये गन्धक के अनेक यौगिक गरम पानी मे घुल जाते है। ये खनिज भूपृष्ठ पर पुन: निक्षेपित हो जाते है।

(३) रासायनिक प्रक्रियाओ के फलस्वरूप अनेक पदार्थों के निक्षेप बन जाते है।

(४) विदरो मे धातुओ के निक्षेप बन जाते है। सीसा, चाँदी, ताँबा आदि धातुये प्राय सदरो[1] (Veins) मे ही पाई जाती है।

(५) लावा निर्मित शिलाओ से अनेक अच्छे इमारती पत्थर निकाले जाते है।

**३ ज्वालामुखी की क्रिया से धरातल के रूप के परिवर्तन हो जाते है।**

यह उल्लेख तो पूर्व मे हो ही चुका है, कि ज्वालामुखी से भूकम्प आ जाते हैं और कभी-कभी उनके साथ-साथ भूपर्पटी का कोई भाग ऊपर उठ जाता है और कोई भाग नीचे धँस जाता है। इस सम्बन्ध मे कच्छ मे अल्लाह बाँध और अन्तर्देशीय झील के बन जाने का उल्लेख किया जा चुका है। लावा के निक्षेप से कभी-कभी पठार भी बन जाते है जैसे दक्षिणी भारत का काली मिट्टी का प्रदेश। मृत ज्वालामुखियो (Extinct Volcanoes) के मुख (Crater) मे पानी भर जाने से झीलें बन जाती हैं। ज्वालामुखी के उद्गार से बन जाने वाले स्थल एव जल के विभिन्न रूपो का विस्तृत विवेचन अन्तर्वर्ती एव बहिर्वर्ती वृत्तो के अन्तर्गत हो चुका है।

---

१ शिलाओं के धरातल मे पाई जाने वाली सकरी दरारें जिनमें खनिज पदार्थ के घोल जम जाते हैं।

## पंचम परिच्छेद

# ऋतुक्षरण (WEATHERING)

## १ परिभाषा

वर्षा, तापक्रम के विभेदन, तुषार आदि ऋतु-तत्वो के कारण धरातल की विगुप्त शिलाओ के टूटने-फूटने की प्रक्रिया को हम ऋतुक्षरण (Weathering) कहते है। इस क्रिया के फलस्वरूप अपरिवर्तित शिला के ऊपर टूटे हुए अबद्ध पदार्थ का स्तर स्थापित हो जाता है। मिट्टी का निर्माण इसी प्रकार होता है। वर्षा अथवा गुरुत्वाकर्षण (Gravity) के कारण ऊपर का अबद्ध पदार्थ नीचे की ओर परिवाहित होता है; जिससे अपरिवर्तित शिला का पृष्ठ निरावरण अथवा अनावृत हो जाता है। शिलाओ के ऊपरी भाग के टूटने फूटने तथा टूटे हुए पदार्थ के परिवाहन से शिला के अनावृत हो जाने की क्रिया को अनावृतीकरण (Denudation) कहते है। अन्य शब्दो मे अनावृतीकरण ऋतुक्षरण तथा परिवाहन का सयुक्त फल है।

## २ ऋतुक्षरण की मात्रा प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

शिलाओ मे ऋतु-क्षरण की मात्रा निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है —



चित्र ४५—वृक्ष की जडो के फैलने से शिलाओ का टूटना

(१) **शिलाओ की घुलनशीलता**—यह स्वाभाविक ही है कि घुलनशील शिलाओ मे अघुलनशील शिलाओ की अपेक्षा ऋतुक्षरण अधिक होगा।

(२) **शिलाओ के कणों का सगठन**—ऐसी शिला मे जिसके कण कम बद्ध होते है, उस शिला की अपेक्षा जिसके कण अधिक बद्ध होते है, ऋतुक्षरण अधिक होता है।

(३) **शिलाओ की संरचना**—भेद्य शिलाओ मे अभेद्य शिलाओ की अपेक्षा ऋतुक्षरण अधिक होता है। उदाहरण के लिये चूने के पत्थर मे, जिसमे लम्बवत् सन्धियाँ पाई जाती है, ग्रेनाइट की अपेक्षा ऋतुक्षरण अधिक होता है।

(४) **प्रवण की प्रकृति**—प्रपाती प्रवण के शिलाखण्डो मे मन्द प्रवण के शिलाखण्डो की अपेक्षा ऋतुक्षरण अधिक होता है।

(५) **जलवायु**—परिवर्तनशील तथा विषम जलवायु के क्षेत्रो मे स्थिर तथा सम जलवायु के क्षेत्रो की अपेक्षा अधिक ऋतुक्षरण होता है।

(६) **वनस्पति**—वृक्षो की जडे फैल फैल कर शिलाओ को तोडती-फोडती रहती है। अतएव पथरीले क्षेत्र मे वृक्ष ऋतुक्षरण मे अभिवृद्धि करते है।

(७) **रासायनिक सरचना**—रासायनिक ऋतुक्षरण शिलाओ की रासायनिक सरचना पर निर्भर है। यदि शिला की रासायनिक सरचना रासायनिक प्रक्रिया के अनुकूल हुई, तो रासायनिक ऋतुक्षरण होता है अन्यथा नही।

(८) **स्थिति**—शिलाखण्डो के कोनो पर ऋतुक्षरण सबसे अधिक होता है, किनारो पर उससे कम होता है तथा पार्श्वों पर और भी कम होता है।

## ३ ऋतुक्षरण के प्रकार

ऋतुक्षरण दो प्रकार का होता है—(१) यान्त्रिक (Mechanical) तथा (२) रासायनिक (Chemical)

**यान्त्रिक ऋतुक्षरण**—यान्त्रिक प्रक्रियाओ से होता है। इसके प्रमुख अभिकर्ता ये है :—

(१) **तुषार**—शीतल प्रदेशो मे तुषार ही ऋतुक्षरण का मुख्य साधन है। चूर्ण-प्रस्तर ( Limestone ) जैसी शिलाओ की सन्धियो मे भरा हुआ जल रात मे ठण्ड के कारण जम जाता है। घनीभूत हिम पूर्ववर्ती जल की अपेक्षा आयतन मे अधिक होती है, अतएव जब जल हिम मे परिणत होता है तब वह फैलता है, जिससे सन्धि चौडी होती है और शिला खण्डित हो जाती है। यह क्रम निरन्तर चला करता है, जिससे शिलाये धीरे २ टूटती रहती है।

(२) **वर्षा-जल**—वर्षा का जल यान्त्रिक तथा रासायनिक दोनो प्रकार का ऋतुक्षरण करता है। रासायनिक ऋतुक्षरण की विवेचना आगे की गई है। यान्त्रिक ऋतुक्षरण के अन्तर्गत वर्षा-जल अघुलनशील पदार्थ के कणो को बहा ले जाता है। पहाडियो और टीलो के ढालो पर जो नालियाँ बन जाती है, वे इसी का फल है। ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ कोमल मृत्तिका (Clay) मे शिलाओ के टुकडे पाये जाते है, कभी २ भूस्तम्भ (Earth Pillars) बन जाते है। इनमे ऊपर स्थित शिला-खण्ड नीचे की मृत्तिका को वर्षा द्वारा बह जाने से रोकता है। ये भूस्तम्भ बहुत समय तक नही रहते। ऊपर के शिला-खण्ड के गिर जाने पर नीचे की कोमल मृत्तिका बह जाती है। उत्तरी इटली मे भूस्तम्भ बहुत पाये जाते है।



चित्र ४६—भूस्तम्भ (Earth Pillar)

(३) **ताप एव शीत**—ताप एव शीत के एकान्तर पर होने का फल मरुस्थलो मे देखने को मिलता है। मरुस्थलो मे दिन और रात के तापक्रम में महान अन्तर होता है। दिन मे शिलाये अत्यधिक तप जाती हैं। रात मे तापमान गिर कर हिमाक के निकट पहुँच जाता है। अतएव, प्रति दिन शिलायें दिन मे फैलती है और और रात मे सिकुडती है। तापक्रम के इन द्रुत परिवर्तनो के कारण शिलाये चटख जाती है। कभी २ जब शिलाये टूटती हैं, तब इतने जोर की ध्वनि होती है, जैसे बन्दूक छटी हो। शिलाओ के टूटने की प्रक्रिया उस समय तक जारी रहती है, जब तक वे

रेत जैसे सूक्ष्म कणो मे, परिणत नही हो जाती। पर्वतीय क्षेत्रो मे शिलाओ के टूटे हुए टुकडे ढाल के अनुरूप लुढक कर नीचे पद पर इकट्ठे होते रहते है। इन अबद्ध टुकडो को हम सपात (Scree) कहते है।



चित्र ४७—सपात (Scree)

(४) **वायु**—वायु के थपेडो से शिलाये टूटती-फूटती रहती है। कभी २ गोलाकार शिलाओ के ऊपरी पर्त क्रमश उखडते जाते है। इस क्रिया का नाम-अपपर्णन (Exfoliation) है तथा ऐसे ऋतुक्षरण को गोलाकार ऋतुक्षरण (Spheroidal Weathering) कहते है।



चित्र ४८—अपपर्णन (Exfoliation)

वायु मे विद्यमान धूलि के कण उसके औजार का काम करते है। वायु द्वारा सम्पन्न ऋतुक्षरण से अनेक प्रकार के भूरूप अस्तित्व मे आ जाते हैं। इनकी विवेचना 'पवन का कार्य' शीर्षक प्रकरण में की गई है। एक उदाहरण उच्छैल (Crag) है, जो शिलाखण्ड के निचले भाग के अधिक कटने से बन जाता है।

वर्षा जल की भाँति वायु रासायनिक ऋतुक्षरण भी करती है।

**रासायनिक ऋतुक्षरण**—रासायनिक प्रक्रियाओ से होता है। इन रासायनिक प्रक्रियाओ मे अधिक उल्लेखनीय ये है —

(१) **घोल** (Solution)—शिलाओ मे विद्यमान घुलनशील खनिज वर्षाजल मे घुलकर बह जाते है।

(२) **ऑक्सिडेशन** (Oxidation)—वर्षाजल में ऑक्सीजन नामक गैस रहती है। अनेक शिलाओ मे ऐसे तत्व पाये जाते है, जो आक्सीजन के सम्पर्क में

आते ही 'आक्साइड' (Oxide) का निर्माण करते है। उदाहरण के लिये यदि किसी शिला मे लोहा होता है, तो वह ऑक्सीजन के सम्पर्क मे आकर लोहे का आक्साइड बन जाता है। अतएव उस शिला के ऊपर लोहे के ऑक्साइड (Iron Oxide) का भूरा पत स्थापित हो जाता है।

(३) कार्बोनेशन (Carbonaton)—साधारण जल मे चूने का पत्थर नही घुलता, किन्तु यदि पानी मे कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस घुली हो, तो उसमे वह सरलता से घुल जाता है। जब वर्षा-जल वायुमण्डल मे से होता हुआ नीचे आता है, तब उसमे कार्बन डाइ आक्साइड, जो वायुमण्डल मे रहती है, घुल जाती है, जिससे उसम -चूने के पत्थर को घोल लेने की क्षमता आ जाती है।

(४) हाइड्रेशन (Hydration)—चट्टानो के कुछ अघुलनशील पदार्थ पानी के सम्पर्क मे आने से हाइड्रेशन को क्रिया द्वारा घुलनशील पदार्थों मे परिणत हो जाते हैं।

(५) विसकताकरण (Desilication)—प्रत्येक आग्नेय शिला मे सिलिका (Silica) न्यूनाधिक मात्रा मे अवश्य होती है। विसैकता नामक रासायनिक प्रक्रिया द्वारा यह सिलिका मूल शिला से पृथक हो जाती है, जिससे ऋतुक्षरण मे सहायता पहुचती है। कभी-कभी इस प्रकार पृथक हुई सिलिका शिलाओ का दरारो म निक्षपित हो जाता है और सदर (Vein) का रूप धारण कर लेती है।

## ४ ऋतुक्षरण के परोक्ष कारण

यदि हम गभीरता से विचार करे, तो हमे स्पष्ट होगा कि मनुष्य, जीव-जन्तु तथा पेड-पौधे भी न्यूनाधिक मात्रा मे ऋतुक्षरण की क्रिया मे सहायक होते हैं :—

(क) मनुष्य—अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिये जमीन जोतता है, खदाने खोदता है, सुरगे बनाता है तथा जगल के वृक्ष काटता है। ये सभी क्रियायें ऋतुक्षरण मे सहायक होती है।

(ख) जीव-जन्तु—अनेक जानवर ऐसे है, जो पृथ्वी मे बिल बनाकर रहते हैं। केंचुवे तथा दीमक नीचे की मिट्टी खोदकर ऊपर लाते है।

(ग) पेड-पौधे—पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है कि पेडो की जडे शिलाओ की दरारो मे फैल फैल कर उन्हे चौडा करती रहती है, जिससे शिलायें टूटती रहती है।

## षष्टम् परिच्छेद

# नदी का कार्य (ACTION OF RUNNING WATER)

### १ नदी की क्रिया के विभाग

नदी द्वारा सम्पन्न भौगोलिक क्रिया के तीन अग है—(१) अपक्षरण अथवा उत्खनन (Erosion) (२) अपनयन अथवा परिवाहन (Transportation) तथा (३) निक्षेपण अथवा सचयन (Deposition)। यह तथ्य तो सर्वविदित है, कि नदी के बहाव से उसके किनारे कटते रहते है। यही अपक्षरण है। टूटे हुए किनारो के पदार्थ को वह अपने साथ आगे बहा ले जाती है। यही परिवाहन है। फिर इस पदार्थ को वह समुद्र अथवा झील मे जमा कर देती है। यही निक्षेपण है।

### २ अपक्षरण के प्रकार तथा मात्रा

नदी का अपक्षरण दो प्रकार का होता है —(१) रासायनिक अपक्षरण (Chemical erosion) तथा (२) भौतिक अथवा यान्त्रिक अपक्षरण (Mechanical erosion) नितल के घुलनशील पदार्थ नदी के जल मे घुल जाते हैं। घोल की यह रासानिक प्रक्रिया रासायनिक अपक्षरण का एक रूप है। किनारो का कटना यान्त्रिक अपक्षरण का उदाहरण है।

नदी की दशा मे रासायनिक अपक्षरण की अपेक्षा यान्त्रिक अपक्षरण कही अधिक महत्वपूर्ण हैं। यान्त्रिक अपक्षरण के पुन दो भेद किये जा सकते हैं —(१) नदी का अपने किनारो का काटना पार्श्विक अपक्षरण है। इससे नदी चौडी होती है। दूसरी ओर नदी के नितल का कटना लम्बवत् अपरक्षण है। इससे नदी की गहराई बढती है।

यान्त्रिक अपक्षरण की मात्रा अनेक प्रतिकारको पर निर्भर है —

(१) **नदी जल की रचना**—निर्मल जल से शिलाओ का अपक्षरण बहुत कम होता हैं। नदी जल मे विद्यमान ककड, पत्थर, रेत आदि स्थल के काटने मे ओजार अथवा यत्र का कार्य करते है। अतएव नदी-जल मे ये जितनी अधिक मात्रा मे विद्यमान होगें, अपक्षरण भी उतना ही अधिक होगा।

(२) **अपक्षरित होने वाले स्थलखण्ड के कणो का सगठन**—नदी जिस स्थलखण्ड का अपक्षरण करती है, यदि उसका निर्माण करने वाले कण परस्पर सम्बद्ध रहते है, तो वह सरलता से नही कटता। दूसरी ओर असम्बंद्ध कणो से निर्मित स्थलखण्ड शीघ्र ही अपक्षरित हो जाता है।

(३) **नदी का वेग**—अपक्षरण शक्ति और नदी के वेग का सम्बन्ध निम्नलिखित सूत्र द्वारा निर्धारित होता है.—

$$\text{अपक्षरण शक्ति} \propto (\text{नदी का वेग})^2$$

इससे स्पष्ट है, कि जब नदी का वेग चौगुना हो जाता है, तब अपक्षरण-शक्ति दूनी हो जाती है। दोनो मे वर्गमूल का सम्बन्ध है।

नदी का वेग दो प्रतिकारको पर निर्भर है—

(१) प्रवण अथवा ढाल—प्रवण जितना प्रपाती (Steep) होगा, नदी का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(२) जल का आयतन—नदी मे जल का आयतन जितना अधिक होगा, वेग भी उतना ही अधिक होगा।

## ३ नदी के अपक्षरण का मूल सिद्धान्त

नदी के अपक्षरण के लिये यह आवश्यक है कि उसमे भार (Load) के रूप मे ककड, पत्थर रेत आदि हो। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, ये अपक्षरण के यत्र का कार्य करते है। स्पष्ट है, कि नदी मे भार की मात्रा जितनी अधिक होगी, अपक्षरण भी उतना ही अधिक होगा। प्रत्येक नदी अपने साथ अधिक से अधिक जितना भार ले जा सकती है उसकी निश्चित सीमा होती है, उससे अधिक भार ढोने मे वह असमर्थ होती है। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट होगा—मान लीजिये कोई नदी अधिक से अधिक २०० टन का भार वहन कर सकती है। यह भी मान लीजिए कि वह अपने साथ १०० टन का भार पहले से ला रही थी और पथ मे अपक्षरण के कारण भार की मात्रा बढकर ३०० टन हो जाती है। प्रकट है, कि इस दशा मे नदी अपने साथ केवल २०० टन भार ले जावेगी, शेष १०० टन छूट जावेगा। हाँ, यह हो सकता है कि वह अपने साथ जो भार ला रही थी और अपक्षरण से जो नवीन भार उसे मिला—उन दोनो मे अदला बदली हो जावे। जब नदी अधिकतम भार वहन करती है, तब उससे अपक्षरण नही होता, क्योकि यदि वह कुछ अपक्षरण करती भी है तो उतना ही सचयन हो जाता है, अतएव फल शून्य होता है।

सक्षेप मे —

(१) जब नदी मे भार नही होता, तब अपक्षरण भी नही होता।

(२) जब नदी मे भार की मात्रा अधिकतम होती है, तब भी अपक्षरण नही होता।

इन दोनो सीमाओ के बीच मे एक ऐसी अवस्था होती है—जब अपक्षरण अधिकतम होता है। इस अवस्था के पूर्व अपक्षरण क्रमश बढता है और इसके पश्चात् वह क्रमश. क्षीण होता है।

यही अपक्षरण का मूलभूत सिद्धान्त है।

## ४ नदी पथ का अनुक्रमण

### (Grading of river channel)

उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर नदी अपने पथ के ढाल को भार के अनुसार व्यवस्थित करती रहती है अर्थात् जब नदी पथ के अग विशेष के ऊपरी भाग मे पहुँचने वाला भार—

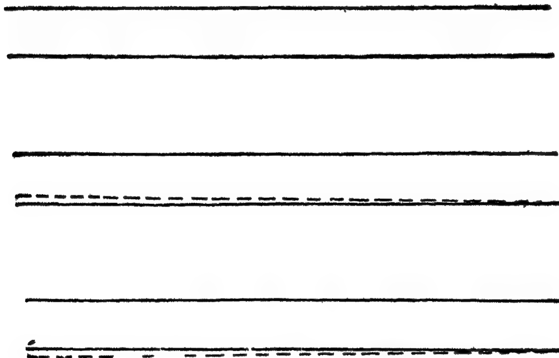
(१) उसके अधिकतम भार के बराबर होता है, तब न अपक्षरण होगा और न सचयन अथवा अपक्षरण और सचयन दोनो समान मात्रा मे होगे। इससे नदी पथ के अग विशेष के ढाल पर कोई प्रभाव न पडेगा, वह पूर्ववत् बना रहेगा।

(२) उसके अधिकतम भार से अधिक होता है, तब नदी अधिकतम भार को तो बहा ले जाती है और अतिरिक्त भार वहाँ सचित हो जाता है, जिससे उसका ढाल

बढ जाता है। ढाल के बढ जाने से नदी का वेग भी बढ जाता है। धीरे धीरे नदी का वेग इस प्रकार व्यवस्थित हो जाता है, कि वह ऊपर से आने वाले भार को ले जाने मे ठीक समर्थ होती है।

(३) उसके अधिकतम भार से कम होता है, तब नदी मे वहाँ सचयन की अपेक्षा अपक्षरण अधिक होता है, जिससे उसका ढाल घट जाता है। ढाल के घट जाने से नदी का वेग क्षीण हो जाता है। धीरे-धीरे नदी का वेग इस प्रकार व्यवस्थित हो जाता है, कि वह ऊपर से आने वाले भार को ले जाने मे ठीक समर्थ होती है।

चित्र ७३ मे उपर्युक्त तीनो दशाये प्रदर्शित की गई है। प्रथम दशा मे हम यह कहते है कि नदी मे अनुक्रमण ( Gradation ) हुआ, द्वितीय दशा में पुञ्जीकरण (Aggradation) और तृतीय दशा मे निम्नीकरण (Degradation)।



चित्र ४९—नदी पथ का अनुक्रमण

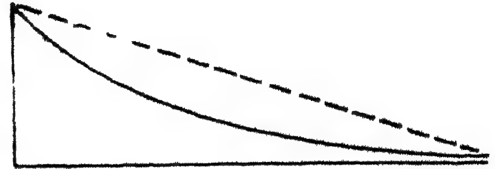
(उपर्युक्त सभी दशाओ मे हमने यह पहले से मान लिया था कि नदी पथ के अग विशेष का ढाल तथा उसके जल का आयतन और वेग एकरूप (Uniform) है और भार के पदार्थ भी एक ही आकार-प्रकार के है।)

## ५ जल अपक्षरण का वक्र

### (Curve of water erosion)

मान लीजिये एक ऐसा ढाल है जो सर्वत्र एकरूप है और एक सी शिलाओ से बना है। इस ढाल का ऊपरी सिरा किसी पर्वत पर स्थित है और निचला सिरा समुद्र तट पर है। अब यह कल्पना कीजिये कि इस ढाल के ऊपरी भाग मे किसी नदी का उद्भव होता है और वह ढाल के अनुरूप बहती है। ऊपरी भाग मे नदी को प्राप्त होने वाला जल वहाँ पर होने वाली वर्षा का जल होगा अतएव उसका आयन सीमित होगा। ज्यो-ज्यो नदी समुद्र की ओर बढती है, त्यो-त्यो जल की मात्रा बढती जाती है क्योकि उसमे स्थानीय वृष्टि के अतिरिक्त ऊपर के ढाल का जल भी बह आता है। इसके अतिरिक्त पार्श्वों से सहायक नदियाँ भी मिलती है। अन्य शब्दो मे, आरम्भ मे नदी मे भार की मात्रा बिल्कुल नही होती, जिससे अपक्षरण भी नही होता, आगे बढने पर नदी-नालो के मिलने से उसके भार मे क्रमश वृद्धि होती है। भार के बढ जाने से अपक्षरण की मात्रा भी बढ जाती है। अपक्षरण की वृद्धि एक निश्चित सीमा

तक होती है। जब भार अधिकतम हो जाता है, तब अपक्षरण रुक जाता है अथवा अपक्षरण और सचयन समान हो जाते हैं। यह अवस्था ढाल के निचले भाग में आती है। सक्षेप में, ढाल की चोटी पर अपक्षरण बिल्कुल नही होता और निचले भाग मे अपक्षरण और सचयन समान हो जाते है।' अतएव इन दोनो स्थानो के मध्य मे कोई ऐसा स्थान अवश्य होता है, जहाँ अपक्षरण अधिकतम होता है। उसके ऊपर और नीचे दोनो ही दिशाओ मे अपक्षरण क्रमश घटता जाता है। पूर्व मे हम अपक्षरण के मूलभूत सिद्धान्त की विवेचना कर चुके है। उससे भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे। इस प्रकार के अपक्षरण का पूर्ववर्ती ढाल परयह प्रभाव पडता है, कि वह नतोदर प्रवण (Concave Slope) मे परिणत हो जाता है। चित्र ५० से यह कथन स्पष्ट होगा। इसे ही हम जल के अपक्षरण का वक्र कहते है।

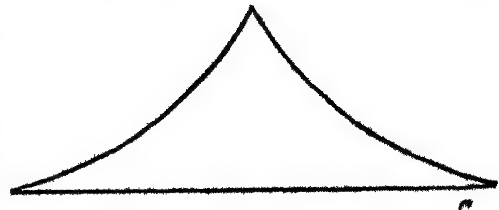

चित्र ५०—जल के अपक्षरण का वक्र

यह वक्र क्रमश विकसित होता रहता है। जब हम इसकी तुलना पूर्ववर्ती ढाल से करते है, तब हमे विदित हता है कि इसके ऊपरी भाग का प्रवण निचले भाग की तुलना मे प्रपाती है। इसका कारण यह है कि ऊपरी भाग मे अपक्षरण अधिक हुआ है और निचले भाग मे सचयन। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह होगा कि ढाल का ऊपरी भाग क्रमश प्रपाती होता चला जायगा और निचला भाग क्रमश मन्द (Gentle) होता चला जायगा। अन्य शब्दो मे अपक्षरण का विन्दु क्रमश ऊपर बढता जायगा। चित्र ५१ मे अपक्षरण के वक्र की विभिन्न उत्तरोत्तर अवस्थाये प्रदर्शित की गई है।

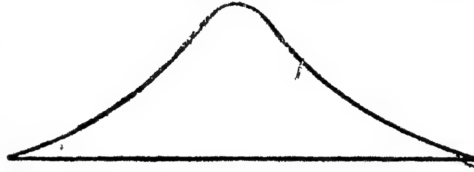

चित्र ५१—अपक्षरण-वक्र का विकास

## ६. जलविभाजक (Watershed) की आकृति

पूर्व परिच्छेद मे यह स्पष्ट है कि, जल के अपक्षरण से जो ढाल बनता है, वह नतोदर आकृति का होता है। यदि नदी का उद्गम जल-विभाजक के सर्वोच्च शिखर पर स्थित हो, तो चित्र ५२ के अनुसार उसका ऊपरी भाग नोकदार होगा। किन्तु प्रकृति मे नदी का उद्गम कभी भी जल-विभाजक के शिखर पर नहीं होता। वह शिखर से थोडे नीचे ढाल पर कही स्थित होता है। यह आवश्यक भी है, क्योकि नदी की उत्पत्ति के लिये जलभण्डार की आवश्यकता है। यदि नदी का उद्गम जल विभाजक के शिखर पर स्थित होता, तो वहाँ जल का साधन केवल स्थानीय वर्षा होती, जो नदी-प्रवाह के


चित्र ५२—नोकदार जलविभाजक

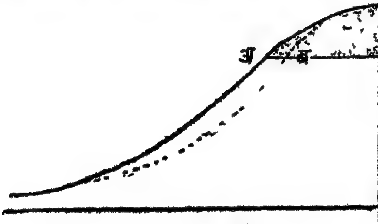
लिए पर्याप्त न होती। वास्तव मे नदी-उद्गम के ऊपर का जल-विभाजक, का भाग स्पंज का कार्य करता है, अर्थात् वह पानी को सोखता रहता है और फिर झरने के रूप मे उसे क्रमश प्रदान करता है। एक बार की जलवृष्टि मे सचित जलराशि के समाप्त होने के पूर्व दूसरी जलवृष्टि हो जाती है। यही क्रम चलता रहता है और नदी का उद्गम कभी सूखने नही पाता। संक्षेप मे, जब नदी-उद्गम जल-विभाजक के शीर्ष पर स्थित नही होता, तब उसके ऊपर जल विभाजक की आकृति उन्नतोदर होती है।



चित्र ५३—उन्नतोदर जलविभाजक

## ७ नदियों के उद्गम का पीछे की ओर कटना

कोई भी नदी अपने उद्गम के ऊपर अपक्षरण करने मे असमर्थ होती है, किन्तु घाटियो मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि उद्गम के पीछे भी उनका विस्तार हो। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट होगा। चित्र ५४ मे एक पर्वत प्रदर्शित किया गया है, जिसमे भेद्य शिला के स्तर अभेद्य शिला के स्तर के ऊपर स्थित है। भेद्य शिला वर्षा के जल को सोखती रहती है। यह जल 'क' पर स्रोत के रूप मे प्रवाहित होता है। यही स्रोत नदी का उद्गम है। अपक्षरण वक्र, जिसका पूर्व में उल्लेख हो चुका है, 'क' से आरम्भ होता है और कालान्तर मे जब वह पूर्णत विकसित हो जाता है तब 'क' पर ढाल बडा प्रपाती हो जाता है। इसका फल यह होता है कि जलवृष्टि से 'क' के ऊपर का भाग भी कटने लगता है, जिससे 'क' पर स्थित स्रोत पीछे की ओर खिसकने लगता है। जैसा कि चित्र ५४ से स्पष्ट होगा कुछ काल के अनन्तर 'क' पर स्थित स्रोत 'ख' पर पहुच जाता है। इस प्रकार नदी, उद्गम के पीछे की ओर कटती रहती है। इस क्रिया से कभी-कभी नदियो का अपहरण (River capture) भी हो जाता है। इसकी विवेचना आगे की गई है।

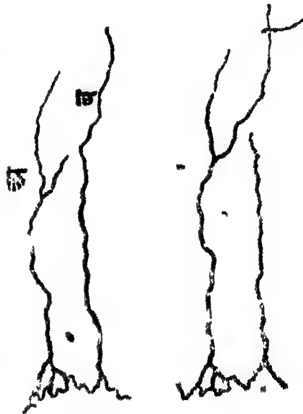



चित्र ५४—नदी के उद्गम का पीछे की ओर कटना

## ८ नदी अपहरण

(River capture)

जब दो नदियाँ पास-पास बहती है, तब कभी-कभी ऐसा होता है, कि अधिक अपक्षरण करने वाली नदी ऊपर की ओर काटते-काटते (through head-ward erosion) कम अपक्षरण



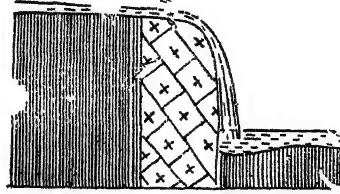
चित्र ५५—नदी-अपहरण

[ पृष्ठ ५२ के सामने



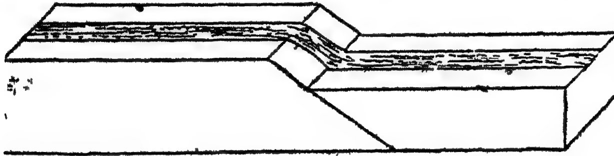
है। इस प्रकार की क्रिया का फल यह होता है कि प्रपात क्रमश पीछे की ओर खिसकता रहता है।

(२) पठार के ऐसे किनारो पर जो लगभग उदग्र हो जलप्रपात पाया जाना स्वाभाविक है। सलग्न चित्र से यह कथन स्पष्ट होगा। अफ्रीका की अनेक नदियाँ नौकारोहण की दृष्टि से इसीलिये व्यर्थ है कि वे पठारो से नीचे की ओर प्रवाहित होती है। उदाहरण के लिये कागो नदी ३२ द्रुतवाहो का निर्माण कर ९०० फुट नीचे उतरती है।



चित्र ६१—पठार के किनारे पर बना जल प्रपात

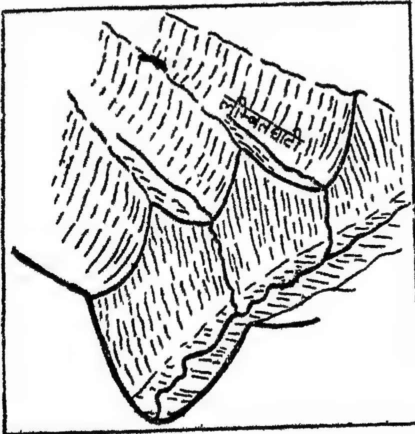
( ३ ) कुछ जल प्रपात विभगन (Faulting) के कारण बन जाते है। इनका सबसे सामान्य उदाहरण वह विभग है जिसमे ऊपर उठा हुआ खण्ड (Upthrown Side) नदी प्रवाह के सन्दर्भ मे पीछे की ओर रहता है तथा अधिक अवरोधी शिलाओ से



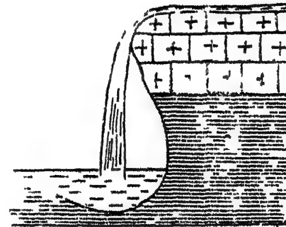
चित्र ६२—विभगन से बना जलप्रपात

निर्मित होता है और नीचे धसा हुआ खण्ड (Down thrown Side) आगे की ओर रहता है तथा अपेक्षाकृत अधिक अवरोधी शिलाओ से बना होता है। जैम्बैजी नदी पर विक्टोरिया जलप्रपात अशत विभगन के कारण बना है।

(४) हिमानीकृत प्रदेशों (Glaciated Regions) के ऐसे भागो मे जल-प्रपात पाये जाते है जहाँ मुख्य घाटी के अति-उत्खनन (Over-deepening) के कारण लम्बित घाटियाँ (Hanging Valleys) मुख्य नितल से बहुत ऊपर उठ जाती है।




चित्र ६३—लम्बित घाटी से बना जलप्रपात



चित्र ६४—सागरीय उच्छृग से बना जलप्रपात

चित्र ६०—चित्रकूट (बस्तर) का जलप्रपात

(५) कभी २ जब नदी प्रपाती-उच्छ्रृंग ( Steep cliff) के किनारे गिरकर समुद्र में मिलती है, तब जलप्रपात बन जाता है। सागरीय अपक्षरण के कारण ऐसे उच्छ्रृंग पीछे की ओर अर्थात् स्थल की दिशा में खिसकते रहते हैं।

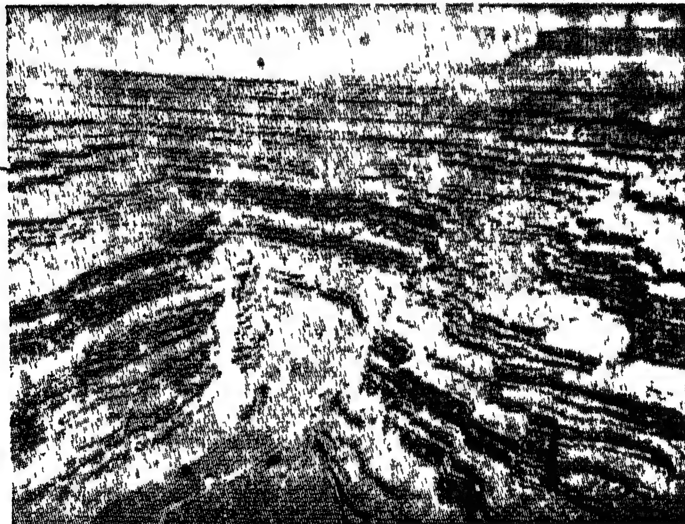
## १० नदी की घाटी का विकास

नदी के ऊपरी भाग में सचयन की तुलना में अपक्षरण अधिक होता है और निचले भाग में सचयन की तुलना में अपक्षरण कम होता है। अन्य शब्दों में नदी अपने पथ के ऊपरी भाग में घाटी को गहरा करती है—इसी आधार पर उसे 'घाटी क्षेत्र' (Valley tract) कहते हैं। अपने पथ के निचले भाग में नदी उन सब पदार्थों को, जिनका वह परिवाहन करती है, फैला देती है, जिमसे मैदान बन जाते हैं। इसी आधार पर नदी पथ के इस भाग को 'मैदानी क्षेत्र' (Plain tract) कहते हैं। शनै-शनै निक्षेप-स्थल में वृद्धि होती जाती है जिससे मैदानी क्षेत्र ऊपर की ओर फैलता जाता है—और घाटी क्षेत्र सकुचित होता जाता है।

### (१) घाटी क्षेत्र (Valley Tract)

जैसा कि पूर्व में उल्लेख हो चुका है नदी-पथ के ऊपरी भाग में सचयन की अपेक्षा अपक्षरण अधिक होता है। इसका फल यह होता है कि नदी की घाटी गहरी होती जाती है। यदि अपक्षरण का कार्य केवल नदी द्वारा सम्पन्न होता, तो उसकी

चित्र ६५—नदी की घाटी का क्रमश चौड़ा होना

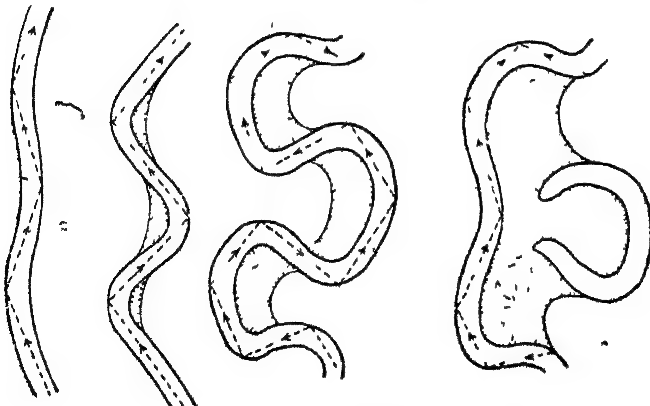


चित्र ६६—कैनियन (Canyon)

घाटी के पार्श्व लम्बवत् रहते किन्तु अन्य अभिकर्ता जैसे तुषार, वर्षा आदि किनारो को काटते रहते है, जिससे नदी की घाटी V—आकृति की हो जाती है। किनारो के ढाल लम्बवत् अपक्षरण और पार्श्विक (Lateral) अपक्षरण के तुलनात्मक मूल्य पर निर्भर करते है अर्थात् यदि पार्श्विक अपक्षरण अधिक होता है, तो ढाल मन्द होता है, दूसरी ओर यदि लम्बवत् अपक्षरण अधिक होता है तो ढाल प्रपाती होता है।ढाल की आकृति बहुत कुछ शिलाओ की सरचना और जलवायु पर भी निर्भर करती है। 'कठोर शिलाओ' की अपेक्षा मृदुल शिलाये शीघ्रता से घिसती है। इसी प्रकार कम वर्षा के क्षेत्रो की अपेक्षा अधिक वर्षा के क्षेत्रो मे पार्श्विक अपक्षरण अधिक होता है, जिससे घाटी V—आकृति की हो जाती है। इन सम्बन्ध मे कॉलैरैडो नदी के कैनियनो ( Canyons ) का उल्लेख उचित होगा। कोलम्बिया के अर्ध-मरुस्थलीय प्रदेशमे कॉलोरैडो नदी की घाटी वहुत अधिक गहरी और सकरी है। यहाँ पर घाटी के दोनो किनारे दीवाल की भाति लम्बवत् है। स्पष्ट है, कि यहाँ पर वर्षा के अभाव मे पार्श्विक अपक्षरण विल्कुल नही होता। नदी के प्रवाह से केवल लम्बवत् अपक्षरण होता है जिससे घाटी गहरी होती चली गई है।

## (२) मैदानी क्षेत्र

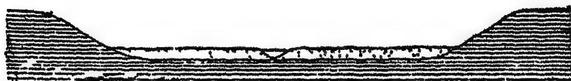
जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है नदी-पथ के निचले भाग मे अपक्षरण की अपेक्षा सचयन अधिक होता है। इसका फल यह होता है कि घाटी की गहराई क्रमश घटती जाती है और नदी मे बाढ की प्रवृत्ति विकसित होती जाती है। नदी के प्रवाह मे थोडी सी भी बाधा आने पर वह घूमकर बहने लगती है। नदी के घूम कर बहने से जो वक्र बन जाते है उन्हे हम प्रवाह-मोड अथवा मियनडर (Meander) कहते हे। एशिया माइनर मे मियनडर नाम की एक नदी हे, जो लहराती हुई अर्थात् इस प्रकार के वक्र बनाती हुई बहती है। इसी नदी के नाम के आधार पर Meander शब्द बना है। चित्र ५६ से यह कथन स्पष्ट होगा कि वक्राकार नदी-पथ मे पानी की धारा



चित्र ६७—प्रवाह-मोडो का विकास

नतोदर तट पर टकराती है जिससे वह कट जाता है, दूसरी ओर यह अपक्षरित पदार्थ उन्नतोदर तट पर एकत्र होता है। इस प्रकार नतोदर तट के निरन्तर कटने और उन्नतोदर तट पर निरन्तर निक्षेपण होने से वक्रता की मात्रा क्रमश बढती जाती है। चित्र ६५

मे वक्रता की वृद्धि की विभिन्न उत्तरोत्तर अवस्थाये प्रदर्शित की गई है। इस प्रकार कालान्तर मे वक्र लगभग वृत्ताकार हो जाता है। इस दशा मे कभी-कभी बाढ के स... वंक्र के वे दोनो भाग जो अत्यन्त निकट होते है मिल जाते है और नदी पुन सीधे बहने लगती है। वक्र का वह भाग जो छूट कर अलग हो जाता है, झील मे परिणत हो जाता है। ऐसी झील को हम वृषभ-धनु झील ( Ox-Bow lake ) कहते है क्योकि उसकी आकृति बैल के जुए सदृश होती है।



चित्र ६८—मैदान मे प्रवाहित होनेवाली नदी का अनुप्रस्थ प्रच्छेद

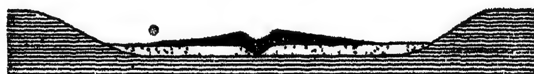
मैदानी क्षेत्र मे वृषभ-धनु झीले निरन्तर बनती रहती है और नदी के पथ मे विवर्तन होते रहते है। इन पार्श्विक विवर्तनो से चौडा और लगभग समतल मैदान अस्तित्व मे आ जाता है। इस मैदान के किनारो पर भूमि ऊपर उठी रहती है। चित्र ६८ मे इस प्रकार का मैदान प्रदर्शित किया गया है। चित्र से स्पष्ट होगा कि इस मैदान मे प्रवाहित होने वाली नदी का नितल धरातल की अपेक्षा बहुत कम गहरा है। यह स्वाभाविक ही है, क्योकि नदी के मैदानी भाग मे अपक्षरण की तुलना मे सचयन अधिक होता है।

बाढ के समय नदी का जल किनारो के ऊपर चढ जाता है और घाटीतल ( Valley floor ) मे फैल जाता है अतएव इसे बाढ का मैदान (Flood plain) कहते है। बाढ की दशा मे नदी के पथ (Channel) मे जल का प्रवाह तीव्र वेग से होता है, किन्तु बाढ के मैदान मे जल प्राय स्थिर रहता है। प्रवाह-वेग के इस विभेदन के कारण नदी पथ के दोनो किनारो पर कीचड जमा हो जाता है। बाढ के समाप्त होने पर नदी-धारा का जल नीचे आ जाता है और बाढ के मैदान का शेष जल या तो नदी की धारा मे आकर मिल जाता है या उसे पृथ्वी सोख लेती है। नदी पथ के किनारो पर



चित्र ६९—पूर-तटो ( Levees ) का बनना

एकत्रित कीचड यथावत् स्थिर रहता है, जिससे नदी-तट बाढ के मैदान की अपेक्षा ऊपर उठा रहता है (चित्र ६९)। जब नदी पुन अपनी सामान्य दशा मे आ जाती है, तब निक्षेपण से उसका नितल फिर ऊँचा होने लगता है। फलत यद्यपि किनारे पहले की अपेक्षा ऊँचे होते है, तथापि नितल की अपेक्षा उनकी ऊँचाई पूर्ववत ही रहती है, क्योकि नितल भी ऊपर उठ जाता है। फिर बाढ आती है और फिर किनारे ऊँचे होते है। बाढ के समाप्त होने पर निक्षेपण से नदी का नितल फिर ऊँचा होता है। यही क्रम चलता रहता है।



चित्र ७०—निक्षेपण द्वारा नदी-तल का बाढ के मैदान से ऊपर उठ जाना

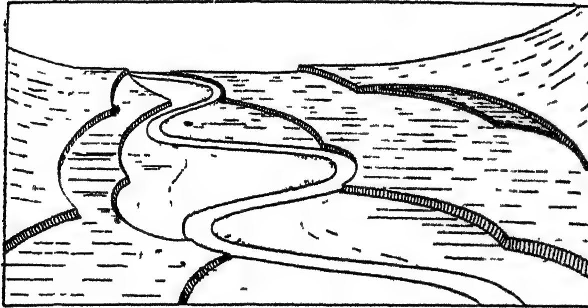
कालान्तर मे नदी का नितल बाढ के मैदान की अपेक्षा ऊँचा हो जाता हे, यद्यपि किनारो अह नीचा ही रहता है। स्पष्ट है कि ऐसी दशा मे बाढ की सभावना बहुत अधिक होती है। नदी द्वारा निर्मित इन प्राकृतिक बाँधो को, जिन्हे कृत्रिम रीति से सुदृढ किया जा सकता है पूर तट ( Levees ) कहते हैं। उत्तरी अमरीका की मिसीसिपी, इटली की पो तथा चीन की ह्वागहो नदियोमे पूर तट पाये जाते है। यदि पूरे तट को कृत्रिम रूप से सुदृढ न किया जाय तो नदी की धारा मे विवर्तन होते रहेगे। बाढ की दशा मे नदी इन तटो को तोडकर आस पास के प्रदेश मे विनाश का दृश्य उपस्थित कर सकती है। ह्वागहो मे यही होता है। इसीलिये उसे 'चीन का शोक' कहते है।

## ११ नदी का कायाकल्प (Rejuvenation of River)

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि मैदानी भाग मे नदी का लम्बवत् अपक्षरण समाप्त हो जाता है। ऐसी अवस्था आ जाने के बाद कभी-कभी ऐसा होता है कि आकस्मिक असाधारण वर्षा से नदी जल का आयतन बढ जाता है अथवा भूपर्पटी की गतियो से नदी-तल का ढाल प्रपाती हो जाता है, जिससे लम्बवत् अपक्षरण पुन आरम्भ हो जाता है। इसे हम नदी का कायाकल्प कहते हैं।

## १२ नदी उत्तल (River Terraces)

नदी मे कायाकल्प हो जाने से उसका पथ गहरा हो जाता है जिससे बाढ का मैदान नदी तल की तुलना मे यथेष्ट ऊँचा हो जाता है और वह नदी की घाटी के ऊपर दोनो ओर मच सदृश प्रतीत होता है। इस प्रकार के मचो को हम उत्तल (Terrace) कहते है।



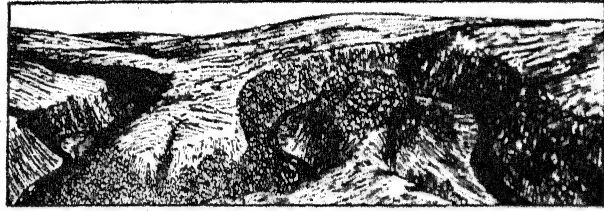
चित्र ७१—नदी के उत्तल

कालान्तर मे लम्बवत् अपक्षरण पुन समाप्त हो जाता है और फिर पार्श्विक अपक्षरण से नवीन बाढ का मैदान निर्मित होता है। यह तो स्पष्ट ही है, कि इस नवीन बाढ के मैदान का धरातल पुरान बाढ के मैदान के धरातल से बहुत नीचा होगा। इसके पश्चात् यदि किसी कारण नदी का पुन कायाकल्प होता है और उसमे पुन लम्बवत् अपक्षरण आरम्भ होना है, तो पुन नवीन उत्तल बनजाते हैं। इस प्रकार उत्तलो की क्रमिक शृखला बन सकती है।

## १३ प्रवर्धित प्रवाह-मोड़ (Incised Meanders)

यदि बाढ के मैदान मे प्रवाह-मोड बनाती हुई किसी नदी का कायाकल्प हो जाता है तो उसके प्रवाह मोड गहरे हो जाते हैं यद्यपि उनकी वक्र आकृति पूर्ववत

बनी रहती है। इस प्रकार के गहरे प्रवाह मोड़ों को हम प्रवर्धित प्रवाह मो (Incised Meanders) कहते हैं।



चित्र ७२—प्रवर्धित प्रवाहमोड़ (Incised Meanders)

## १४ परिवाहन (Transportation)

नदी का जल अपने साथ अपक्षरित पदार्थ को बहा ले जाता है। यही परिवाहन है। यह पदार्थ विविध आकार-प्रकार का होता है। जो पदार्थ घुलनशील हैं, वे नदीजल में घुल जाते हैं और उनका परिवाहन घोल के रूप में होता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के लवण और रासायनिक यौगिक आते हैं। जिन पदार्थों का घनत्व पानी से कम होता है, वे तैरते हुए परिवाहित होते हैं, जैसे लकड़ी के टुकड़े, घास-फूस आदि। अन्य पदार्थों में—जो आकार में कुछ बड़े होते हैं वे नितल पर लुढ़कते हुए चलते हैं जैसे पत्थरों के टुकड़े; सूक्ष्म कण निलम्बित अवस्था (Suspension) में प्रवाहित होते हैं। अधिक बड़े टुकड़ों को नदी बहा ले जाने में असमर्थ होती है और वे छूट जाते हैं। बाढ़ के समय उनका परिवाहन होता है। नदी अपने साथ अधिक से अधिक कितना बड़ा पत्थर का टुकड़ा बहा ले जा सकती है—यह अनेक प्रतिकारकों पर निर्भर है जैसे (१) धारा का वेग (२) पत्थर के टुकड़े की आकृति, घनत्व एवं संरचना। यदि समान रचना और घनत्व के छोटे बड़े अनेक आकारों के बहुत से गोलाकार पत्थर हों, तो नदी द्वारा जो सबसे बड़ा पत्थर परिवाहित होगा उसके व्यास में और प्रवाह-वेग में यह सम्बन्ध होगा :—

प्रवाह वेग $\propto$ (परिवाहित होने वाले बड़े से बड़े पत्थर के टुकड़े का व्यास)$^{२}$ अर्थात् यदि नदी का वेग दूना हो जाता है, तो वह चौगुने व्यास के पत्थर को परिवाहित कर सकेगी। इसी प्रकार नदी द्वारा परिवाहित भार का आयतन और प्रवाह वेग में निम्नांकित सम्बन्ध है :—

**प्रवाह वेग $\propto$ (आयतन)$^{६}$**

अर्थात् यदि प्रवाह-वेग दूना हो जाता है, तो वह $२^{६} = २ \times २ \times २ \times २ \times २ \times २ = ६४$ गुणे भार का परिवाहन करेगा।

नदी का प्रवाह-वेग उसके पथ की आकृति आकार एवं ढाल तथा उसमें विद्यमान पानी के आयतन पर निर्भर है। यदि आकृति और ढाल स्थिर रहते हैं, तो पानी के आयतन के बढ़ जाने से प्रवाह-वेग बढ़ जाता है। इसी प्रकार यदि पथ की आकृति और जल का आयतन स्थिर रहता है, तो ढाल के बढ़ जाने से प्रवाह-वेग बढ़ जाता है। यदि आयतन और ढाल स्थिर रहते हैं, तो टेढ़े-मेढ़े पथ से प्रवाहित

होने वाली नदी की तुलना मे सीधी नदी का प्रवाह-वेग अधिक होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि नदी के प्रत्येक भाग मे प्रवाह-वेग एक-सा नही होता है। घर्षण (friction) के कारण नितल और पार्श्वो मे प्रवाह-वेग मध्य-भाग की अपेक्षा कम होता है।

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि प्रत्येक नदी अधिक से अधिक एक निश्चित मात्रा का भार वहन कर सकती है। यदि वास्तविक भार इससे कम होता है, तो अपक्षरण द्वारा उसमे वृद्धि होती है। यदि वास्तविक भार इसके बराबर होता है, तो अपक्षरण अथवा सचयन कुछ भी नही होता। यदि वास्तविक भार इससे अधिक होता है तो शेष भार छूट जाता है, जिससे सचयन होता है।

ससार भर की नदियाँ महासागरो मे प्रतिवर्ष अपरिमित अवसाद डालती रहती है। यह आगणन किया गया है कि केवल सयुक्त राज्य अमरीका की नदिया प्रतिवर्ष कम से कम ८० करोड टन पदार्थ परिवाहित करती है।

## १५ निक्षेपण (Deposition)

नदी के कार्य के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अपक्षरण और सचयन परस्पर पूरक प्रक्रियाये है। जो दशाये एक के लिये अनुकूल है, वे ही दूसरे के लिये प्रतिकूल है। उदाहरण के लिये ढाल के बढ जाने से अथवा जल के आयतन के बढ जाने से अथवा प्रवाह वेग के बढ जाने से अपक्षरण बढ जाता है, दूसरी ओर इनके घट जाने से निक्षेपण बढ जाता है। निक्षेपण सम्बन्धी अनेक बातो का विचार अपक्षरण के अन्तर्गत हो चुका है। यहाँ पर केवल नदी द्वारा सचित स्थल ओर जल के निक्षेपो की रूपरेखाये प्रस्तुत की जा रही है।

### (१) स्थल के निक्षेप

नदी के स्थल-निक्षेपो के प्रमुख रूप कछारी-व्यजन (Alluvial Fan), कछारी मैदान (Alluvial Plain), बाढ का मैदान (Flood Plain) पूर-तट (Levees) तथा उत्तल (Terraces) है। इनमे से कुछ का उल्लेख अपक्षरण के अन्तर्गत हो चुका है।

### (२) जल के निक्षेप

समुद्र अथवा झील मे गिरने के पूर्व नदियो का वेग क्षीण हो जाता है, जिससे निक्षेपण होता है। यदि उस समुद्र अथवा झील मे लहरे और धाराये इतनी प्रबल नही होती कि वे नदी द्वारा सचित अवसाद को बहा ले जा सके तो नदी-मुख पर डेल्टा का सृजन होता है। डेल्टा के सम्बन्ध मे आगे विस्तृत विवेचना की गई है। सचयन सतत रूप से होता रहता है जिससे डेल्टा क्रमश समुद्र की दिशा मे आगे बढता रहता है। नदी मुख पर सचित पदार्थ नदी की धारा के बहने मे बाधक होता है, जिससे मुख्य धारा से अनेक शाखाये, फूट निकलती है। इन्हे हम वितरक-धाराये (Distributaries) कहते है। प्रत्येक वितरक-धारा मे मुख्य धारा की तुलना मे जल की मात्रा कम होती है। इसका फल यह होता है, कि निक्षेपण की मात्रा बढ जाती है। इन वितरक धाराओ मे से बहुत सी अत्यन्त मन्द होती है क्योकि उनमे भार अधिक होता है और ढाल की मात्रा कम होती है। इससे उनके बीच मे रेत के टापू बन जाते है, जिन्हे हम सैकत-दण्ड (Sand bar) कहते है।

## १६ नदी के पथ की विभिन्न अवस्थायें

नदी के उद्गम से लेकर अन्त तक के पथ को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) ऊपरी अथवा पर्वतीय भाग,
(२) मध्य अथवा मैदानी भाग,
(३) निचला अथवा डेल्टा का भाग।

### (१) ऊपरी अथवा पर्वतीय भाग

नदी का उद्गम बहुधा पर्वतों में होता है अतएव आरम्भ में वह पर्वतीय प्रदेश में प्रवाहित होती है। इस क्षेत्र में वह प्रपाती प्रवणों के मध्य में होकर बहती है। नदी की इस अवस्था का प्रमुख लक्षण यह है कि उसमें जल प्रपात (Water-falls), प्रपातिका (Cascades) तथा द्रुतवाह (Rapids) बहुत पाये जाते हैं और लम्बवत् अपक्षरण से घाटी गहरी होती रहती है। प्रपातों में नदी-जल काफी ऊँचाई से नीचे गिरता है, प्रपातिका में शृंखलावत् बहुत से प्रपात होते हैं और द्रुतवाह में पानी गहरी और संकरी प्रदरी (Gorge) में होकर बहता है।

जलवृष्टि के कारण नदी का उद्गम क्रमशः पीछे खिसकता रहता है। इस कथन की विस्तृत विवेचना 'नदियों के उद्गम का पीछे की ओर कटना' शीर्षक के अन्तर्गत हो चुकी है।

नदी के अपक्षरण-कार्य का अधिकांश भाग पर्वतीय भाग में ही सम्पन्न होता है। नदी के साथ बहने वाले पत्थरों के टुकड़े इसमें विशेष सहायक होते हैं। वे अपनी रगड़ से नितल को घिसते रहते हैं। अन्य शब्दों में वे नदी के अपक्षरण के लिये यंत्र का कार्य करते हैं। नदी की इस अवस्था में उसका वेग अधिक होता है जिससे अपक्षरण बहुत होता है। अपक्षरण के इन यंत्रों पर भी रगड़ का प्रभाव कुछ कम नहीं पड़ता। नितल के विरुद्ध निरन्तर घिसते-घिसते ये क्रमशः आकृति में गोल और आकार में छोटे होते जाते हैं।

नदी के जल में जब भँवर पड़ती है, तब पत्थरों के छोटे छोटे असम्बद्ध टुकड़े उसमें चक्कर खाते हैं, जिससे नितल में गोल गड्ढे बन जाते हैं। इन्हें हम कुम्भगर्त (Pot Holes) कहते हैं। कालान्तर में अनेक निकटवर्ती कुम्भगर्त परस्पर जुड़ जाते हैं। इससे नदी के लम्बवत अपक्षरण में सहायता मिलती है।

नदी के लम्बवत् अपक्षरण की मात्रा बहुत-कुछ नितल की शिलाओं की प्रकृति पर निर्भर है। मृदुल शिलाओं की तुलना में कठोर शिलायें बहुत कम घिसती हैं। इसका एक सुन्दर उदाहरण नियागरा का जल प्रपात (Waterfall) है। इस नदी का तल नियागरा नामक कठोर चूने के पत्थर की शिलाओं से बना है। इनके नीचे शैल (Shale) और बालुकाश्म (Sandstone) के मृदुल स्तर हैं। प्रपात से गिरने वाला जल बौछार के रूप में नीचे की मृदुल शिलाओं से टकराता है। चित्र ५८ से यह कथन स्पष्ट होगा। फल यह होता है कि नीचे के शिलास्तर ऊपर की अपक्षा अधिक कट जाते हैं। इस प्रकार ऊपरी कठोर शिला के स्तर आगे बढ़े हुए निरालम्ब लटकते रहते हैं और कालान्तर में अपने वृहद् भार के कारण टूट कर गिर पड़ते हैं। इस प्रकार की क्रिया का फल यह होता है कि प्रपात क्रमशः पीछे की ओर खिसकता रहता है।

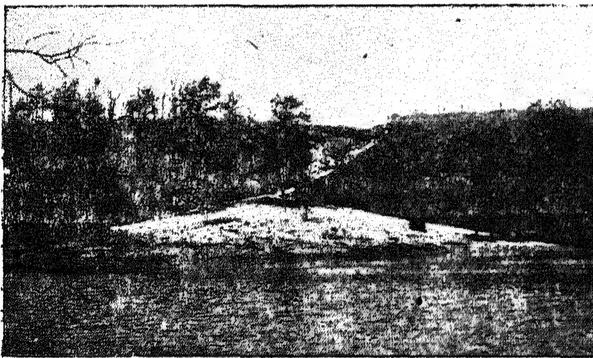
नदी के अपक्षरण में जलवायु का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इसका एक सुन्दर उदाहरण कौलेरेडो नदी के कैनियन (Canyons) है। ये ऐसी गहरी घाटियाँ हैं, जिनके पार्श्व मीलों ऊँचे हैं और प्रायः लम्बवत् हैं। ये ऐसे प्रदेशों में पाये जाते हैं, जहाँ वर्षा बहुत कम होती है। इनके बनने का कारण यही है कि जलवृष्टि न होने से पार्श्विक अपक्षरण (Lateral Erosion) नहीं होता अतएव घाटियों के पार्श्व सीधे रहते हैं।

उपर्युक्त दशा विशेष परिस्थिति में पाई जाती है। सामान्यतः हवा, वर्षा, स्थल-सर्पण (Land slide) और सहायक नदियों के अपक्षरण से नदी की इस अवस्था में भी घाटी क्रमशः चौड़ी होती है, यद्यपि लम्बवत् अपक्षरण से घाटी का गहरा होना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रत्येक नदी के लम्बवत् अपक्षरण की एक निश्चित सीमा होती है, जिससे अधिक काटने में वह असमर्थ होती है। यह तो स्पष्ट ही है कि किसी भी सहायक नदी का नितल मुख्य नदी के नितल से गहरा नहीं हो सकता। यदि ऐसा संभव हो तो प्रवाह की दिशा ही उलट जाय अर्थात् सहायक नदी के मुख्य नदी में विलीन होने के स्थान पर मुख्य नदी सहायक नदी में प्रवाहित होने लगे। किसी भी नदी के लम्बवत् अपक्षरण की निम्नतम सीमा को हम आधार-तल (Base Level) कहते हैं। जब नदी का लम्बवत् अपक्षरण चर्म सीमा को पहुँच जाता है, तब हम यह कहते हैं कि नदी ने अपना आधार-तल प्राप्त कर लिया है। जिस प्रकार सहायक नदी का आधार-तल मुख्य नदी का नितल होता है, उसी प्रकार मुख्य नदी का आधार-तल उस सागर अथवा झील का समतल होता है, जिसमें वह गिरती है। संक्षेप में किसी भी नदी का आधार-तल उसके मुहाने का समतल होता है।

## २. मध्य अथवा मैदानी भाग

नदी के ऊपरी और मध्य भाग में यही मुख्य भेद है कि ऊपरी भाग में लम्बवत् अपक्षरण से घाटी गहरी होती रहती है और मध्य भाग में पार्श्विक अपक्षरण से चौड़ी।



चित्र ७३—कछारी व्यजन (Alluvial fan)

नदी के ढाल के घट जाने से प्रवाह वेग भी क्षीण हो जाता है। नदी पथ की आकृति ढाल के घटने के वेग पर निर्भर है। यदि ढाल बहुत ही धीरे-धीरे घटता है तो नदी लहराती हुई बहती है। यदि ढाल अपेक्षाकृत जल्दी और एक रूप से ( Uniformly ) घटता है तो नदी का पथ सीधा रहता है, यद्यपि शिलाओं की सरचना का प्रभाव तो पडता ही है।

नदी पथ के मध्य भाग मे प्रवाह-वेग के घट जाने से अवगादों ( Sediments ) का निक्षेपण आरम्भ हो जाता है। नदी द्वारा सचित अवगाद कांप अथवा कछार ( Alluvium ) कहलाते हैं। प्रपाती पर्वतो के पदो पर—विशेषकर कम वर्षा के प्रदेशो मे—कांप के निक्षेप व्यजन (Fan) की आकृति ग्रहण कर लेते है। इन्हे हम कछारी-व्यजन ( Alluvial Fan ) कहते हैं। बहुत से कछारी व्यजनो के परस्पर मिल जाने से कछारी मैदान (Alluvial Plain) अस्तित्व मे आ जाते है। पूर्व मे यह उल्लेख हो चुका है कि नदी अपने पथ के मध्य भाग मे लहराती हुई बहती है। इसी सन्दर्भ मे वृषभ-धनु झीलो ( Obow Lakes) की निर्माण-क्रिया भी स्पष्ट की गई है। नदी के मैदानी भाग मे पूर तट (Levees) और उत्तल (Terraces) बनते है। इनके बनने की क्रिया का वर्णन पूर्व मे हो चुका है।

## ३ निचला अथवा डेल्टा का भाग

ज्यो-ज्यो नदी उस झील अथवा सागर के निकट पहुंचती है जिसमे उसे आत्मसमर्पण करना है, त्यो-त्यो उसमे जल का आयतन घटता जाता है और उसका



चित्र ७८—नील नदी का डेल्टा

वेग मन्द होता जाता है। समुद्र अथवा झील में बडे आकार के पत्थर के टुकडे पहले जमा हो जाते हैं, अपेक्षाकृत छोटे टुकडे और रेत के कण आगे जाकर एकत्र हो जाते है तथा निलम्बित ( Suspended ) एव सूक्ष्मतम पदार्थ एव पक और आगे जाकर बैठ जाते है। ये निक्षेप तिकोनी आकृति के ढाल के रूप मे एकत्र होते है और उनके कारण नदी का प्रवाह कई धाराओ मे विभाजित हो जाता है। ज्यो-ज्यो ये धाराये आगे बढती है त्यो-त्यो उनकी पारस्परिक दूरी बढती जाती है और नवीन धाराये फूट निक-

लती है। चित्र ७४ एव ७५ से यह कथन स्पष्ट होगा। इस प्रकार नदी के डेल्टा भाग का निर्माण होता है। ग्रीक भाषा मे डेल्टा नाम का एक अक्षर है। नील नदी का निचला मैदान आकृति मे इस अक्षर (डेल्टा) से मिलता जुलता है। इसी साम्य के आधार पर ग्रीक भूगर्भवेत्ताओ ने इस शब्द को गढा है और अब यह भूगोल मे सामान्य हो गया है।

सक्षेप मे, डेल्टा नदी के निक्षेप द्वारा सागर अथवा झील मे निर्मित उस त्रिभुजाकार समतल मैदान को कहते है, जिसमे नदी का जल अनेक धाराओ मे विभाजित होकर बहता है। गगा-नदी का डेल्टा राजमहल के थोडे दक्षिण से आरम्भ हो जाता है। डेल्टा का ढाल इस तथ्य पर निर्भर करता है कि मुख्य धारा का प्रवाह-वेग किस गति से घटता है। यदि वह जल्दी-जल्दी घटता है, तो डेल्टा ढालू होगा, यदि वह धीरे-धीरे घटता है तो डेल्टा का ढाल मन्द होगा।

उत्तम डेल्टा के बनने के लिये निम्नलिखित दशाओ की पूर्ति आवश्यक है—

(१) नदी का पथ लम्बा होना चाहिये और उसमे बहुत सी सहायक नदियाँ मिलनी चाहिये, जिससे सागर मे काफी मात्रा मे अवसाद एकत्र हो सके।

(२) सागर मे लहरे धाराये और ज्वार भाटा प्रबल न होना चाहिये अन्यथा सागर जल की ये गतियाँ नदी द्वारा एकत्रित अवसाद को बहा ले जायँगी।

(३) नदी के निचले पथ को समतल मैदान मे स्थित होना चाहिये। इससे उसका प्रवाह अत्यन्त मन्द होगा और नदी का पकमय जल सागर के लवणमय जल से पूर्ण रूप से मिल सकेगा, जिससे पक अथवा कीचड नीचे बैठ जायगा। इसके विपरीत यदि नदी का प्रवाह तेज हुआ तो अवसाद समुद्र में बहुत आगे बढ जायँगे और डेल्टा न बन सकेगा।

## डेल्टा की प्रगति

नदी द्वारा समुद्र मे निक्षेपण निरन्तर होता रहता है जिससे डेल्टा समुद्र की ओर क्रमश बढता रहता है।

## डेल्टाओ का वर्गीकरण

डेल्टा मुख्यत दो प्रकार के होते है —

(१) **व्यजनाकार डेल्टा**—ऐसी नदियाँ जो मुहाने के निकट अनेक धाराओ मे बँट जाती है, जिन्हे वितरक (Distributaries) कहते है, समुद्र की ओर उन्नतोदर आकृति का डेल्टा बनाती है। ऐसे डेल्टा को व्यजनाकार (Fan shaped) डेल्टा कहते है। ससार के अधिकाश डेल्टे इसी कोटि के है। सिन्ध, गगा, इरावदी, ह्वागहो, नील, राइन आदि नदियाँ इसी प्रकार के डेल्टे का सर्जन करती है।



चित्र ७५—गगा नदी का डेल्टा

(२) **चिडिया के पैर जैसा डेल्टा**—ऐसी नदियाँ जो विशाल मात्रा मे सूक्ष्म पदार्थ विशेषकर चूने का परिवाहन करती है, अपना प्रवाह सीमित धाराओ मे बनाये रखती है। इन धाराओ के किनारो पर सूक्ष्म पदार्थ सचित हो जाता है और इस प्रकार चिडिया के पैर जैसी आकृति बन जाती है। इसका एक उत्तम उदाहरण मिसीसिपी नदी का डेल्टा है।



चित्र ७६—मिसीसिपी नदी का डेल्टा

## डेल्टा और एस्चुअरी

जब नदी द्वारा समुद्र मे एकत्रित अवसाद के स्थिर रहने की दशाये अनुकूल होती है, तब डेल्टा बनता है। इन दशाओ का उल्लेख ऊपर हो चुका है। यदि किसी नदी-मुख पर होने वाली सागर-जल की गतियाँ एकत्रित अवसाद को बहा भी ले जाती हो, तो भी यदि निक्षेपण का वेग अपनयन (Removal) से अधिक होता है तो डेल्टा बनता है। इस प्रकार का डेल्टा पूर्ण विकसित न होने के कारण अनियमित होता है।

दूसरी ओर जब समुद्र मे धाराये और ज्वार भाटा इतने प्रबल होते है कि वे नदी द्वारा अर्पित अवसाद को सचित होने के पूर्व बहा ले जाते है, तब एस्चुअरी ( Estuary ) बनती है। एस्चुअरी बनने की एक और दशा हो सकती है। नदी के मुहाने पर समुद्रतट के धँस जाने से तब तक एस्चुअरी बनी रह सकती है, जब तक अवसादो के निक्षेप डेल्टा निर्माण के लिये अपर्याप्त रहते है। एस्चुअरी वास्तविक नदी से अधिक चौडी होती है और उच्च ज्वार के समय उसमे सागर का जल भर जाता है। थेम्स, एल्ब आदि नदियाँ एस्चुअरी बनाती हैं।

# सप्तम परिच्छेद

# प्रवाह व्यवस्थायें

## (DRAINAGE SYSTEMS)

प्रवाह-व्यवस्था के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नांकित हैं —

(१) अनुगामी प्रवाह (Consequent Drainage)
(२) उत्तरगामी प्रवाह (Subsequent Drainage)
(३) विपरीतगामी प्रवाह (Obsequent Drainage)
(४) वृक्षाकार प्रवाह (Dendritic or Insequent Drainage)
(५) समदिश प्रवाह (Trellic Drainage)
(६) त्रिज्यात्मक प्रवाह (Radial Drainage)
(७) आयताकार प्रवाह (Rectangular Drainage)
(८) वृत्ताकार प्रवाह (Annular Drainage)
(९) अनिश्चित प्रवाह (Indeterminate Drainage)
(१०) मरोड़दार प्रवाह (Contorted Drainage)
(११) सविराम प्रवाह (Intermittent Drainage)
(१२) अव्यवस्थित प्रवाह (Deranged Drainage)
(१३) भूमिगत प्रवाह (Underground Drainage)
(१४) अन्तर्देशीय प्रवाह (Inland Drainage)
(१५) पूर्वगामी प्रवाह (Antecedent Drainage)
(१६) अध्यारोपित प्रवाह (Super-imposed Drainage)

### १ अनुगामी प्रवाह (Consequent Drainage)

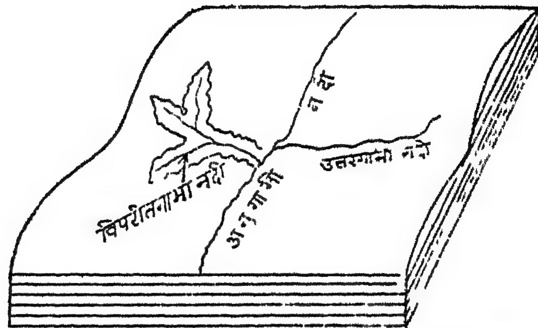
समुद्र के गर्भ से जब धरातल का कोई भाग ऊपर उठकर आ जाता है, तब उसमे सर्वप्रथम जो प्रवाह-व्यवस्था स्थापित होती है, उसकी नदियाँ ढाल के अनुरूप बहती हैं। इन्हे हम अनुगामी नदियाँ कहते हैं क्योकि इनके पथ आरम्भिक भूरूप का अनुगमन करते हैं। इन नदियो की प्रणाली अथवा व्यवस्था को हम अनुगामी प्रवाह व्यवस्था कहते हैं।

### २. उत्तरगामी प्रवाह (Subsequent Drainage)

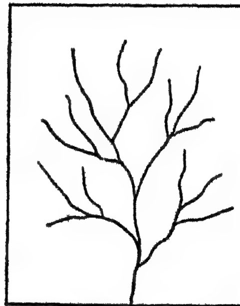
अनुगामी नदी की उन सहायक नदियो को जो ढाल के प्रति प्राय समकोण बनाती हुई बहती है, हम उत्तरगामी नदियाँ कहते हैं। इन्हे हम उत्तरगामी नदियाँ इसलिये कहते है, कि ये बाद मे अस्तित्व मे आती है।

### ३ विपरीतगामी प्रवाह (Obsequent Drainage)

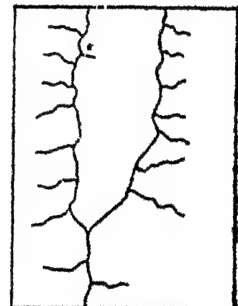
उत्तरगामी नदियो की उन सहायक नदियो को जो आरम्भिक अनुगामी नदियो की विपरीत दिशा मे प्रवाहित होती हैं, हम विपरीतगामी नदियाँ कहते है।



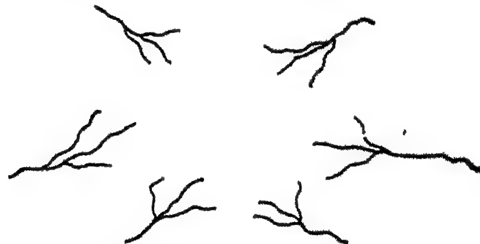

(क) अनुगामी उत्तरगामी तथा विपरीतगामी प्रवाह



(ख) वृक्षाकार प्रवाह



(ग) समदिश प्रवाह



(घ) त्रिज्यात्मक प्रवाह

चित्र ७७—अनुगामी, उत्तरगामी, विपरीतगामी, वृक्षाकार, समदिश तथा त्रिज्यात्मक प्रवाह

## ४ वृक्षाकार प्रवाह (Dendritic Drainage)

ऐसे क्षेत्रो मे जिनका निर्माण एक ही प्रकार की शिला (जैसे ग्रेनाइट) से होता है, नदी के प्रवाह मे सरचना से कोई बाधा नही पहुँचती। ऐसे प्रदेश मे प्रवाहित होनेवाली मुख्य नदी वृक्ष के तने के सदृश प्रतीत होती है और उसकी सहायक

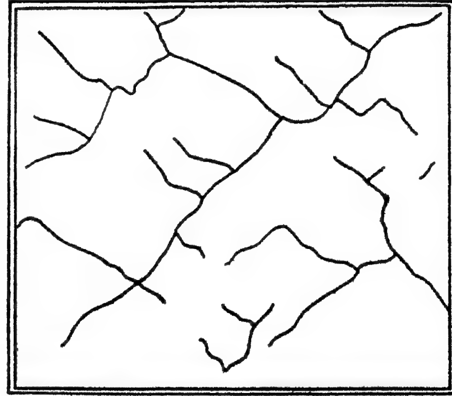
नदियाँ डालियो की भाति। ऐसी प्रवाह-व्यवस्था को हम वृक्षाकार प्रवाह-व्यवस्था (Dendritic Drainage System) कहते है।

## ५. समदिश प्रवाह (Trellic Drainage)

यह प्रवाह व्यवस्था उन क्षेत्रो मे विकसित होती है जिनमे धरातल पर कठोर और मृदुल शिलाये एकान्तर पर पाई जाती है। मृदुल शिलाये सरलता से घिस जाती है, किन्तु कठोर शिलाये ऊपर उठी रहती है। इस प्रकार मृदुल शिलास्तरो मे घाटियाँ बन जाती है और कठोर शिलास्तर जल-विभाजक के रूप मे खडे रहते है। स्पष्ट है कि ऐसे क्षेत्र मे प्रवाहित होने वाली नदियाँ परस्पर समानान्तर होगी। इन्हे हम समदिश नदियाँ (Trellic Streams) कहते है और ऐसे प्रवाह को समदिश प्रवाह कहते है।

## ६. त्रिज्यात्मक प्रवाह (Radial Drainage)

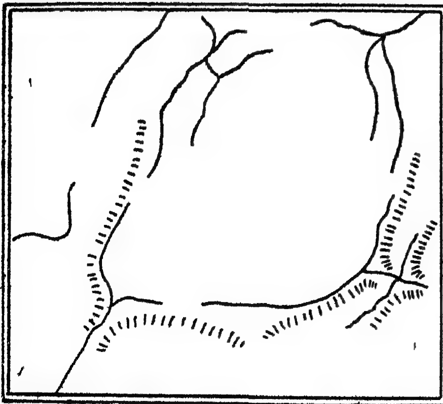
जब भौमिकीय सरचना (Geological Structure) गुम्बद (Dome) जैसी होती है, तब नदियाँ चारो दिशाओ मे वृत्त की त्रिज्याओ की भाति प्रवाहित होती है। ऐसी प्रवाह-व्यवस्था को हम त्रिज्यात्मक प्रवाह-व्यवस्था कहते है।



चित्र ७८—आयताकार प्रवाह

## ७ आयताकार प्रवाह (Rectangular Drainage)

ऐसे भूभागो मे जहाँ आयताकार स्वरूप की अर्थात् परस्पर समकोण बनाती हुई सन्धियाँ (Joints) पाई जाती है, जल-प्रवाह उन्ही के अनुरूप होता है, अतएव उसे आयताकार कह सकते है।



चित्र ७९—वृत्ताकार प्रवाह

## ८ वृत्ताकार प्रवाह (Annular Drainage)

ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ गुम्बदाकार सरचना पाई जातीहै,कभी कभी गुम्बद के चारो ओर उसकी परिधि के अनुरूप स्थित निर्बल भागो मे नदियाँ बहती हैं। ऐसे प्रवाह को हम वृत्ताकार प्रवाह कहते है।

## ९. अनिश्चित प्रवाह (Indeterminate Drainage)

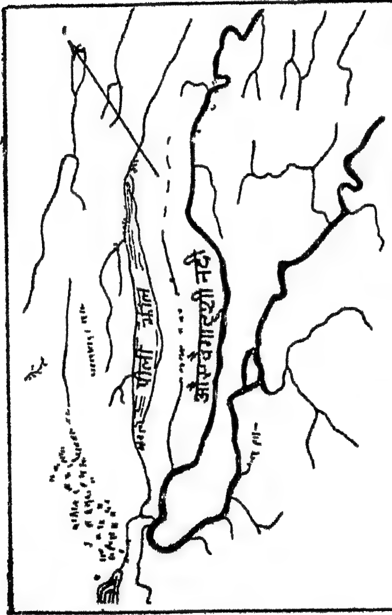
यदि किसी क्षेत्र की नदियो के प्रवाह का स्पष्टीकरण न किया जा सके, तो उसे हम अनिश्चित जलप्रवाह कहेगे। उदाहरण के लिये फिनलैण्ड मे अनेक छोटी झीलें हैं जो अनेक जलधाराओ द्वारा परस्पर सम्बद्ध है। यहाँ किसी विशेष धारा के पूरे पथ का स्पष्टीकरण किया जाना कठिन है। अतएव इस प्रवाह-व्यवस्था को हम अनिश्चित प्रवाह-व्यवस्था कहेगे।

## १० मरोड़दार प्रवाह (Contorted Drainage)

शिलाओ की मरचना के कारण यदि किसी क्षेत्र की नदियाँ ऐसे पथ का अनुगमन करती हैं, जिसमे मरोडे हो, तो हम ऐसे जल-प्रवाह को मरोडदार प्रवाह कहते हैं।

## ११ सविराम प्रवाह (Intermittent Drainage)

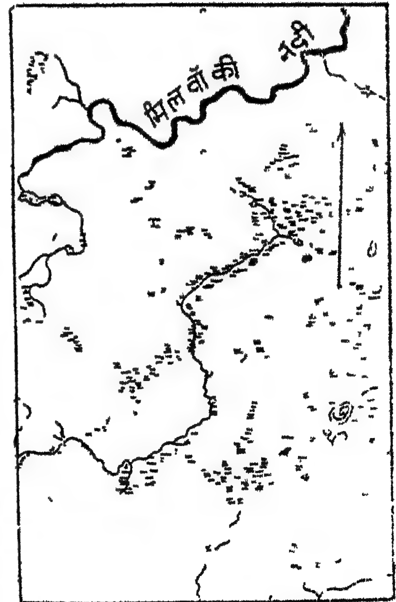
कुछ क्षेत्रो मे ऐसी नदिया पाई जाती है, जिनका प्रवाह लगातार नही होता। कुछ दूर बहने के बाद वे लुप्त हो जाती है। कुछ आगे जाकर वे पुन बहने लगती है। यही क्रम चलता रहता है। ऐसी नदियो को जो बीच बीच मे अन्तर्ध्यान हो जाती है, हम सविराम नदियाँ कहते हे और ऐसे प्रवाह को सविराम प्रवाह कहतेहै।



चित्र ८०—मरोडदार प्रवाह

## १२ अव्यवस्थित प्रवाह (Deranged Drainage)

हिमनदियो द्वारा प्रभावित क्षेत्रो में अपक्षरण और निक्षेपण से धरातल का स्वरूप पहले की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न हो जाता है। उस समय झीलो, घाटियो, प्रदरियो (Gorges), दलदलो, जलप्रपातो आदि के अव्यवस्थित सम्मिश्रण से जो नवीन जल-प्रवाह स्थापित होता है—उसे हम अव्यवस्थित प्रवाह कहते हैं।




चित्र ८१—अव्यवस्थित प्रहाह

## १३ भूमिगत प्रवाह (Underground Drainage)

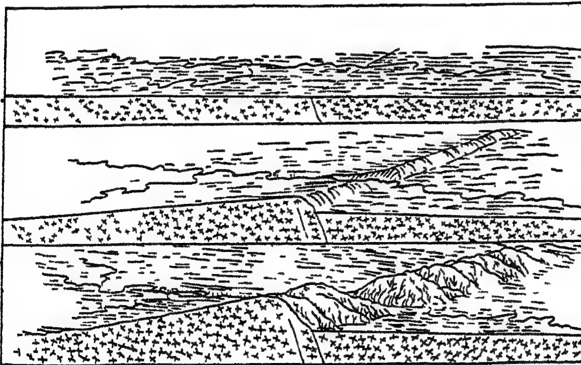
चूने के पत्थर (Limestoue) के प्रदेशो मे भूपृष्ठ के नीचे पूर्ण प्रवाह-व्यवस्थाये पाई जाती है। यही भूमिगत प्रवाह है। ये नदियाँ वे सभी कार्य करती है, जो धरातल की नदियाँ करती है। इनकी विस्तृत विवेचना कर्स्ट-भूदृश्य के प्रकरण मे की गई है।

## १४ अन्तर्देशीय प्रवाह (Inland Drainage)

जब किसी क्षेत्र मे प्रवाहित होने वाली नदियाँ समुद्र तक पहुँचने मे असमर्थ होती हैं और वे किसी ऐसी झील मे गिरती है, जिसका समुद्र से कोई सम्बन्ध नही होता अथवा रेत मे ही विलीन हो जाती है, तब उम उन्हे अन्तर्देशीय नदियाँ कहते है और उस क्षेत्र को अन्तर्देशीय प्रवाह का क्षेत्र कहते है।

## १५ पूर्वगामी प्रवाह (Antecedent Drainage)

ऐसी नदी को जिसके पथ के आर-पार बाधक के रूप मे पर्वत का उदय होता है, किन्तु फिर भी वह अपने पथ को पूर्ववत स्थिर रखती है, हम पूर्वगामी नदी ( Antecedent Stream ) कहते है। यह बात कठिनता से समझ मे आती है कि पर्वत के उदित हो जाने पर भी नदी अपना प्रवाह-पथ स्थिर रख सकती है, किन्तु यह असभव नही है। पर्वत धीरे धीरे ऊपर उठते है। यदि पर्वत के ऊपर उठने का वेग ( Speed ) और नदी द्वारा सम्पन्न कटाव का वेग समान हो तो नदी के प्रवाह मे पर्वत के ऊपर उठ आने से कोई बाधा न पहुँचेगी। सिन्ध, ब्रह्मपुत्र, सतलज आदि नदियाँ इसी प्रकार की नदियाँ है। जब हिमालय पर्वत अस्तित्व मे न आया था, तब भी ये नदियाँ वर्तमान हिमालय के उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती थी। हिमालय पर्वत उठकर



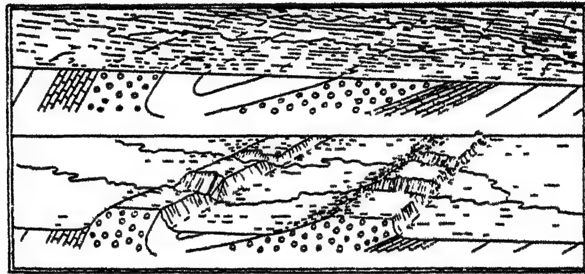
चित्र ८२—पूर्वगामी प्रवाह

अस्तित्व मे आ गया किन्तु इनके प्रवाह-पथ यथापूर्व बने रहे। इसका कारण यह था कि हिमालय जितना ऊपर उठता था, ये नदियाँ उसी मात्रा मे उसे काट देती थी।

इसका प्रमाण यह है कि जहाँ ये नदियाँ हिमालय को पार करती है, वहाँ इनकी घाटियो के पार्श्व मीलो ऊँची और प्राय लम्बवत् भित्तियो से बने है।

## १६ अध्यारोपित प्रवाह (Superimposed Drainage)

किसी नदी को हम उस दशा मे अध्यारोपित (Superimposed) कहते है जब वह जलज-शिलाओ अथवा कछार से बने ऐसे चौरस (तथा प्राय पतले) आवरण के ऊपर प्रवाहित होती है, जो नीचे की सरचना को बिल्कुल छिपाये रहता है।



चित्र ८३—अध्यारोपित प्रवाह

यदि ऊपर के आवरण को काट देने के उपरान्त नदी का कायाकल्प होता है, तो वह नीचे की सरचना को काटती है, जिससे वह (नीचे की सरचना) स्पष्ट हो जाती है।

अष्टम परिच्छेद

# हिमनदियाँ और उनका कार्य

## (GLACIERS AND GLACIATON)

### १ हिमनदी की परिभाषा

हिमनदी ( Glacier ) हिम ( Ice ) एव शीन ( Snow ) के मिश्रण

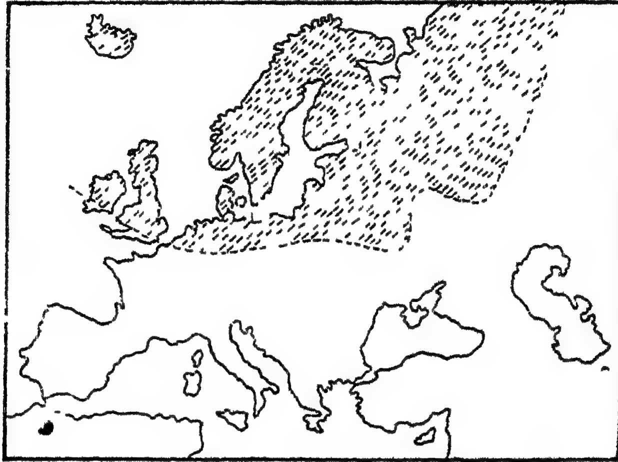



चित्र ८४—प्रातिनूतन हिमयुग मे उत्तरी अमरीका का हिमावरण

का प्रवाह है। यह गुरुत्वाकर्षण ( Gravity ) के कारण प्रवाहित होती है। इसकी तुलना गाढे द्रव के प्रवाह से की जा सकती है।

भूगोल मे हिम-नदियो के अध्ययन का विशेष महत्व है। वर्तमान हिम-नदियों

और उनकी क्रियाओ के विवेचन-विश्लेषण से तथा पूर्वकालीन हिम-नदियो द्वारा छोड़े गये चिन्हो के अवलोकन-अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पृथ्वी के इतिहास में अनेक बार हिमयुग हुए है अर्थात् विशेष विशेष युगो ने भूपृष्ठ के भाग-विशेष हिम से आच्छादित थे। चित्र ८४ मे और ८५ मे प्रातिनूतन (Pleistocene) हिमयुग मे उत्तरी अमरीका तथा योरप के हिमावरण क्रमश प्रदर्शित किये गये है। भूसैद्धान्तिकी मे हिमयुगो के कारणो पर प्रकाश डाला गया है।



चित्र ८५—प्रातिनूतन हिमयुग मे योरप का हिमावरण

## २ हिम-नदी की उत्पत्ति

हिमनदी के निर्माण के लिये निम्नलिखित दशाओ की पूर्ति आवश्यक है —

(१) शीत ऋतु मे हिमवृष्टि ( Snowfall ) प्रचुर परिमाण में होना चाहिये।

(२) हिमनदी के उद्गम के स्थल का तापक्रम इतना कम होना चाहिये कि वाष्पीकरण न हो सके। तापमान के कम होने के लिये निम्नलिखित दो दशाओ मे से एक आवश्यक है :—

(क) वह ध्रुवीय प्रदेश मे स्थित हो।
(ख) वह बहुत ऊँचाई पर स्थित हो।

(३) धरातल की आकृति ऐसी होनी चाहिये कि उसमे हिम का चिपिट-निक्षेप (Flat Deposition) हो सके।

## ३ हिमनदियों की संरचना

हिमनदियो की हिम (Ice) शीन ( Snow ) से बनती है। पर्वतो पर हिम-रेखा के ऊपर शीन शुष्क एव चूर्ण अवस्था मे गिरती है। इसका कारण यह है, कि उसका तापक्रम हिमाक ( Freezing point ) से बहुत कम होता है। ग्रीष्म ऋतु मे सौरताप से पृष्ठ की शीन का कुछभाग पिघल जाता है और इस प्रकार अस्तित्व मे आया हुआ जल नीचे च्यवित होता है। यह जल नीचे की वायु को हटा देता है, जिससे बुलबुले बन जाते है। तापक्रम के घट जाने से यह जल दुबारा घनीभूत होता है। पानी

के दुबारा जमने से जो नवीन पदार्थ बनता है, उसके लिये अँग्रेजी या हिन्दी भाषा मे कोई उपयुक्त शब्द नही है। फ्रासीसी भाषा में उसे 'नेवे' (Neve) कहते है। अन्य शब्दो मे नेवे शीन और हिम के बीच की अवस्था है। बुलबुलो के बाहुल्य से नेवे अपारदर्शक (Opaque) हो जाता है। निरन्तर हिमवृष्टि से ऊपर का भार बढता रहता है। वृहद् भार के कारण वायु का बहुत सा भाग बाहर निकल जाता है। इस प्रकार नेवे हिम (Ice) मे परिणत हो जाती है।

## ४ हिमधाव (Avalanche)

ये शीन के विशालकाय पिण्ड होते है, जो गिरि-शिखरो से बडे वेग के साथ नीचे लुढकते है। इनके कारण वायु-भार मे अचानक परिवर्तन हो जाते है, जिससे तूफान आ जाते है। शीतकाल के हिमधाव ( Avalanches ) शुष्क एव चूर्ण शीन से बने होते है। इनसे हानि अपेक्षाकृत कम होती है, किन्तु जब हिम पिघलती है और हिमधाव मे जल की मात्रा होती है तब उसके साथ शिलाओ और मिट्टी का बहुत सा भाग प्रवाहित होता है, जिससे उसके पथ मे पडने वाले समस्त पदार्थ—मकान, पेड-पौधे आदि सभी कुछ नष्ट हो जाते है। हिमधाव केवल ऊँचे पर्वतो मे पाये जाते है।

## ५ हिमनदियों का वर्गीकरण



चित्र ८६—टाकू हिमनदी (अलास्का)

भौगोलिक दृष्टि से हिमनदियों के तीन मुख्य भेद हैं —

(१) घाटीवाली हिमनदिया (Valley Glaciers)—इन्हे पर्वत अथवा आल्पस हिमनदी (Mountain or Alpine Glacier) भी कहते है, क्योकि ये पर्वतो पर पाई जाती हैं और आल्पस पर्वत मे इनका विशेष अध्ययन हुआ है। जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, ये पर्वतीय क्षेत्रो मे पाई जाती हे और पूर्व निर्मित घाटियो में होकर बहती है। इनके प्रवाह का कारण गुरुत्वाकर्षण (Gravity) ही है। चित्र ८५ मे घाटी वाली हिमनदी प्रदर्शित की गई है।

(२) **हिमस्तर** ( Ice-sheet ) **अथवा हिम-टोपी** ( Ice-cap ) हिम उस विस्तृत एवं मोटे आवरण को जो किसी विशाल क्षेत्र को ढक लेती है, हिम-स्तर अथवा हिमटोपी कहते हैं। हमें यह ज्ञात है कि अण्टार्कटिका महाद्वीप के ऊपर हिम का मोटा आवरण है। स्थलखण्ड को तो यह ढके हुए है ही, जल में भी इसका विस्तार है। इसका क्षेत्रफल लगभग ५० लाख वर्गमील है। ग्रीनलैंड की हिमटोपी का विस्तार ७ लाख वर्गमील है और बीच में इसकी मोटाई ८००० फुट से भी अधिक है।




चित्र ८७—ग्रीनलैण्ड की हिमटोपी

(३) **पर्वतपदीय हिमनदी** (Piedmont Glacier)—ये हिम नदियाँ पर्वतों के पदों पर स्थित मैदानों में बन जाती हैं। ऊपर से नीचे की ओर बहने वाले दो अथवा अधिक हिम प्रवाहों के सम्मिलन से इनका निर्माण होता है। अलास्का में ये बहुत पाई जाती हैं। इस सम्बन्ध में मलासपीना नामक हिम नदी विशेष उल्लेखनीय है। इसका क्षेत्रफल लगभग १५०० वर्ग मील है।

## ६ हिमनदी के प्रवाह का वेग

हिम-नदी का गति-वेग निम्नलिखित प्रतिकारकों पर निर्भर है—



चित्र ८८—मलासपीना हिमनदी

(१) **प्रवाहित होने वाली हिम की मोटाई**-हिम जितनी अधिक मोटी होगी, प्रवाह का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

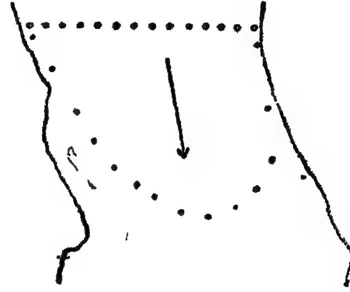
(२) **धरातल की आकृति**—यह तो स्पष्ट ही है कि धरातल जितना ही चिकना होगा, प्रवाह-वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(३) **धरातल का ढाल**—यह भी स्वाभाविक है, कि धरातल जितना अधिक ढालू होगा, हिम-नदी का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(४) **हिम नदी में विद्यमान जल की मात्रा**—हम जानते है कि हिम जल मे तैरती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हिम की अपेक्षा जल का घनत्व अधिक होता है। अतएव जल के विद्यमान होने से हिमनदी का भार बढ जाता है, जिसमे गुरुत्वाकर्षण भी बढ जाता है। अन्य शब्दो मे हिमनदी मे जल की मात्रा जितनी अधिक होगी, उसका प्रवाह-वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(५) **तापक्रम**—विशेष सीमाओ के अन्दर तापक्रम जितना अधिक होगा, हिमनदी का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(६) **हिमनदी के ऊपरी पृष्ठ** की **आकृति**—हिमनदी का ऊपरी पृष्ठ जितना अधिक झुका होता है, हिमनदी का गति-वेग उतना ही अधिक होता है।



चित्र ८९—हिमानी की गति

जब कोई हिमनदी घाटी मे होकर बहती है, तब उसके पार्श्वों और नितल पर घाटी सस्पर्श करती है जिससे वहाँ घर्षण ( Friction ) अस्तित्व मे आ जाता है। यह घर्षण हिमनदी की गति के विपरीत दिशा मे कार्य करता है। फल यह होता है कि हिमनदी के पार्श्वो और नितल मे गति मन्द हो जाती है किन्तु मध्यवर्ती भाग में वह यथावत् बनी रहती है, जिससे हिमनदी के अग्रभाग मे "जिह्वा" निकल आती है। चित्र ८९ से यह कथन स्पष्ट होगा।

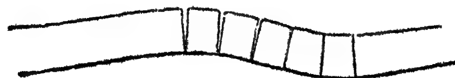
जे० डी० फोर्बेज ने यह ज्ञात किया कि ग्रीष्म एव शरद ऋतु मे फ्रास की मेर डे ग्लेस नामक हिमनदी का गतिवेग मध्य मे प्रति दिन २० से २७ इच था और पार्श्वो मे १३ से १९ ५ इच।

## ७ हिमविदर तथा हिमपात

### (Crevasses and icefalls)

यदि हिमनदी की घाटी सर्वत्र एकरूप (Uniform) हो अर्थात् वह सभी भागो मे समान रूप से चौडी हो, उसका नितल चिकना-चपाट हो और उसका ढाल मन्द एव नियमित हो, तो उसकी हिम टूटनी नही है। इसके विपरीत यदि ढाल अकस्मात् प्रपाती हो जाता है अथवा घाटी यकायक सकरी हो जाती है, तो उससे हिमनदी का गतिवेग प्रभावित होता है, जिससे उसकी हिम खडित हो जाती है।

उदाहरण के लिये यदि किसी मन्द प्रवण ( Gentle Slope ) वाली घाटी का ढाल अचानक प्रपाती हो जाता है तो उसमे प्रवाहित होने वाली हिमनदी को,



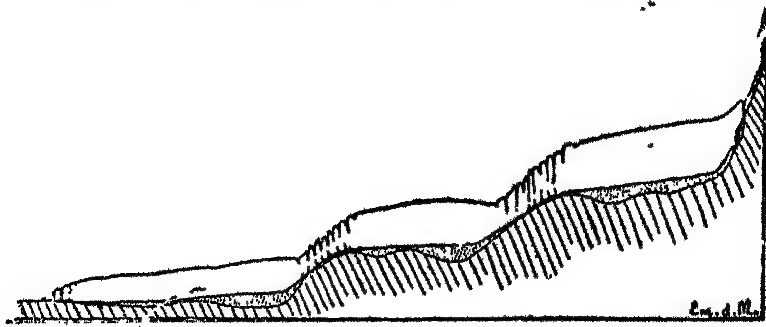
चित्र ९०—हिमविदर एव हिमपात

ढाल के आकस्मिक परिवर्तन के कारण, वडी जोर का झटका लगता है, जिसमे उसमें लम्बवत् विदर उत्पन्न हो जाते है। इन विदरो को हम हिमविदर ( Crevasses ) कहते है और खण्डित हिमानी के टुकडो को हिमपात ( Ice-fall )। यदि आगे चलकर ढाल पुन मन्द हो जाता हे, तो हिमानी के खण्ड पुन परस्पर चिपक जाते हैं और विदर बन्द हो जाते है।

## ८ हिमनदी के अपक्षरण का नियम (Law of Glacial erosion)

यद्यपि हिमनदी की हिम ठोस प्रतीत होती हे, तथापि वह आलग द्रव (Viscous Liquid) होती है। प्रत्येक प्रवाहित होनेवाला द्रव अपने वेग के अनुसार अपने पथ (Course) के नितल और पार्श्वों को अपक्षरित करता है। हिम का द्रवत्व (Fluidity) इतना अधिक नही होता कि वह—

(१) पथ के चौडे या सकरे हो जाने पर अथवा (२) पथ के प्रवण (Slope) मे अन्तर हो जाने पर अपने को समायोजित कर सके। फलस्वरूप हिम टूट जाती है



चित्र ९१

(उपर्युक्त चित्र एक अल्पाइन हिमनदी तथा उसके पेटे (Bed) का है। इस चित्र मे, जहा ढाल मे परिवर्तन होता है, वहाँ हिमविदर प्रदर्शित किये गये हैं। ढाल के परिवर्तनो के फलस्वरूप अपरक्षण की मात्रा के विभेदन भी प्रदर्शित किये गये हैं। विन्दुमय भाग पेटे का 'हिमनदी के अपरक्षण के नियम' के अनुसार अपक्षरित भाग प्रदर्शित करता है। )

और उसमें विदर (Crevasses) बन जाते है। हिम के पिघलने से इन विदरो

की चौडाई बढ जाती है। अन्य शब्दो मे विदरो के बीच के हिम खण्ड सिकुडते जाते है और कालान्तर मे वे नुकीले खण्डो ( Pinnacles ) का रूप ग्रहण कर लेते है, जिन्हे सेराक्स (Seracs) कहते है। विदरो के कारण हिमनदी का दबाव घट जाता है। हिमनदी के अपरक्षण मे उसका दबाव महत्वपूर्ण प्रतिकारक है। हिमनदी के प्रवाह का वेग अत्यन्त मन्द होता है। उसकी तुलना मे उसका ( हिमनदी का) दबाव कही अधिक महत्वपूर्ण होता है। फलस्वरूप, उन स्थानो मे जहा वेग अधिक होता है, विदरो की अधिकता के कारण अपरक्षण की मात्रा कम हो जाती है। दूसरी ओर उन भागो मे अपरक्षण सबसे अधिक होता है जिनमे वेग और दबाव के गुणन (अर्थात् वेग × दबाव) का मूल्य सबसे अधिक होता है। प्रपाती पवण के पद पर वेग भी अधिक होता है और विदरो के कम होने के कारण दबाव भी अधिक होता है। अतएव वहाँ अपक्षरण से द्रोहणियाँ (Basins) बन जाती है।

## ६- हिमनदी का भौगोलिक कार्य

### (१) अपक्षरण

नदी की भाति हिमनदी के अपक्षरण की मात्रा भी निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है—(१) धरातल की प्रकृति अर्थात् उसका चिकना अथवा खुरदरा होना (२) नितल की शिलाओ की सरचना एव कठोरता (३) ढाल की मात्रा (४) प्रवाह का वेग आदि। नदी और हिमनदी मे अपक्षरण सम्बन्धी एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि नदी के अपक्षरण की मात्रा उसमे विद्यमान जल के आयतन के अनुसार होती है और हिमनदी के अपक्षरण की मात्रा उसकी हिम की मोटाई के अनुसार होती है।

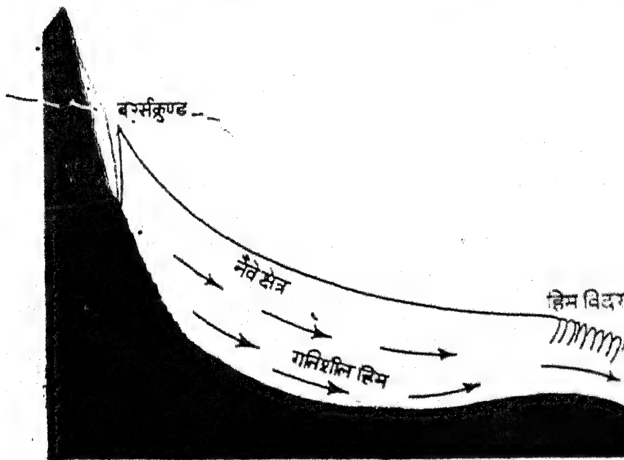


चित्र ९२—सर्क (Cirque)

हिमनदी के अपक्षरण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विशिष्ट शब्दो का ज्ञान आवश्यक है—

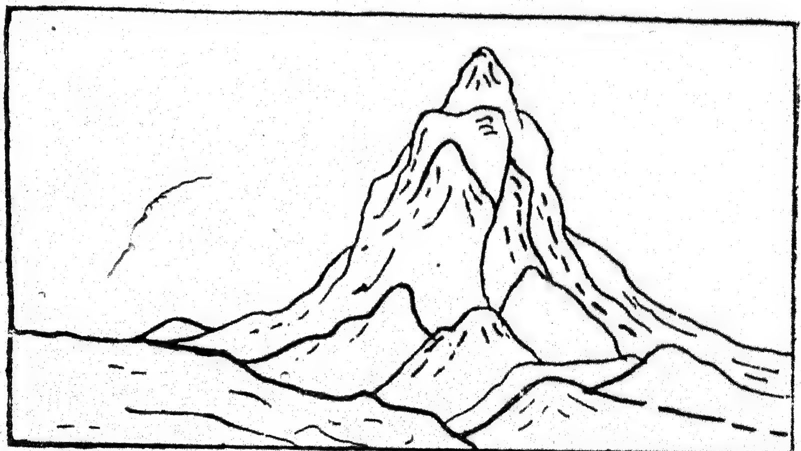
(१) सर्क (Cirque) (Coire)—ये आरामकुर्सी की आकृति के गड्ढे होते है जो घाटियो के शीर्ष पर स्थित होते है। इनमे हिम नदियो का जन्म और प्रालन- पोषण होता है। जिस प्रकार भूद्रोणी (Geo-syncline) को पर्वतो का पलना कहा जाता है उसी प्रकार इन्हे भी हिमानी का पलना कहा जा सकता है। सर्क को स्कौटलैण्ड की भाषा मे कोर्री (Corrie) वेल्स की मे कुम (Cwm) तथा जर्मन भाषा मे कैरैन (Karren) कहते है।

(२) शीर्ष विवर अथवा बर्ग्स कुण्ड (Bergschrund)—हिम के नीचे की ओर प्रवाहित होने से नैवे (Neve) की चोटी के निकट एक बहुत चौड़ा और गहरा विवर बन जाता है, जिसे शीर्ष-विवर कहते हैं। जर्मन भाषा में इसे बर्ग्सकुण्ड कहते हैं। फ्रांसीसी भाषा में इसे रिमाये (Rimaye) कहते हैं। पर्वतों की चोटी पर पहुँचने के लिये पर्वतारोहियों को शीर्ष विवर पार करना टेढ़ी खीर होता है।



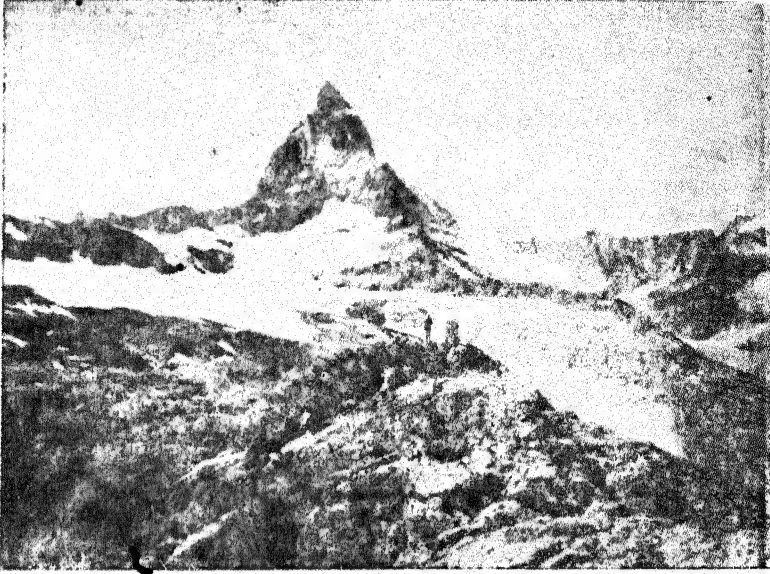

चित्र ९३—बर्ग्सकुण्ड (शीर्ष विवर)

(३) श्रंग (Horn)—जब तीन अथवा अधिक हिमनदियाँ अपने शीर्षों की दिशा में अपक्षरण (Headward Erosion) करती हैं तो उनके सर्क (Cirques) परस्पर मिल जाते हैं। इस प्रकार प्रपाती एवं नुकीली चोटियाँ अस्तित्व में आ जाती हैं. जिन्हें हम श्रंग (Horn) कहते हैं। दक्षिणी आल्प्स में इस प्रकार की एक चोटी पाई जाती है. जिसका नाम 'मैटरहौर्न' (Matterhorn) है। इसी शब्द के आधार पर 'Horn' (श्रंग) शब्द बना है। हिमालय प्रदेश में बद्रीनाथ के मंदिर के पास शिवलिंग का शिखर भी इसी आकृति का है।



चित्र ९४—श्रंग (Horn)

[पृष्ठ ७८ के सामने



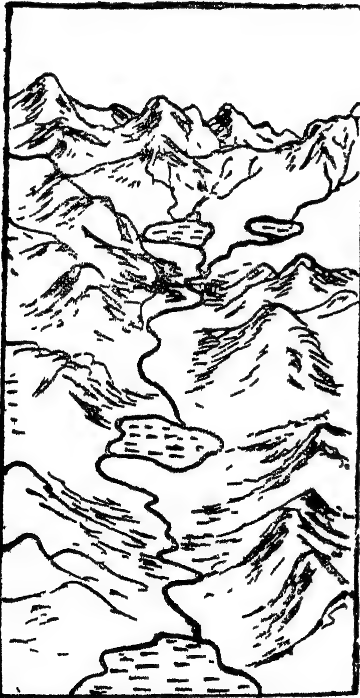
चित्र ९५–मैटरहौर्न

(४) **हिमस्था** (Nunatak)—उन शिलाखण्डो को कहते है, जो चारो ओर से हिम से घिरे रहते है। बहुधा ये दो हिमनदियो अथवा हिमटोपियो के



चित्र ९६—हिमस्था (Nunatak)

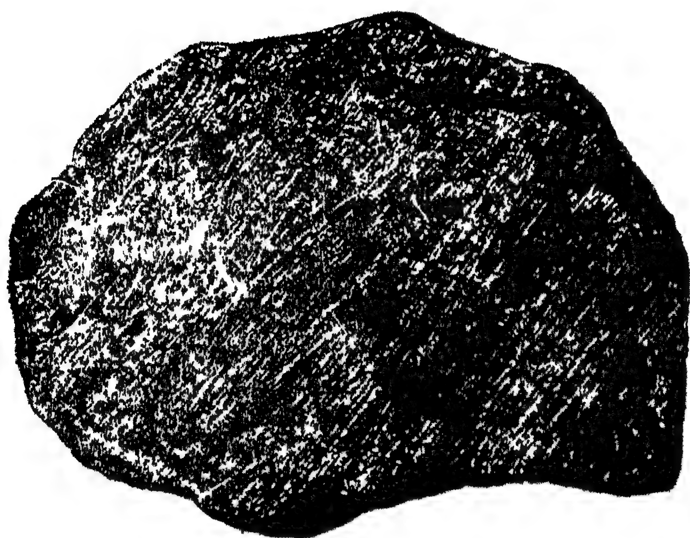
बीच मे स्थित होते है। हिम के विस्तृत क्षेत्र मे ये द्वीप सदृश प्रतीत होते है। हिमनदियो के पार्श्विक अपक्षरण से ये क्षीण होते रहते है। इसके अतिरिक्त पाला एव हिमघाव भी इनका विनाश करते रहते है। कालान्तर मे केवल सकीर्ण टीले शेष रह जाते है।



चित्र ९७—भीम सोपान (Cyclopean Stairs)

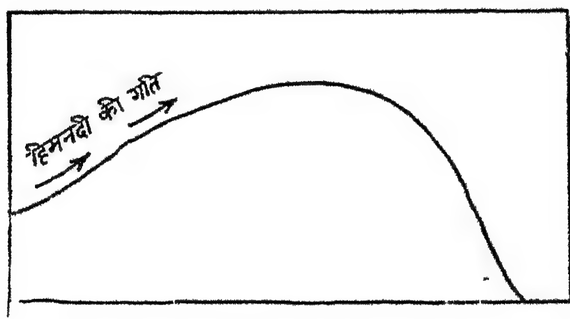
(५) भीम सोपान—( Cyclopean Stairs or Giant's Stairways) घाटीवाली हिमनदियो से प्रभावित क्षेत्रो मे कभी-कभी सीढियो जैसी भौम्याकृति पाई जाती है। ये सीढियाँ घाटी की समस्त चौडाई मे फैली रहती है और इनकी ऊँचाई १०० से लेकर १००० फुट तक होती है। बहुधा उत्तलो के ऊपरी धरातल पर अनियमित गड्ढे पाये जाते है। ये सीढियाँ दो कारणो से बन जाती है—( १ ) विभगन (Faulting) के कारण तथा (२) शिलाओ की सरचना के विभेदन के कारण।

(६) **सरेखायें** (Striae)—हिमनदी के निचले भाग मे बहुत से शिला-खण्ड फसकर चिपक जाते है। जब हिमनदी प्रवाहित होती है तब ये धरातल को खुरचते चलते है। इस प्रकार खरोच द्वारा भूपृष्ठ पर समानान्तर रेखाये बन जाती है जिन्हे हम सरेखाये ( Striae) कहते है। स्पष्ट है कि इनकी दिशा हिमानी-प्रवाह के अनुरूप होती है।



चित्र ९८—संरेखाये (Striae)

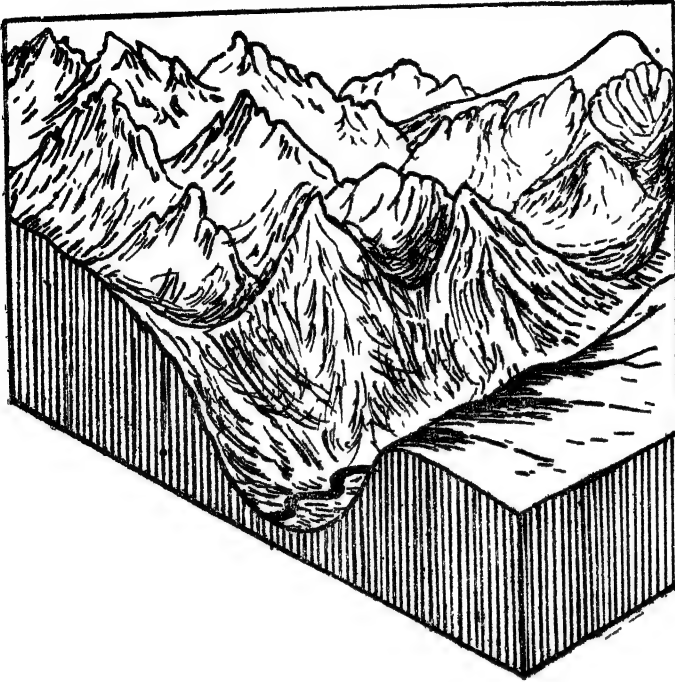
(७) रोशे माउटोनीज (Roches Moutonnees)—जब हिमनदी के




चित्र ९९—रोशे माउटोनीज

पथ मे कोई बृहद शिलाखण्ड अथवा टीला पडता है, तो उसके प्रवाह से उस शिलाखण्ड अथवा टीले के पिछले भाग का ढाल मन्द पड जाता है किन्तु अगले भाग का ढाल यथावत् प्रपाती बना रहता है। पिछले ढाल का धरातल हिमानी-प्रवाह से चिकना हो जाता है और उसमे सरेखाये (Striae) बन जाती है। इस प्रकार के हिमानी अपक्षरित टीले को हम रोशे माउटोनीज (Roches Moutonnees) अथवा मेष-शिला (Sheep Rock) कहते है।

(८) **लम्बित घाटियाँ** (Hanging Valleys)—जब कोई सहायक हिमनदी किसी मुख्य हिमनदी मे मिलती है तब उसका नितल मुख्य हिमनदी की अपेक्षा ऊँचा रहता है। इस प्रकार लम्बित घाटियाँ (Hanging Valleys) अस्तित्व में आ जाती है।



चित्र १००—हिमनदी की घाटी

(९) फियर्ड ( Fiord )—ये समुद्रतट पर पाई जाने वाली ऐसी घाटियाँ है, जिनका निर्माण नदी के अपक्षरण अथवा विभगन (Faulting) आदि किसी भी रीति से हो सकता है किन्तु बाद में हिमनदियो के अपक्षरण से वे U आकृति ग्रहण कर लेती है और अन्त मे जलमग्न हो जाती है। चित्र १०१ मे नौरवे के फियर्ड (Fiords) प्रदर्शित किये गये है।



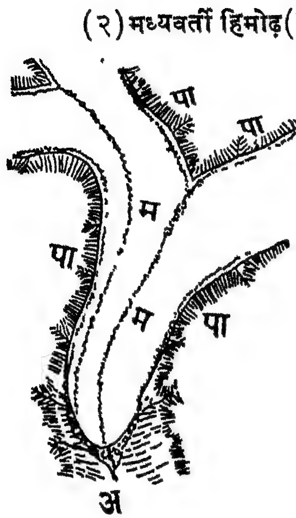
चित्र १०१—नौरवे के फियर्ड

## (२) परिवाहन (Transportation)

जब हिमनदी बहती है, तब वह अपने साथ मिट्टी, पत्थर आदि बहुत से पदार्थ परिवाहित करती है। हिमनदी द्वारा परिवाहित पदार्थ को हम हिमोढ ( Moraine ) कहते है । यह चार प्रकार का होता है—

(१) पार्श्विक हिमोढ़ (Lateral Moraine)—हिमनदियो के पार्श्वों के अनुरूप जो पदार्थ परिवाहित और एकत्रित होता रहता है उसे हम पार्श्विक हिमोढ (Lateral Moraine) कहते है ।

(२) मध्यवर्ती हिमोढ़ (Medial Moraine)—जब दो हिम नदियो का सगम होता है तब उनके पार्श्विक हिमोढ उनके पथो के मध्य मे परस्पर मिल जाते है जिसे हम मध्यवर्ती हिमोढ (Medial Moraine) कहते है। चित्र १०२ से यह कथन स्पष्ट होगा। प्रकट है कि पार्श्विक हिमोढ को ही विशेष परिस्थिति मे मध्यवर्ती हिमोढ कहते है।



चित्र १०२—पार्श्विक मध्यवर्ती एव अन्त्य हिमोढ

(३) अन्त्य हिमोढ़—(Terminal Moraine)—हिमनदी के पिघलकर नष्ट हो जाने पर जो परिवाहित पदार्थ उसके पथ के अन्त मे एकत्र हो जाता है उसे हम अन्त्य हिमोढ (Terminal Moraine) कहते है।

(४) भूमि हिमोढ़ (Ground Moraine)—हिमनदी के नितल मे मिट्टी एव शिलातत्व फस जाते है और हिमनदी के साथ-साथ वे भी घिसटते रहते है। प्रत्येक हिमनदी अपने साथ शिलातत्व की एक निश्चित मात्रा ही परिवाहित कर सकती है, उससे अधिक नही। यदि शिलातत्व की मात्रा अधिक हो जाती है तो अतिरिक्त शिलातत्व छूट जाते है और जब उनके ऊपर से हिम नदी प्रवाहित होती है, तब वे पिसकर चूर्ण हो जाते है। इस प्रकार अस्तित्व मे आये हुए हिमोढ को हम 'भूमि-हिमोढ' (Ground Moraine) कहते है।

## ३ निक्षेपण अथवा संचयन

हिमनदी द्वारा सम्पन्न निक्षेपण के कुछ प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं :—

(१) टिल (Till)—हिमनदियो द्वारा सचित शिलाओ के छोटे-छोटे टुकडो के निक्षेप को टिल (Till) कहते हैं। इनमे स्तर नही होते।

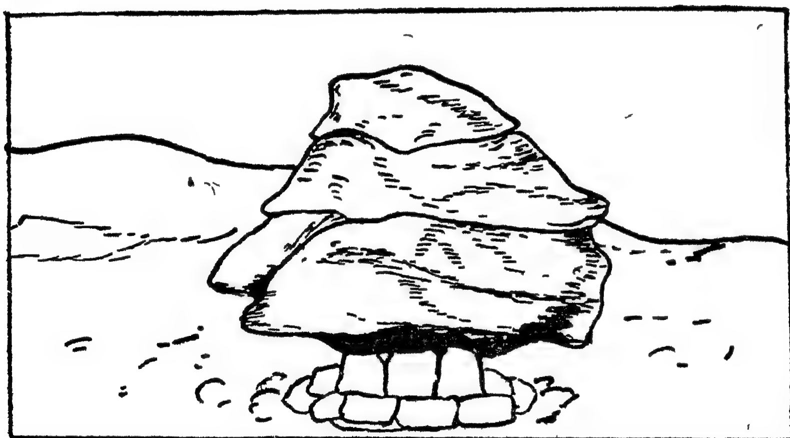
(२) टिल्लाइट (Tillite)—भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से प्राचीन टिल (Till) को जिसकी शिलाये संघनित और ससाद्रित हो जाती है टिल्लाइट (Tillite) कहते है।

(३) ड्रमलिन (Drumlin)—उल्टी नाव की आकृति के हिमानी-निक्षेप को ड्रमलिन (Drumlin) कहते है। इनकी दीर्घ-अक्ष (Larger axis) हिमनदी की गति के समानान्तर होती है। इनमे स्तर नही पाये जाते। इनका निर्माण अधिकाशत मृत्तिका (Clay) द्वारा होता है। बहुधा इनके समूह के समूह पाये जाते है।



चित्र १०३—ड्रमलिन

(४) **कैटिल-मोरेन** ( Kettle Moraine )—कैटिल ( चायदानी ) अथवा उखली की आकृति के गड्ढो मे भरे हुए हिमानी-निक्षेप को कैटिल-मोरेन कहते है।



चित्र १०४—इर्रेटिक (Erratic)

(५) **इर्रेटिक** (Erratic)—हिमानी-अपक्षरण से खण्डित हुई शिलाओ के विशालकाय टुकडे कभी-कभी सैकडो मील स्थानान्तरित हो जाते है। इन्हे हम इर्रेटिक (Erratic) कहते है।

## १० नदी-हिम्य निक्षेप

## (Fluvio-glacial Deposits)

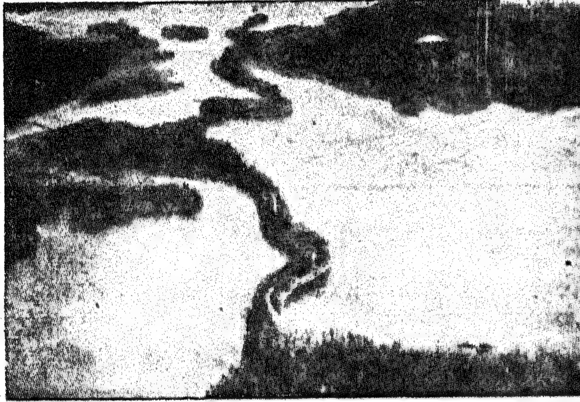
हिम-नदियो द्वारा दो प्रकार के निक्षेप बनते है —

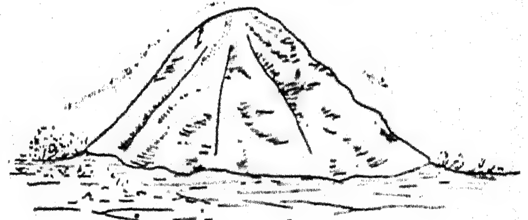
(क) **हिमानी निक्षेप** (Glacial Deposits)—ये स्वयं हिमनदी के निक्षेप होते है। इनका वर्णन पूर्व मे हो चुका है।

**(ख) नदी हिम्य निक्षेप** (Fluvio-glacial Deposits)—ये हिमनदियों के अन्दर बहने वाली नदियों के निक्षेप होते हैं।

नदी हिम्य निक्षेप के कुछ प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं:—

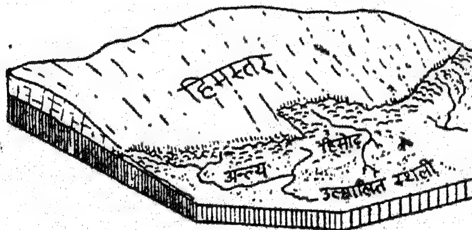
(१) **एस्कर** (Esker)—जैसा कि चित्र १०५ में स्पष्ट है, ये लम्बे, संकरे, घुमावदार बाँध होते हैं। इनकी रचना अधिकांशतः रेत और कंकर (Gravel) से होती है। आयरलैण्ड की भाषा में एस्कर (Esker) का अर्थ पथ होता है। हिमनदी द्वारा प्रभावित प्रदेश प्रायः विषम और दलदली होते हैं। ऐसे प्रदेशों में एस्कर (Esker) ही आवागमन के साधन होते हैं। अतएव इनका नाम Esker बड़ा सार्थक है। इनकी ऊँचाई कम अर्थात् कुछ सौ फुट ही होती है, किन्तु इनकी लम्बाई ५ मील से लेकर २० मील तक पाई गई है। ढाल के अकस्मात मन्द हो जाने से हिमानी के निचले भाग में प्रवाहित होने वाली नदी के पदार्थ निक्षेपित हो जाते हैं और एस्कर का रूप ग्रहण कर लेते हैं।


चित्र १०५—एस्कर (Esker)


चित्र १०६—केम (Kame)

(२) **केम** (Kame)—ये गोलाकार पहाड़ियाँ होती हैं। इनके किनारे ढालू होते हैं। इनकी रचना पार्श्विक एवं भूमि हिमोढ़ से होती है। बहुधा ये निक्षेप अधः-हिमानीसरिताओं (Sub-glacial Streams) के निकास (Outlet) पर बन जाते हैं। इनकी संरचना मुख्यतः रेत और कंकर से होती है।

(३) **उत्क्षालित स्थली** (Outwash Plain)—हिमनदी की हिम के पिघलने से बहुत सी नदियाँ अस्तित्व में आ जाती हैं। इन नदियों के कछारी मैदान (Alluvial Plain) को हम



चित्र १०७—उत्क्षालित स्थली (Outwash Plain)

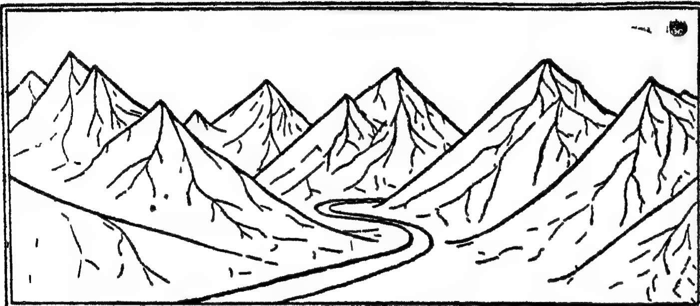
उत्क्षालित स्थली कहते है। इनकी रचना मे अन्त्य-हिमोढ का कुछ भाग रहता है, जो विस्तृत क्षेत्र मे फैल जाता है। शिलाओ के सूक्ष्म कण आगे बढ़ जाते है और अपेक्षाकृत स्थूल टुकडे हिम के निकट रह जाते है।

## ११ हिमानीकृत भूदृश्य (Glaciated Landscape)

जिन क्षेत्रो मे हिमानीकरण होता है, उनमे हिमनदियो की क्रिया से सम्बन्धित अनेक रूपधेय पाये जाते है। इन रूपधेयो को हम चार वर्गो मे बॉट सकते है —

### (१) अपक्षरण सम्बन्धी रूपधेय

इनमे अधिक उल्लेखनीय ये है—(१) सरेखाये (२) लम्बित घाटियाँ (३) रोशे माउटोनीज (४) श्रृग (५) भीम सोपान (६) फियर्ड (समुद्र तट पर) (७) हिमानीकृत झीले (८) घाटियो के चिकने नितल तथा पार्श्व (९) पर्वतो की गोल की गई चोटियाँ तथा नदियो की चौडी की गई घाटियाँ (चित्र—१०८) (१०) झीले।



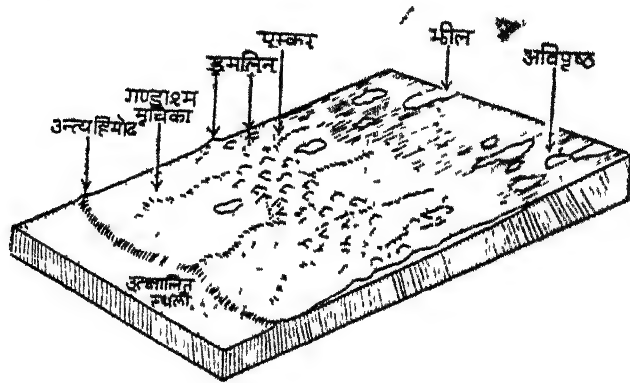
चित्र—१०८ हिमानीकरण के पूर्व पर्वतीय क्षेत्र



चित्र १०९—हिमानीकृत अपक्षरण के पश्चात् पर्वतीय क्षेत्र

## (२) परिवाहन सम्बन्धी रूपधेय

इनमे अधिक उल्लेखनीय ये है—(१) पार्श्विक हिमोढ (२) मध्यवर्ती हिमोढ़ तथा (३) अन्त्य हिमोढ।




चित्र ११०—हिमानीकृत क्षेत्र

## (३) निक्षेपण सम्बन्धी रूपधेय

इनमे अधिक उल्लेखनीय ये है—(१) गडाश्म मृतिका (Boulder Clay) (२) टिल (३) टिलाइट (४) ड्रमलिन।

## (४) नदी हिम्य निक्षेपण सम्बन्धी रूपधेय

इनमे अधिक उल्लेखदीय ये है—( १ ) एस्कर ( २ ) केम (३) उत्क्षालित स्थली।

इन सब रूपधेयो की विवेचना पूर्व मे हो चुकी है।

## १२ भारतवर्ष में पूर्वकालीन हिमयुग

भारतवर्ष मे कम से कम तीन हिमयुगो के स्पष्ट प्रमाण मिलते है —

### १ धारवार युग

दक्षिणी भारत मे पाये जाने वाले कालड्रुग सपिण्ड ( Kaldrug Conglomerate ) के अष्टीलाओ (Pebbles) मे बने हुए खुरच के चिन्ह, हिमनदी की क्रिया के सबसे प्राचीन प्रमाण है। आर० बी० फुट के अनुसार ये धारवार युग के हैं।

### २. गोण्डवाना युग

फिर उडीसा की तलचीर शिलाओ(Talchir beds) में जो निम्न गोण्डवाना युग ( Lower Gondwana Period) की है हिमानी के चिन्ह मिलते है। इनके निचले भागो मे गण्डाश्म के तल्प ( Boulder beds ) पाये जाते है, जो हिमयुग का अकाट्य प्रमाण है। अन्य क्षेत्रो में भी जैसे हजारा, शिमला, साल्ट रेंज (Salt Range), राजस्थान तथा मध्य-प्रदेश आदि में इस युग की शिलाओ मे गण्डाश्म के तल्प ( Boulder beds ) पाये जाते है। उत्तर प्रागार युग ( Upper Carboniferous Period )

के इस हिमयुग की पुष्टि गौण्डवानालैण्ड के अन्य भागो (जैसे आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका) के भौमिकीय इतिहास से भी होती है। तलचीर शिलाओ के ऊपर कोयले के स्तर पाये जाते है। कोयले के निर्माण के लिये सुप्रचुर वनस्पति ( Luxurious Vegetation ) होना आवश्यक है। ऐसे वन केवल उष्ण जलवायु मे ही सभव है। अतएव उत्तर प्रागार युग ( Upper Carboniferous Period ) के उपरान्त जलवायु उष्ण हो गया। इसके बाद जलवायु पुन शीतल हो गया, जैसा कि इस काल की पचेत शिलाओ ( Panchet Rocks ) के अध्ययन से विदित होता है। इन शिलाओ मे बालुकाश्म ( Sandstone ) के अन्दर अ-विबन्धित स्फतीय (Undecomposed Felspars ) के कण पाये जाते है। यदि जलवायु उष्ण होता तो स्फतीय विच्छिन्न अवश्य हो जाते। इनका विच्छिन्न न होना इस बात की पुष्टि करता है, कि इस युग मे जलवायु शीतल था। पचेत शिलाओ के ऊपर लाल वर्ण के बालुकाश्म (Sandstone) पाये जाते है। इनमे अयसिय पदार्थ ( Ferruginous Matter ) का बाहुल्य मरुस्थलीय जलवायु ( Arid Climate ) का द्योतक है। सक्षेप मे, गोण्डवाना युग के आरम्भ मे जलवायु शीतल था, फिर वह उष्ण हुआ, इसके पश्चात् फिर शीतल हुआ और अन्त मे फिर उष्ण हो गया।

## ३ प्रातिनूतन हिमयुग

### (Pleistocene Ice Age)

भारतवर्ष मे घटित होने वाला सबसे हाल का हिमयुग प्रातिनूतन युग (Pleistocene Period) मे हुआ। यह हिमयुग ससार-व्यापी था। इसके प्रमाण योरप और अमरीका मे तो मिलते ही है, इसके प्रभाव से प्रायद्वीपीय भारत का जलवायु भी अपेक्षाकृत शीतल हो गया। हिमालय प्रदेश के पादपो [जैसे विषपत्र तालीश (Rhododendron arboreum)] एव जीवो [जैसे चिपिटश्रृग छाग (Capra hylocrius) नामक जगली बकरी] का नीलगिरि मे पाया जाना इसकी पुष्टि करता है। हिमालयप्रदेश मे तो हिमयुग के सभी चिन्ह मिलते है। शिवालिक युग के स्तनधारी जीवो का विनाश इसी हिमयुग ने किया। यह हिमयुग लगातार नही हुआ। प्रमाणो से विदित होता है, कि इस युग मे हिमानीय जलवायु, (Glacial Climate) चार बार हुआ है और उनके बीच मे तीन अन्तर्हिमानीय युग (Interglacial Periods) हुए है। विशेष विवरण के लिये भूसैद्धान्तिकी का 'हिमयुगो के कारण' शीर्षक परिच्छेद देखिये।

नवम परिच्छेद

# पवन का कार्य

## १. भूमिका

अन्य प्राकृतिक अभिकर्त्ताओ के सदृश वायु द्वारा भी अपक्षरण, परिवाहन एव निक्षेपण की प्रक्रियाये सम्पन्न होती हैं। इस दृष्टि से जल और वायु के कार्यों मे यह साम्य है कि ये दोनो अभिकर्त्ता स्वय अपक्षरण कम करते है, किन्तु ककड, पत्थर, बालू आदि के माध्यम से अधिक। ये पदार्थ स्थल के काटने के लिये यत्र अथवा औजार का कार्य करते है। दोनो ही दशाओं मे वनस्पति अपक्षरण की क्रिया मे बाधक होती है।

## २. अपक्षरण (Erosion)

वायु द्वारा सम्पन्न अपक्षरण मुख्यत यात्रिक रूप मे (Mechanically) ही होता है। रासायनिक ऋतुक्षरण (Chemical Weathering) से जलज शिलाओ के कण परस्पर असम्बद्ध हो जाते है, जिससे अपक्षरण मे सुविधा होनी है। यही कारण है कि शेल (Shale) और वालुकाश्म (Sandstone) वायु के अपक्षरण से शीघ्र प्रभावित होते हैं।

अपक्षरण की मात्रा अनेक प्रतिकारको पर निर्भर है :—

(१) **वायु का वेग**—यह तो स्पष्ट ही है, कि हल्की हवाओं से यात्रिक अपक्षरण बहुत कम होगा। यात्रिक अपक्षरण के महत्वपूर्ण होने के लिये वायु का प्रबल होना अनिवार्य है। मरुस्थलो में चलने वाली आँधियो से यात्रिक अपक्षरण बहुत होता है। इन आँधियो मे जो ककड पत्थर अथवा रजकण फँस जाते है, वे अपक्षरण के औजार का कार्य करते है।



चित्र १११—उच्छैल (Crag)

(२) **ऊँचाई और पत्थर के टुकड़ो का आकार**—छोटे आकार के धूलिकण वायु में ऊपर ऊपर प्रवाहित होते हैं, किन्तु अपेक्षाकृत बड़े शिलाखण्ड पृथ्वी पर वायु के साथ लुढकते चलते हैं। अतएव, यह स्वाभाविक है, कि वायु द्वारा सम्पन्न अपक्षरण धरातल के निकट सबसे अधिक होता है और ऊँचाई के साथ उसकी मात्रा घटती जाती है। सामान्यत: धरातल से ४ फुट की ऊँचाई तक घर्षण अधिक होता है। अपक्षरण की मात्रा के इस विभेदन के कारण उच्छैल (Crags) अस्तित्व मे आ जाते हैं। चित्र १११ मे इसे प्रदर्शित किया गया है। इसके देखने से यह स्पष्ट है कि अपक्षरण ऊपर की अपेक्षा धरातल के निकट

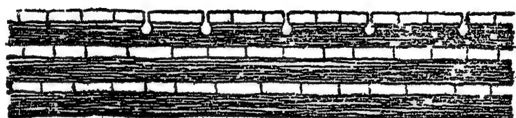
अधिक हुआ है। यदि वायु सदैव एक ही दिशा मे चलती है, तो उच्छैल का निचला भाग केवल एक ओर घिस जाता है। यदि ऋतुओ के अनुसार वायु की दिशा मे परिवर्तन होते रहते है, तो उच्छैल का निचला भाग चारो ओर से घिसता है। इस प्रकार के अपक्षरण का एक सुन्दर उदाहरण ट्रान्स-कैस्पियन रेलवे (Trans-Caspian Railway) के अनुरूप गडे हुए तार के खम्भो का घिस जाना है। ग्यारह वर्ष की अवधि मे उनकी मोटाई आधी रह गई है।

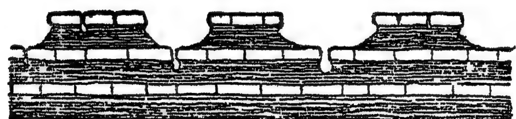
(३) **शिलाओ की कठोरता**—कोमल शिलाये कठोर शिलाओ की अपेक्षा अधिक घिसती है। इस तथ्य की पुष्टि सिनाय प्रायद्वीप के भूदृश्य से होती है। यहाँ पर पाई जाने वाली सामान्य चट्टान बालुकाश्म ( Sandstone ) है, जिसमे मैगनीज के सघनन (Concretions) मिलते है। मैगनीज के सघनन की तुलना मे बालुकाश्म कोमल होता है। इसका फल यह हुआ है कि दीर्घकाल के अपक्षरण से बालुकाश्म घिसकर नष्ट हो गया है, किन्तु मैगनीज के सघनन यथावत खडे है। यही नही उनकी आड मे बालुकाश्म के छोटे-छोटे भाग भी अपक्षरित होने से बच गए है। चित्र ११२ से यह कथन स्पष्ट होगा।

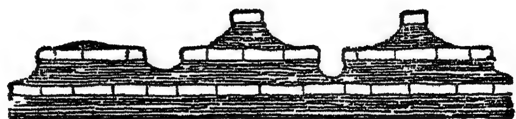


चित्र ११२—सिनाय प्रायद्वीप का भूदृश्य

(४) **शिलाओं की सरचना तथा जलवायु सम्बन्धी प्रतिकारक**—कठोर शिलाओ के अपक्षरण मे तापक्रम के विभेदन, ओस और सन्धियाँ ( Joints ) भी वायु की सहायता करते है। सन्धियो मे भरे हुए ओसकण जब तापक्रम के क्षीण होने से घनीभूत होते है, तब उनका आयतन बढ जाता है जिससे सन्धियाँ अधिक चौडी हो जाती है और फलस्वरूप शिलाये खण्डित हो जाती है। टूटे हुए पत्थर के टुकडो को वायु उडा ले जाती है। इस प्रकार कठोर शिला का स्तर नष्ट होता रहता है और कालान्तर मे नीचे की कोमल शिला के स्तम्भो के ऊपर केवल उनकी टोपियाँ शेष रह जाती है। ऐसी भूआकृतियाँ ढक्कनदार दवात से मिलती जुलती है। इन्हे ज्यूजैन (Zeugen) कहते है। धीरे-धीरे ये भी नष्ट हो जाती है और नीचे की कठोर शिला का दूसरा स्तर प्रकट हो जाता है। ऐसे प्रदेशो







चित्र ११३—वायु द्वारा सम्पन्न अपक्षरण पर शिलाओ की सरचना का प्रभाव

मे जहाँ कठोर और कोमल शिलाये एकान्तर पर पाई जाती हैं, अपक्षरण का यही क्रम चला करता है। चित्र ११३ से यह कथन स्पष्ट होगा।

वायु और जल द्वारा सम्पन्न अपक्षरण की तुलनात्मक मात्रा के विषय में विद्वानो मे मतभेद है। कुछ विद्वानो का यह कहना है कि मरुस्थल तक म वायु की अपेक्षा जल द्वारा अपक्षरण अधिक होता है। सभव है, यह उचित ऊँचे प्रदेशो के लिये यथार्थ हो, किन्तु निचले क्षेत्रो मे वायु का प्रभाव अधिक होता है।

ऐसे प्रदेशो मे जिनमे अपक्षरण की मात्रा अधिक होती है, किन्तु सचयन अपेक्षाकृत कम होता है, धरातल पर नग्न अथवा अनावृत शिलास्तर प्रकट हो जाते है, जिससे वह प्रदेश पथरीले मरुस्थल मे परिणत हो जाता है

वायु के अपक्षरण के तीन अग है—(१) उठान ( Deflation ) (२) अपघर्षण ( Abrasion ) तथा (३) साधन-नाश ( Atrition )। वायु द्वारा धूलि कणो का उठा ले जाना ही उठान ( Deflation ) है। इसकी विस्तृत विवेचना परिवाहन शीर्षक के अन्तर्गत की गई है। उडते हुए धूलिकणो से जो कटाव अथवा अपक्षरण होता है, उसे अपघर्षण ( Abrasion ) कहते है। कालान्तर मे, वायु के अपक्षरण मे औजार का कार्य करने वाले धूलिकण स्वय घिसकर सूक्ष्म हो जाते है। यही साधन-नाश ( Deflation) है।

## ३· परिवाहन (Transportation)

वायु रेत और धूलि के कणों को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाती है। सूक्ष्म और हल्के कण हवा मे लटकते रहते है और उसी अवस्था मे परिवाहित होते है। भारी आकार के कण धरातल पर लुढकते चलते है। मध्यवर्ती आकार एव भार के कण कभी हवा मे उडते हुये चलते है और कभी धरातल पर लुढकते हुए। आँधियो मे फस जाने से कभी कभी बडे आकार के पत्थर भी हवा मे उडते है, किन्तु आँधी के समाप्त होते ही वे धरातल पर गिर पडते है और वायु के अनुसार लुढकते हुए चलते है। इस प्रकार के कण न जाने कितनी बार हवा मे उडते है और कितनी बार धरातल पर लुढकते है।

भारी कणो को प्रभावित न करके सूक्ष्म कणो का वायु द्वारा उडा ले जाना 'उठान' ( Deflation ) कहलाता है। यह क्रिया जलवायु के प्रत्येक कटिबन्ध मे होती है, किन्तु मरुस्थलो में यह विशेष उल्लेखनीय है। पैट्री ने आगणन किया है कि पिछले २६०० वर्षों मे नील नदी के डेल्टा से वायु द्वारा कम से कम ८ फुट मोटा स्तर उठाया जा चुका है।

अर्ध-मरुस्थलीय प्रदेशो मे वायु के परिवाहन से गड्ढे और झीलें बन जाती है। इस प्रकार एक बडा गड्ढा सयुक्त राज्य अमरीका के व्योमिंग प्रदेश मे बन गया है। यह ९ मील लम्बा, ३ मील चौडा तथा ३०० फुट गहरा है। इसे 'बडा खोखला' (Big Hollow) कहते हैं। इसके अध्ययन से विदित होता है कि इस दशा में कम से कम १० अरब टन रेत और धूलि का परिवाहन हुआ है। उठान की क्रिया ( Deflation ) जुते हुए खेतो और कछारी मैदानो मे विशेष रूप से होती है क्योकि ऐसे क्षेत्रो मे सूक्ष्म आकार के असम्बद्ध कण ऊपर रहते हैं।

वायु द्वारा प्रति वर्ष कितना पदार्थ अपक्षरित और परिवाहित होता है—इसका अभी तक सही अनुमान नही लगाया जा सका है। इसमे सन्देह नही कि

यह मात्रा बहुत अधिक होगी। सहारा मरुस्थल के रेत के कण दक्षिणी और मध्य योरप तक पहुँच जाते है। कभी-कभी तो वे ब्रिटिश द्वीप समूह तक चले जाते है। सन् १९०३ ई० मे ब्रिटिश द्वीप समूह के विभिन्न भागो मे रक्त वर्ण की जो जलवृष्टि हुई थी—वह अफ्रीका से परिवाहित धूलिकणो के कारण ही थी। आस्ट्रेलिया के धूलि के तूफान डेढ हजार मील लम्बा पथ तय करके न्यूजीलैण्ड मे पहुँच जाते है। राजस्थान का मरुस्थल प्रतिवर्ष लगभग १०० वर्गमील आगे बढ रहा है और आगरा और मथुरा जिले उससे बुरी तरह से प्रभावित हो रहे है। ज्वालामुखीय धूलि और भी अधिक दूर तक परिवाहित होती है। इसके दो कारण है—(१) एक तो उसके कण बहुत सूक्ष्म होते है (२) दूसरे उद्गार के समय वह ऊपर उछाल दी जाती है जहाँ धरातल की अपेक्षा वायु का वेग अधिक होता है। क्रैकोटोआ के विस्फोट के सूक्ष्मतम धूलिकणो ने धरातल पर बैठ जाने के पूर्व पृथ्वी की अनेक परिक्रमाये कर ली थी। इसके कुछ धूलिकण तीन वर्ष तक वायुमण्डल मे विचरण करते रहे।

## ४ निक्षेपण (Deposition)

वायु द्वारा जो पदार्थ परिवाहित होता है वह धरातल पर कही न कही सचित अवश्य होता है। कभी-कभी वायु के पथ मे बाधा आ जाने से वह आगे नही बढ पाता। यदि वायु के पथ मे बाधा न हुई तो वह उस समय तक परिवाहित होता रहता है, जब तक वायु का वेग क्षीण नही हो जाता। वायु-वेग के घट जाने से भी यह पदार्थ छूटकर धरातल पर गिर पडता है।

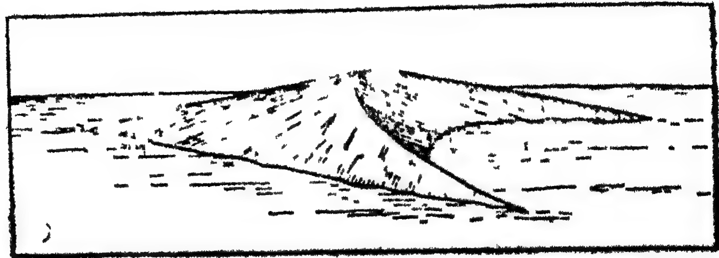
निक्षेपण मे भी एक प्रकार का क्रम होता है। अपेक्षाकृत बडे आकार के पदार्थ पहले सचित होते है। छोटे धूलिकण आगे बढ जाते है। दूरी के साथ-साथ सचित पदार्थ आकार मे सूक्ष्म होते जाते है।

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि ऐसे प्रदेशो मे जिनमे निक्षेपण की तुलना मे अपक्षरण अधिक होता है पथरीले मरुस्थल अस्तित्व मे आ जाते है। इसके विपरीत ऐसे क्षेत्रो मे जिनमे अपक्षरण से निक्षेपण अधिक होता है, दो अन्य प्रकार के मरुस्थल अस्तित्व मे आ जाते है—(१) बालू के मरुस्थल तथा (२) दोमट (Loam) के मरुस्थल। इनमे अन्तर्वस्तु का भेद मूल शिला की सरचना के अन्तर के कारण होता है।

### (१) बालू के मरुस्थल

बालू के मरुस्थल का धरातल विषम होता है। इसमे बालुका-कूटो (Sand-dunes) की श्रृखलाये पाई जाती है और उनके बीच मे निम्नन होते है। जब वायु के पथ मे कोई बाधा (जैसे नागफनी की झाडियाँ) आ जाती है, तो परिवाहित पदार्थ उससे टकरा कर वही गिर जाता है। बाधा अथवा अवरोधक के एक ओर बालू के कण इसी प्रकार एकत्र होते रहते है। कालान्तर मे बालू का ढेर इतना ऊँचा हो जाता है कि वह अवरोधक की चोटी तक पहुँच जाता है और उसके बाद बालू के कण उसके पीछे गिरने लगते है। विकसित बालू का ढेर वायु के पथ मे और भी बडा बाधक बन जाता है और निक्षेपण की क्रिया उस समय तक चलती रहती है, जब तक बालू का ढेर छोटी पहाडी का रूप नही ले लेता। ऐसी पहाडी मे वह पार्श्व जिस पर वायु टकराती है मन्द प्रवण होता है और पीछे का ढाल प्रपाती होता है। वायु के प्रवाह

के कारण बालू की पहाडी की आकृति अर्ध-चन्द्राकार हो जाती है। बालू के इस प्रकार के निक्षेप को 'बरखन' (Barkhan) की सज्ञा दी गई है।



चित्र ११४—बरखन (Barkhan)

यदि वायु की दिशा सदैव एक सी रहती है, तो 'बरखन' उत्तरोत्तर आगे खिसकता रहता है, किन्तु यदि वायु की दिशा मे अन्तर होते रहते है, तो वह अनियमित एव आकृतिहीन हो जाता है। कभी-कभी बहुत से बरखन परस्पर मिल जाते हैं, जिससे उनकी अर्धचन्द्राकार आकृति नष्ट हो जाती है और वे लम्बे टीलों का रूप ग्रहण कर लेते है। राजस्थान के मरुस्थल मे ऐसे टीले बहुत पाये जाते है।

## बालुका-कूटो का वर्गीकरण

बालुका कूटो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है जैसे—(१) स्थिति के अनुसार (२) प्रवाहित होनेवाली वायु की दिशा के सन्दर्भ मे (३) आकृति के अनुसार .आदि।

स्थिति के अनुसार बालुका-कूटो के अनेक वर्ग किये जा सकते है जैसे (१) समुद्रतटीय बालुकाकूट (२) अन्तर्देशीय बालुका कूट (३) नदीतटीय बालुका कूट आदि।

प्रवाहित होनेवाली वायु के सन्दर्भ मे बालुका-कूटो के दो भेद किये जा सकते हैं—(१) अनुदैर्घ्य (Longitudinal) बालुका कूट—जिनकी लम्बाई की दिशा प्रवाहित होनेवाली वायु की दिशा के अनुरूप अथवा समानान्तर होती है (२) अनुप्रस्थ (Transverse) बालुकाकूट—जिनकी लम्बाई की दिशा प्रवाहित होने वाली वायु की दिशा के प्रति समकोण बनाती है।

आकृति के अनुसार बालुकाकूटो की मुख्यत दो श्रेणियां की जा सकती हैं—(१) अर्ध चन्द्राकार बालुकाकूट, जिन्हे बरखन कहते है। (२) लम्बे टीले की आकृति के बालुका कूट—इन्हे सहारा मरुस्थल में सीफ (Seifs) कहते है। ये समानान्तर श्रेणियो मे पाये जाते है। इनकी तुलना आरे के दांतो से की जा सकती है।

बालुका-कूटो के गतिशील होने से मरुस्थल भी आगे बढता रहता है। वर्तमान समय मे भारत सरकार के समक्ष यह महत्वपूर्ण सामयिक समस्या प्रस्तुत है कि वह राजस्थान के मरुस्थल की प्रगति को किस प्रकार रोके। उत्तर प्रदेश के आगरा और मथुरा जिले बुरी तरह से प्रभावित हो रहे है और यदि उचित कदम न उठाया गया तो कालान्तर में समस्त उत्तर प्रदेश मरुस्थल में परिणत हो जायगा।

## (२) लौयस के मरुस्थल

वायु द्वारा सचित दोमट (Loam) के निक्षेपो को 'लौयस' की सज्ञा दी गई है। इसके कण रेत से छोटे होते है किन्तु मृत्तिका (Clay) से बडे। इसका रग पीला अथवा हल्का भूरा होता है। उँगलियो से दबाने से यह आटे की भाँति पिस जाता है और हाथ मे चिपक जाता है। यदि किसी पानी के बर्तन मे लौयस डाल दी जाय, तो वह घुल जाती है। वेध्य (Permeable) होने के कारण यह वर्षाजल का सोख लेती है। यह धरातल की विषमताओ को ढके रहती है और गड्ढो मे इसकी मोटाई काफी होती है। चूने के पत्थर के सदृश इसमे भी लम्बवत् ढाल पाये जाते है।

अमरीका, योरप और मध्य एशिया मे लौयस के क्षेत्र मरुस्थल-प्रदेश की सीमा के बाहर भी पाये जाते है। वे ऐसे स्थलो मे भी पाये जाते है, जहाँ यथेष्ट वर्षा होती है। लौयस के निक्षेपो मे जानवरो के अवशेष पाये गये है, जिनसे विदित होता है कि जब उसका निर्माण हुआ, तब जलवायु वर्तमान काल की अपेक्षा अधिक शुष्क थी।



चित्र ११५—ससार के लौयस निक्षेप

एशिया मे 'लौयस' का विस्तार लगभग २ लाख ३० हजार वर्ग मील है। इसका अधिकाश भाग चीन मे पाया जाता है। यहाँ पर इसकी मोटाई सैकडो फुट से लेकर हजारो फुट तक है। सयुक्त राज्य अमरीका के पश्चिमी भाग मे पाया जाने वाला लौयस का आवरण भी काफी मोटा है। इसके अतिरिक्त लौयस के निक्षेप अलास्का, जर्मनी, और फ्रास मे भी पाये जाते है। इन प्रदेशो मे मरुस्थल नही है और ऐसा अनुमान किया जाता है, कि हिमानीकृत बालू के परिवाहन से वे अस्तित्व मे आये है।

## ५ मरुस्थलों का वर्गीकरण (Classification of deserts)

मरुस्थल मुख्यत चार प्रकार के होते है —

(१) **यथार्थ बालुकामय मरुस्थल** (True Sand Desert) —इसे सहारा मे एर्ग (Erg) कहते है तथा तुर्किस्तान मे कूम (Koum)। यह (१) बालू के विस्तृत, विशाल तथा क्षैतिज स्तरो से अथवा (२) बालुका-कूटो (Sand dunes) की नियमित पक्तियो से अथवा (३) तरगित (Undulating) बालुका प्रस्तर से बना होता है। अरब मे ४ प्रकार के यथार्थ मरुस्थल[1] पाये जाते है—दहाना, नैफुद,

१ इनके विशेष विवरण के लिये लेखक की रचना 'मध्य पूर्व' (The Middle East) देखिये

अहकाफ तथा हूर्रा। इनमे हूर्रा सबसे अधिक दुर्गम मरुस्थल होता है। इसमे चलने से आदमियो के पैर कट जाते है।

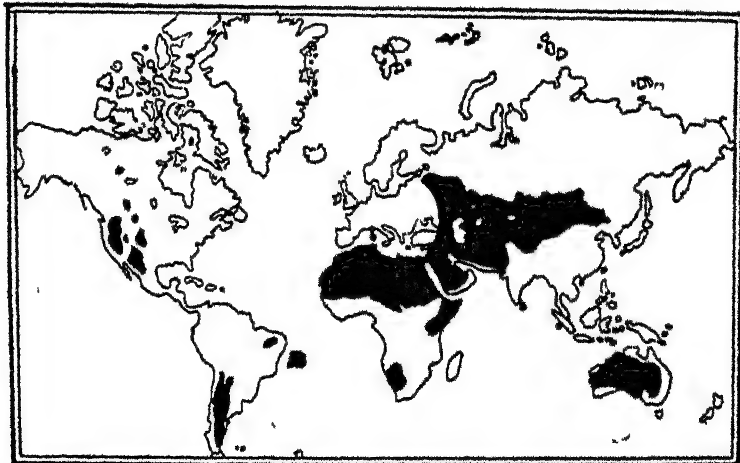
(२) **पथरीला मरुस्थल** (Stony Desert)—इसमें धरातल पर चिकने नुकीले ककडो ( Gravels ) का स्तर रहता है। इसे अलजीरिया मे रैग (Reg) कहते है तथा लीबिया और मिश्र में सैरीर (Serir)।

(३) **चट्टानी मरुस्थल**(Rocky Desert)—इसे हम्मादा (Hammada) भी कहते है। यह नग्न धरातलीय चट्टानो से बना होता है तथा इसमे रेत बिल्कुल नही होती। यह सपाट हो सकता है अथवा ज्यूजैन (Zeugen) और यारडंग (Yardang) की उपस्थिति के कारण विषम।

(४) **शैल शिखरो से निर्मित मरुस्थल** (Desert formed by rock peaks)—ऐसा मरुस्थल मध्य सहारा, सिनाय प्रायद्वीप, पश्चिमी अरब तथा बलूचिस्तान में पाया जाता है।

## ६ मरुस्थलीय भूदृश्य (Arid Landscapo)

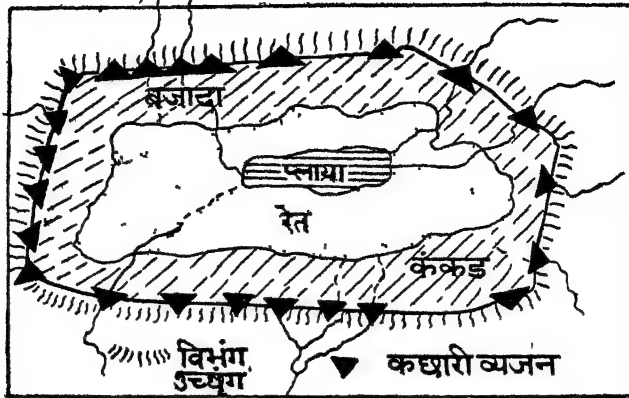
पवन की क्रिया से मरुस्थल अस्तित्व मे आ जाते है। चित्र ११६ में ससार के उष्ण मरुस्थल प्रदर्शित किये गये है मरुस्थलो के कुछ उल्लेखनीय भूरूप नीचे दिये जा रहे है —



चित्र ११६—ससार मे उष्णमरुस्थलो का वितरण

(१) **तश्तरी सदृश द्रोणियाँ** ( Blow Outs )—उन प्रदेशो मे जिनमें धरातल मे ऐसी शिलायें पाई जाती है, जिनका वियोजन सरलता से हो जाता है—वायु के अपक्षरण से तश्तरी जैसी द्रोणियाँ बन जाती है। सयुक्त राज्य अमरीका मे अराकानसाज की घाटी मे ये बहुत पाई जाती है।

(२) **प्लाया** ( Playa )—मरुस्थलो मे पाई जानेवाली नमकीन पानी की अस्थायी झीलो की द्रोणियो को जो प्राय चिपिट (Flat) होती है, हम प्लाया कहते हैं।



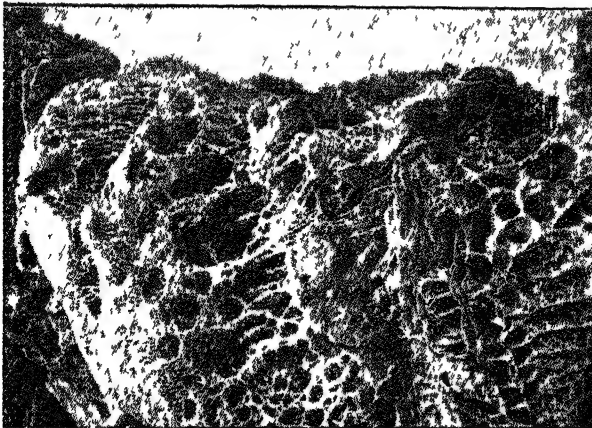

चित्र ११७—प्लाया तथा बजादा

(३) **वादी** ( Wadı )—मरुथलो मे पाई जानेवाली अस्थायी जलप्रवाह की घाटियो को 'वादी' कहते है।

(४) **कैनियन** ( Canyon )—मरुस्थलीय प्रदेश मे कोमल शिलाओ के अपक्षरण से बनी गहरी और प्रपातों पश्वो वाली घाटी को हम कैनियन कहते हैं। वर्षा के अभाव मे सहायक नदियो का विकास न होने के कारण अपक्षरण बहुत कम होता है,जिससे घाटी चौडी नही होने पाती। नदी के प्रकरण मे कौलेरेडो नदी की कैनियनो का उल्लेख हो चुका है।

(५) **बैडलैण्ड भूदृश्य** (Badland Topography)—अपक्षरण से बहुत अधिक कटे-फटे भूखण्ड को 'बैडलैण्ड' कहते हैं।

(६) **जालीदार शिला** ( Stone Lettice )—जब वायु के समक्ष ऐसा



चित्र ११८—जालीदार शिला

शिला-पार्श्व पड़ता है, जसके कुछ कण कोमल होते हैं तथा कुछ कठोर, तब कोमल कण वायु के थपेड़ों से उखड़ जाते हैं और इस प्रकार शिला-पार्श्व पर जाली जैसा स्वरूप बन जाता है।



चित्र ११९—वायु निर्मित खिड़की

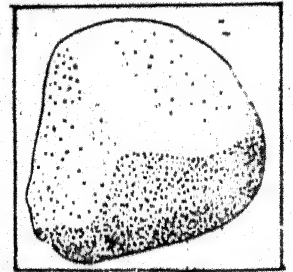
(७) **वायु निर्मित खिड़की** (Window)—यदि प्रबल वायु-प्रवाह के सामने पड़ने वाले पार्श्व में कोई छोटा छेद होता है, तो वायु के अपक्षरण से उसके आकार और गहराई में क्रमशः अभिवृद्धि होती रहती है। कालान्तर में वह बढ़ा हुआ छेद शिला के आर पार हो जाता है। तब उसे हम वायु निर्मित खिड़की कहते हैं।

(८) **वैण्टिफैक्ट्स** (Ventifacts)—ऋतुक्षरण की क्रिया से टूटकर अस्तित्व में आये हुए शिलाखण्ड कभी २ इतने भारी होते हैं, कि वायु द्वारा उनका परिवाहन संभव नहीं होता। उनका वहपार्श्व जो पवन की दिशा में पड़ता है, घिस जाता है। ऐसे शिला खण्डों को वैण्टि फैक्ट्स (Ventifacts) कहते हैं।

(९) **वायु निर्मित पुल** (Bridge)—जब वायु द्वारा निर्मित खिड़की के नीचे का भाग अपक्षरित होकर नष्ट हो जाता है और केवल ऊपर की मेहराब शेष रह जाती है, तब उसे हम वायु निर्मित पुल कहते हैं।

(१०) **ड्रीकैण्टर** (Dreikanter)—ऐसेवैण्टिफैक्ट को जिसके तीनपार्श्व वायु द्वारा घिस जाते हैं, हम ड्रीकैण्टर कहते हैं। ये ब्राजील के काष्ठफलों (Brazil Nuts) से मिलते-जुलते होते हैं। सहारा मरुस्थल में ये बहुत पाये जाते हैं।

(११) **इन्सैलबर्ग** (Inselberg)—जर्मन भूगर्भवेत्ताओं ने कलाहारी मरुस्थल के वायु द्वारा घिसे हुए पिण्डों को यह संज्ञा दी थी, किन्तु अब यह शब्द सामान्य मरुस्थल की अवशिष्ट पहाड़ियों के लिये प्रयुक्त होने लगा है। इन पहाड़ियों की चोटी चपटी भी हो सकती है और गोल भी।



चित्र १२०—ड्रीकैण्टर

(१२) **यारडैंग** (Yardang)—ऐसे क्षेत्रों में जहाँ कोमल और कठोर शिलायें एकान्तर पर तथा प्रायः लम्बवत् दिशा में पाई जाती हैं, वायु द्वारा कोमल चट्टानें घिस कर नष्ट हो जाती हैं और कठोर चट्टानों के टीले शेष रह जाते हैं। इन्हें हम 'यारडैंग' कहते हैं। मध्य एशिया के मरुस्थलीय क्षेत्र में ये बहुलता से पाये जातेहैं।

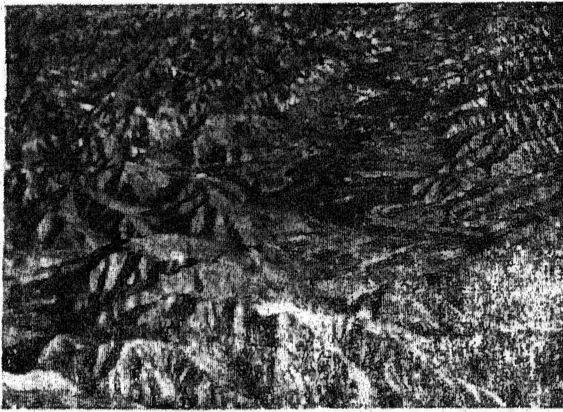




चित्र १२१—इन्सैलबर्ग



चित्र १२२—वादी



चित्र १२३—बैडलैण्ड भूदृश्य

पृष्ठ ९६ के सामने



चित्र १२४—कौलैरडो नदी के कैनियन

पृष्ठ ९७ के सामने



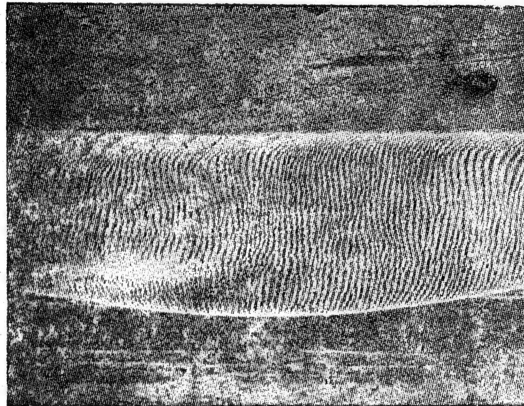
चित्र १२५—लौयस भूदृश्य

(१३) **ज्यूजैन** ( Zeugen )—ऐसे शुष्क प्रदेशों में जहाँ कोमल और कटोर शिलायें एकान्तर पर पाई जाती हैं—दवात (Inkpot) जैसी आकृति के भूरूप अस्तित्व में आ जाते हैं। इन्हें हम ज्यूजैन कहते हैं। इनके निर्माण की क्रिया की विस्तृत विवेचना पूर्व में हो चुकी है। ये आसपास के समतल से १०० फुट अथवा उससे भी अधिक ऊँचे होते हैं।

(१४) **गारा** ( Gara )——वायु के अपक्षरण से उच्छैल ( Crag ) के बनने की क्रिया का ऊपर उल्लेख किया गया है। कुकुरमुत्ता जैसी आकृति के इन उच्छैलों को सहारा में गारा ( Gara ) [बहुवचन Gour] कहते हैं।

(१५) **बजादा तथा पैडिमैण्ट** (Bajada and Pediments) मरुस्थलीय प्रदेशों में अन्तपर्वतीय बेसिन के किनारे उच्छृंग के पद पर अनेक कछारी व्यजनों (Alluvial Fans) के परस्पर मिल जाने से जो ढाल बनता है, उसे बजादा (Bajada) कहते हैं।

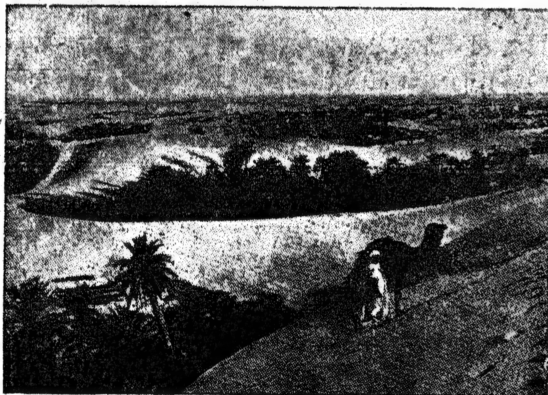
कभी २ उच्छंग के पद पर मन्द प्रवण वाला शिलापृष्ठ पाया जाता है। इसे पैडिमैण्ट (Pediment) कहते हैं।



चित्र १२६—ऊर्मि

(१७) **ऊर्मि-चिन्ह**(Ripple Marks)—कुछ रेतीले मरुस्थलों में लहर सदृश रेखायें पाई जाती हैं। ये वायु प्रवाह से बन जाती हैं। इनकी दिशा वायु प्रवाह के प्रति समकोण बनाती हुई होती है। इन्हें ही हम ऊर्मि-चिन्ह कहते हैं।

(१८) **मरुद्यान** (Oasis)—मरुस्थलों के मध्य में पाये जानेवाले उर्वर भूखण्डों को मरुद्यान कहते हैं। उष्ण मरुस्थलों के मरुद्यानों में खजूर के वृक्ष पाये जाते हैं। मरुस्थलो में यात्रा करने वाले काफिले मरुद्यानों में डेरा डालते हुए चलते हैं।



चित्र १२७—मरुद्यान

## दशम परिच्छेद

# भूमिगत जल

# (UNDERGROUND WATER)

## १ भूमिगत जल का उद्गम

पृथ्वी के धरातल पर गिरने वाला वर्षा का जल तीन भागो मे विभाजित हो जाता है—

(१) कुछ अश नदी-नालो द्वारा बह जाता है।

(२) कुछ अश वाष्पीकरण (Evoporation) द्वारा वायुमण्डल मे पुन लौट जाता है।

और (३) कुछ अश पृथ्वी सोख लेती है। वर्षा-जल का यह भाग भूपर्पटी के ऊपरी स्तर मे च्यवित होकर 'भूमिगत जल' बन जाता है।

## २ जल-पटल (Water Table)

भूमिगत जल के सन्दर्भ मे शिलाओ के दो भेद किये जा सकते है —

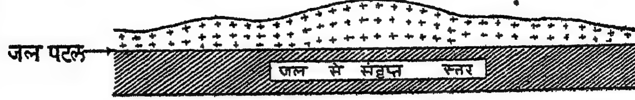
(१) भेद्य शिलाये (Pervious Rocks)—वे शिलाये है, जिनमे पानी प्रवेश कर सकता है।

(२) अभेद्य शिलायें (Impervious Rocks)—वे शिलाये है, जिनमे पानी का प्रवेश सभव नही है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि भेद्य शिला (Pervious Rock) और रन्ध्री शिला (Porous Rock) मे अन्तर है। प्राय मणिभीय शिलाओ (Crystalline Rocks) के मणिभ अन्त पाशबद्ध (Interlocked) होते है, जिससे उनमे तनिक भी रन्ध्रता (Porosity) नही होती, किन्तु कभी-कभी उनमे सन्धियाँ (Joints) पाई जाती हैं, जिनमें जलपारण सभव होता है। अन्य शब्दो मे ऐसी शिलायें रन्ध्री (Porous) न होते हुए भी भेद्य (Pervious) हैं। इसके विपरीत बहुत सी मृण्मय शिलाये (Argillaceous Rocks) स्पष्टत: रन्ध्री (Porous) होते हुए भी अभेद्य (Impervious) होती हैं क्योंकि उनके रन्ध्र (Pores) इतने सूक्ष्म होते है कि उनमें जल का प्रवेश सभव नही होता। इसके अतिरिक्त तल-आतति (Surface Tension) भी जलपारण में बाधक होती हैं। ऐसी शिलाओ को जिनमे जल का पारण सभव है और जो जल को धारण कर सकती हैं हम 'जलभरा' (Aquifer) कहते है।

गहराई के साथ दबाव बढता जाता है, जिससे भूपृष्ठ के अतिशय नीचे की शिलाओ के रन्ध्र बन्द हो जाते है। इसके अतिरिक्त भेद्य शिलाओं के नीचे प्राय: अभेद्य शिलाये पाई जाती हैं। इन कारणो से पृथ्वी द्वारा सोखा हुआ जल अनिश्चित गहराई तक नही पहुँचता। च्यवित जल की निचली सीमा के ऊपर शिलाओ का कुछ भाग जल से सतृप्त (Saturated) रहता है। इस सतृप्ति (Saturation) के ऊपरी समतल को हम जल-पटल (Water Table) कहते है। जल पटल धरातल

का स्पर्श कर सकता है, किन्तु प्राय उससे कुछ फुट नीचे ही रहता है। जब कुँआ खोदा जाता है तब उसमे जल-पटल तक पानी भर जाता है।




चित्र १२८—जल-पटल (Water Table)

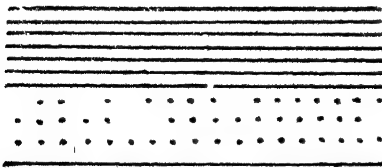
यदि सभी शिलाओ मे रन्ध्र (Pores), सन्धियाँ (Joints), विभाजक समतल ( Divisional Planes ) तथा जलधारण के अन्य साधन समान रूप से पाये जाते, तो भूपृष्ठ के सभी भागो मे समान मात्रा मे पानी नीचे च्यवित होता। ऐसी दशा मे जलपटल पटल (Table) की भाति क्षैतिज होता। किन्तु वास्तविकता यह नही है। कही पानी कम च्यवित होता है, कही अधिक। इसके निम्नलिखित कारण है —

(१) रन्ध्रो की सख्या और आकार मे विभेदन
(२) सन्धियो और विभाजक समतलो की सख्या और आकार मे विभेदन
(३) वर्षा की मात्रा मे विभेदन।
अतएव, जल-पटल नाम अशुद्ध है।

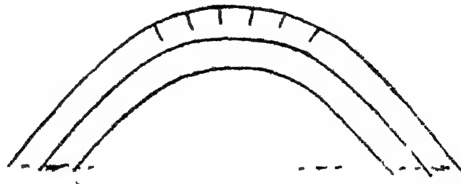
उपर्युक्त विभेदनो के कारण बहुधा दो प्रकार के क्षेत्र अस्तित्व मे आ जाते है —(१) एक तो वे जिनमे भूमिगत जल की बहुलता होती है और (२) दूसरे वे जिन मे भूमिगत जल अपेक्षाकृत कम मात्रा मे होता है। यह प्राकृतिक नियम है कि जल सदैव ऊँचे समतल से नीचे समतल की ओर प्रवाहित होता है। पृथ्वी के नीचे भी भूमिगत जल ऊँचे समपटल से नीचे समपटल की ओर प्रवाहित होता है।

## ३ जल संचयन को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

जल-सचयन को निम्नलिखित दो प्रतिकारक प्रभावित करते है —



चित्र १२९—जल सचयन पर दबाव का प्रभाव



चित्र १३०—जल सचयन पर सरचना का प्रभाव

(१) **दबाव**—ऊपर की शिलाओ के दबाव से कभी-कभी नीचे की शिलाओ के रन्ध्र बन्द हो जाते है।

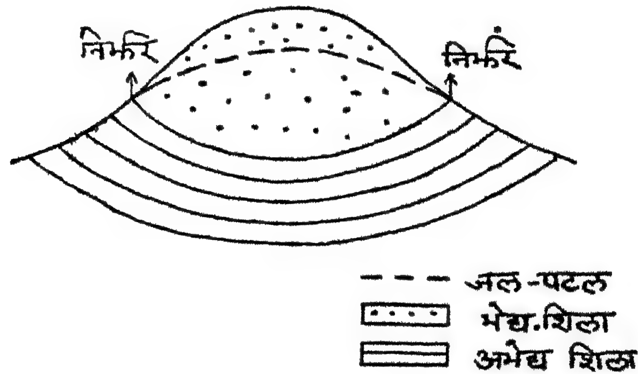
(२) **भौमिकीय संरचना**—(Geological Structure)—यदि भौमिकीय सरचना चाप सदृश हुई तो शिलाओ के मध्यवर्ती अक्ष पर आतति (Tension) के कारण विदर (Fisssures) उत्पन्न हो जाते है।

इसके विपरीत यदि भौमिकीय सरचना द्रोणी सदृश हुई तो सन्धियाँ सिकुड जाती हैं।

## ४ जलपटल का भौम्याकृति और ऋतुओं से सम्बन्ध

जैसा कि चित्र १३१ से स्पष्ट है जलपटल समोच्च रेखाओं के अनुरूप होते है। यहाँ पर भेद्य टोपी के निचले सिरे पर निर्झर विद्यमान है।

जल-पटल ऋतुओ के अनुसार ऊँचा-नीचा होता रहता है अर्थात् गर्मियो में वह नीचे चला जाता है और वर्षा ऋतु मे ऊपर उठ जाता है। किन्तु एक निश्चित सीमा से नीचे वह कभी नही जाता। इस सीमा को सतृप्ति का स्थायी समतल (Permanent Level of Saturation) कहते हैं।




चित्र १३१—जलपटल का भौम्याकृति से सम्बन्ध

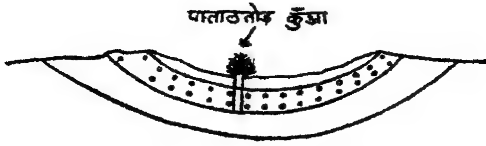
जलपटल के उच्चावचन (Fluctuations) का प्रभाव कुँओं और निर्झरो के जल की मात्रा पर पडता है। यदि कोई कुँआ खोदा जाता है और उसकी गहराई जलपटल के वर्षा-ऋतु के समतल से थोडे ही नीचे होती है, तो गर्मियो मे वह सूख जाता है। इसके विपरीत सतृप्ति के स्थायी समतल से गहरा कुँआ वर्ष भर पानी से भरा रहता है।

## ५ पातालतोड़ कुँआ और निर्झर

## (Artesian Wells and Springs)

### (१) पाताल तोड कुँआ

यदि किसी स्थान मे भेद्य और अभेद्य शिलाओ की व्यवस्था चित्र के अनुसार हो तो स्पष्ट है कि वर्षा का जल भेद्य शिला मे एकत्र होता रहेगा और यदि चित्रानुसार सच्छिद्रण ( Bore-hole) किया जावे, तो वहाँ पर पाताल-तोड कुएँ के रूप में जल ऊपर की ओर प्रवाहित होगा।




चित्र १३२—पातालतोड कुआँ

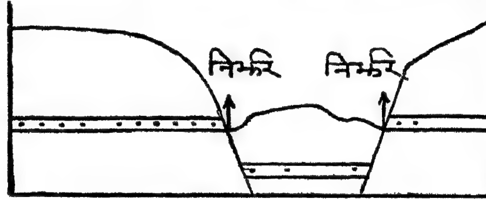
### (२) निर्झर

चित्र १३२ मे ऐसे स्थानो पर निर्झरो की उत्पत्ति, जहाँ पर जल-पटल भूपृष्ठ का स्पर्श करता है, स्वय स्पष्ट है। अतएव उस पर प्रकाश डालने की कोई आवश्यकता नही है।

## ६ भूमिगत जल का भौगोलिक कार्य

### (१) अपक्षरण

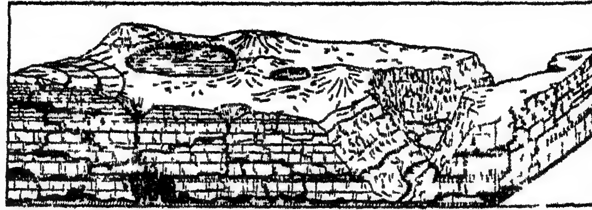
भूमिगत जल बडे ही मन्द वेग से बहता है। इस कारण उससे यात्रिक अपक्षरण बहुत कम होता है। हाँ, परोक्ष रूप से इसके कारण स्थल-सर्पण (Land Slides) हो जाते है, जिनसे कुछ न कुछ अपक्षरण तथा निक्षेपण अवश्य होता है। जब भूमि काफी झुकी होती है और उसका ऊपरी भाग पानी से सतृप्त होता है तब स्थल सर्पण बहुत होते है। वास्तव मे ऐसी दशा मे भूमिगत जल स्निग्धीकरण के पदार्थ (Lubricating Substance) का कार्य करता है अर्थात् उससे ऊपर के शिलाखण्ड के सर्पण मे सुविधा होती है। पर्वत-पदो पर स्थल-सर्पण द्वारा जो पत्थरो के टुकडे और मिट्टी आदि एकत्र हो जाती है—उसे हम शैलसखण्ड (Talus) अथवा सपात (Scree) कहते है। जल से सतृप्त भूमि का इस प्रकार नीचे की ओर खिसकना मृदा-प्रवाह (Solifluction) कहलाता है। भूमिगत नदी-नालो द्वारा थोडा-बहुत यात्रिक अपक्षरण भी होता है। इसकी विवेचना 'कार्स्ट-भूदृश्य' के प्रकरण मे हो चुकी है।




चित्र १३३—निर्झरो (Springs) की उत्पत्ति

### घोल (Solution)

यद्यपि भूमिगत जल से यात्रिक अपक्षरण बहुत कम होता है, तथापि रासायनिक अपक्षरण की दृष्टि से वह बहुत महत्वपूर्ण है। विशेषकर घोल द्वारा उससे बहुत अपक्षरण होता है। यह कार्य चूने के पत्थर के क्षेत्र मे विशेष उल्लेखनीय है। जब पानी मे कार्बन डाइ-ऑक्साइड घुली होती है, तब उसमें चूने का पत्थर घुल जाता है। वर्षा का जल जब धरातल पर गिरता है, तब वायुमण्डल की कार्बन डाइ-ऑक्साइड उसमें घुल जाती है। फल यह होता है कि चूने के पत्थर के प्रदेश मे घोल के फलस्वरूप एक विशेष प्रकार का भू-दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसकी विस्तृत विवेचना कार्स्ट-भूदृश्य शीर्षक प्रकरण मे की गई है।



चित्र १३४—कार्स्ट भूदृश्य

शिलाओ के भूमिगत घोल से निम्नलिखित रूपधेय अस्तित्व मे आ जाते है —

(१) निगिर छिद्र (Swallow holes)
(२) सकुण्ड (Uvala)
(३) राजकुण्ड (Polje)
(४) चूर्ण कूट (Hum)
(५) निसुरगा (Ponor)
(६) भूमिगत कन्दराये (Underground caves)
(७) आश्चुताश्म एव निश्चुताश्म (Stalactites and Stalagmites)
(८) अन्धी घाटियाँ (Blind Valleys)
(९) प्राकृतिक सेतु (Natural Bridges) आदि

इनकी विस्तृत विवेचना 'कार्स्ट भूदृश्य' के प्रकरण मे की गई है।

## (२) परिवाहन (Transportation)

भूमिगत जल घुले हुए पदार्थों को अपने साथ बहा ले जाता है और अन्त मे कही न कही उनका निक्षेपण भी कर देता है। कभी-कभी भूमिगत श्रोतो द्वारा वे सागरो अथवा झीलो मे पहुँच जाते है। घुले हुए पदार्थों का कुछ भाग अवसादो के अन्तराल मे जम जाता है, जिससे वे परस्पर चिपक जाते है। जलज शिलाओं के बनने मे इस क्रिया का बडा महत्व है। सबद्ध करने वाले पदार्थों मे कैलशियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate), सिलिका (Silicon Dioxide) तथा फैरिक ऑक्साइड (Ferric Oxide) प्रमुख है।

## (३) निक्षेपण (Deposition)

अवसादो के अन्तराल मे होने वाले निक्षेपण का उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है। इनके अतिरिक्त भी निक्षेपण द्वारा अनेक नवीन रूप निर्मित होते है। निक्षपण निम्नलिखित कारणो से होता है—

(१) **कार्बन डाई ऑक्साइड और अन्य घुली हुई गैसो के निकल जाने से**—जब ये गैसे विद्यमान होती हैं, तब घुलनशीलता बढ़ जाती है। इनके निकल जाने से निक्षेपण होता है।

(२) **वाष्पीकरण से** घोल का सकेन्द्रण (Concentration) बढ़ जाता है जिससे पदार्थ का कुछ भाग घोल से निकलकर निक्षेपित हो जाता है।

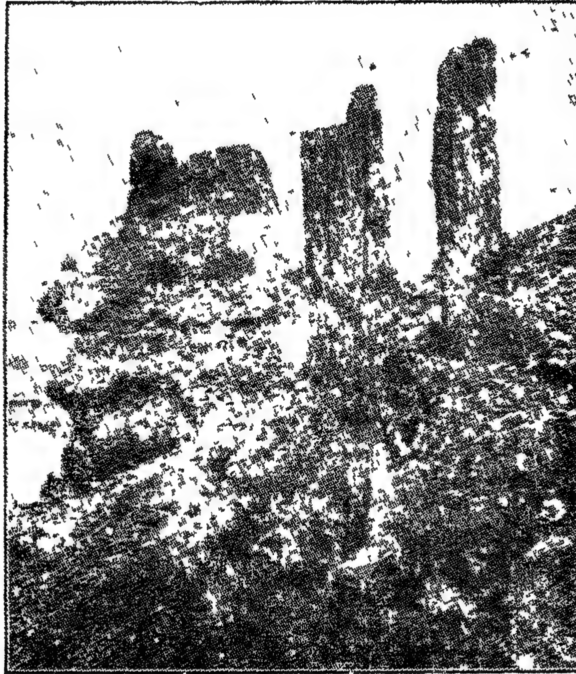
(३) **तापक्रम का घटना**—तापक्रम के बढ जाने से घुलनशीलता बढ़ जाती है और तापक्रम के घट जाने से घुलनशीलता घट जाती है। अतएव. तापक्रम के क्षीण होने पर निक्षेपण होना स्वाभाविक ही है।

(४) दबाव का घटना—वायुभार के घट जाने से भी निक्षेप हो जाते हैं।

(५) रासायनिक प्रक्रियाये—ये अनेक प्रकार की होती है और कभी-कभी इनसे निक्षेप बन जाते है।

## भूमिगत जल द्वारा सम्पन्न निक्षेपण के कुछ रूपधेय निम्नाँकित हैं:—

(१) आश्चुताश्म तथा निश्चुताश्म (Stalactites and Stalagmites) चूने के पत्थर के प्रदेश मे पाई जाने वाली कन्दराओ मे ऊपर से च्यवित होने वाले चूने के घोल को बूँदो के सूख जाने से कभी-कभी दो प्रकार के स्तम्भ बन जाते है। जो स्तम्भ छत से लटकता रहता है उसे आश्चुताश्म ( Stalactite ) कहते है और जो नीचे भमि पर स्थापित हो जाता है, उसे निश्चुताश्म ( Stalagmite ) कहते है।



चित्र १३५—अश्मीभूत काष्ठ (Petrified wood)

(२) **गुहाग्रन्थि** (Geode) कभी-कभी शिलाओ मे विद्यमान गड्ढो मे भूमिगत जल भर जाता है। इस निक्षेपण का एक विशेष रूप होता है, उदाहरणार्थ सिलिका (Silica) निक्षेप के मणिभ कभी-कभी कघी के दाँत जैसे प्रतीत होते है। इन्हे हम गुहाग्रन्थि (Geode) कहते है।

(३) **प्रतिस्थापन** ( Replacement )—कभी-कभी जब भूमिगत जल के घोल मे अन्य पदार्थ घुलते है, तब उसी मात्रा मे घुले हुए पदार्थ अलग हो जाते है और उनका निक्षेप बन जाता है। प्रतिस्थापन की यह क्रिया अणु प्रति अणु (Molecule by molecule) होती है जिससे घुले हुए पदार्थ के रूप मे कोई अन्तर नही होता, केवल सरचना बदल जाती है। इस क्रिया द्वारा कभी-कभी पेडो के तने शिला मे परिणत हो गए है, जिन्हे हम अश्मीभूत काष्ठ (Petrified Wood) कहते है।

(४) **सघनन**(Concretions)—किसी ठोस कण को केन्द्र मानकर उसके चारो ओर निक्षेप होने से सघनन बन जाते है। उदाहरण के लिये भारतवर्ष मे पाया जाने वाला ककड। इसमे केन्द्रीय कण के चारो ओर कैलशियम कार्बोनेट सचित होता है।

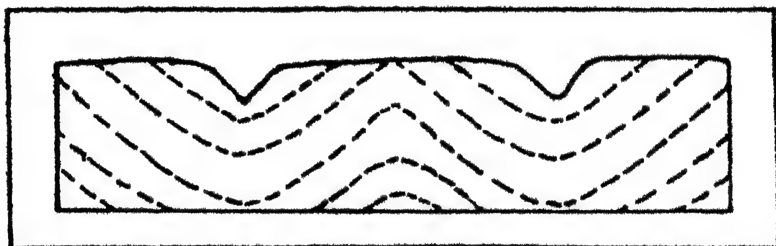
## ग्यारहवाँ परिच्छेद

# अपक्षरण चक्र

## (CYCLE OF EROSION)

### १ · स्थलखण्ड के जीवन की अवस्थाएँ

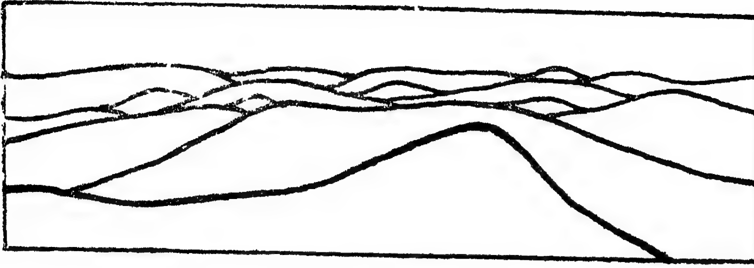
जिस प्रकार मनुष्य के जीवन मे विभिन्न अवस्थाये होती है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक स्थलखण्ड के जीवन मे भी अवस्थाये होती है। जब हम किसी स्थल-खण्ड का क्रमबद्ध अध्ययन करते है तब हमे विदित होता है, कि उसके रूप मे क्रमश परिवर्तन होते रहते है। यह कथन एक उदाहरण मे स्पष्ट होगा। मान लीजिये महाद्वीपकारक बलो के कारण सागर-नितल का कुछ भाग ऊपर उठ आता है। आरम्भ मे इसका धरातल प्राय समतल होगा और उसमे विषमताये बहुत कम होगी। धीरे-धीरे उसके धरातल पर विभिन्न प्राकृतिक अभिकर्ताओं का प्रभाव पडने लगेगा—उदाहरणार्थ वर्षा के कारण उसमे प्रवाह-व्यवस्था (Drainage system) स्थापित हो जायगी। फिर धीरे-धीरे नदियो की घाटियाँ गहरी होना आरम्भ होगी। एक निश्चित अवधि के अन्त मे नदियों के लम्बवत अपक्षरण की क्रिया समाप्त हो जायगी



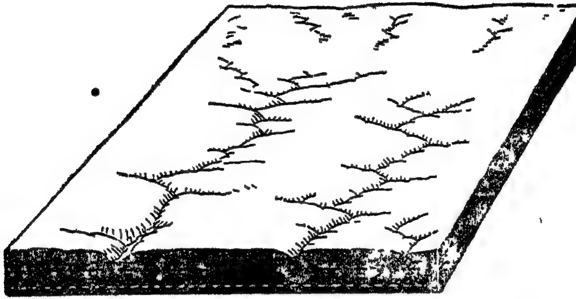
चित्र १३६—अपक्षरण-चक्र का विकास

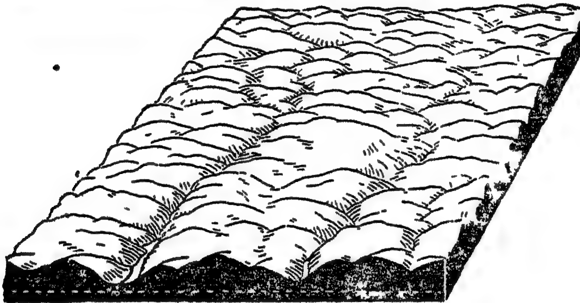
और पार्श्विक अपक्षरण बढने लगेगा। इसका प्रभाव घाटियो के मध्य मे स्थित उपरिष्ट भागो पर पडेगा और उनकी ऊँचाई क्रमशः क्षीण होने लगेगी। अन्त मे, पर्वत घिसकर प्राय समतल हो जायँगे। पर्वतो के इस अन्तिम अवस्था के रूप को हम 'समतल- प्राय' (Peneplain) कहते है।

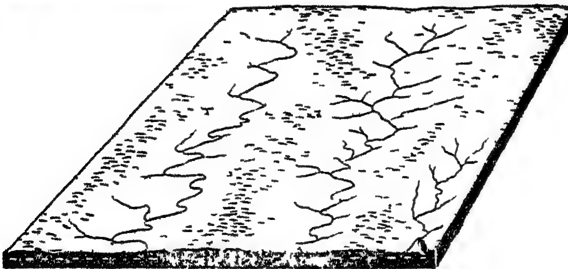
उपर्युक्त परिच्छेद मे एक विशिष्ट स्थल-खण्ड के जीवन के इतिहास की विभिन्न क्रमिक अवस्थाओ का दिग्दर्शन कराया गया है। यही अपक्षरण-चक्र (Cycle of Erosion) का सिद्धान्त है। आरम्भ मे जब स्थलखण्ड समुद्र के गर्भ से ऊपर उठता है, तब उसमे न्यूनतम विषमताये होती है, जो उसकी युवावस्था प्रदर्शित करती है। जब विषमताये बढते-बढते अधिकतम हो जाती है, तब हम यह कहते है कि स्थलखण्ड की प्रौढावस्था ( Mature stage ) आ गई। प्रौढ़ावस्था के अनन्तर वृद्धावस्था आती है। वृद्धावस्था मे विषमताये पुन क्षीण हो जाती है।



चित्र १३७—स्थलखण्ड की प्रौढावस्था




चित्र १३८—स्थलखड के जीवन की विभिन्न अवस्थाये

निम्नांकित तालिका से उपर्युक्त कथन और भी स्पष्ट होगा—

| | | |
|---|---|---|
| १. आरम्भिक रूप | इसमें विषमतायें न्यूनतम होती हैं | युवावस्था (Youth) |
| २. अनुक्रमिक रूप | इसमें विषमतायें विकसित रूप में होती हैं। | प्रौढ़ावस्था (Maturity) |
| ३. अन्तिम रूप | इसमें विषमतायें पुनः क्षीण हो जाती हैं।- | वृद्धावस्था (Old age) |

चित्र १३८ में स्थलखण्ड के जीवन की विभिन्न अवस्थायें प्रदर्शित की गई हैं। जब हम किसी भूखण्ड अथवा भूदृश्य का शास्त्रीय अध्ययन करते हैं, तब हमें यह जानना परम आवश्यक होता है, कि उसकी अवस्था क्या है। विकास-क्रम की अवस्था के अतिरिक्त हमें दो बातों का ज्ञान और होना चाहियें—(१) संरचना तथा (२) अपक्षरण का अभिकर्ता। विशेष प्रकार की शिलाओं में विशेष प्रकार का दृश्य विकसित होता है। इस कथन की पुष्टि कार्स्ट-भूदृश्य के अध्ययन से होती है। कार्स्ट-भूदृश्य का विकास केवल चूने के पत्थर के क्षेत्र में होता है। चूने के पत्थर में दो उल्लेखनीय गुण होते हैं—(१) एक तो उसमें लम्बवत् सन्धियाँ होती हैं और (२) दूसरे वह ऐसे जल में जिसमें कार्बन डाइऑक्साइड घुली हो, घुल जाता है। इन्हीं दोनों गुणों के कारण चूने के पत्थर के क्षेत्र में कार्स्ट-भूदृश्य विकसित होता है। इसकी विस्तृत विवेचना तेरहवें प्रकरण में की गई है।

दृश्य के विकास में अपक्षरण के अभकर्ता का भी विशेष प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, हिमनदियों के प्रकरण में हमने यह ज्ञात किया कि हिमनदियों से प्रभावित प्रदेशों में पाई जाने वाली घाटियाँ U आकृति की होती हैं और पर्वत नुकीले होते हैं। अतएव हम किसी दृश्य को देखकर यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उसका निर्माण किस अभिकर्ता की क्रिया से हुआ है।



चित्र १३९—श्री डब्ल्यू० एम० डैविस

संक्षेप में किसी दृश्य का विकास मुख्यतः तीन प्रतिकारकों के अनुसार होता है—(१) संरचना (Structure) (२) अपक्षरण अथवा निक्षेपण का अभिकर्ता तथा (३) विकास-क्रम की अवस्था। अतएव डैविस की यह उक्ति उचित है—'भूदृश्य संरचना, प्रक्रिया एवं अवस्था का संयुक्त फल है।'[१]

## २. भौम्याकारिकी (Geomorphology) में अपक्षरण चक्र की महत्ता

पॉवेल, गिलबर्ट प्रभृति विद्वानों ने अपक्षरण-चक्र के विषय में मौलिक विचार

[१] 'Landscape is a function of structure, process and stage.'
—Davis

प्रकट किये थे, किन्तु उसे व्यवस्थित रूप देने का श्रेय डैविस ही को है। भौम्य-कारिकी जगत मे डैविस और उनके अनुयायियो की देन अमूल्य है। इस सम्बन्ध मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि अपक्षरण-चक्र प्राकृतिक भूगोल के आधुनिक अध्ययन की आधार-शिला है।

'अपक्षरण-चक्र' के सिद्धान्त ने मृत पदार्थो में नवीन जीवन फूँक दिया है और नीरस विषय को सरस बना दिया है। अब हम जब किसी भूखण्ड को देखते है तो हमारे हृदय मे यह भावना उठती है कि उसके जीवन का विकास हुआ है और हो रहा है। अभी तक हम लोग स्थलखण्डो का अध्ययन सरचना के आधार पर करते थे। अपक्षरण-चक्र ने हमे नवीन आधार प्रदान किया है। स्थलखण्डो का वर्गीकरण और अध्ययन अब हम जननिक (Genetic) आधार पर करते है। भूगोल को अपक्षरण-चक्र की अवधारणा की एक बहुमूल्य देन यह भी है कि उसने भूगोल-वेत्ता के कार्य को बहुत सक्षिप्त कर दिया है। इस अवधारणा के प्रस्तुतीकरण के पूर्व हमे जब किसी स्थल-खण्ड का वर्णन करना पडता था, तब हम उसके प्रत्येक अग का चित्राकन करते थे। अब यदि हमे केवल इतना बतला दिया जाता है, कि अमुक प्रदेश की प्रौढावस्था है, तो हम उसके विषय मे सब कुछ जान लेते है।

## ३ 'अपक्षरण चक्र' की बाधायें

अपक्षरण-चक्र के क्रमिक विकास मे कभी-कभी निम्नलिखित कारणो से बाधा पड जाती है —

(१) भूपर्पटी की गतियाँ
(२) ज्वालामुखीय प्रक्रिया
(३) जलवायु के परिवर्तन

### (१) भूपर्पटी की गतियाँ

यदि भूपर्पटी की गति के कारण कोई क्षेत्र नीचे धँस जाता है, जिससे उसका धरातल अपने आधार-तल (Base Level) के निकट पहुँच जाता है, तो उससे भविष्य मे सम्पन्न होने वाले अपक्षरण का कार्य घट जाता है और उसकी अवस्था मे अकस्मात् परिवर्तन हो जाता है।

यह कथन निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा—

मान लीजिये किसी नदी की युवावस्था है। इस दशा मे वह लम्बवत् अपक्षरण द्रुत-वेग से करेगी। अब यदि अकस्मात् उसका नितल नीचे धॅस जाता है और वह उसके आधार-तल पर पहुँच जाता है, तो उसका लम्बवत् अपक्षरण समाप्त हो जाता है। अन्य शब्दो मे उसकी वृद्धावस्था आ जाती है। मानव-जीवन मे भी कभी-कभी इस प्रकार मानसिक आघात लगने से युवको और युवतियो के बाल सफेद हो गए है, जो वृद्धावस्था का लक्षण है।

इसके विपरीत यदि भूपर्पटी की गति के कारण कोई स्थल-खण्ड अकस्मात ऊपर उठ जाता है, तो उसकी अवस्था घट जाती है। यदि किसी ऐसी नदी का नितल जो आधार-तल पर पहुँच चुकी हो अकस्मात ऊपर उठ जाता है, तो उसके लम्बवत अपक्षरण की क्रिया पुन आरम्भ हो जाती है। अन्य शब्दो मे नदी वृद्धावस्था से पुन युवावस्था मे आ जाती है। मानव-जीवन मे कायाकल्प (Rejuvenation) भी तो इसी प्रकार होता है।

## (२) ज्वालामुखी की क्रिया

ज्वालामुखी की प्रक्रिया भी स्थलखण्डो के जीवन को प्रभावित करती है। इस सम्बन्ध मे केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

मान लीजिये कोई नदी वृद्धावस्था मे है अर्थात् उसका नितल आधार-तल के निकट पहुँच चुका है। अब ज्वालामुखी के उद्गार से उसकी घाटी पट जाती है और कालान्तर मे लावा के निक्षेप पर पूर्वकालीन नदी के पथ के ठीक ऊपर नवीन नदी बहने लगती है। प्रकट है कि इस नवीन नदी मे लम्बवत अपक्षरण द्रुत वेग से होगा क्योकि उसकी युवावस्था है। इस प्रकार वृद्धा नदी युवती मे परिणत हो जाती है।

## (३) जलवायु के परिवर्तन

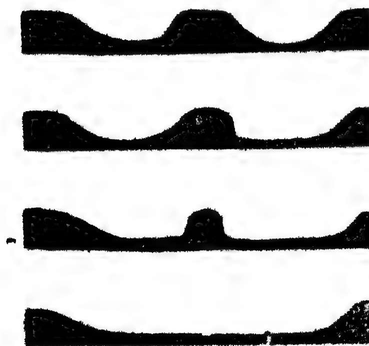
नदी की वृद्धावस्था मे उसका लम्बवत् अपक्षरण समाप्त हो जाता है। मान लीजिये इस अवस्था के प्राप्त हो जाने पर जलवायु के परिवर्तनो के फलस्वरूप जल-वृष्टि की मात्रा बढ जाती है। नदी मे पानी के आयतन के बढ जाने से लम्बवत् अपक्षरण पुन आरम्भ हो जायगा। अन्य शब्दो मे नदी का कायाकल्प हो जायगा अथवा वह वृद्धा-वस्था से पुन यौवनावस्था मे आ जायगी।

इसी प्रकार जलवायु के अकस्मात शुष्क हो जाने मे युवती सरिता की वृद्धा-वस्था आ सकती है।

## ४ अपक्षरण के सामान्य चक्र का विकास
## (Development of Normal Cycle of Erosion)

अपक्षरण का कार्य वायु, हिमानी सागर-जल आदि सभी करते है किन्तु उनमे सबसे अधिक सामान्य अभिकर्ता बहता हुआ जल है। अतएव, हम बहते हुए जल के 'अपक्षरण-चक्र' को अपक्षरण का सामान्य चक्र (Normal cycle of erosion) कहते है।

किसी भी आकृति और सरचना के धरातल मे अपक्षरण-चक्र आरम्भ हो सकता है, किन्तु हम विषय के सुगम प्रतिपादन के लिये धरातल का सरलतम रूप लेंगे। ऐसा धरातल समुद्र के गर्भ से ऊपर उठा हुआ मैदान है। इसके पृष्ठ मे केवल वे विषमताये होगी जो उसके मूल रूप में थी। धीरे-धीरे इस धरातल पर वर्षा आदि के कारण प्रवाह-व्यवस्था (Drainage system) स्थापित होगी। आरम्भ मे नदियाँ पृष्ठ की विषम-ताओ अथवा पूर्ववर्ती ढाल के अनुरूप प्रवाहित होगी। इस प्रकार अनुगामी नदियो और घाटियो का विकसित होना अपक्षरण-चक्र की प्रथम अवस्था है।


चित्र १४०—अन्तरापो के पतन की विभिन्न प्रावस्थाये

नदियो के मध्य के उभार जिन्हे अतराप (Interfluve) कहते है आरम्भ मे चौडे होगे और उनकी चोटियाँ भी विस्तृत होगी। पार्श्विक अपक्षरण के कारण जैसे-जैसे नदियो की घाटियाँ चौडी होती जायँगी, वैसे-वैसे ये उभार भी सकीर्ण होते चले जायँगे और उनकी चोटियाँ भी सकरी होती चली जायँगी। कालान्तर मे, धरातल की आरम्भिक अवस्था के सभी चिन्ह लुप्त हो जायँगे। जब ऐसी अवस्था आ जाती

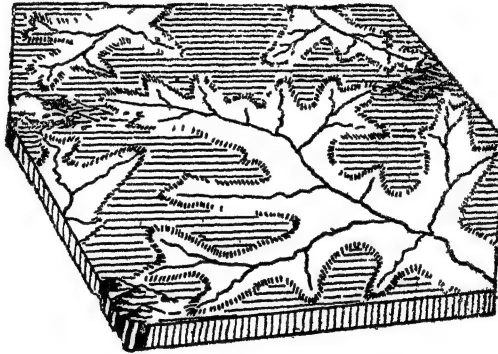
है, तब हम यह कहते है कि अपक्षरण-चक्र की प्रौढावस्था (Maturity) आ गई। इस अवस्था का जल्दी अथवा देर से आना निम्नाकित प्रतिकारको पर निर्भर है—

(१) **नदियो की पारस्परिक दूरी**—यह जितनी कम होगी प्रौढावस्था उतनी जल्दी आयगी।

(२) **सहायक नदियो का विकास**—सहायक नदियाँ जितने वेग से बढेगी, प्रौढावस्था उतनी ही जल्दी आयगी। सहायक नदियो का विकास जलवायु एव शिलाओ की सरचना पर निर्भर है। वर्षा के अधिक होने और शिलाओ के कोमल होने से अपेक्षाकृत अधिक सहायक नदियाँ बनती है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है, कि अपक्षरण की प्रौढावस्था और प्रवाह-व्यवस्था की अनुक्रमण-अवस्था एक ही वस्तु नही है। प्रवाह-व्यवस्था की अनुक्रमण अवस्था आ जाने का अर्थ यह होता है कि मुख्य एव सहायक नदियो ने आधार-तल (Base-Level) को प्राप्त कर लिया है। सामान्यत अपक्षरण-चक्र की प्रौढावस्था मे यह कथन सही होता है, किन्तु सदैव नही।

अपक्षरण-चक्र की आरम्भिक अवस्था मे जलवायु अथवा अन्य कारणो से थोडे बहुत विभेदन हो भी सकते है, किन्तु इसकी अन्तिम अवस्था मे भूदृश्य सर्वत्र एक सा होता है। घिसते-घिसते पर्वत लगभग समतल हो जाते है, उनके ढाल मन्द पड जाते है और उनमे कठोर शिलाओ के अवशिष्ट भाग टीलो का रूप ग्रहण कर लेते है। अपक्षरण-चक्र की अन्तिम अवस्था के धरातल के इस रूप को डैविस ने समतलप्राय (Peneplain) का नाम दिया है। उस पर स्थित टीले मौनैडनौक (Monad-rocks) कहलाते है।



चित्र १४१—समतलप्राय

## बारहवाँ परिच्छेद

# भूरूप के विकास में जलवायु का प्रभाव

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो चुका है कि भूदृश्य शिलाओं की मरचना, अपक्षरण के अभिकर्ता और भूखण्ड की अवस्था का मयुक्त फल है। इनके अतिरिक्त जलवायु का भी भूदृश्य के विकास मे महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। इस अध्ययन के लिये हम पृथ्वी को निम्नाकित प्रदेशों मे बाँट लेंगे—

(१) विषुवतीय एव मानसूनी प्रदेश—इसमें तापक्रम अधिक रहता है और वर्षा भी बहुत होती है।

(२) उष्णप्रदेशीय शुष्क प्रदेश—उसमें तापक्रम अधिक रहता है किन्तु वर्षा कम होती है।

(३) शीतोष्ण प्रदेश—इसमें तापक्रम और वर्षा दोनों ही न बहुत अधिक होते है और न बहुत कम ही।

(४) ध्रुवीय प्रदेश—इसमें तापक्रम बहुत कम होता है। वर्षा हिमवृष्टि के रूप में होती है।

## (१) विषुवतीय प्रदेश

विषुवतीय प्रदेश मे अत्यधिक वर्षा होती है और वनस्पति भी सुप्रचुर होती है। तापक्रम सदैव ऊँचा रहता है। उष्णता, आर्द्रता और पेड-पौधो एव पत्तियो के सडने से बने अम्लो के कारण शिलाओ का क्षरण वेग से होता है। यही कारण है कि इन प्रदेशो में भूमि का स्तर, जो क्षरित शिलाओ से बना होता है, काफी मोटा होता है। इन क्षेत्रो के पूर्ण विकसित भूखण्ड जो अधिकतर अनावृत होते है बडी शीघ्रता से नष्ट होते है और उनकी नोकें घिस कर गोल होने लगती हैं। वनस्पति के घने आवरण के कारण अबद्ध पदार्थ सरलता से नही हटता और जल प्रवाह की व्यवस्था होते हुए भी पर्वतो के ढाल उन्नतोदर होते हैं।

## (२) उष्ण प्रदेशीय शुष्क प्रदेश

उष्ण प्रदेशीय मरुस्थलो मे जल का अभाव होता है। इन प्रदेशो मे वनस्पति भी नही पाई जाती। पेडो की जडो के कारण ही भूमि के कण परस्पर सम्बद्ध रहते है। वनस्पति के न होने से वे अबद्ध हो जाते है। अबद्ध शिलाकण सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाये जा सकते हैं। अतएव इन प्रदेशो मे वायु द्वारा अपक्षरण और परिवाहन बहुत होता है। शिलाये मुख्यत तापक्रम के विभेदन के कारण नष्ट होती है। टूटी हुई शिलाओ के टुकडे नुकीले होते है और पर्वतो का धरातल विषम होता है। वर्षा, वायु और गुरुत्वाकर्षण द्वारा अवद्ध पदार्थ नीचे चला जाता है और गड्ढो मे भर जाता है। उसे समुद्र तक पहुँचने के लिये कोई भी साधन सुलभ नही होते क्योकि इन प्रदेशो मे नदियाँ तो होती नही हैं। अवद्ध शिलाकणो से टीले और निचली पहाडियाँ कभी-कभी पूर्णत ढक जाते हैं और केवल ऊँचे पहाड़ो की चोटियाँ ही इनसे

अनावृत रहती है। तापक्रम के विभेदन के कारण अबद्ध शिलाकण और भी टूटते रहते है और फिर वे वायु द्वारा विस्तृत मैदानो मे बिखरा दिये जाते है। इन प्रदेशो का मुख्य लक्षण अबद्ध शिला-कणो से निर्मित विस्तृत मैदान है, जिनमे अर्ध-चन्द्राकार एव अन्य आकृतियो के बालू के टीले पाये जाते है। इनकी विस्तृत विवेचना 'वायु का कार्य' शीर्षक प्रकरण मे की गई है।

## (३) शीतोष्ण प्रदेश

इन प्रदेशो मे जहाँ कही भी सामान्य वर्षा होती है, वहाँ अपक्षरण का अधिकाँश कार्य नदियो द्वारा सपन्न होता है। ऋतुक्षरण मुख्यत दो रीतियो से होता है (१) यान्त्रिक क्रिया—यह पाला अथवा तुषार द्वारा सपन्न होती है। (२) रासायनिक क्रिया अथवा घोल की क्रिया—जब पानी मे कार्बन डाइऑक्साइड घुली होती है, तब उसमे चूने का पत्थर सरलता से घुल जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक शिलाये घुलनशील होने के कारण यो ही पानी मे घुल जाती है। जिन क्षेत्रो मे यान्त्रिक अपक्षरण अधिक होता है, उनका धरातल विषम हो जाता है और उनमे कटे फटे उच्छैल (Crags) बहुत पाये जाते है। इसके विपरीत जिन क्षेत्रो मे घोल का कार्य अधिक होता है, उनमे गोल धरातल अस्तित्व मे आ जाता है। दोनो ही दशाओ मे नदियाँ अबद्ध पदार्थ को समुद्र मे बहा ले जाती है। जलप्रवाह के कारण पर्वतो के पार्श्व नतोदर होते है। पर्वतो के शिखर नुकीले और कटे फटे होते है क्योकि वहाँ तुषार के कारण यान्त्रिक अपक्षरण बहुत होता है, दूसरी ओर निचले प्रदेशो मे जहाँ घोल का कार्य अधिक महत्वपूर्ण होता है, गोल आकृति के टीले अस्तित्व मे आ जाते है।

## (४) ध्रुवीय प्रदेश

ध्रुवीय प्रदेश हिमाच्छादित होते है। इनमे ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त जल का पृष्ठ-प्रवाह कभी नही होता। शिलाओ के क्षरण की क्रिया तापक्रम के विभेदन और पाला के कारण होती है। वनस्पति के अभाव मे पवन द्वारा अनावृतीकरण बहुत होता है। अतएव अनेक दृष्टियो मे इन क्षेत्रो का भूरूप उष्णप्रदेशीय मरुस्थलो से मिलता-जुलता है। उदाहरणार्थ पहाडियाँ वैसी ही ढालू होती है और निचले प्रदेशो मे भी वैसे ही अबद्ध पदार्थ के निक्षेप पाये जाते है। भूरूप के विकास मे हिमपात की मात्रा का भी बहुत प्रभाव पडता है। यदि हिमवृष्टि अधिक होती है, जैसे ग्रीनलैण्ड मे तो समस्त प्रदेश हिमस्तर से ढक जाता है अथवा हिमनदियाँ पर्वतो से तट की ओर प्रवाहित होती है, जिससे हिमानीकृत भूदृश्य ( Glaciated Topography ) अस्तित्व मे आ जाता है। इसकी विस्तृत विवेचना हिमनदियो के प्रकरण मे की गई है। इन प्रदेशो मे पर्वतो की चोटी नुकीली होती है, जिसे शृंग (Horn) कहते है। यह नुकीलापन पाले की क्रिया का ही फल है।

# तेरहवाँ परिच्छेद

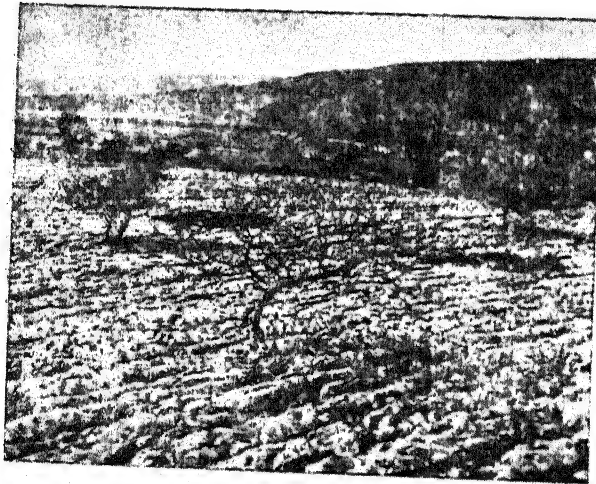
# कार्स्ट भूदृश्य (KARST TOPOGRAPHY)

## (१) भूमिका

चूने के पत्थर (Limestone) में दो ऐसे विशेष गुण होते हैं, जिनके कारण उसमें विशेष प्रकार का दृश्य विकसित होता है :—

(१) वह ऐसे जल में जिसमें कार्बन डाइ ऑक्साइड घुली हो, घुल जाता है।[1]

(२) उसमें लम्बवत् सन्धियों (Vertical Joints) की सुन्दर व्यवस्था होती है।



चित्र १४२—चूने के पत्थर का प्रदेश इनमें कार्स्ट भूदृश्य विकसित हो है

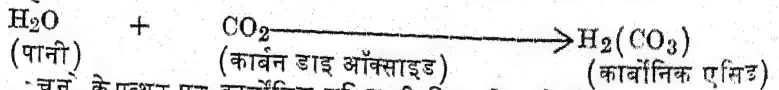
भूमिगत जल के सन्दर्भ में उपर्युक्त दोनों गुण महत्वपूर्ण हैं। अन्य शब्दों में "चूने के पत्थर के क्षेत्रों की संरचना और वहाँ के जल-विज्ञान (Hydrology) में बड़ा घनिष्ट संबंध है।"[2]

चूने के पत्थर दो प्रकार के होते हैं :—

(१) कठोर, निविड़ एवं मणिभीय–

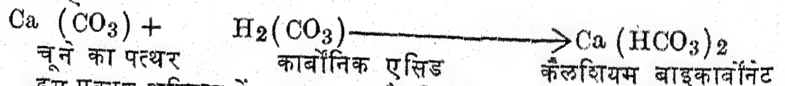
---

१. शुद्ध जल में चूने का पत्थर घुलनशील नहीं है। जब वर्षा-जल पृथ्वी पर गिरते समय वायुमण्डल से गुजरता है, तब उसमें वायुमण्डल में विद्यमान कार्बन डाई ऑक्साइड नामक गैस घुल जाती है। पानी में कार्बन डाइऑक्साइड के घुल जाने के निम्नलिखित रासायनिक प्रतिक्रिया के अनुसार कार्बोनिक एसिड बन जाता है :—



$$\underset{\text{(पानी)}}{H_2O} + \underset{\text{(कार्बन डाइ ऑक्साइड)}}{CO_2} \longrightarrow \underset{\text{(कार्बोनिक एसिड)}}{H_2(CO_3)}$$

चूने के पत्थर पर कार्बोनिक एसिड की क्रिया से कैलशियम बाइकार्बोनेट बन जाता है :—



$$\underset{\text{चूने का पत्थर}}{Ca\,(CO_3)} + \underset{\text{कार्बोनिक एसिड}}{H_2(CO_3)} \longrightarrow \underset{\text{कैलशियम बाइकार्बोनेट}}{Ca\,(HCO_3)_2}$$

इस प्रकार अस्तित्व में आया हुआ कैलशियम बाइकार्बोनेट चूने के पत्थर की तुलना में तीस गुना घुलनशील है—शुद्ध जल तक में।

2 'The morphology of limestone terrains is closely linked with their hydrology.'

कार्स्ट (Kaıst) शब्द आस्ट्रिया के कार्स्ट जिले से बना है, जहाँ कार्स्ट भूदृश्य का पूर्ण विकास हुआ है।

(२) कोमल एव रन्ध्री—इनमे जो भूदृश्य विकसित होता है, उसे 'चाक' (Chalk) की सज्ञा दी गई है।

## (२) कार्स्ट भूदृश्य के उदाहरण

योरप मे डिनारिक आल्प्स के क्षेत्र मे कार्स्ट-भूदृश्य का सुन्दर विकास हुआ है। यह प्रदेश ५० मील चौडा और ८००० फुट ऊँचा है और इस्ट्रियन प्रायद्वीप के द० पू० मे यूगोस्लाविया होता हुआ एड्रियाटिक सागर के तट पर फैला हुआ है।




चित्र १४३—एड्रियाटिक तट पर कार्स्ट भूरूप

इस प्रदेश मे पृष्ठ-प्रवाह (Surface Dıaınage) प्राय नगण्य है, केवल एक नदी नैरेण्टा है।

कार्स्ट भूदृश्य के अन्य उदाहरण निम्नलिखित है—

सयुक्त राज्य अमरीका — कैण्टुकी, वरजीनिया, मध्य टैनेसी, न्यू मैक्सिको, फ्लोरिडा।

भारतवर्ष—किरथर श्रेणी, भेडाघाट (जबलपुर), रोहतास का पठार, कर्नूल (मद्रास), कॉगडा की घाटी, कश्मीर में मध्य हिमालय।

द० पू० एशिया—उत्तरी मलाया

यूरोप—आल्प्स, जूरा अपैनाइन पर्वत, सेण्ट्रल मासिफ (फ्रास)

## (३) कार्स्ट के भूदृश्य के प्रमुख लक्षण

(१) ऐसे प्रदेशो मे जहाँ चूने का पत्थर नग्न अथवा अनावृत रूप मे पाया जाता है, लम्बवत् सन्धियाँ घोल के कारण चौडी हो गई है। यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि चूने का पत्थर ऐसे जल मे जिसमे कार्बन-डॉइ-आक्साइड घुली हो, घुल जाता है। वर्षाजल जब वायुमडल से गुजरता है, तब उसमे कार्बन-डॉइ-ऑक्साइड घुल जाती है। पृथ्वी के धरातल पर यही जल प्रवाहित होता है और चूने के पत्थर की सधियो को चौड़ा कर देता है। इस प्रकार कुण्ड (Dolıne) अथवा निगिर- छिद्र (Sınk holes) अस्तित्व मे आ जाते है।



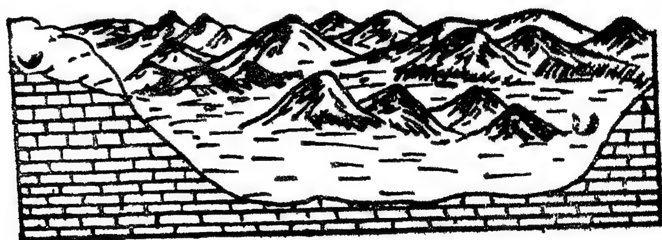

चित्र १४४—निगिर-छिद्र (Swallow holes)

(२) ऐसे प्रदेशो मे जिनमे घोल की क्रिया चर्मावस्था को पहुँच जाती है, कूट और शिखरो का जटिल जाल पाया जाता है। ऐसे क्षेत्र को फ्रासीसी भाषा मे 'लैपीज' (Lapies) कहते हैं। चित्र १४५ मे इसे प्रदर्शित किया गया है। चूने के पत्थर को घुलकर यह स्वरूप प्राप्त कर लेना स्वाभाविक ही है।



चित्र १४५—लैपीज (Lapies)

(३) जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है चूने के पत्थर के प्रदेश मे पृष्ठ की दरारे घोल के कारण प्रस्तारित होकर 'कुण्ड' का रूप ले लेती हैं। ये दो प्रकार के होते है—(१) बेलनाकार ( Cylindrical ) एव (२) कीपाकार (Funnel



चित्र १४६—चूर्ण-कूटो (Hum) सहित राजकुण्ड (Polje)

shaped )। इन कुण्डो मे पडकर नदियाँ लुप्त हो जाती है। जब अनेक कुण्ड (Dolines) परस्पर मिल जाते है, तब जो वृहद निम्नन अस्तित्व मे आ जाते है, उन्हे हम सकुण्ड (Uvala) कहते है। सकुण्डो का व्यास एक मील तक पाया जाता

है। असाधारण रूप से बडे उवालाओ अथवा सकुण्डो को राजकुण्ड अथवा पोलये (Polje) कहते है। उवाला मे पाये जाने वाले चूने के पत्थर के अवशिष्ट टीलो को चूर्णकूट (Hums) कहते है। भूपृष्ठ से अथवा निगिर-छिद्रो से भूमिगत कन्दराओ (Underground caves) को मिलाने वाली सुरगो को हम निसुरगा (Ponor) कहते है। Ponor शब्द सर्बियन भाषा का है। फ्रासीसी भाषा मे इसे 'अवेन्स' ( Avens ) कहते हैं। पोनर अथवा अवेन्स लम्बवत भी हो सकते है और तिरछे भी। चित्र १४७ मे इन्हे प्रदर्शित किया गया है।



चित्र १४७—निसुरगाओ द्वारा निगिर-छिद्रो का भूमिगत कदराओ से सम्बन्ध

(४) चूने के पत्थर के क्षेत्रो मे घोल की क्रिया के फलस्वरूप भूमिगत कन्दराये बहुत पाई जाती हैं। इनकी छतो से चूने के स्तम्भ लटका करते हैं। इन्हे हम आश्चुताश्म ( Stalagtites ) कहते है। इनके फर्श पर भी चूने के खम्भे पाये जाते है, जिन्हे हम निश्चुताश्म ( Stalagmites ) कहते हैं। छतो से लटकने वाले स्तम्भ पतले और लबे होते है और फर्श पर बनने वाले स्तम्भ अपेक्षाकृत चौडे और छोटे होते हैं। बहुधा छत से लटकता हुआ स्तम्भ फर्श के उठते हुए स्तम्भ से जुड जाता है।

आश्चुताश्म और निश्चुताश्म के बनने की क्रिया अत्यन्त सरल है। कन्दरा की छत से चूने का पानी च्यवित होता रहता है। कभी कभी छत पर लटकती हुई चूने के पानी की बूँद नीचे न गिरकर वही सूख जाती है। ऐसी अनेक बूँदो के परस्पर मिल जाने से आश्चुताश्म बन जाते है। जब बूँद नीचे गिरने मे समर्थ होती है, तब उससे निश्चुताश्म बनते है।

(६) सक्षेप मे, ऐसा क्षेत्र जिसमे कार्स्ट-भूदृश्य का पूर्ण विकास हुआ हो चूने के पत्थर के प्रदेश मे टीलो और गड्ढो का जालमात्र होता है। उसमे पृष्ठप्रवाह नही होता, केवल भूमिगत-प्रवाह होता है। ऐसे क्षेत्र में भूमिगत जल का पटल (Water-Table) क्षैतिज और समतल होता है तथा धरातल से काफी नीचे होता है। चूने के पत्थर के क्षेत्रो में भूमिगत नदियो की पूर्ण व्यवस्थाये पाई गई है, उदाहरणार्थं कैण्टुकी की मम्मथ नामक कन्दरा में इको (Echo) नदी। ये भूमिगत नदियाँ उन सभी प्राकृतिक नियमो का पालन करती है, जिनका पालन भूपृष्ठ की नदियाँ करती है। उदा-

हरण के लिये, इनकी घाटियाँ यात्रिक एव रासायनिक अपक्षरण के उन्ही सूत्रो के अनुसार चौडी होती है जिनसे धरातल की नदियाँ।

सामान्यत चूने के पत्थर के विस्तृत क्षेत्रो में सरचना एकसी होती है, किन्तु कभी इसमे अपवाद भी पाये जाते है, अर्थात् उसमे अशुद्धियाँ ( Impurities ) होती है। ऐसी दशा में विशेष प्रकार के अवशिष्ट-निक्षेप (Residual Deposits) अस्तित्व मे आ जाते है, उदाहरणार्थ दक्षिणी योरप मे टैरा-रोसा (Terra-rossa) कें निक्षेप। ये निक्षेप चूने के पत्थर मे अशुद्धियो के होने से बने है।

## (४) कार्स्ट प्रदेश में अपक्षरण-चक्र का विकास

## (Development of cycle of erosion in a Karst Region)

**आवश्यक दशायें**—कार्स्ट-प्रदेश मे अपक्षरण-चक्र आरम्भ होने के लिये यह आवश्यक है कि—

(१) चूर्ण-प्रस्तर की मोटाई काफी हो।

तथा (२) चूर्ण- प्रस्तर मे जल-पटल धरा-तल से काफी नीचे हो।

**विधियाँ**—कार्स्ट प्रदेश मे अपक्षरण-चक्र का श्रीगणेश निम्नलिखित रीतियो से होता है —

(१) ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ शुद्ध चूने के पत्थर का मोटा स्तर पाया जाता है, पृष्ठ-प्रवाह से ही अपक्षरण-चक्र आरभ हो जाता है।

(२) ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ चूर्ण-प्रस्तर के ऊपर किसी अभेद्य शिला का आवरण होता है, पृष्ठ-प्रवाह द्वारा ऊपरी आवरण के भग हो जाने पर अपक्षरण चक्र का श्रीगणेश होता है।

(३) ऐसे चूर्ण- प्रस्तर मे जिसमें जल-पटल धरातल के निकट होता है, अपक्षरण-चक्र तभी स्थापित हो सकता है, जब वह भूपर्पटी की गति से अकस्मात ऊपर उठ जाये और इस प्रकार उसका धरातल जलपटल से काफी ऊपर हो जावे।

**प्रावस्थायें**—कार्स्ट-प्रदेश मे अपक्षरण-चक्र के विकास की विभिन्न प्रावस्थायें चित्र १४८ में दी गई है, जो क्रमश: इस प्रकार है —

(१) आरभिक युवावस्था,

(२) उत्तरकालीन युवावस्था

(३) प्रौढावस्था

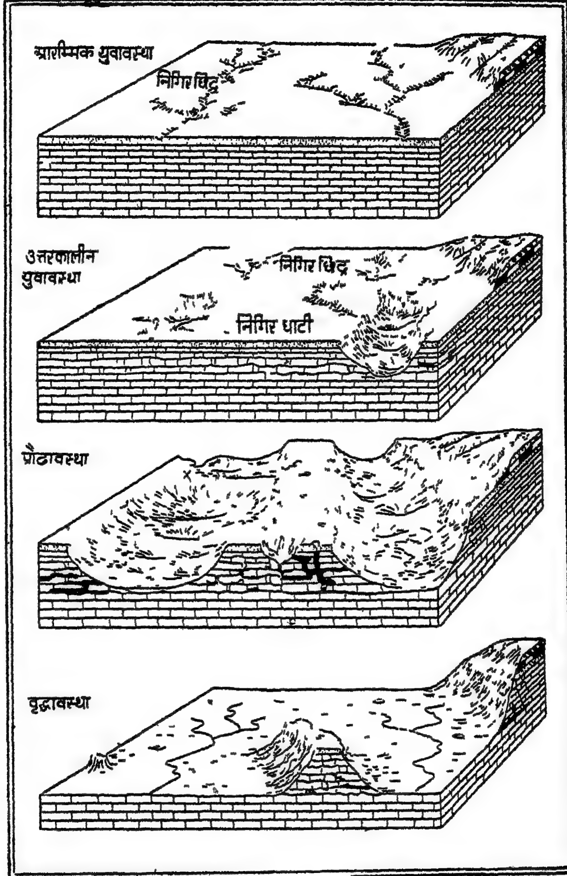
(४) वृद्धावस्था

अब हम इन प्रावस्थाओ का विस्तृत अध्ययन करेंगे

**आरभिक युवावस्था**—प्रथम प्रावस्था आरभिक यौवन की है। चूने के पत्थर के क्षेत्र की भौमिकीय सरचना ( Geological Stucture) जटिल हो सकती है, किन्तु हम सुविधा के लिये सरल पठार का उदाहरण ले रहे है, जिसमे क्षैतिज स्तर हैं। चूने के पत्थर के ऊपर बालुकाश्म (Sandstone) का पतला आवरण है।

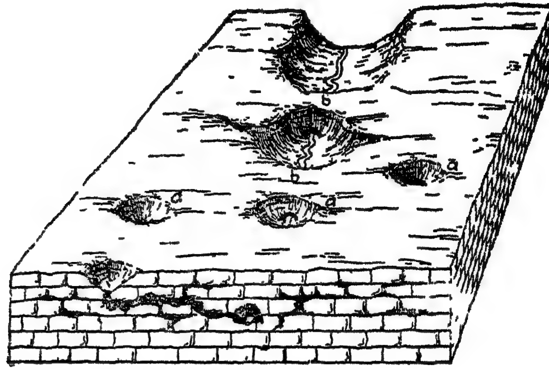
आरभ म धरातल का जलप्रवाह ढाल के अनुरूप होता है, जिससे वृक्षाकार प्रवाह-व्यवस्था ( Dendritic Drainage System ) अस्तित्व में आ जाती है। पृष्ठ-प्रवाह द्वारा बालुकाश्म का प्रस्तर क्रमश घिसता रहता है।

**उत्तरकालीन युवावस्था**—ऊपरी बालुकाश्म का प्रस्तर धरातल के प्रवाह द्वारा धीरे धीरे घिसते घिसते कालान्तर मे नष्ट हो जाता है और चूने के पत्थर का प्रस्तर अनावृत होकर प्रकट हो जाता है। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, चूने के पत्थर मे लम्बवत सन्धियाँ पाई जाती है। ये सन्धियाँ घोल की क्रिया से धरातल पर चौडी होती रहती हैं, जिससे निगिरछिद्र (Dolines) अस्तित्व मे आ जाते हैं। वास्तव मे निगिर-छिद्र कार्स्ट भूदृश्य के अभिन्न अग है। इनके माध्यम द्वारा प्रवाह का कुछ अश भूमिगतप्रवाह मे विलीन हो जाता है, यद्यपि अधिकाश भाग पृष्ठ पर प्रवाहित होता है। अपक्षरण-चक्र की ज्यो ज्यो प्रगति होती रहती है, त्यो त्यो अधिकाधिक चूने का पत्थर घुलता जाता है और निगिर छिद्र गहरे होते जाते हैं। एक ओर भूमिगत-प्रवाह मे अभिवृद्धि होती है और दूसरी ओर पृष्ठ-प्रवाह मे ह्रास। निगिर-छिद्रो की सख्या और आकार मे क्रमश वृद्धि होती रहती है। अनेक निगिर छिद्रों के परस्पर मिल जाने से सकुण्ड (Uvala) बन जाते है। कही कही दो निगिर- छिद्रो के सुरग द्वारा जुड जाने से प्राकृतिक सेतु (Natural Bridge) बन जाते हैं। पृष्ठ पर प्रवाहित होनेवाली नदियाँ सकुण्डो मे गिरकर अकस्मात लुप्त हो जाती है। इस प्रकार उल्टी लम्बवत घाटियाँ (Inverted Hanging Valleys ) अस्तित्व मे आ जाती है, जिन्हे 'अन्धी घाटियो( Blind




चित्र १४८ चूर्ण-प्रस्तर से निर्मित पठार के जीवन की विभिन्न प्रावस्थाये

Valleys) की सज्ञा दी गई है। भूमिगत घोल की क्रिया से भूमिगत कन्दराये अस्तित्व मे आ जाती है।




चित्र १४९—प्राकृतिक सेतु

**प्रौढावस्था**—उपर्युक्त विधियो से जब प्राय सम्पूर्ण पृष्ठ-प्रवाह लुप्त हो जाता है, तब हमे यह समझना चाहिये कि अपक्षरण-चक्र प्रौढावस्था को प्राप्त कर चुका है। इस प्रावस्था मे सकुण्डो के विकसित होने से तथा भूमिगत कन्दराओ की छतो के नष्ट हो जाने से निगिर-घाटियाँ ( Sink Valleys ) तथा राजकुण्ड ( Poljes ) बन जाते है। राजकुण्डो मे अशुद्धियो के अवशिष्ट पुज चूँर्ण-कूटो (Hums) का रूप ले लेते हैं। प्रौढावस्था मे पृष्ठ-प्रवाह का स्थान प्रबल भूमिगत-प्रवाह ले लेता है। निगिर-घाटियो के पार्श्वो मे कही कही झरने पाये जा सकते है, किन्तु उनका जल कुछ ही दूर बहकर लुप्त हो जाता है। कहीं कही घोल की क्रिया से बने कूट एव शिखर का जटिल जाल पाया जाता है, जिससे लैपीज (Lapies) कहते हैं।

**वृद्धावस्था**—वृद्धावस्था मे पृष्ठ की विषमताये नष्ट होजाती है और चपटा धरातल प्रकट हो जाता है। यत्र तत्र अशुद्धियो के निक्षेप—चूर्ण-कूट (Hums) पाये जाते है। इस प्रावस्था मे पृष्ठ-प्रवाह पुन स्थापित हो जाता है। किन्ही क्षेत्रो मे वृद्धावस्था मे नीचे की अभेद्य शिलाओ का पृष्ठ प्रकट हो जाता है। किन्ही क्षेत्रो मे नीचे का चूर्ण-प्रस्तर ही प्रकट होता है, ऐसी दशा में उसका विगुप्त धरातल जलपटल का समतल होता है तथा नीचे की शिलाये जल से सतृप्त (Saturated) होती है, जिससे पृष्ठ-प्रवाह नीचे नही जा पाता।

## चौदहवाँ परिच्छेद

# ग्रेनाइट भूदृश्य

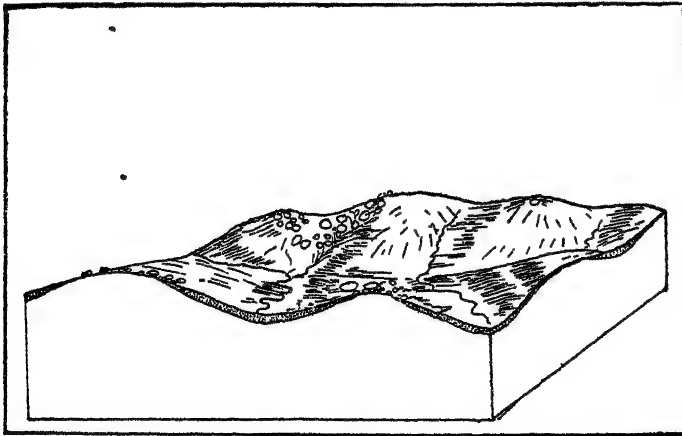
## ( GRANITE TOPOGRAPHY)

### १ ग्रेनाइट का संक्षिप्त परिचय

ग्रेनाइट एक आग्नेय शिला का नाम है। यह शिला सामान्यत सपुंजित रूपो (Massive Forms) मे पाई जाती है। यह पूर्णत मणिभीय होती है। खनिज सरचना की दृष्टि से इसमे स्फटिक (Quartz), फैलस्पार (Felspars) तथा उपखनिज (Accessory Minerals) पाये जाते है। स्फटिक १५ से ४० प्रतिशत तक होता है। फैलस्परो मे क्षार फैलस्पार अनुपात मे सोडा लाइम फैलस्पार से अधिक होते है। उपखनिजो मे बायोटाइट तथा हौर्नब्लैण्ड अधिक सामान्य है। ग्रेनाइट शिलाये अधिकतर भूरे अथवा लाल रग की होती है। इनका रग खनिज रचना पर निर्भर है। इनका औसत घनत्व लगभग २ ७ है।

### २ ग्रेनाइट भूदृश्य के लक्षण

(१) ग्रेनाइट प्रदेश की एक मुख्य विशेषता दृश्य की अभिन्नता है-भूरूप सर्वत्र एक ही सा दृष्टिगोचर होता है। बडे आकार के रूपधेय बहुत कम होते है। प्राय सर्वत्र गोल टीले अथवा पहाडियाँ बिखरी रहती है।



चित्र १५०—ग्रेनाइट भूदृश्य

(२) ऊँचे स्थानो पर तथा घाटियो के शीर्षो पर गण्डाश्म (Boulder) पाये जाते है। कुछ प्रदेशो मे जैसे जबलपुर (मध्य-प्रदेश) मे गण्डाश्म भूदृश्य की विशेषता ही नही वरन् उसके अभिन्न अग भी है।

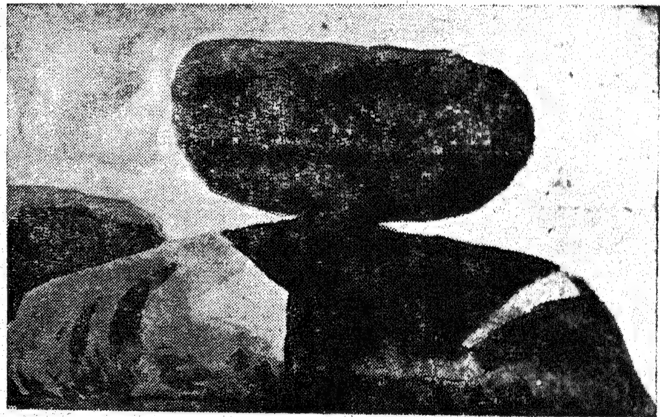
(३) ग्रेनाइट प्रदेश में जल की बहुलता होती है। झरने भी बहुत पाये जाते हैं। इन्हीं के अनुसार मानव-वसति निर्धारित होती है।

## ३. भारतीय उदाहरण

मध्य-प्रदेश (विशेषतः जबलपुर), छोटा नागपुर का पठार तथा हैदराबाद के अनेक भागों में ग्रेनाइट-भूदृश्य पाया जाता है। दक्षिणी भारत में यह भूदृश्य उन स्थानों में पाया जाता है जहाँ ग्रेनाइट-नाइस (Granite Gneiss) से बना नीचे का शिला स्तर धरातल पर प्रकट हो गया है।

## ४. ग्रेनाइट भूदृश्य के विकास के कारण

१—ग्रेनाइट प्रदेश में गोल टीले इसलिये पाये जाते हैं कि वहाँ की शिलायें टूटती रहती हैं और टूटी हुई शिला के टुकड़े ढाल के अनुसार नीचे खिसकते रहते हैं। चित्र १५१ से स्पष्ट होगा कि ग्रेनाइट निर्मित रेत का स्तर अन्य भागों की अपेक्षा घाटियों के नितल में काफी मोटा है। ग्रेनाइट में स्फटिक (Quartz) अभ्रक (Mica) तथा स्फतीय (Feldspar) रहते हैं। स्फतीय पानी में घुलनशील है। अतएव यद्यपि ग्रेनाइट शिला काफी कठोर होती है तथापि पानी के प्रविष्ट



चित्र १५१—ग्रेनाइट प्रदेश में पाये जाने वाले गण्डाश्म (Boulders)

हो जाने से वह टूटती रहती है। टूटने की यह क्रिया शिला-पृष्ठ के सभी भागों में समान रूप से होती है, जिससे उसकी आकृति क्रमशः गोल होती जाती है।

२—अन्य शिलाओं की भांति ग्रेनाइट में भी दरारें पड़ जाती हैं। इन दरारों को प्रसन्धियाँ (Diaclases) कहते हैं। ये दरारें बहुत सूक्ष्म होती हैं और तब तक दृष्टिगोचर नहीं होती जब तक विबन्धन (Decomposition) के कारण वे काफी चौड़ी नहीं हो जातीं। इन दरारों में प्रविष्ट होकर जल शिलाओं के टूटने में सहायक होता है। यही कारण है कि ग्रेनाइट प्रदेश में नष्ट होते हुए गण्डाश्म दिखलाई देते हैं। बहुधा वे अपने ही विनाश से बनी धूल में धँसे रहते हैं। टीलों पर और घाटियों में शिलाओं के नष्ट होने से बनी रेत जल-प्रवाह के साथ बह जाती हैं, जिससे गण्डाश्म अकेले दिखाई देते हैं।

## ५ जलवायु का प्रभाव

यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि ग्रेनाइट'प्रदेश मे सदैव यही भूदृश्य नही पाया जाता, जिसका पूर्व मे वर्णन हो चुका है। उस पर जलवायु का भी प्रभाव पडता है—

(१) ऊँचे पर्वतीय प्रदेशो मे गोल टीले नही पाये जाते वरन् कटी-फटी चोटियाँ अथवा विशीर्ण शिखर (Rugged Peaks) पाये जाते है। इसका कारण यह है कि अनावृत शिला पर तापक्रम के विभेदन का प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त प्रसन्धियो (Diaclases) मे प्रविष्ट पानी जब घनीभूत होता है, तब वह फैलता है। इस प्रकार शिला टूटती रहती है।

(२) उष्ण प्रदेशो मे गोल टीले तो अवश्य पाये जाते है, किन्तु उनके ढाल अपेक्षाकृत अधिक प्रपाती होते है। प्रचण्ड सूर्यातपन एव आर्द्रता के विभेदन से शिला टूटती रहती है और टूटे हुए शिलाखण्ड नीचे खिसक जाते है, जिससे ढाल प्रपाती होता जाता है।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

# मैदान

# (PLAINS)

## १ परिभाषा

परिभाषा—भूपृष्ठ के ऐसे विस्तृत क्षेत्रो को जो सामान्यत सागर समतल से ६०० फुट से कम ऊँचे होते है और जिनका धरातल समतल अथवा लगभग समतल होता है, हम 'मैदान' कहते है।

## २ उत्पत्ति और वर्गीकरण

मैदान तीन प्रकार से बनते है —

(१) अपक्षरण द्वारा
(२) सचयन द्वारा
(३) भूपर्पटी की गतियो द्वारा

### (१) अपक्षरण द्वारा मैदान का निर्माण

जब कोई पर्वत पूर्णत घिस जाता है अर्थात् उसके ऊपर बहने वाली नदियाँ अपने आधार-तल (Base Level) पर पहुँच जाती है, तब वह मैदान जैसा प्रतीत होता है। इसे हम 'समतलप्राय' ( Peneplain ) कहते है। इसके निर्माण की विस्तृत विवेचना 'अपक्षरण'-चक्र ( Cycle of Erosion ) के प्रकरण मे हो चुकी है। सक्षेप मे, पर्वत अपक्षरित होकर मैदान मे परिणत हो जाता है। ऐसे मैदान अथवा समतलप्राय में कठोर शिलाओ से निर्मित टीले, जो अपक्षरित होकर नष्ट नही होते, शेष रहते है। उन्हे हम मौनैडनोक (Monadnock) कहते हैं।

### (२) सचयन द्वारा मैदान का निर्माण

अपक्षरण के विभिन्न अभिकर्ता (जैसे हिम, वायु, जल, आदि) जहाँ भूतल के एक भाग को घिसते है, वहाँ वे दूसरे भाग मे इस घिसे हुए पदार्थ को सचित भी कर देते है। इस प्रकार सम्पन्न सचयन द्वारा कभी-कभी मैदान बन जाते है, जिन्हे हम 'सचयन के मैदान' कह सकते है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकले हुए लावा के निक्षेप से भी मैदान अस्तित्व मे आ जाते है। इनकी गणना भी 'सचयन के मैदानो' के अन्तर्गत की जा सकती है। सचयन के मैदानो के प्रमुख प्रकार निम्नाकित है —

१ नदी द्वारा सचित मैदान
२ हिमानी द्वारा सचित मैदान
३ वायु द्वारा सचित मैदान
४ झील के भराव से अस्तित्व मे आये हुए मैदान
५ आग्नेय क्रिया द्वारा सचित मैदान

## (१) नदी द्वारा सचित मैदान

ऐसे मैदानो को कछारी मैदान (Alluvial Plains) भी कहते है। नकी रचना नदियो द्वारा लाये गये अवसाद से होती है। ससार के प्रमुख मैदान सी श्रेणी के है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष मे सिन्ध-गगा का मैदान, चीन मे ह्वागहो का मैदान, उत्तरी इटली मे पो नदी का मैदान आदि।

बडी-बडी नदियाँ समुद्र मे प्रतिवर्ष लाखो टन अवसाद जमा करती है जिससे उनका मुहाना भरता रहता है और कालान्तर मे वह डेल्टा का भाग हो जाता है। इसी सदर्भ मे यह कहा गया है कि डेल्टा की प्रगति होती है (A delta advances) गगा आदि नदियाँ इस प्रकार अपने डेल्टा के क्षेत्र की अभिवृद्धि कर रही है।

## (२) हिमानी द्वारा सचित मैदान

जब हिमनदी पिघल जाती है, तब वह सभी पदार्थ जिसे वह अपने साथ परिवाहित करती रहती है, धरातल के निम्ननो मे एकत्र हो जाता है। योरप का उत्तरी मैदान बहुत कुछ हिमानी-निक्षेप से निर्मित है। इसी प्रकार यदि पूर्वी इगलैड से हिमानी के निक्षेप निकाल दिये जॉय तो उसका अधिकॉश भाग सागर के गर्भ मे चला जायगा। हिम नदियो के प्रकरण मे उत्क्षालित स्थली (Outwash Plain) के निर्माण की विवेचना हो चुकी है।

## (३) वायु द्वारा सचित मैदान

वायु द्वारा सम्पन्न निक्षेपण की क्रिया से भी मैदान बन जाते है। इसकी विस्तृत विवेचना 'वायु की क्रिया' शीर्षक प्रकरण मे की गई है। चीन का लोयस प्रदेश इसका उदाहरण है।

## (४) झील के भराव से मैदान की सृष्टि

कभी-कभी ऐसा होता है कि नदियो द्वारा लाये गये अवसादो से झीले भर जाती है और मैदान मे परिणत हो जाती है। उत्तरी अमरीका मे आज जहाँ प्रेरी का हरा भरा प्रदेश वर्तमान है, वहाँ किसी समय अगासिज (Agasizz) नाम की झील थी।

झीलो के सूंख जाने से भी मैदान बन जाते है। कैस्पियन सागर के उत्तरी भाग के सूख जाने से इस प्रकार मैदान बन गया है।

## (५) आग्नेय किया द्वारा सचित मैदान

ज्वालामुखी के उदगार से जो लावा बाहर निकलता है वह धरातल के निम्ननो मे भर जाता है और इस प्रकार कभी-कभी धरातल के पट जाने से मैदान बन जाते है। नेपिल्स के निकट विसूवियस ज्वालामुखी ने इसी प्रकार एक सुन्दर मैदान का सर्जन किया है।

लावा-निक्षेप के अपक्षरित पदार्थ के सचयन से भी मैदान बन जाते है। मिश्र को 'नील नदी की देन' (Gift of the Nile) कहा जाता है। वास्तव मे उसे 'आग्नेय क्रिया की देन' (Gift of the Igneous Activity) कहना चाहिये। अबीसीनिया के लावा-क्षेत्र का अपक्षरण कर नील नदी मिश्र मे उपजाऊ भूमि का सचयन करती है। नील नदी का कार्य तो केवल परिवाहक का है, वास्तविक दाना

तो आग्नेय-क्रिया है, अतएव मिश्र को आग्नेय-क्रिया की देन कहना चाहिये न कि नील नदी की देन।

## (३) भूपर्पटी की गतियों के फलस्वरूप मैदान का निर्माण

कभी-कभी भूपर्पटी की गतियो के कारण महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf) ऊपर उठ जाता है, जिससे तटीय मैदान अस्तित्व मे आ जाते है। सयुक्त राज्य अमरीका का द० पू० भाग इसी प्रकार बना है।

कभी-कभी भूपर्पटी की गतियो से झीलो का नितल ऊपर उठ जाता है और मैदान का रूप ले लेता है।

## ४ पृष्ठ की प्रकृति के अनुसार वर्गीकरण

इस दृष्टि से त्रिवर्था ने मैदानो को ४ श्रेणियो मे विभाजित किया है—

(१) **समतल मैदान** (Flat Plain)—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो के समतलो का अन्तर ५० फुट से कम होता है।

(२) **विषम मैदान** (Undulating plain)—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो के समतलो का अन्तर ५० से लेकर १५० फुट तक होता है और ढाल नियमित होते है।

(३) **ढालेदार मैदान** (Rolling plain)—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो के समतलो का अन्तर १५० फुट से लेकर ३०० फुट तक होता है। इसमे ढाल प्रपाती हो सकते है।

(४) **पहाडी मैदान** ( Rough dissected plain )—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो के समतलो का अन्तर ३०० फुट से लेकर ५०० फुट तक होता है। यह नदी-नालो के कारण कटा-फटा होता है।

## ५. मैदानों की मानवीय महत्ता

इतिहास के अध्ययन से विदित होता है कि सभ्यता का विकास मैदानो में ही हुआ है। ससार के सबसे अधिक धनधान्यपूर्ण एव उन्नत प्रदेश मैदान ही है। ससार की सबसे अधिक जनसख्या मैदानो में रहती है, ससार के सबसे बडे नगर मैदानो मे स्थित है, तथा कृषि उद्योग और यातायात के सर्वश्रेष्ठ केन्द्र मैदानो मे ही है।

### मानव-वसति (Human Settlement) की सुविधा

पर्वतो मे खनिज और वनो की उपज भले ही प्रचुर परिमाण मे प्राप्त हो किन्तु मानव-वसति के लिये वे सर्वथा अनुपयुक्त है। ससार की तीन-चौथाई जनसख्या मैदानो मे इसीलिये रहती है कि उसे वहाँ जीवन यापन की प्रत्येक सुविधा है। ससार के खाद्योत्पादन का ८०%से भी अधिक भाग मैदान प्रदान करते है।

### कृषि की सुविधा

प्राय प्रत्येक प्रकार के मैदान की भूमि उपजाऊ होती है। नदी द्वारा निर्मित सिन्ध-गगा का मैदान, वायु द्वारा निर्मित चीन का लौयस प्रदेश, आग्नेय क्रिया की देन मिश्र का डेल्टा-क्षेत्र, झील के निक्षेप से निर्मित कैस्पियन सागर का उत्तरी भाग—सभी अत्यन्त उर्वर होने के कारण—कृषि के लिये विशेष अनुकूल हैं। कृषि की दृष्टि से मैदानो मे एक सुविधा यह भी होती है कि वे समतल होते है, जिससे उनकी

भूमि अपक्षरित होकर बहने नही पाती प्रत्युत क्रमश एक के बाद दूसरा स्तर एकत्र होता रहता है। समतल होने के कारण उनमे सिंचाई की भी सुविधा होती है। सिन्ध-गगा के मैदान मे नहरो का जाल सा बिछा हुआ है। यदि यह क्षेत्र मैदान न होता तो नहरो की स्थापना दुष्कर होती।

## आवागमन की सुविधा

समतल होने के कारण मैदानो मे सडके और रेलमार्ग सरलता से बनाये जा सकते है। अधिकाँश मैदानो मे नदियाँ तो होती ही है, वे प्राकृतिक आवागमन के पथ का कार्य करती हैं।

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है मैदान घनधान्य से सम्पन्न होते है, जिससे उनमे आक्रमण होते रहते है। आक्रमणकारियो को मैदानो मे प्रविष्ट होने के लिये कोई भौतिक बाधा नही पडती क्योकि वे समतल होते है। इस प्रकार मैदानो के माध्यम द्वारा जातियो, सभ्यताओ भाषाओ, और सस्कृतियो का परस्पर सम्मिलन होता रहता है।

# सोलहवाँ परिच्छेद

# पठार

# (PLATEAUS)

## १. परिभाषा

ऐसे चौड़े, प्राय समतल और विस्तृत स्थलखण्ड को जो सागर पृष्ठ से ६०० फ़ुट से अधिक ऊँचा हो हम पठार कहते है।

## २ पठारों का वर्गीकरण

पठारो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है.—

(१) उत्पत्ति के विचार से
(२) पृष्ठ की प्रकृति के विचार से
(३) स्थिति की विचार से
(४) जलवायु के विचार से
(५) आकृति के विचार से

### (१) उत्पत्ति के विचार से वर्गीकरण

उत्पत्ति की दृष्टि से हम पठारो को मुख्यत दो विभागो मे विभाजित कर सकते है —

(१) **सरल अथवा साधारण पठार**—इस श्रेणी के अन्तर्गत वे पठार आते है, जिनका निर्माण किसी एक अभिकर्ता से हुआ हो जैसे—

(क) हिमानी-निर्मित पठार—इसका उदाहरण कश्मीर मे पाये जाने वाले 'मार्ग' (Marg) है, जिनकी रचना अन्त्य हिमोढ (Terminal Moraines) से हुई है।

(ख) आग्नेय क्रिया द्वारा निर्मित पठार—इसके पुन दो उपविभाग किये जा सकते है —

(i) अन्तर्वर्ती पठार ( Intrusive Plateaus )—इनका निर्माण भूपृष्ठ के नीचे होता है। कालान्तर में जब अपक्षरण द्वारा इनके ऊपर का जलज शिलाओं का आवरण नष्ट हो जाता है, तब ये प्रकट हो जाते हैं। उदाहरण—छोटा नागपुर का पठार।

(ii) बहिर्वर्ती पठार—( Extrusive Plateaus )—जब पृथ्वी के अन्दर का लावा आग्नेय क्रिया द्वारा भूपृष्ठ पर आकर पठार के रूप मे सञ्चित हो जाता है, तब उसे हम बहिर्वर्ती-पठार कहते हैं। उदाहरण- डैकन ट्रैप (Deccan-Trap )।

(ग) वायुनिर्मित पठार—ये पठार वायु के परिवाहन एव निक्षेपण से बनते है। रावलपिंडी का पोटवार नामक पठार इसका सुन्दर उदाहरण है।

(घ) जल द्वारा निर्मित पठार—नदियाँ समुद्र मे अपने अवसाद एकत्र करती रहती है, जो कालान्तर मे शिलाओ का रूप ले लेते है। कभी-कभी भूपर्पटी की गतियो के कारण ये शिलास्तर पठार के रूप मे ऊपर आ जाते है। विन्ध्य का पठार इसका उदाहरण है।

(२) **मिश्रित अथवा जटिल पठार**—इनका निर्माण अनेक अभिकर्ताओ की सयुक्त क्रिया से होता है। उदाहरणार्थ-भारतवर्ष के दक्षिणी पठार मे सभी प्रकार की शिलाये—आग्नेय जलज एव परिवर्तित पाई जाती है। इनके निर्माण के लिये आग्नेय क्रिया एव जल दोनो ही अभिकर्ता उत्तरदायी है।

## (२) पृष्ठ की प्रकृति के अनुसार पठारो का वर्गीकरण

इस दृष्टि से डा० चिब्बर ने पठारो के दो विभाग किये है —

(१) उत्थली (Plateau)—इनका धरातल विषम होता है।

(२) गिरिप्रस्थ (Tableland)—इनका पृष्ठ समतल होता है।

## (३) स्थिति के अनुसार वर्गीकरण

इस दृष्टि से पठारो के अनेक विभाग किये जा सकते है, जैसे—

(१) **अन्तर-पर्वतीय पठार** ( Intermont Plateaus )—ऐसे पठार चारो ओर से पर्वतो द्वारा घिरे होते है जैसे तिब्बत का पठार।

(२) **पर्वतपदीय पठार** (Piedmont Plateaus)—इन पठारो के एक ओर पर्वत होते है और दूसरी ओर मैदान अथवा सागर। उदाहरणार्थ दक्षिणी अमरीका का पैटागोनिया का पठार जो एण्डीज पर्वत और अटलॉटिक महासागर के मध्य मे स्थित है।

(३) **महाद्वीपीय पठार** ( Continental Plateaus )—ये सागर अथवा निचले प्रदेशो पर अकस्मात ऊपर उठे रहते है और इनका क्षेत्रफल सहस्रो वर्ग मील होता है। उदाहरण—दक्षिणी अफ्रीका का पठार।



चित्र १५२—अन्तर्पर्वतीय पठार

(४) **तटीय पठार** ( Coastal Plateaus )—ये तट पर स्थित होते है, जैसे भारतवर्ष मे कारोमण्डल का पठार।

## (४) जलवायु के अनुसार वर्गीकरण

जलवायु के विचार से पठारो के अनेक विभाग किये जा सकते है, जैसे—

(१) **मरुस्थलीय पठार** (Arid Plateaus)—रावलपिण्डी का पोटवार नामक पठार इसी श्रेणी का है। यह मरुस्थल मे स्थित है।

(२) **आर्द्र पठार** (Humid Plateau)—जो आर्द्र-जलवायु के प्रदेश में पाये जाते हो। उदाहरण—आसाम का पठार।

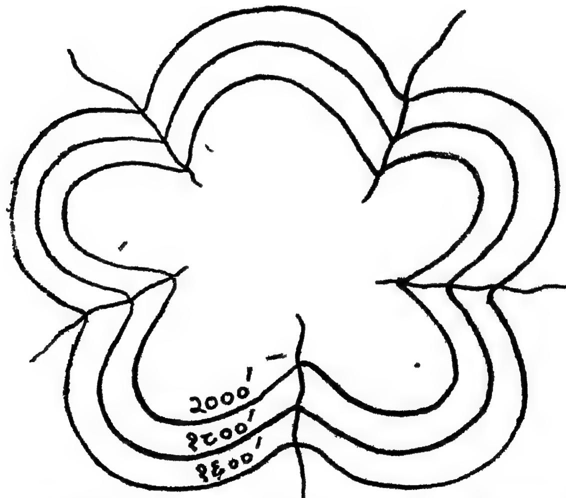
(३) हिम पठार (Ice Plateaus)—ये ध्रुवीय जलवायु के प्रदेश में पाये जाते है। उदाहरण-ग्रीनलैण्ड का पठार। आदि आदि

## (५) आकृति के अनुसार वर्गीकरण

इस दृष्टि से भी पठारो का विभाजन किया जा सकता है—जैसे—

(१) गुम्बदाकार पठार (Dome Shaped Plateaus)—इनका बाह्य पृष्ठ गुम्बद के सदृश गोलाकार होता है। उदाहरण—छोटा नागपुर।

(२) कटे-फटे पठार ( Dissected Plateaus )—ऐसे पठार नदी नालो से कटे होते है। चित्र १५३ से यह कथन स्पष्ट होगा। आसाम का पठार इसका सुन्दर उदाहरण है।




चित्र १५३—कटाफटा पठार (Dissected Plateau)

(३) सीढीदार पठार ( Step like Plateaus )—जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है इनका धरातल सीढियो के अनुरूप होता है। उदाहरण—मिर्जापुर के दक्षिण मे विन्ध्य का पठार।

(४) पुनर्युर्वीभूत समतलप्राय (Rejuvenated Peneplains)— इसकी व्याख्या 'अपक्षरण-चक्र' के प्रकरण में हो चुकी है। अरावली प्रदेश इसका उदाहरण है। आदि आदि

## ३ पठारों की मानवीय महत्ता

### लाभ

पठारो से मनुष्यो को अनेक लाभ है, जैसे—

(१) ससार के अनेक पठारो के अपक्षरण से प्राप्त भूमि कृषि के लिये वहु-मूल्य सिद्ध हुई है। दक्षिणी भारत का काली मिट्टी का प्रदेश कपास के उत्पादन के लिये आदर्श है।

(२) अनेक पठारो पर जल सचित किया गया है। भ्वाकृष्टि-नहरो (Gravity canals) द्वारा यह जल सिचाई के कार्य मे लाया जाता है।

(३) अनेक विषम एव आर्द्र पठारो मे (जैसे आसाम के पठार मे) जलप्रपात पाये जाते है। इनसे विद्युत उत्पन्न की जा सकती है।

(४) आग्नेय क्रिया से निर्मित पठार आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष के दक्षिणी पठार मे अनेक बहुमूल्य खनिज जैसे—लोहा, सोना, मैंगनीज, आदि पाये जाते है।

(५) अनेक पठारो से इमारती पत्थर निकाले जाते है।

### दोष

मानव-वसति के दृष्टिकोण से निम्नलिखित पठार व्यर्थ है —

(१) जिनकी जलवायु अस्वास्थ्यकर हो
(२) जिनकी भमि उपजाऊ न हो
(३) जो अत्यन्त कटे फटे हो
(४) जो अत्यधिक ऊँचे हो

# सत्रहवाँ परिच्छेद

# पर्वत

# (MOUNTAINS)

## १ परिभाषा

ऐसे स्थलखण्ड को—

(१) जो अपने चारो तरफ के क्षेत्र की अपेक्षा यथेष्ट ऊँचा हो

(२) जिसकी चोटी का क्षेत्रफल आधार से कम हो और

(३) जिसकी ऊँचाई पहाडी से अधिक हो, हम पर्वत कहते है। पहाड और पहाडी मे केवल ऊँचाई का अन्तर है। पहाडी की ऊँचाई ३००० फुट से कम होती है और पहाड की अधिक।

## २ पर्वतों का वर्गीकरण

पर्वतो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है—

(१) उत्पत्ति के विचार से

(२) आयु के विचार से

(३) भौगोलिक व्यवस्था के अनुसार

### (१) उत्पत्ति के विचार से पर्वतो का वर्गीकरण

उत्पत्ति के विचार से हम पर्वतो को चार भागो मे बाँट सकते है —

(१) भजित (Folded) पर्वत

(२) इष्टिका (Block) पर्वत

(३) ज्वालामुखीय पर्वत

तथा (४) अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountains) अथवा अनावृतीकरण (Denudation) के पर्वत।

### (१) भजित पर्वत (Folded Mountains)

पार्श्विक दबाव के कारण भूपर्पटी के मुड जाने से ये अस्तित्व मे आ जाते हैं। इनके बनने की दो विधियाँ है —(१) कभी-कभी भूपर्पटी के दो विशाल खण्ड एक दूसरे के निकट आते है (२) कभी-कभी एक ही खण्ड दूसरे स्थायी खण्ड की ओर गतिशील होता है। भूपर्पटी की गतियो के प्रकरण मे भजन (Folding) की विभिन्न प्रकारो की विवेचना हो चुकी है। पृथ्वी के इतिहास मे कम से कम तीन ऐसे काल अवश्य हुए हैं, जिनमे भजित पर्वत-श्रेणियाँ अस्तित्व में आई हैं। भजित श्रेणियो के अन्तर्गत वे सभी पर्वत आ जाते है जो भजन के फलस्वरूप बने हैं—चाहे वे पुराने हो अथवा नवीन। हिमालय, आल्प्स, पिरेनीज आदि सभी भजित पर्वत-श्रेणियाँ है। जहाँ तक हिमालय की निर्माण-क्रिया का सम्बन्ध है, इस दशा मे बल उत्तर की ओर से लगा और प्रायद्वीपीय भारत ने उसे रोका।

## (२) इष्टिका पर्वत (Block Mountains)

भूपर्पटी की गतियो के प्रकरण मे विभगन (Faulting) के वृत्त ( Phenomena ) की विवेचना हो चुकी है। उसी सन्दर्भ मे 'होर्स्ट' ( Horst ) अथवा इष्टिका पर्वत ( Block mountain) का भी उल्लेख हुआ है। 'होर्स्ट' दो सामान्य विभगो के बीच मे ऊपर उठा हुआ स्थल-खण्ड है। यह दो रीतियो से बनता है—(१) या तो विभगो के बीच का स्थल-खण्ड उठ जाता है या (२) विभगो के बाहर के स्थल-खण्ड नीचे धँस जाते है। स्पष्ट है, कि इष्टिका पर्वत ( Block mountain ) के किनारे ढालू होगे।

## (३) ज्वालामुखीय पर्वत (Volcanic Mountains)

ज्वालामुखी के उदगार से निकला हुआ पदार्थ उसके मुख के चारो ओर सचित हो जाता है और पर्वत का निर्माण करता है। ऐसे पर्वत का विस्तार और ऊँचाई लावा की प्रकृति पर निर्भर है। आम्लिक लावा मे सिलिका ( Silica ) की मात्रा अधिक होती है, जिससे वह गाढा होता है अतएव वह दूर तक नही बह पाता। इसका उदाहरण मार्टनिक का पेली नामक पर्वत है। इसके विपरीत क्षारीय लावा मे सिलिका की मात्रा कम होती है, जिससे वह पतला होता है और दूर तक बह जाता है। इसके निक्षेपण से जो पर्वत बनते है, उनका ढाल बडा ही मन्द होता है। उदाहरणार्थ हवाई द्वीपसमूह मे स्थित मोनालोआ नामक ज्वालामुखीय पर्वत का ढाल। केवल ५° है, यद्यपि उसका व्यास १०० मील के लगभग है।

## (४) अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountains)

जब कोई क्षेत्र समुद्र के गर्भ से उठकर ऊपर आता है, तब उसे प्रकृति के विभिन्न अभिकर्ता जैसे वायु, हिम, जल आदि घिसना आरम्भ कर देते है। सभी शिलाये एक ही गति से नही घिसती है—कुछ शिलाये कठोर होती है और कुछ कोमल। परिणाम यह होता है कि कालान्तर मे प्रदेश के कठोर भाग पर्वतो के रूप मे अवशिष्ट रह जाते है और मृदुल भाग घिसकर घाटियो का रूप ले लेते है। महादेव, सतपुडा आदि ऐसे ही अवशिष्ट पर्वत है।

## (२) आयु के विचार के पर्वतो का वर्गीकरण

पृथ्वी के भौमिकीय इतिहास मे कम से कम तीन ऐसे युग अवश्य हुए है, जिनमे पर्वत बने है—

(१) कैलिडोनियन ( Caledonian )—यह गिरि-निर्माण-काल सिलूरो-डिवोनियन (Siluro-Devonian) युग मे हुआ। उत्तरी आयरलैण्ड, स्कॉटलैण्ड तथा स्कैण्डिनेविया के पर्वत इसके अन्तर्गत है।

(२) अल्टायड, वैरिस्कन, आरमोरिकन अथवा हरसीनियन—यह गिरि-निर्माणकाल परमो-कारबौनिफैरस (Permo-Carboniferous ) युग मे हुआ। इसके अन्तर्गत उत्तरी अमरीका का अपैलेशियन, इगलैड का पैनाइन्स, फ्रास का सेन्ट्रल मासिफ, बोहेमिया का पठार, द० अफ्रीका की अन्तरीप श्रेणियाँ एव एशिया का अल्टाई पर्वत आदि आते है।

(३) टरशरी ( Tertiary ) अथवा अल्पाइन ( Alpine )—जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह गिरि-निर्माण काल तृतीयक युग ( Tertiary Period ) के आरम्भ मे हुआ। आल्प्स, हिमालय, रॉकी एण्डीज आदि पर्वत इसी के अन्तर्गत है। यह तो प्रकट ही है कि ये पर्वत सबसे कम आयु के है।

## (३) भौगोलिक व्यवस्था के अनुसार वर्गीकरण

वौरसेस्टर ने पर्वतो का एक अन्य वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जो भौगोलिक व्यवस्था पर आधारित है। इसके अनुसार पर्वतो के निम्नलिखित भेद हैं —

(१) कॉडिलैरा (Cordilleras)
(२) प्रणालियाँ (Systems)
(३) श्रेणियाँ (Ranges)
(४) श्रखलाये (Chains)
(५) समूह (Groups)
तथा (६) एकाकी पर्वत (Isolated individual units )

### (१) कॉर्डिलैरा (Cordilleras)

कॉडिलैरा एक सामान्य उच्च भूमि का प्रदेश है जो बहुत सी पर्वत-प्रणालियों ( Systems ) से बना होता है। इन प्रणालियो मे उत्पत्ति और आयु की दृष्टि से बडे अन्तर होते हैं। इसका उदाहरण सयुक्त राज्य अमरीका के उत्तर पश्चिम मे स्थित कार्डिलैरा पर्वत है।

### (२) पर्वत प्रणाली (Systems)

पर्वत-प्रणाली बहुत सी ऐसी श्रखलाओ (Chains) और समूहो (Groups) से मिलकर बनती है, जिनकी उत्पत्ति और आयु मे घनिष्ट सम्बन्ध होता है। उदाहरण—अपैलेशियन प्रणाली।

### (३) पर्वत श्रेणी (Ranges)

जब पर्वत लम्बी और सकरी पट्टियो मे व्यवस्थित होते हैं तब हम उन्हे श्रेणी (Ranges) कहते है। आयु और उत्पत्ति की दृष्टि से ये परस्पर सम्बन्धित होती हैं। यह सभव है, कि शिलाओ की सरचना मे स्थानीय विभेदन हो, किन्तु सम्पूर्ण श्रेणी का भौम्याकारिकीय इतिहास (Physiographic history) एक सा होता है। उदाहरण—हिमालय।

### (४.) पर्वत समूह (Mountain groups)

अनेक उच्च-स्थलखण्ड ऐसे पर्वतो से मिलकर बनते हैं, जिनमें कोई व्यवस्था नही होती। ऐसे पर्वतो को पर्वत-समूह कहना ही उचित होगा। इसका एक सुन्दर उदाहरण सयुक्त राज्य अमरीका के सान जुआन पर्वत हैं, जो कौलैरैडो के द० प० भाग में स्थित है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल कई सहस्र वर्ग मील है और इसमे कई सौ ऊँचे पर्वत है, किन्तु उनमे कोई व्यवस्था नही है। लाखो वर्ष पहले यह प्रदेश गुम्बद के रूप मे उठा था, तदनन्तर ज्वालामुखीय शिलाओ के हजारो फुट ऊँचे स्तर ने इसे ढक लिया और अन्त मे नदियो एव हिमनदियो ने इसे काटकर अव्यवस्थित पर्वत समूह का स्वरूप प्रदान कर दिया।

### (५) पर्वत श्रृखला (Mountain Chains)

उद्गम एव आयु की दृष्टि से असमान पर्वत जब लम्बी और सकरी पट्टियो मे पाये जाते है, तब उन्हे हम पर्वत-श्रखला कहते है। श्रखला शब्द ज्वालामुखियो के लिये विशेषरूप से प्रयुक्त होता है जैसे हवाई, अल्यूशियन अथवा जापान के ज्वालामुखी।

### (६) एकाकी अथवा एकलित पर्वत (Isolated Mountains)

अकेले इक्के-दुक्के पर्वत अपवाद की दशा मे पाये जाते है। इनकी उत्पत्ति अधिकाशत ज्वालामुखोय क्रिया अथवा विस्तृत अपक्षरण से होती है।

## ३. पर्वतों को मानवीय महत्ता

### (Human importance of mountains)

पर्वतो से हानि और लाभ दोनो है। जहाँ मानव-वसति (Human Settlements) के लिये पर्वत अनुपयुक्त है, वहाँ वे प्राकृतिक साधनो के भव्य भण्डार है। पर्वतो के महत्व पर ग्रन्थ लिख जा सकते है। यहाँ पर केवल सकेत मात्र ही सभव है।

### (१) प्रतिरक्षा (Defence)

पर्वतो से एक बडा लाभ यह है कि वे प्राकृतिक किले बन्दी के रूप मे देश की रक्षा करते है। प्राचीनकाल मे इस दृष्टि से इनका महत्व बहुत था। आधुनिक युग मे विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है, कि वे अवरोधक के रूप मे अधिक प्रभावशाली नही रह गए है।

### (२) जलवायु

पर्वतो का जलवायु पर बडा प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध मे केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। यदि भारतवर्ष के उत्तर मे हिमालय पर्वत न होता, तो सिन्ध-गगा का मैदान, जो आज जगत के सबसे अधिक धनधान्यपूर्ण मैदानो मे से एक है, मरूस्थल होता।

### (३) आर्थिक महत्ता

पर्वतो से जलविद्युत, खनिज, लकडी एव वनो की विविध उपजे उपलब्ध होती है।

### (४) स्वास्थ्य मनोरजन एव अध्ययन के साधन

नैसर्गिक सौन्दर्य की अनुभूति के लिये प्रतिवर्ष सहस्त्रो व्यक्ति पर्वतो पर जाते है। कवियो, दार्शनिको, एव कलाकारो को पर्वतीय दृश्यो से प्रेरणा मिलती है। भूगोलवेत्ताओ, भूगर्भवेत्ताओ एव प्राणीशास्त्रवेत्ताओ के लिये पर्वतो मे अनुसन्धान का विशाल क्षेत्र पडा हुआ है। धनिक वर्ग के सुकुमार व्यक्ति मैदान की ग्रीष्मकालीन कडी धूप से घबराकर नैनीताल, मसूरी आदि मे शरण लेते है। शिकारी शिकार के लिये और वैद्य जडी बूटियो की खोज मे पर्वतो मे भ्रमण करते है।

## (५) कृषि एव आवागमन के विचार से

धरातल के पथरीले एव विषम होने के कारण पर्वतो मे कृषि का क्षेत्र बडा ही सीमित होता है। एक निश्चित ऊँचाई तक ही खेती सभव है, अधिक ऊपर ्तापक्रम इतना कम होता है कि कृषि किसी प्रकार भी सभव नही है। भूमि के ्अपक्षरण को रोकने के लिये पर्वतीय क्षेत्रो मे उत्तलो (Terraces) की व्यवस्था करनी पडती है। पर्वतीय प्रदेश के सीमित साधन वहाँ के निवासियो को परिश्रमी बना देते है।

पर्वतो मे आवागमन बडा कठिन होता है। पर्वतीय प्रदेशो मे सडके और रेल मार्ग बनाना दुष्कर एव व्ययजन्य कार्य है। भारतवर्ष और ब्रह्मा के बीच मे पर्वतश्रेणियाँ होने से ऐसा कोई भी रेल मार्ग नही है जो इन मित्र राष्ट्रो को मिलाये।

## (६) प्रथक्कारी प्रभाव (Isolating Influence)

पर्वतो के बीच मे आ जाने से लोग परस्पर सम्पर्क मे नही आ पाते। इसका एक सुन्दर उदाहरण मध्य योरप है जहाँ पर्वतो के बीच मे आ जाने से अनेक भाषायें विकसित हो गई है।

## अट्ठारहवाँ परिच्छेद

# झीलें

## (LAKES)

### १ परिभाषा

पृथ्वी के स्थलखण्डो के उन प्राकृतिक निम्ननो (Depressions) को, जिनमे पानी भरा रहता है, हम 'झील' कहते है।

### २ वितरण

विषुवतरेखा से लेकर ध्रुवो तक प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक जलवायु मे झीले पाई जाती है।

### ३ विस्तार

विस्तार अथवा क्षेत्रफल की दृष्टि से झीले नैनीताल की झील से लेकर, जिसका



चित्र १५५—नैनीताल की झील

क्षेत्रफल केवल एक चौथाई वर्ग मील है, कैस्पियन सागर तक के आकार की, जिसका क्षेत्रफल १७०,००० वर्गमील है, पाई जाती है।

### ४ संसार की कुछ उल्लेखनीय झीलें

ससार की कुछ झीले स्थिति, आकृति, विस्तार अथवा गहराई की दृष्टि से उल्लेखनीय है। उत्तरी अमरीका की पॉच वृहद झीले—सुपीरियर, ह्यूरन, मिशीगन, एरी और औण्टेरियो—भूमण्डल मे सबसे महत्वपूर्ण झील-श्रृंखला का निर्माण करती

हैं। पेरु एव बोलिविया की टिटीकाका नामक झील ससार की बड़ी झीलों मे सर्वोच्च है। कैम्पियन सागर विस्तार मे सबसे बडा हे। साइबेरिया की बैकाल नामक झील सबसे अधिक गहरी हे। सबसे अधिक निम्नतल की झील कृष्णसागर है। सूडान की चैड नामक झील यद्यपि गहराई मे केवल ८ से १२ फुट है, तथापि वह ऋतुओं के अनुसार पृष्ट-विस्तार के विभेदन की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ग्रीष्म ऋतु में उसके जलपृष्ठ का क्षेत्रफल केवल १०,००० वर्ग मील रह जाता है, किन्तु वर्षा ऋतु म इसका विस्तार ५०,००० वर्ग मील हो जाता है।

अन्य दृष्टियो से भी कुछ झीलो का बडा महत्व है। उदाहरण के लिये भूगोल और भूगर्भ दानो क्षेत्रो मे दक्षिणी अफ्रीका की झीलों की उत्पत्ति विवाद का विषय रहा है। यह तो अव निश्चित हो चुका है, कि उनकी उत्पत्ति विभगन की क्रिया से हुई हे, किन्तु य दरार-घाटियाँ कैसे बना—इस सम्बन्ध म अनेक मत हैं। मनोरंजन की दृष्टि से कश्मीर और स्विटजरलैण्ड की झीले अग्रगण्य हैं। इसके अतिरिक्त अनेक झीलो की ऐतिहासिक महत्ता है जैसे जैनेवा झील। इसका मुख्य कारण उसकी स्थिति है।

## ५. भारतीय झीलें

भारतवर्ष मे झीलो का अभाव है; जो थोड़ी सी हैं भी, उनमे कोई भी बहुत विस्तृत नही है।

कुछ प्रमुख भारतीय झीलो का परिचय नीचे दिया जा रहा है —

### (क) अप्रायद्वीपीय भारत

#### (१) हिमालय प्रदेश

इस प्रदेश की झीलो मे मानसरोवर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका क्षेत्रफल लगभग २०० वर्ग मील है। सतलज और सिन्धु नदियाँ यही से निकलती हैं।

#### (२) कश्मीर की झीलें

कश्मीर की झीलो में वुलर और डल प्रमुख हैं। वुलर झील का क्षेत्रफल लगभग ४४ वर्ग मील है। इसमे झेलम नदी गिरती है और फिर बाहर निकल आती है। डल झील लगभग ५ मील लम्बी और २ मील चौडी है। यह श्रीनगर के पूर्व में स्थित है।

#### (३) कुमायूँ की झीलें

इनमे मुख्य निम्नलिखित है —

(१) नैनीताल—इसकी महत्ता इसी से प्रकट है, कि इस पर स्थित नगर का नाम भी नैनीताल पड गया है। यह नगर उत्तर प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी है। इस नगर के सौन्दर्य का केन्द्र विन्दु यही झील है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई चौडाई और गहराई क्रमश लगभग ४॥ हजार फुट, १॥ हजार फुट और ८७ फुट है। दक्षिण-पश्चिमी किनारे को छोडकर जहाँ से बलिया नदी निकली है—यह प्राय सभी ओर से पर्वतो से घिरी है।

(२) भीमताल—कुमायूँ प्रदेश की यह दूसरी उल्लेखनीय झील है। यह काठगोदाम से ६ मील उत्तर की ओर स्थित है। इसकी आकृति त्रिभुज जैसी है। इसकी लम्बाई, चौडाई और गहराई क्रमश लगभग ६ हजार, १॥ हजार और ८७

फुट है। इसके उत्तर मे नौली गदना नामक एक छोटी नदी गिरती है और पूर्व से भीमताल गढेरा निकलती है। इस झील मे एक द्वीप भी है, जिसकी रचना ज्वालामुखीय शिलाओ से हुई है।

(३) **नौकछिया ताल**—भीमताल से २॥ मील दक्षिण-पूर्व मे नौकछिया ताल है। इसके नाम की यही पृष्ठभूमि है, कि इसमे नौ कोने और नौ कछारे है। इसकी लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई क्रमश लगभग ३१०० फुट, २३०० फुट और १३० फुट है। प्रकट है, कि कुमायूँ की झीलो मे यह सबसे अधिक गहरी है।

(४) **सतताल**—भीमताल के उत्तर-पश्चिम मे सतताल नामक सात झीलो का एक वर्ग था, जिनमे से अब केवल तीन शेष रह गई है।

### (ख) प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत मे खारे और स्वच्छ जल की अनेक झीले है। इनमे लोनार, चिल्का और पुलिकट प्रमुख है।

(१) **लोनार झील**—बम्बई प्रदेश के बुल्दाना जिले मे स्थित है। आकृति मे यह वृत्ताकार है। इसका व्यास लगभग ६ फर्लाग है। इसकी गहराई लगभग ३०० फुट है। इसमे पाये जाने वाले लवण सोडियम कार्बोनेट और सोडियम बाइकार्बोनेट है, जो कॉच बनाने के काम आते है।

(२) **चिल्का झील**—उडीसा प्रदेश की सबसे बडी झील है। इसका अधिकॉश भाग पुरी जिले मे पडता है। इसकी आकृति रुचिफलाकार (Pear shaped) है। इसकी लम्बाई लगभग ४५ मील है और क्षेत्रफल मे ऋतुओ के अनुसार ३॥ सौ वर्गमील से लेकर ४॥ सौ वर्ग मील तक विभेदन होता है। इसकी औसत गहराई ५-६ फुट है। यह कही भी १२ फुट से अधिक गहरी नही है। इसकी उत्पत्ति के विषय मे यह धारणा है कि पहले यह एक छोटी खाडी थी जो कालान्तर मे बालू की जिह्वा (Spit) द्वारा सागर से पृथक हो गई है। एक सकरे जलमार्ग द्वारा यह सागर से अभी तक मिली हुई है।

(३) **पुलिकट झील**—यह मद्रास के तट पर स्थित है। वास्तव मे यह एक उथला उपहृद (Lagoon) है। इसकी लम्बाई ३७ मील है। श्री हरिकोट द्वीप इसे सागर से पृथक करता है।

## ६ झीलों की उत्पत्ति

उत्पत्ति की दृष्टि से झीलो को सात विभागो मे बॉटा जा सकता है —

### १. भूपर्पटी की गतियो से बनी झीले

(१) नवनिर्मित स्थलखण्ड की झीले
(२) विभगन से बनी झीले
(३) भजन से बनी झीले
(४) निमज्जन से बनी झीले
(५) स्थल-सर्पण से बनी झीले

### २ ज्वालामुखीय झीले

(१) लावा के विषम निक्षेपण से बनी झीले

(२) लावा के बाँध से बनी झीले
(३) परिमृत ज्वालामुख मे पानी भर जाने से बनी झीले

### ३ नदी की क्रिया से निर्मित झीले

(१) वृषभ-धनु-झीले (Ox-bow Lakes)
(२) शरावक झीले (Saucer Lakes)
(३) कछारी-व्यजन ( Alluvial fans ) के बाँध से बनी झीलें
(४) लट्ठो के बाँध से बनी झीले
(५) डेल्टा की झीले

### ४ हिमानी निर्मित झीले

(१) हिमोढ (Moraine) की झीले
(२) हिमानी के अपक्षरण से बनी झीले
(३) गड्ढो की झीले (Pit Lakes)
(४) चमकती हुई झीलें (Glint Lakes)
(५) हिम के बाँध से बनी झीले
(६) हिमोढ के बाँध से बनी झीले

### ५. वायु की क्रिया से बनी झीले

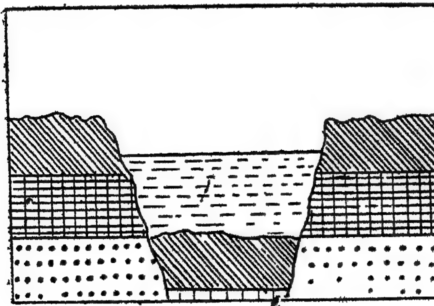
(१) बालुका-कूटो से बनी झीले
(२) प्लाया (Playa) झीले
(३) विषम वायु-निक्षेप की झीले

६ घोल से बनी झीले
७ सागर-जल की गतियो से बनी झीले
अब हम इनकी विवेचना करेंगे—

## १ भूपर्पटी की गतियो से बनी झीले

### (१) नवनिर्मित स्थलखण्डो की झीलें

जब सागर नितल का कोई भाग समुदवर्तन (Diastrophism) के कारण ऊपर उठता है, तब उसका धरातल सदैव समतल नही होता। प्राय उसमे कुछ गड्ढे होते हैं, जिनमे वर्षाजल भर जाता है। इस प्रकार झीले अस्तित्व मे आ जाती है। ऐसी झीले कम गहरी होती हैं। कारोमण्डल के तट पर इस प्रकार की अनेक झीले पाई जाती है।



चित्र १५६—दरारी झील

## (२) विभगन (Faulting) से बनी झीले

कभी-कभी विभगन के फलस्वरूप दरार-घाटियाँ बन जाती है। जब उनमे पानी भर जाता है, तब वे झील का रूप ग्रहण कर लेती है। दक्षिणी अफ्रीका की झीले इसी प्रकार बनी है। नैनीताल के विषय मे भी विद्वानो के एक वर्ग का यह कथन है, कि इस झील की उत्पत्ति विभगन से हुई है।

## (३) भजन (Folding) से बनी झीले

जब दो दिशाओ मे जो परस्पर समकोण बनाती हो, एक साथ ही भजन की क्रिया सम्पन्न होती है, तब दोनो की भजद्रोणियो ( Synclines ) के मिल जाने से निम्नन ( Depression ) बन जाता है। जब उसमे पानी भर जाता है, तो वह झील का रूप ले लेती है। स्विटरजरलैण्ड की जैनेवा नामक प्रसिद्ध झील भजन का ही फल है।

## (४) निमज्जन (Subsidence) से बनी झीले

कभी-कभी भूकम्प अथवा अन्य कारणो से भूपर्पटी का कोई भाग अचानक नीचे धँस जाता है। इस धँसे हुए भाग मे पानी भर जाने से झीले बन जाती है। सन् १८१९ ई० मे कच्छ के भूकम्प के समय स्थल का बहुत सा भाग नीचे धँस गया था। इसमे पानी भर जाने से एक वृहद् झील बन गई।

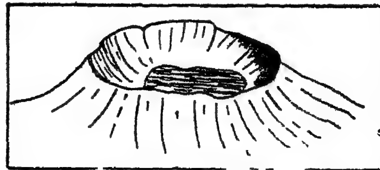
## (५) स्थल सर्पण (Landslide) से बनी झीले

कभी-कभी स्थल-सर्पण द्वारा नदियो का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और वे झील मे परिणत हो जाती है। उदाहरण-गढवाल की गोहना नामक झील।

## २. ज्वालामुखीय झीले

(१) **लावा के विषम निक्षेपण से बनी झीलें**—ज्वालामुखी के उद्गार से जो लावा भूपृष्ठ पर एकत्र हो जाता है, उसमे गड्ढे होते है, जिनमे पानी भर जाता है। इस प्रकार बहुत सी छोटी झीले बन जाती है। दक्षिणी भारत के लावा प्रदेश मे ऐसी झीले पाई जाती है।

(२) **लावा के बाँध से बनी झीले**—जब ज्वालामुखी से निकलने वाला लावा नदियो की घाटी मे जमा हो जाता है, तो पानी का बहाव रुक जाता है और झील बन जाती है। उदाहरणार्थ अबीसीनिया की टाना नामक झील ब्ल्यू नील के जल-प्रवाह के लावा-निक्षेप द्वारा अवरुद्ध हो जाने से बनी है।



चित्र १५७—क्रेटर झील

(३) **परिमृत ज्वालामुख में पानी भर जाने से बनी झीलें**—परिमृत ज्वालामुखी ( Entinct Valcano) के मुख ( Crater ) मे पानी भर जाने से झील बन जाती है। उदाहरण—बरार की लोनार झील।

## ३ नदी की क्रिया से निर्मित झीले

### (१) वृषभ धनु झीले (Ox-bow Lakes)

अपनी युवावस्था मे नदियाँ जब समतल भूमि पर बहती है, तब उनमे प्रवाह-मोड (Meanders) बहुत बनते है। इन मोडो की मात्रा क्रमश बढती जाती हे और अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब बाढ के समय नदी प्रवाह-मोड के पथ को छोडकर सीधी बहने लगती है। इससे प्रवाह मोड के दो निकटवर्ती भाग परस्पर मिल जाते है और वृषभ-धनु की आकृति का अश पृथक हो जाता है। इसे ही हम वृषभ-धनु झील (Ox-bow lake) कहते है। गगा के मैदान मे ऐसी झीले बहुत पाई जाती है।

### २ शरावक झीले (Saucer Lakes)

जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, इनकी आकृति तश्तरी सदृश होती है। ये अस्थायी झीले होती हे। जब कोई सहायक नदी मुख्य नदी के लगभग समानान्तर बहती है, तब बाढ के समय कभी-कभी उनका पानी पूरतटो (Levees) मे मे फूटकर बीच के निचले क्षेत्र मे एकत्र हो जाता है और झील का रूप ग्रहण कर लेता है।

### ३ कछारी व्यजन के बाँध से बनी झीले

पहाडी प्रदेशो मे प्रवाहित होने वाली सहायक नदियाँ कभी-कभी अपने साथ इतना अधिक अवसाद लाती है कि उसे मुख्य नदी की धारा अपने साथ बहा ले जाने मे असमर्थ होती है।सगम पर यह अवसाद व्यजन के रूप मे एकत्र होता रहता है। इसे कछारी व्यजन (Alluvial fan) की सज्ञा दी गई है। इसकी विवेचना पूर्व मे हो चुकी है। इस अवसाद की मात्रा क्रमश बढती रहती है और उससे कभी-कभी मुख्य नदी का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है, जिससे झील बन जाती है। कश्मीर की पैगकौग झील इसी प्रकार बनी है।

### ४. लट्ठो के बाँध से बनी झीले

अधिक वर्षा वाले प्रदेशो मे नदियो के तट पर घने जगल पाये जाते हैं। जब नदी प्रवाह-मोड (Meanders) बनाती है, तब ये वृक्ष उखड जाते हैं और नदी के साथ बहने लगते हैं। धीरे-धीरे वृक्षो के ये लट्ठे एकत्र होने लगते है।इन लट्ठो के साथ बहुत सा अवसाद भी एकत्र हो जाता है और नदी के प्रवाह मे रुकावट होने लगती है। इस प्रकार झील बन जाती है।

### ५. डेल्टा की झीले

डेल्टा प्रदेश मे नदियो द्वारा लाई गई मिट्टी के अनियमित रूप से एकत्र होने के कारण उनके निम्ननो मे पानी भर जाता है। ऐसी झीले गगा, महानदी, गोदावरी आदि नदियो के डेल्टा-प्रदेश मे बहुत पाई जाती हैं।

## ४. हिमानी निर्मित झीले

### (१) हिमोढ (Moraine) की झीले

पूर्वकालीन हिमयुगो के हिमोढ-निक्षेप के निम्ननो मे जल के सचित हो जाने से झीले बन गई है। ऐसी झीले प्राय अनियमित आकृति की और लघु आकार की होती है। ससार की ९० प्रतिशत झीले इसी श्रेणी की है।

## (२) हिमानी के अपक्षरण से बनी झीले

हिमनदियो के अपक्षरण से बने निम्नतो मे पानी भर जाने से झीले बन जाती है। उदाहरण—उत्तरी अमरीका की पाँच वृहद झीले। कुछ विद्वानो की यह धारणा है कि कुमायू की भीमताल नामक झील इसी प्रकार बनी है।

कभी-कभी हिमनदियो के अपक्षरण से भूपृष्ठ पर चायदानी (Kettle) की आकृति के गड्ढे बन जाते है। जब इनमे पानी भर जाता है, तब ये झील मे परिणत हो जाते है। इन्हे कुम्भगर्त झील (Kettle Lake) कहते है। हिमालय प्रदेश मे ऐसी अनेक झीले पाई जाती है।

## (३) गड्ढो की झीले (Pit Lakes)

उत्क्षालित स्थली (Outwash Plain) मे स्थित बडे-बडे हिमखण्डो के पिघलने से ऐसी झीले बन जाती है। उदाहरण—उत्तरी अमरीका की पैचन झील (Patchen Lake)।

## (४) चमकती हुई झीले (Glint Lakes)

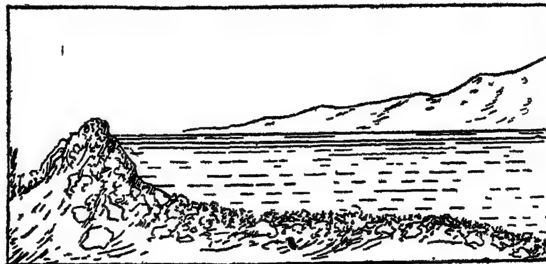
कभी-कभी महाद्वीपीय हिमनदी का प्रवाह, पथ मे पर्वत श्रेणी के आ जाने से, अवरुद्ध हो जाता है। यदि पर्वत श्रेणी मे कुछ सकरे निकास (Outlets) विद्यमान होते है, तो स्वभावत उनमे हिमानी का प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक वेग से होता है। अतएव हिमनदी के अपक्षरण से वे अधिक गहरे हो जाते है और उनके पार्श्व हिम के प्रमार्जन (Polish) से चिकने हो जाते है जिससे वे चमकते रहते है। जब इनमे पानी भर जाता है, तब वे झील का रूप ले लेते है। उदाहरण—उत्तरी लैपलैण्ड की टौर्नेट्रास्क (Tornetrask) नामक झील।

## (५) हिम के बाँध से बनी झीले

हिमानी भी कभी-कभी जल-प्रवाह के पथ मे बाँध का कार्य करती है, जिससे झीले बन जाती है। सिन्ध की सहायक नदी सियाक के मार्ग मे हिमानी का बाँध बन जाने से झील बन गई है।

## (६) हिमोढ के बाँध से बनी झीले

छोटे-मोटे नदी-नालो का मार्ग कभी-कभी हिमोढ द्वारा अवरुद्ध हो जाता है, जिससे वे झील मे परिणत हो जाते है। उदाहरण के लिये कुमायू और पीर पञ्जाल की बहुत सी झीले हिमोढ का बाँध बन जाने से बनी है।



चित्र १५८—हिमोढ के बाँध से बनी झील

### ५ वायु की क्रिया से बनी झीले

#### (१) बालुका कूटो से बनी झीले

कभी-कभी नदी प्रवाह बालुका-कूटो से अवरुद्ध हो जाता है और तब झील बन जाती है। फ्रास के तटीय प्रदेश मे इस प्रकार अनेक झीले बन गई है।

#### (२) प्लाया (Playa) झीले

मरुस्थलीय प्रदेशो के नमकीन दलदलो मे वर्षा ऋतु मे पानी भर जाने से अस्थायी झीले बन जाती है, जिन्हे 'प्लाया' कहते है। ग्रीष्म ऋतु मे ये सूख जाती है।

#### (३) विषम वायु निक्षेप की झीले

कभी-कभी वायु द्वारा एकत्र निक्षेपो के निम्ननो मे जल भर जाने से झीले बन जाती है। इस प्रकार निर्मित झीलो के कुछ उदाहरण राजस्थान मे मिलते है।

#### (६) घोल से बनी झीले

कुछ क्षेत्रो मे कठोर शिलाओ के मध्य मे घुलनशील शिलाये विद्यमान रहती है। वर्षाजल द्वारा वे घुलती रहती है। उनके घुलने से उत्पन्न हुए निम्ननो मे पानी भर जाने से झीले बन जाती है। उदाहरण—खासी जयन्तिया की झीले।

#### (७) सागरजल की गतियो से बनी झीले

कभी-कभी समुद्र की लहरो और धाराओ से निक्षेपित जिह्वा (Spit) अथवा सिकता-दण्ड (Sand bar) से नदी मुख अथवा सकरी खाडी बन्द होकर उपह्रद (Lagoon) का रूप ले लेती है। नैलोर की पुलिकट झील तथा उडीसा की चिल्का झील इसी प्रकार बनी है।

## ७ झीलों का वर्गीकरण

झीलो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है —

(१) उत्पत्ति की दृष्टि से
(२) स्थिति की दृष्टि से
(३) जल-सरचना की दृष्टि से

#### (१) उत्पत्ति की दृष्टि से

इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

#### (२) स्थिति की दृष्टि से

स्थिति के विचार से झीलो के अनेक विभाग किये जा सकते है जैसे—

(१) तटीय झीले—जैसे उडीसा की चिल्का झील
(२) अन्तर्देशीय झीले—जैसे अफ्रीका की विक्टोरिया झील
(३) पर्वतीय झीलें—जैसे नैनीताल की झील
(४) मरुस्थलीय झीलें—जैसे साभर आदि।

#### (३) जल सरचना की दृष्टि से

जल-संरचना की दृष्टि से झीलो के तीन विभाग किये जा सकते है —

(१) अलवण जल ( Fresh water ) अथवा मोठे पानी की झीलें—जैसे मानसरोवर।

(२) लवण जल (Saline water) अथवा खारे पानी की झीलें—जैसे साभर।

(३) आलवण जल (Brackish water ) अथवा कम खारे पानी की झीलें—इनमे उपर्युक्त दूसरे विभाग की झीलो की तुलना मे लवण की मात्रा कम होती हैं। उदाहरण—तिब्बत की कुछ झीलें।

## ८ झीलों का आर्थिक महत्व

झीलो से अनेक लाभ हैं —

(१) बडी झीलें अपने आसपास के प्रदेश का जलवायु समशीतोष्ण बनाने मे सहायक होती हैं।

(२) नदियो के उद्गम के रूप मे झीलो की महत्ता अत्यधिक है क्योकि झील से निकली हुई नदियाँ सदाजलमय ( Perennial ) रहती हैं। न उनके सूखने की सभावना होती है और न ही उनमे बाढ का भय रहता है। प्रकट है, कि ये नदियाँ विद्युत-उत्पादन के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।

(३) सिंचाई के लिये झीलें अमूल्य हैं।

(४) अनेक बडे नगरो मे नित्योपयोगी जल झीलो से ही उपलब्ध होता है।

(५) कुछ झीलें महत्वपूर्ण अन्तर्देशीय जलमार्ग ( Inland waterways ) का कार्य करती हैं।

(६) पर्वत-प्रदेशो की झीलो मे जो जल वर्षा और हिम के पिघलने से प्राप्त होता है, उसका उपयोग विद्युत-उत्पादन के लिये किया जा सकता है।

(७) झीलें मछलियाँ और तृणक (Weed) प्रदान करती हैं। मछलियाँ मानव-आहार की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। तृणक को बहुत से जानवर खाते हैं। इसके अतिरिक्त उससे खाद बनती है।

(८) अन्तर्देशीय प्रवाह की झीलो (Lakes of Inland Drainage) से अनेक प्रकार के लवण एव रासायनिक यौगिक उपलब्ध होते हैं।

(९) स्वास्थ्य एव मनोरजन की दृष्टि से भी झीलो का विशेष महत्व है। नैनीताल की झील इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

(१०) झीलो के सूख जाने से अत्यन्त उर्वर भूमि उपलब्ध होती है। कैस्पियन सागर के उत्तरी भाग के सूख जाने से ऐसी ही उपजाऊ भूमि निकली है।

# उन्नीसवाँ परिच्छेद

# द्वीप

# (ISLANDS)

## १ परिभाषा

महासागर, सागर, झील, तालाब अथवा नदी में पाये जाने वाले ऐसे स्थल-खण्डो को जो चारो ओर से जल द्वारा घिरे हो, हम द्वीप कहते है।

## २ आकार

द्वीपो के आकार मे बडे विभेदन पाये जाते है। इतने छोटे द्वीप भी है, जिनका क्षेत्रफल कुछ ही वर्ग गज होगा, दूसरी ओर ग्रीनलैंण्ड जैसे विशालकाय द्वीप भी है, जिनका क्षेत्रफल कई लाख वर्गमील है।

ससार मे छै बडे द्वीप है, जिनका क्षेत्रफल निम्नाकित तालिका मे प्रदर्शित किया गया है —

| द्वीप | क्षेत्रफल (वर्गमीलो मे) |
|---|---|
| १ ग्रीनलैंण्ड | ८,३७,००० |
| २ न्यूगिनी | ३,४२,००० |
| ३ बोर्नियो | २,८२,००० |
| ४ बैफिन | २,३१,००० |
| ५ मैडागास्कर | २,२९,००० |
| ६ सुमात्रा | १,६३,००० |

इनके उपरान्त १२ औसत आकार के द्वीप है, जिनका क्षेत्रफल १ लाख वर्ग मील और ४० हजार वर्ग मील के बीच मे है।

४० हजार वर्ग मील और १ हजार वर्ग मील के बीच के क्षेत्रफल के द्वीपो की सख्या १२५ है।

एक हजार वर्ग मील से कम क्षेत्रफल के द्वीपो की सख्या कई सहस्र है।

## ३ द्वीपों का वर्गीकरण

द्वीपो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है जैसे—(१) स्थिति (२) पूर्वकालीन इतिहास (३) व्यवस्था (४) धरातल की दशा (४) जलवायु (५) उत्पत्ति आदि।

(१) **स्थिति के अनुसार वर्गीकरण**—स्थिति के अनुसार द्वीपो को निम्नलिखित वर्गो मे बॉटा जा सकता है—

(१) महासागरो के द्वीप
(२) सागरो कि द्वीप
(३) खाडियो के द्वीप

(४) जल संयोजको के द्वीप
(५) उपहृदो के द्वीप
(६) दलदलो के द्वीप
(७) झीलो के द्वीप
(८) तालाबो के द्वीप

(२) **पूर्वकालीन इतिहास के अनुसार वर्गीकरण**—इस दृष्टि से महासागरो के द्वीपो के दो वर्ग किये जा सकते है —

(१) **महाद्वीपीय द्वीप**—( Continental Islands ) वे द्वीप है जो किसी समय महाद्वीप के अश थे, जैसे श्री लका। श्रीलका किसी समय दक्षिणी भारत का ही अश था। इसकी पुष्टि अनेक प्रमाणो से होती हैं—उदाहरण के लिये श्रीलका की भूतात्विक सरचना (Geological Structure) प्रायद्वीपीय भारत के द० पू० भाग से बिल्कुल मिलती जुलती है।

(२) **महासागरीय द्वीप**—(Oceanic Islands)—वे द्वीप हैं, जिनका उदभव और विकास महासागर मे होता है। इनका निकटवर्ती महाद्वीप से कोई सम्बन्ध नही होता। इनका विकास समुद्र मे स्वतत्र रूप से होता है। उदाहरण-हवाई द्वीप।

(३) **व्यवस्था के अनुसार वर्गीकरण**—इस दृष्टि से द्वीपो के चार वर्ग किये जा सकते है —

(१) **द्वीपचाप**-(Island Arc)—यदि अनेक द्वीप धनुषाकार आकृति मे व्यवस्थित हो तो उन्हे हम द्वीप चाप कहते हैं। उदाहरण—जापानी द्वीप।

(२) **द्वीप समूह** (Archipelago)—यदि अनेक द्वीप समूह के रूप मे पाये जाते है, तो उन्हे हम द्वीप-समूह कहते है जैसे हिंदेशिया।

(३) **द्वीप माला अथवा द्वीप श्रखला** (Island Chain) यदि अनेक द्वीप पक्तिवद्ध पाये जाते हैं, तो उन्हे हम द्वीपमाला कहते है जैसे क्यूराइल द्वीप।

(४) **एकाकी द्वीप** (Isolated Island)—ऐसे पृथक द्वीप को जो चाप, समूह अथवा माला का निर्माण नही करता हम एकाकी द्वीप कहते है जैसे आइसलैण्ड।

(४) **धरातल की दशा के अनुसार वर्गीकरण**—इस दृष्टि से द्वीपो के अनेक भेद किये जा सकते है जैसे पर्वतीय द्वीप, पहाडी द्वीप, मैदानी द्वीप, आदि।

(५) **जलवायु के अनुसार वर्गीकरण**—इस आधार पर द्वीपो को जलवायु प्रदेशो के अनुसार वर्गीकृत करते है जैसे उष्ण प्रदेशीय द्वीप, शीतोष्ण प्रदेशीय द्वीप, शीत प्रदेशीय द्वीप आदि।

(६) **उत्पत्ति के अनुसार वर्गीकरण**—इस दृष्टि से द्वीपो को निम्नलिखित वर्गो मे बाँटा जा सकता है —

(१) भूपर्पटी की गतियो से बने द्वीप
(२) अपरक्षण से बने द्वीप
(३) निक्षेपण से बने द्वीप
(४) ज्वालामुखीय द्वीप

(५) प्रवाली द्वीप
इनकी विवेचना अगले अनुच्छेद मे की गई है।

## ४ उत्पत्ति

द्वीपो की उत्पत्ति मुख्यत चार कारणो से होती है—
(१) भूपर्पटी की गतियाँ
(२) अपरक्षण
(३) निक्षेपण
(४) ज्वालामुखी की क्रिया
(५) प्रवाली विकास
कभी कभी उपर्युक्त कारणो मे से दो-तीन के सयुक्त फल से द्वीप बनते है।

### (१) भूपर्पटी की गतियाँ

(१) **उन्मज्जन** (Elevation)—सागर-नितल के कुछ भाग के अकस्मात ऊपर उठ जाने से द्वीप बन जाते है। उदाहरण-अजोर्स।

(२) **निमज्जन** (Subsidence)—जापान किसी समय पूर्वी एशिया का ही भाग था। बाद मे बीच के भूभाग के धँस जाने से वह पृथक हो गया। इसी प्रकार ब्रिटिश द्वीप समूह भी किसी समय योरप का अश था और निमज्जन की क्रिया द्वारा मूल महाद्वीप से पृथक हो गया।

(३) **भजन** (Folding )—पूर्वी द्वीप समूह मध्य जगत की भजित पर्वत श्रेणियो ( Midworld Fold Belts ) के ही अश है। इनके निचले भाग समुद्र मे डूबे हुए है।

(४) **विभगन** ( Faulting )—मैडागास्कर के विषय मे श्री विलिस की यह धारणा है कि वह विभग का ऊपर उठा हुआ खण्ड है। दूसरी विचारधारा यह है कि बीच मे दरार-घाटी के बन जाने से वह अफ्रीका से पृथ्क हो गया।

### (२) अपक्षरण

(१) हिमानी अपक्षरण—प्रातिनूतन हिमनदियो ने उत्तरी अमरीका तथा ग्रीनलैण्ड के तटीय क्षेत्र का अपक्षरण किया। जब प्रातिनूतन हिमावरण पिघला, तब टीले ऊपर उठे हुए भाग तथा पहाडियाँ द्वीपो मे परिणत हो गई ।

(२) **नदी अपक्षरण**—मैदानी भाग मे नदियाँ मोड बनाती हुई बहती है। कभी कभी बाढ के समय नदी मोड का मार्ग त्याग कर सीधी बहने लगती है। ऐसी दशा मे सीधे पथ तथा मोड के मध्य का भाग टापू बन जाता है।

(३) **तरग अपक्षरण**—लहरे समुद्रतट को काटती रहती है और अनेक प्रकार के भूरूपो का विकास करती है। यदि किसी कारण सागर-समतल ऊपर उठ आता है तो लहरो के अपक्षरण से अस्तित्वमे आये हुए भूरूप जैसे महासागरीय स्तम्भ (Stacks) अशत. डूब जाते और द्वीप बन जाते है।

## (३) निक्षेपण

(१) **हिमानी निक्षेपण**—ड्रमलिन, केम तथा अन्य हिमानी निक्षेप झीलो मे तथा तट के निकट समुद्र मे द्वीप सदृश दीखते है।

(२) **नदी निक्षेपण**—नदियो के मध्य में रेत के जो टीले बन जाते है, उन्हे द्वीप कहा जा सकता है। डेल्टा-प्रदेश मे नदी के प्रवाह-वेग के क्षीण हो जाने से द्वीप बन जाते है।

(३) **तरग निक्षेपण**—सिकता दण्ड ( Sand bars) तथा जिह्वाये (Spits) जिनकी विवेचना परिच्छेद मे की मई है, तरग निक्षेपण से बने द्वीप हो हैं।

## (४) ज्वालामुखी की क्रिया

कभी-कभी जब सागर-नितल मे ज्वालामुखी की क्रिया होती है, तब उसके उद्गार से निकले हुए लावा आदि की विशाल राशि निक्षेपित होकर द्वीप का रूप ग्रहण कर लेती है। उँदाहरण—एलूशियन, हवाई, सैण्ट हैलेना आदि।

## (५) प्रवाली विकास

मरे हुए मूँगे के कीडो के अवशेषो के सचयन से द्वीप बन जाते हैं। इसकी विस्तृत विवेचना अटोल की सरचना शीर्षक परिच्छेद मे की गई। उदाहरण—मालदीव, लकादीव, क्रिसमस द्वीप आदि।

# बीसवाँ परिच्छेद

# मिट्टियाँ

# (SOILS)

## १ मिट्टी, भूमि अथवा उन्मृदा का अर्थ

मिट्टी, भूमि अथवा उन्मृदा का अर्थ है पृथ्वी की पर्पटी का सबसे ऊपर वाला स्तर, जिसमे पेड-पौधो के जीवन के लिये आवश्यक खनिज एव रासायनिक पदार्थ तथा अन्य प्रकार की पौष्टिक भोजन-सामग्री रहती है। इसकी गहराई कुछ ही इच होती है।

## २ मिट्टी का महत्व

मिट्टियो का आर्थिक तथा मानवीय महत्व बहुत अधिक है। पेड-पौधो के विकास के लिये आवश्यक तत्व मिट्टियाँ ही प्रदान करती हैं। कृषि पूर्णत मिट्टियों पर निर्भर है।

## ३ मिट्टियों का निर्माण

मिट्टियाँ शिलाओ के ऋतुक्षरण से बनती हैं। यह ऋतुक्षरण तीन प्रकार का होता है —

(१) भौतिक ऋतुक्षरण—इसके अन्तर्गत यान्त्रिक ऋतुक्षरण के विभिन्न अभिकर्ता शिलाओ को तोड-फोड कर सूक्ष्म कणो मे परिणत कर देते हैं। इसकी विस्तृत विवेचना पाँचवे परिच्छेद मे की गई है।

(२) रासायनिक ऋतुक्षरण—इसके अन्तर्गत शिलायें विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओ द्वारा नष्ट होकर मिट्टी मे परिणत होती रहती हैं। इन प्रक्रियाओ का वर्णन भी पाँचवे परिच्छेद मे हो चुका है।

(३) प्राणिकीय ऋतुक्षरण—इसके अन्तर्गत ऋतुक्षरण के परोक्ष कारण—मनुष्य, जीवजन्तु तथा वृक्ष आते हैं। इनका विचार भी पाँचवे परिच्छेद मे किया जा चुका है।

## ४ संसार के उन्मृदा-वर्ग (Soil Groups)

प्रसिद्ध अमरीकी भूगोलवेत्ता फिञ्च तथा त्रिवर्था ने ससार की मिट्टियो का एक सहज सुगम सामान्य वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इस वर्गीकरण के अनुसार ससार मे नौ उन्मृदा वर्ग पाये जाते हैं।

(१) टुण्ड्रा की मिट्टियाँ
(२) भस्ममृदा (पौडजोल)
(३) धूसर भूरी वन मिट्टियाँ (मुख्यत भस्ममृदा)
(४) उष्ण तथा उपोष्ण प्रदेशीय लाल एव पीली मिट्टियाँ
(५) प्रेरी सदृश मिट्टियाँ

(६) चर्नोज़ैम मिट्टियाँ
(७) भूरी स्टैपीय मिट्टियाँ
(८) मरुस्थलीय मिट्टियाँ
(९) पर्वतो तथा घाटियो की जटिल मिट्टियाँ

## (१) टुण्ड्रा की मिट्टियाँ (Tundra Soils)

ये मिट्टियाँ आर्कटिक तट के वृक्षविहीन प्रदेशो मे पाई जाती है। इनका रग फीका भूरा होता है। इनके नीचे का अध स्तर अपेक्षाकृत अधिक गहरे भूरे रग का होता है। जाडे की लम्बी ऋतु मे ये बर्फ से ढकी रहती हैं, किन्तु गर्मियो मे कुछ काल के लिये बर्फ पिघल जाती है और दलदल अस्तित्व मे आ जाते हैं। तीन फुट की गहराई मे स्थित उपभूमि स्थायी रूप से जमी रहती है। टुण्डा की मिट्टियाँ को Glei की सज्ञा दी गई हैं। टुण्डा प्रदेश मे तापक्रम की न्यूनता के कारण वृक्षो के विकास का प्रश्न ही नही उठता और वहाँ पर केवल हरिता (Moss) तथा कवाप्य ( Lichen ) पाई जाती है, अतएव इन मिट्टियो मे वनस्पति तत्व ( Humus ) का अभाव होता है। इन मिट्टियो मे आर्द्रता की मात्रा बहुत अधिक होती है क्योकि इस प्रदेश मे वाष्पीकरण बहुत कम होता है तथा जमा हुआ अध स्तर नीचे की ओर जलपारण नही होने देता। ये मिट्टियाँ अनुपजाऊ होती हैं कुछ सीमित क्षेत्रो मे जहाँ जलप्रवाह की सुविधा है, भस्ममृदा ( Podsol ) सदृश मिट्टियाँ पाई जाती हैं। प्रवाह की सुविधा वाले ऐसे ढालो पर जिनमे अधिक से अधिक धूप पहुँच सकती है, अल्प अवधि मे तैयार होने वाली तरकारियाँ तथा कृषि की फसले तैयार की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए यनीसी नदी के मुहाने पर स्थित इगारका नामक नवीन विकसित पोताश्रय ताजी तरकारियो के लिए प्रसिद्ध है।

## (२) भस्ममृदा (Podsols)

ये मिट्टियाँ टैगा अथवा कोणधारी वनो के प्रदेश मे पाई जाती हैं। इनका रग भूरा-श्वेत (Greyish white) होता है। Podsol शब्द रूसी भाषा का है। Pod का अर्थ मिट्टी है तथा Sol का अर्थ राख का रग (Pod=Soil, Sol=Colour of ash') भस्मीकरण की क्रिया (Podsolisation) के लिये निम्न तापमान, सामान्य वर्षा, दीर्घ अवधि के जाडे तथा लघु अवधि की गर्मियाँ अनुकूल हैं। ये मिट्टियाँ शीत शीतोष्ण कटिबन्ध मे पाई जाती हैं, जहाँ ये सब दशाये उपलब्ध हैं। इनका निर्माण अत्यन्त मन्द वेग से होता है, क्योकि वनो के मलवे ( Debris ) का आवरण नीचे की शिलाओ का अपक्षरण तेजी से नही होने देता। वाष्पीकरण की तुलना मे वर्षा की मात्रा अधिक होने के कारण इन मिट्टियो के ऊपरी स्तर मे उद्विलयन ( Leaching ) बहुत होता है, जिससे उनका रग भूरा सफेद हो जाता है। लोहा, अल्यूमीनियम आदि धुलकर नीचे के स्तर मे चले जाते है, जिससे ऊपरी स्तर इन तत्वो से विहीन होता है। कभी २ नीचे का स्तर इन तत्वो के जम जाने से, कठोर हो जाता है। ऊपर के स्तर की तुलना मे इसका रग भी अधिक गहरा होता है।

ये मिट्टियाँ आम्लिक होती है। ये कृषि की दृष्टि से उर्वरा नही होती, यद्यपि टुण्ड्रा की मिट्टियो की तुलना में इनकी उर्वरता अधिक होती है। ये कोणधारी वृक्षो के विकास के लिये, जिनकी जडे गहरी नही होती है, विशेष अनुकूल है। इनमे वनस्पति तत्व ( Humus ) तथा पौष्टिक तत्वो की मात्रा कम होती है। अम्लता के कारण इन मिट्टियो मे केचुवे ( Earthworms ) कम होते है। केचुए सडी हुई वनस्पति के

स्तर को ऊपरी स्तर की मिट्टी मे मिलाते रहते है। इस प्रदेश में केंचुये कम होने के कारण ऊपर की सडी वनस्पति और नीचे की मिट्टी में स्पष्ट पार्थक्य रहता है। इन मिट्टियो की अम्लता के निवारण के लिये इनमे चूने वाली खाद दी जाती है और फिर इनमे सब्जियाँ (जैसे आलू), घास तथा कृषि की फसले (जैसे राई, ओट आदि) सफलता से उत्पन्न की जाती है।

## (३) धुसर वभ्रु वन मिट्टियाँ (मुख्यत भस्ममृदा)

## (Gray brown forest soils (Specially Podsols)

ये प्रौढ मिट्टियाँ शीतोष्ण प्रदेश के आर्द्र भागो मे पाई जाती है। ये मिट्टियाँ उत्तरी गोलार्ध मे पूर्वी सयुक्त राज्य अमरीका, मध्य योरप, उत्तरी चीन, कोरिया और मध्य एव दक्षिणी जापान मे पाई जाती है। दक्षिणी गोलार्ध मे ये मिट्टियाँ दक्षिणी अफ्रीका के दक्षिणी तट पर तथा पूर्वी न्यूजीलैण्ड मे पाई जाती है।

ये भस्ममृदाये है, किन्तु पूर्ण विकसित भस्ममृदाये नही। उनकी अपेक्षा ये कम आम्लिक है। इन्हे भस्ममृदा तथा उपोष्ण प्रदेशीय लाल एव पीली मिट्टियो का माध्यमिक अथवा अन्तर्वर्त कहा जा सकता है। इन मिट्टियो के प्रदेश में वर्षा की मात्रा वाष्पीकरण से अधिक होती है अतएव इन मिट्टियो मे से चूना तथा अन्य लवण उद्विलयित ( Leach out ) हो जाते है। अपक्षरण अधिक होने से भूमि का उत्क्षालन (Outwosh) सामान्य है। इन मिट्टियो का विकास चौडी पत्ती वाले पर्णपाती वन (क्षुप तथा घास रहित) के अन्तर्गत होता है। अतएव, इनमे वनस्पति-तत्व की मात्रा यथेष्ट होती है। इन मिट्टियो के ऊपरी स्तर मे १ फुट से लेकर ३ फुट की गहराई तक काले रग का वनस्पति तत्व ( Humus ) पाया जाता है। यह वनस्पति-तत्व मिट्टी मे अच्छी तरह मिला रहता है। इसका कारण यह है कि यहाँ की जलवायु मे केंचुवे तथा अन्य मिट्टियो के कीटाणु पनपते है और ये ही वनस्पति तत्व को मिट्टी मे मिला देते है। उष्ण प्रदेशीय लाल मिट्टी की तुलना में इस मिट्टी के वनस्पति तत्व का विबन्धन ( Decomposition ) अधिक मात्रा में होता है, यद्यपि अपेक्षाकृत मन्द वेग से होता है। इसमे भस्ममृदा की तुलना मे चूना, पोटाश तथा अन्य यौगिक अधिक मात्रा में होते है। वनस्पति तत्व तथा अन्य पौष्टिक तत्वों की उपस्थिति के कारण यह मिट्टी उपजाऊ होती है। निरन्तर कृषि से इसकी उर्वरता घट जाती है तथा उसे बनाये रखने के लिये इन मिट्टियो मे चूना तथा खाद देना आवश्यक होता है।

## (४) उष्ण प्रदेशीय तथा उपोष्ण प्रदेशीय लाल तथा पीली मिट्टियाँ

ये मिट्टियाँ मुख्यत द० पू० उत्तरी अमरीका, उ० पू० दक्षिणी अमरीका, द० योरप, मध्य अफ्रीका, द० पू० एशिया के मानसून क्षेत्र, पूर्वी द्वीप समूह तथा उ० आस्ट्रेलिया मे पाई जाती है।

इन प्रदेशो में तापक्रम और वर्षा दोनो की मात्रा अधिक है। तापक्रम अधिक होने से रासायनिक परिवर्तन तेजी से होते है तथा अधिक वर्षा एव लम्बी ग्रीष्म ऋतु के कारण पानी बहुत नीचे तक सोख जाता है और घुलनशील पौष्टिक तत्वो को अपने साथ नीचे तक ले जाता है, अतएव ये मिट्टियाँ अनुपजाऊ होती है। उष्ण प्रदेश की

मिट्टियाँ लाल, पीली अथवा ईट के रग की होती है। ईट के रग की मिट्टी को लेटराइट कहतेहै। उपोष्ण प्रदेश की मिट्टियाँ अधिकतर पीली होती हैं।

**लाल तथा पीली मिट्टियाँ**—ये मिट्टियाँ भुरभुरी कणिकामय तथा रन्ध्री होती है। इनमे जलधारण करने की क्षमता का अभाव होता है। अधिक उद्विलयित ( Leached ) होने के कारण इनमें खनिज, वनस्पति तथा अन्य पौष्टिक तत्वो का अभाव होता है। नीचे के कुछ खनिज तत्व पेडो की जडो द्वारा भूपृष्ठ तक आ जाते है और ऊपरी स्तर की हीनता घटा देते है। जब वृक्ष नष्ट हो जाते है, तब उनके पौष्टिक तत्व पुन मिट्टी मे मिल जाते है और अन्य वृक्षो द्वारा ग्रहण कर लिये जाते है। वनो के नष्ट हो जाने से पौष्टिक तत्वो की गति का यह चक्र रुक जाता है और ऊपरी स्तर शीघ्र अनुपजाऊ हो जाता है। ये मिट्टियाँ अनुपजाऊ होती है, किन्तु इतनी अधिक अनुपजाऊ नही होती, जितनी लेटराइट है। निरन्तर कृषि से इनकी उत्पादन क्षमता बहुत घट जाती है और इनमे बहुत खाद देने की आवश्यकता होती है।

इनका रग मूल शिला के अनुरूप होता है। उदाहरण के लिये यदि मूलशिला मे हौर्नब्लैण्ड की मात्रा अधिक होती है, तो मिट्टी का रंग हल्का होता है। दूसरी ओर, यदि मूल शिला मे मैगनेटाइट की मात्रा अधिक होती है तो मिट्टी का रग गहरा होता है। इस प्रदेश मे शुष्क एव आर्द्र ऋतुये एकान्तर पर होती है, जिससे इनम लोहे का ऑक्साइड व्याप ( Diffuse ) जाता है। इन मिट्टियो मे स्थिति के अनुसार अन्तर पाये जाते है। पठारो तथा ऊँचे भागो की मिटियाँ हल्के रग की पतली तथा ककरीली होती है। मैदानो और घाटियो की मिट्टियाँ अपेक्षाकृत गहरे वर्ण की और अधिक उपजाऊ होती है।

**लेटराइट**-लेटराइट शब्द Later से बना है, जिसका अर्थ ईट है। यह मिट्टी सभी प्रकार की शिलाओ से बनती है—जैसे ग्रेनाइट (आग्नेय शिला), बालुकाश्म (जलज शिला),. शिस्ट (परिवर्तित शिला) आदि से। इसके दो भेद किये जा सकते है—(१) ऊँचे समतल की लेटराइट तथा (२) नीचे समतल की लेटराइट। लेटराइट की सरचना मे बडे अन्तर पाये जाते है। इसमे लोहे और अल्यूमीनियम के हाइड्रौक्साइडो का सम्मिश्रण होता है।

लेटराइट की उत्पत्ति के लिये निम्नलिखित दशाओ की पूर्ति आवश्यक है —

(१) उष्णप्रदेशीय जलवायु जिसमें शुष्क और आर्द्र ऋतुये एकान्तर पर हो।

(२) चपटी अथवा चौरस चोटी का ऊँचा प्रदेश, जिसके ढाल अतिशय मन्द हो।

(३) अभीष्ट रासायनिक सरचना की शिलाये

(४) शिलाये या तो रन्ध्री हो अथवा उनमे सन्धियाँ हो।

लेटराइट मिट्टियाँ बहुत अनुपजाऊ होती है। जिन क्षेत्रो मे ये पाई जाती है, वे वनस्पति हीन बजर होते है। इनका रग ईट जैसा लाल होता है। ये स्थूल होती है। इनके ऊपरी भाग मे पथरीले ककर पाये जाते है। ऊँचे समतल की लेटराइट ककरीली होती है और उसमे आर्द्रता वहन करने की क्षमता होती है तथा वह कृषि के लिये अधिक उपयुक्त है। लेटराइट मिट्टियो का सबसे उल्लेखनीय

गुण इनका आम्लिक होना है। इन्हे कृषि के योग्य बनाने के लिये इनकी अम्लता का निराकरण आवश्यक होता है।

## (५) प्रेरी सदृश मिट्टियाँ

ये मिट्टियाँ भस्ममृदाओ के प्रदेश के दक्षिण मे, जहाँ वर्षा अपेक्षाकृत कम होती है, पाई जाती हैं। ये मिट्टियाँ मध्य सयुक्त राज्य अमरीका, दक्षिणी योरपीय रूस, मध्य साइबेरिया, उत्तरी चीन, द० अमरीका के पूर्वी मध्य भाग तथा मध्य अफ्रीका मे पतली पट्टी के अनुरूप पाई जाती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध मे इन्हे कोणधारी वन प्रदेश तथा यथार्थ स्टेप प्रदेश की माध्यमिक मिट्टियाँ कहना उचित होगा।

प्रेरी सदृश मिट्टियाँ ऐसे क्षेत्रो मे पाई जाती हैं, जिनकी प्राकृतिक वनस्पति गहरी जड़ो वाली लम्बी घास है। यहाँ की जलवायु मे इतनी अधिक आर्द्रता होती है, इनमे वर्ष का विकास हो सकता है, किन्तु इनमे वनो का विकास क्यो नहीं हुआ इसका सन्तोषप्रद स्पष्टीकरण अभी तक नहा हो सका है। हो सकता है कि यदाकदा शुष्क वर्षा हो जाने से वृक्षो की जडे जमने नही पाती। एक यह भी सुझाव दिया गया है कि बिजली द्वारा अथवा यहाँ के निवासियो द्वारा लगाई गई आग ने आरभिक अवस्था मे ही वृक्षो को नष्ट कर दिया।

प्रेरी सदृश मिट्टियो का रग गहरा भूरा होता है। इनमे सूक्ष्म कण होते है। चूना तथा क्षारीय तत्वो का इनमे अभाव होता है। इन्हे निर्बल आम्लिक (Weak acidic) कहा जा सकता है। इनमे वनस्पति तत्व तथा आर्द्रता की मात्रा अधिक होती है तथा जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया इनके कण सूक्ष्म होते हैं, जिससे इनकी गणना ससार की उर्वरतम मिट्टियो मे है। इनमे अनाज की उत्तम फसले उत्पन्न की जाती है।

## (६) चर्नोजैम मिट्टियाँ

चर्नोजैम शब्द रूसी भाषा का है और इसका अर्थ है काली मिट्टी। इस मिट्टी का रग वनस्पति-तत्व (Humus) की अधिकता के कारण काला होता है।

यह मिट्टी दक्षिणी मध्य कैनाडा, मध्य सयुक्त राज्य अमरीका, दक्षिणी रूस, प० साइबेरिया, उ० प० प्रायद्वीपीय भारत, मध्य दक्षिणी अमरीका, मध्य एव दक्षिणी अफ्रीका तथा उ० पू० आस्ट्रेलिया मे पाई जाती है।

अमरीकी विद्वानो ने बम्बई प्रदेश के काली मिट्टी के क्षेत्र को, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया, इसी वर्ग के अन्तर्गत प्रदर्शित किया है, यद्यपि वह लावा के अपक्षरण से बनी है, अधिक वर्षा के प्रदेश मे पाई जाती है तथा शीतोष्ण प्रदेशीय चर्नोजैम से अनेक लक्षणो मे भिन्न है। इनमे कुछ समानताये भी है। उदाहरण के लिये दोनो भीगने पर फैलती और फूलती है, दोनो सूखने पर सिकुडती है, जिससे दरारे अस्तित्व मे आ जाती है और दोनो स्वय-कृषिकारक ( Self cultivating ) है। ससार की प्रौढ एव प्राकृतिक रूप से उर्वर मिट्टियो मे दोनो की गणना है।

चर्नोजैम कणिकामय तथा रन्ध्री होती है। इसमे मृत्तिका की मात्रा भी काफी होती है। जल ग्रहण करने की इसमे अद्भुत क्षमता होती है। यह मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है। इसमे पौधो के विकास के लिये आवश्यक खनिज, आगिक एव पौष्टिक तत्व इतनी अधिक मात्रा मे होते है कि इसमे बिना खाद दिये ही अनेको वर्ष फसले उत्पन्न

की जा सकती है। वास्तव मे कपास तथा अनाजो के उत्पादन के लिये यह मिट्टी आदर्श है।

शीतोष्ण कटिबन्ध मे चर्नोजैम ऐसे घास प्रदेशो मे पाई जाती है जहाँ वर्षा का औसत २० इच से भी कम है। इस प्रदेश मे वर्षा तथा वाष्पीकरण की मात्रा प्राय समान होती है। घास के सडने-गलने से इस मिट्टी के ऊपरी स्तर मे वनस्पति-तत्व ( Humus ) की मात्रा पर्याप्त होती है। इन मिट्टियो मे धरातल से ३ और ५ फुट की गहराई के बीच मे चूना पाया जाता है। इससे घास की जडे कैलशियम ग्रहण करती हैं।

इस मिट्टी मे कुछ दोष भी है। उदाहरण के लिये गीले होने पर यह चिपचिपी हो जाती है तथा जुताई के बाद इसके ढालो मे धरातलीय अपक्षरण बहुत होता है।

## (७) भूरी स्टैपीय मिट्टियाँ

चर्नोजैम के शुष्क किनारे पर ये मिट्टियाँ पाई जाती हैं। यद्यपि ये मिट्टियाँ चर्नोजैम से मिलती-जुलती है, तथापि इनमे आर्द्रता अपेक्षाकृत कम होती है। चर्नोजैम और इन मिट्टियो को पृथक करने वाली सीमा स्पष्ट नही है। प्राय इनके मध्य मे रक्तपीत वभ्रु ( Chestnut brown ) मिट्टियाँ मिलती हैं।

ये मिट्टियाँ उ० अमरीका, दक्षिणी अमरीका, द० अफीका तथा आस्ट्रेलिया मे चर्नोजैम के पश्चिम मे, रूस मे चर्नोजैम के दक्षिण मे तथा अफ्रीका और भारत मे चर्नोजैम के उत्तर मे पाई जाती है।

इस प्रदेश की घास चर्नोजैम और प्रेरी सदृश मिट्टियो की तुलना मे छोटी, विरल और कम गहरी जडो वाली होती है। इन मिट्टियो मे पाया जाने वाला वनस्पति तत्व शुष्कता के कारण भूरे वर्ण का होता है और ऊपरी स्तर मे मिला रहता है। इनकी उपभूमि चर्नोजैम की तुलना मे अधिकथूल होती है। चर्नोजैम की भाँति इन मिट्टियो मे भी आर्द्रता की अधोगति के कारण चूने का निक्षेप पाया जाता है। इस प्रदेश मे चर्नोजैम के प्रदेश की अपेक्षा वर्षा कम होती है अतएव चूना और क्षारीय लवण पृष्ठ के निकट अर्थात् एक दो फुट की गहराई पर ही रहते हैं। कही २ चूना इतनी अधिक मात्रा मे पाया जाता है कि वह कठोर स्तर (Hard Pan) का निर्माण करता है। इन मिट्टियो का जोतना सरल होता है, अतएव कृषि की दृष्टि से ये अनुकूल हैं। फिर भी इन मिट्टियो के अधिकाश क्षेत्रो मे पशुचारण का कार्य होता है, कृषि का नही। इसका कारण वर्षा का अभाव है मिट्टियो के गुणो का अभाव नही।

## (८) मरुस्थलीय मिट्टियाँ

ये मिट्टियाँ मध्य उत्तरी अमरीका के पश्चिमी भाग मे दक्षिणी अमरीका के मध्य पश्चिमी तथा द० पू० भाग मे, पश्चिमी द० अफ्रीका मे, उत्तर, पूर्वी तथा द० प० भाग को छोडकर सम्पूर्ण आस्ट्रेलिया मे द० प० एशिया मे, उ० प० चीन मे तथा उ० अफ्रीका मे पाई जाती है।

शीतोष्ण मरुस्थलो की मिट्टियाँ धूसर वर्ण की होती है तथा उष्ण मरुस्थलो की मिट्टियाँ कुछ २ लाल होती है।

इन मिट्टियो का विकास ऐसे प्रदेशो मे होता है, जिनमे वनस्पति का अभाव होता है अर्थात् कुछ बिखरी झाडियाँ ही पाई जाती हैं। फल स्वरूप इन मिट्टियो मे वनस्पति-तत्व (Humus) की मात्रा कम होती है।

इस प्रदेश मे वर्षा की अपेक्षा वाष्पीकरण की मात्रा अधिक है। कही २ पर केशनली की क्रिया ( Capillary Action ) द्वारा ऊपर उठने वाला जल चूना तथा लवणमय पदार्थ को धरातल पर निक्षेपित कर देता है। इन मिट्टियो मे प्राय: क्षारीय एव लवणमय पदार्थ इतनी अधिक मात्रा मे होते है कि इसके ऊपरी स्तर के कण उनके माध्यम से परस्पर चिपक जाते है और इस प्रकार कडी पपडी बन जाती है।

ये मिट्टियाँ बलुही होती हैं। इन मिट्टियो मे नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है तथा घुलनशील खनिज अधिक होते है।

सामान्यत ये मिट्टियाँ अनुपजाऊ तो नही होती, किन्तु इनमे खेती नही की जा सकती क्योकि इनमे जल का अभाव रहता है। कृषि की दृष्टि से इनकी उपयोगिता इनमे विद्यमान लवणो के गुणो पर निर्भर है। कैलशियम के लवणो से युक्त मिट्टियों मे सिचाई की सहायता से खेती की जा सकती है। दूसरी ओर ऐसी मिट्टी मे जिसमे सोडियम के लवण होते है सिचाई की सहायता से भी खेती सभव नही है। कही २ पर इन मिट्टियो के ऊपरी स्तर मे नमक एव क्षार इतनी अधिक मात्रा मे होते है कि पौधे पनप ही नही सकते।

## लौयस मिट्टी

वायु द्वारा सचित दोमट के निक्षेपो को लौयस की सज्ञा दी गई है। इसके कण रेत से छोटे होते है तथा मृत्तिका से बडे। इसका रग पीला अथवा हल्का भूरा होता है। उगलियो मे दबाने से यह मिट्टी आटे की भॉति पिस जाती है और हाथ मे चिपक जाती है। यदि किसी पानी के बर्तन मे लौयस डाल दी जाय तो वह घुल जाती है। वेध्य ( permeable ) होने के कारण यह वर्षा-जल को सोख लेती है। यह धरातल की विषमताओ को ढके रहती है तथा निम्ननो मे इसकी मोटाई काफी होती है। इसमे स्तर नही पाये जाते। इसमे दो अन्य उल्लेखनीय विशेषताये होती है—(१) नदी नालो के किनारे इसमे लम्बवत ढाल पाये जाते है (२) इसमें अनेक छोटे छोटे नली सदृश लम्बवत खोखले होते है जो सभवत जडो के अवशेषों के द्योतक हो। इसमे चूने की मात्रा काफी होती है। रन्ध्री होने के कारण यह वर्षा जल को सोख लेती है और इसका पृष्ठ सामान्यत सूखा बना रहता है। सिचाई द्वारा यह बहुत उर्वर हो जाती है।

एशिया मे लौयस का विस्तार लगभग २ लाख ३० हजार वर्ग मील है। इसका अधिकाश भाग चीन (कान्सू, शान्सी तथा शैन्सी प्रदेशो) मे पाया जाता है। यहाँ पर इसकी मोटाई सैकडो फुट से लेकर हजारो फुट तक है। चीन मे प्राय लोग इस मिट्टी मे उत्खनन करके अपना निवास-स्थान बना लेते है। ह्वागहो तथा पीले सागर के जल का पीला रग इसी मिट्टी के घोल के कारण है। चीन की लौयस मिट्टी मे स्थलीय जीवो के अवशेष भी पाये जाते है। सभवत चीन के लौयस का स्रोत मगोलिया का मरुस्थल है।

लौयस मिट्टी के अन्य क्षेत्र मध्य साइबेरिया, मध्य योरप, सयुक्त राज्य अमरीका में मिसीसिपी बेसिन, अलास्का, अर्जेण्टाइना तथा उ० अफ्रीका है।

## (९) पर्वतो तथा घाटियो की जटिल मिट्टियाँ

ये मिट्टियाँ रॉकी, एण्डीज आल्प्स, मध्य तथा उ० पू० एशिया के पर्वत

पूर्वी आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड के दक्षिणी द्वीप का पश्चिमी भाग, टसमानिया मध्य मैडागास्कर, मध्य बोर्नियो, मध्य न्यूगिनी आदि में पाई जाती है।

इनमे वन सीमा के ऊपर टुण्ड्रा सदृश मिट्टियो के और उसके नीचे भस्ममृदा के लक्षण पाये जाते हैं।

इन मिट्टियो का आर्थिक महत्व वनो के कारण है। कही २ पर पर्वतो के निचले ढालो पर उत्तल बनाकर तथा घाटियो मे चावल तथा अन्य फसले उत्पन्न की जाती है। चाय का उत्पादन भी इन्ही मिट्टियो से सम्बन्धित है।

## ५ मिट्टियों के वर्गीकरण के आधार

उपर्युक्त सामान्य वर्गीकरण के अतिरिक्त अनेक आधारों पर मिट्टियो के वर्गीकरण किये जा सकते है उदाहरण के लिये संरचना, वर्ण, रासायनिक रचना, वयन ( Texture ), मूलशिला, उद्भव, स्थिति जलवायु, वनस्पति, खनिज-रचना आयु, ऊँचाई आदि। इन सबकी विवेचना यहाँ सभव नही है। इनमे से केवल दो वर्गीकरण सक्षेप मे, आगे दिये जा रहे हैं।

## ६ संरचना के अनुसार मिट्टियों का वर्गीकरण

सरचना के विचार से मिट्टियो को निम्नलिखित वर्गो मे बाँटा जा सकता है—

(१) **रेतीली अथवा बलुही मिट्टियाँ** (Sandv soils)—इनमे रेत की मात्रा ६० प्रतिशत से अधिक होती है तथा मृतिका कठिनता से १०-१२ प्रतिशत होती है।

(२) **मृण्मय मिट्टियाँ** (Clayey soils )—इनमे मृत्तिका की मात्रा दो-तिहाई से अधिक होती है।

(३) **दोमट मिट्टियाँ** (Loamy soils)—यह मिट्टी उपर्युक्त दोनो प्रकार की मिट्टियो का मिश्रण है। यदि इसमे रेत का अनुपात अधिक होता है तो इसे रेतीली दोमट कहते हैं। दूसरी ओर यदि इसमे मृत्तिका का अनुपात अधिक होता है, तो इसे मृत्तिकामय दोमट कहते हैं।

(४) चूर्णमय मिट्टियाँ (Calcarears Soils)—इन मिट्टियो मे चूने का अनुपात अधिक होता है।

(५) चर्नोजैम ( Chernozem )—इनमे वनस्पति तत्व का अनुपात अधिक होता है।

## ७ उद्भव के स्थान के सन्दर्भ में मिट्टियों का वर्गीकरण

इस आधार पर मिट्टियो के दो वर्ग किये जा सकते है —

(१) तत्रस्थ मिट्टियाँ ( Sedentary Soils )—इस वर्ग के अन्तर्गत वे मिट्टियाँ आती हैं, जो अपने उद्भव के स्थान पर स्थिर रहती है।

(२) परिवाहित मिट्टियाँ (Transported Soils)—इस वर्ग के अन्तर्गत वे मिट्टियाँ आती हैं, जो जल, हिमानी, वायु आदि परिवाहन के विभिन्न अभिकर्त्ताओ द्वारा अपने उद्‌भव के स्थान से अन्यत्र स्थानान्तरित कर दी जाती है।

## ८ खनिज-रचना के अनुसार मिट्टियों का वर्गीकरण

इस दृष्टि से, मिट्टियो के स्थूल रूप से दो वर्ग किये जा सकते हैं —

(१) पैडोकैल्स (Pedocals)—कैलशियम वाहक मिट्टियो को कहते हैं।

(२) पैडअलफर्स ( Pedalfers )—अल्यूमीनियम तथा लौह वाहक वाहक मिट्टियो को कहते हैं।

## ९ कृषि की दृष्टि से वर्गीकरण

कृषि के दृष्टिकोण से मिट्टियो के सामान्यत दो विभाग किये जाते हैं —

(१) आम्लिक मिट्टियाँ ( Acidic Soils )—ये मिट्टिया चावल, चाय, आदि के उत्पादन के लिये अनुकूल होती हैं।

(२) क्षारीय मिट्टियाँ ( Basic Soils )—ये मिट्टियाँ गेहूँ, कपास, सोरघ्यूप आदि के उत्पादन के लिये अनुकूल होती है।

## १० आयु के अनुसार वर्गीकरण

आयु के अनुसार मिट्टियो के तीन भेद किये जा सकते है—( १ ) नवीन मिट्टियाँ (२) प्रौढ मिट्टियाँ तथा (३) प्राचीन मिट्टियाँ।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

# भूमि के अपक्षरण की समस्या

# (THE PROBLEM OF SOIL EROSION)

## १ भूमि क्या है

भूमि का अर्थ है पृथ्वी की पपंटी का सबसे ऊपर वाला स्तर, जिसमे पेड-पौधो के जीवन के लिये आवश्यक खनिज एव रासायनिक पदार्थ तथा अन्य प्रकार की पौष्टिक भोजन-सामग्री रहती है। इसकी गहराई कुछ ही इच होती है।

य दि पृथ्वी का यह बहुमूल्य स्तर, जिसे हमने भूमि की सज्ञा दी है, एक बार नष्ट हो जाता है तो उसकी पुन स्थापना के लिये अनेको वर्ष लग जाते है और कभी-कभी तो उसका पुन स्थापन होता ही नही अर्थात् वह सदा के लिये नष्ट हो जाता है।

## २ अंपरक्षण का अर्थ और उसके साधन

वर्षा के कारण भूमि का कुछ भाग घिसकर बह जाता है। यही अपक्षरण है। वायु द्वारा भी भूमि के कण हटते रहते है। हिमनदियो द्वारा भी यह क्रिया होती है, किन्तु स्पष्ट है कि हमारे देश मे भूमि के अपक्षरण का प्रधान साधन जल ही है।

## ३ अपक्षरण की समस्या का महत्व

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश मे भूमि का महत्व हीरा-मोती से भी बढकर है। विशेषकर आधुनिक काल मे जब देश के भोजन की समस्या इतनी जटिल हो रही है इसका महत्व और भी बढ जाता है।

भूमि के अपक्षरण से केवल पृथ्वी का स्तर ही नष्ट नही होता, वरन मानवमात्र के जीवन का स्तर गिर जाता है। विज्ञान द्वारा अस्थायी रूप से उपज बढाई जा सकती है, किन्तु जहाँ एक बार भूमि का अपक्षरण आरम्भ हुआ—फिर वह उस समय तक नही रुकता, जब तक समस्त भूमि पूर्णरूपेण नष्ट नही हो जाती। निश्चय ही, मरुस्थल मे कोई भी राष्ट्र उन्नति नही कर सकता। यही कारण है, कि भूमि के अपक्षरण को सर्पी-मृत्यु (Creeping death) कहा गया है, जो उचित है।

इस समस्या की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि इस समय भारतवर्ष मे लगभग पन्द्रह करोड एकड भूमि अपक्षरण से प्रभावित है।

## ४ अपक्षरण का वेग

अपक्षरण का वेग भूमि की सरचना, ढाल और वर्षा की मात्रा पर निर्भर है। यदि भूमि कोमल अथवा घुलनशील पदार्थो से बनी हुई हो अथवा उसके कण असम्बद्ध हो, तो अपक्षरण अधिक होता है। दूसरी ओर कठोर एव अघुलनशील शिलाओ मे तथा परस्पर सम्बद्ध कणो द्वारा निर्मित भूमि मे अपक्षरण की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। समतल भूमि की अपेक्षा ढालू भूमि में अपक्षरण अधिक होता है। ढाल जितना ही अधिक प्रपाती होता है, अपक्षरण भी उतना ही अधिक होता है। अपक्षरण का प्रमुख साधन जल है, अतएव यह भी स्पष्ट है, कि साधारणत. उन क्षेत्रो मे जहाँ वर्षा अधिक होगी, अपक्षरण अधिक होगा।

## ५ अपक्षरण के प्रकार

भूमि का अपक्षरण दो प्रकार से होता है। कभी-कभी ऐसा होता है, कि वर्षा के कारण भूमि का सबसे ऊपर का पर्त घिसकर बह जाता है। फिर दूसरे पर्त की भी यही दशा होती है और यह क्रम चला करता है। इस प्रकार पतले स्तरो के रूप में भूमि के नष्ट होने को हम 'स्तर-अपक्षरण' ( Sheet Erosion ) कहते हैं।

बहुधा ऐसा होता है कि वर्षा द्वारा प्राप्त जल भूपृष्ठ पर नाले के रूप मे बहने लगता है। तदनन्तर उसमे दायी और बाँयी ओर से नालियाँ मिलती है। इस प्रकार कालान्तर मे नाले-नालियो का एक जाल सा बिछ जाता है। नाले-नालियो के पथ अथवा खड्ड को जलदरी अथवा Gully की सज्ञा दी गई है। इस प्रकार के अपक्षरण को जिसमे जलदरियाँ (Gullies) अस्तित्व मे आजाती है, हम जलदरी-अपक्षरण या Gully Erosion कहते है। इस प्रकार का अपक्षरण जहाँ एक बार आरम्भ हुआ, फिर उस समय तक नही रुकता जब तक कि समस्त क्षेत्र जलदरियो से पट नही जाता और भूमि कृषि के लिये सर्वथा व्यर्थ नही हो जाती। कानपुर से झासी जाते समय कालपी के निकट रेल की खिडकी से जलदरियाँ ही जलदरियाँ दिखलाई देती है।



चित्र १६०—दरी अपक्षरण (Gully erosion) का आरम्भ

## ६ वनस्पति का महत्व

वनस्पति अपक्षरण से भूमि की रक्षा करती है। यदि पृथ्वी के ऊपर वनस्पति का आवरण न होता तो वर्षा जल तीव्र वेग और शक्ति के साथ पृथ्वी पर टकराता। फल यह होता कि अपक्षरण की क्रिया बडे वेग से चलती। किन्तु वनस्पति के आवरण के कारण वर्षा के जल का वेग और बल दोनो ही क्षीण हो जाते हैं। इस प्रकार वनस्पति भूमि को अधिक मात्रा मे नष्ट होने से बचाती है। यही नही, अन्य रीतियों से भी वह इस दिशा में सहायक होती है। उदाहरण के लिये—पेड-पौधे वर्षाजल का शोषण करते है। उनके माध्यम द्वारा यह जल जडो तक पहुँचता है और झरनो या नालो के रूप मे पुन प्रकट होता है। बाढ के बल और वेग को भी जल-प्रवाह के पथ मे पडनेवाले पेड-पौधे कम कर देते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि वनस्पति का नष्ट होना भयानक विपत्ति का आमत्रण है। इससे केवल बाढ ही नही आती, वरन पृष्ठ की बहुमूल्य भूमि भी जिनपर पेड-पौधो का जीवन-निर्भर है, नष्ट हो जाती है।

## ७ भूमि के अपक्षरण के कारण

अब हम भूमि के अमक्षरण के प्रमुख कारणो की विवेचना करेंगे —

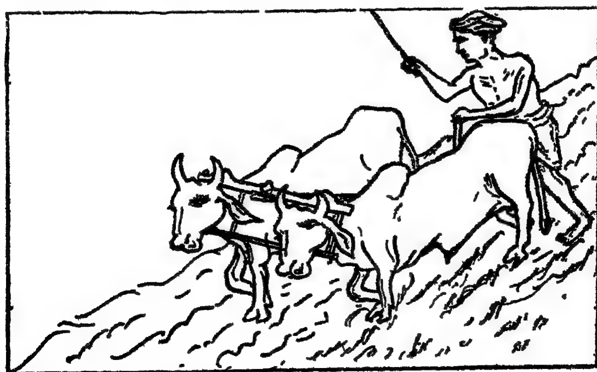
(१) **वनो का विनाश**—इसका उल्लेख तो किया ही जा चुका है, कि वनस्पति के नष्ट हो जाने से भूमि के अपक्षरण का परिमाण और वेग बढ जाता है।

(२) **जानवरो द्वारा घास एव पेड़-पौधो का अतिभक्षण** (Overgrazing)—वनस्पति को किसी भी रूप मे नष्ट होने देने का अर्थ है—भूमि के अपक्षरण को निमत्रित करना। भारतवर्ष की जलवायु ऐसी है कि यहाँ पर वर्षा ऋतु केवल चार महीने की होती है—फिर दीर्घकाल तक वर्षा नही होती अतएव घास के दुबारा उगने का प्रश्न ही नही उठता। अप्रैल-मई के महीनो मे तो घास मिलना समस्या बन जाती है। इसके अतिरिक्त भेड-बकरियाँ पौष्टिक एव अच्छे गुणो वाली घास को आरम्भ मे ही समाप्त कर देती है। बाद मे बहुत ही निकृष्ट श्रेणी की घास बच रहती है और उन पर ही जानवरो को निर्भर होना पडता है।

इस सम्बन्ध मे इस तथ्य का उल्लेख अनुचित न होगा कि जहाँ भारतवर्ष ससार के समस्त स्थल-क्षेत्र का केवल तीसवाँ अश है, वहाँ ससार के ७० करोड घास पर निर्भर रहने वाले जानवरो मे से २० करोड से अधिक भारत मे ही विद्यमान है।

(३) **कृषि की स्थानान्तरण प्रणाली** (Shifting Cultivation) आसाम और बगाल के कुछ भागो मे अब भी इस दोषपूर्ण प्रणाली से कृषि होती है। इस प्रकार की खेती मे कृषक प्रति वर्ष कृषि के लिये वन का एक नवीन भाग चुन लेता है। फिर वह आग लगाकर वहाँ की वनस्पति नष्ट कर देता है। वनस्पति की राख से भूमि की उवरता बढ जाती है। दूसरे वर्ष वह स्थल त्याग दिया जाता है और वन का दूसरा भाग खेती के लिये चुन लिया जाता है। फिर आग लगाकर वहाँ की भी वनस्पति नष्ट कर दी जाती है। यही क्रम चलता रहता है। इस प्रकार कृषि के स्थानान्तरण से बहुमूल्य वन नष्ट होते जा रहे है और भूमि के अपक्षरण की समस्या दिनो दिन भयकर और जटिल होती जा रही है।

(४) **ढाल का दोषपूर्ण प्रयोग**—ढाल के अनुरूप खेती के पौधो की पक्तियो की व्यवस्था करने से भी अपक्षरण बढ जाता है। भारतवर्ष के अनेक क्षेत्रो मे आलू की खेती इसी प्रकार होती है। इससे बहुमूल्य भूमि बडे वेग से नष्ट होती जा रही है। ढालू क्षेत्रो मे खेती करने के लिये उत्तल (Terrace) बनाना आवश्यक है और पौधो की पक्तियो को ढाल के प्रति समकोण बनाना चाहिये। ऐसी दशा मे अपक्षरण कम होता है।

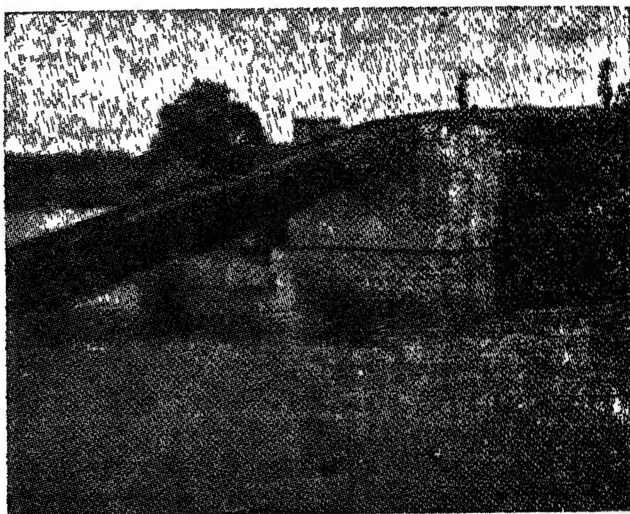


चित्र १६१—ढाल का दोषपूर्ण प्रयोग

## ८ अपक्षरण का प्रभाव

अब हम अपक्षरण के प्रभाव का विचार करेंगे :—

(१) **बाढ़**—वनो के नष्ट हो जाने से भूमि का अपक्षरण बढ जाता है। वनस्पति का आवरण वर्षा-जल के वेग और बल को क्षीण कर देता है, जिससे भूमि अपेक्षाकृत कम नष्ट होती है। इसके अतिरिक्त वनस्पति वर्षा-जल का शोषण करती है। पेडो के माध्यम द्वारा वर्षा-जल पृथ्वी के अन्दर जाता है। वनस्पति के नष्ट हो जाने से समस्त वर्षा-जल निर्विघ्न रूप से प्रवाहित होता है और इस प्रकार जल की मात्रा बढ जाने से बाढ आना स्वाभाविक ही है। विगत महायुद्ध के दिनो मे विदेशी शासको ने युद्ध की सामग्री बनाने के लिये हिमालय-प्रदेश से मनमानी लकडी कटवायी और उसका



चित्र १६२—बाढ का फल

(सन् १९५४ ई० की वर्षा ऋतु की बाढ से कमटीखुरगी और जोर्सी स्टेशनो के बीच मे स्थित उ० पू० रेलवे का पुल टूट गया।)

फल हम आज भोग रहे है। पहले कभी ऐसी बाढ नही आया करती थी, जैसी अब प्रति वर्ष आती है।

(२) **वर्षा की मात्रा कम हो जाना**—वृक्ष सूर्य-की किरणो के पथ मे बाधक होते है जिससे पृथ्वी पर पहुँचने वाले ताप की मात्रा घट जाती है। वृक्षो के नष्ट हो जाने से सूर्य की किरणे सीधे पृथ्वी पर पडती है और उसे गरम करती हैं। पृथ्वी के गरम होने से पृष्ठ की वायु हल्की होकर ऊपर उठती है। यह वायु वायु-मण्डल के वाष्पमय बादलो को दूर हटा देती है और इस प्रकार वर्षा की मात्रा घट जाती है।

(३) **भूमिगत जल** (Underground Water) **का तल नीचा होना**—जैसा कि उल्लेख हो चुका है वर्षा-जल पेडो के माध्यम द्वारा ही पृथ्वी के अन्दर प्रविष्ट

होता है। वनस्पति के नष्ट हो जाने से यह क्रिया बन्द हो जाती है। पृष्ठ की भूमि के घिस जाने से नीचे की अभेद्य और कठोर शिलायें ऊपर आ जाती है, जिनमें जल का पारण सम्भव नही है। अतएव, मूमिगत जल का समतल क्रमश नीचा होता जाता है। इसका फल यह होता है कि कुएँ दिनोदिन सूखते जाते है। झरनो का भी यही भविष्य होता है।

(४) **वन के पक्षियो और जीवो का क्षीण होना**—जब वन ही न रहेगे, तो उनके जीव और पक्षी किस प्रकार रह सकते हैं? नवीन वातावरण उनके लिये घातक सिद्ध होता है। राष्ट्र की सम्पत्ति और समृद्धि मे वन के जीवो और पक्षियो का महत्व-पूर्ण स्थान है। इनका नष्ट हो जाना देश के लिये कल्याणकारी नही है।

(५) **वायु द्वारा अपक्षरण**—वायु अपक्षरित भूमि के कणो को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। उदाहरणार्थ शिवालिक पर्वत के क्षेत्र मे वनो के नष्ट हो जाने से भूमि का अपक्षरण हुआ है। वायु वहाँ की अपक्षरित भूमि के कणो को जलन्धर के दोआब मे परिवाहित करती रहती है। इसका फल यह है कि जलन्धर के दोआब की बहुमूल्य भूमि की उर्वरता परिवाहित रेत के कारण क्रमश क्षीण होती जा रही है।

(६) **मरुस्थल का प्रसार**—वायु की क्रिया का दूसरा भयकर स्वरूप है—मरुस्थल का प्रस्तार। राजपूताना के मरुस्थल के कण वायु द्वारा सीमावर्ती क्षेत्रो में परिवाहित होते रहते हैं और इस प्रकार धीरे-धीरे मरुस्थल फैल रहा है। राजपूताना का मरुस्थल प्रति वर्ष १०० वर्ग मील बढ रहा है। उत्तर प्रदेश के मथुरा और आगरा जिले बुरी तरह से प्रभावित है और यदि मरुस्थल के प्रसार को रोका नही गया तो आश्चर्य नही, कि वे भी कुछ सहस्र वर्षो मे मरुस्थल मे पूर्णत परिणत हो जायँ।

(७) **जलाशयो में रेत का एकत्र होना**—यदि नदी के ऊपरी प्रदेश मे अप क्षरण अधिक होता है, तो नदी अपने साथ अपक्षरित भूमि को बहा ले आती है। यदि नदी के पथ मे बाँध और जलाशय होते है, तो यह रेत जलाशय मे इकट्ठी होती रहती है। इससे जलाशय क्रमश उथले होते रहते हैं और इस प्रकार जलपूर्ति (Water Supply) की मात्रा घट जाती है। ऐसी दशा मे उन्हे कुछ वर्षो के कालान्तर में साफ करना आवश्यक होता है।

(८) **सिंचाई और जलविद्युत पर प्रभाव**—नदियो मे वर्षा ऋतु मे बाढ आ जाने का दूसरा भयकर परिणाम यह होता है कि वर्ष के शेष भाग मे उनमे पानी की मात्रा घट जाती है। इससे नहरो और विद्युत-उत्पादन दोनो पर प्रभाव पडता है। नहरो मे पानी कम हो जाने से सिचाई ठीक तरह से नही हो पाती। जल की मात्रा के कम हो जाने से विद्युत-उत्पादन की मात्रा घट जाती है।

(९) **यातायात के साधनो पर प्रभाव**—बाढ से यातायात के साधनो को बडी हानि पहुँचती है। सडको का खराब हो जाना और रेल की पटरियो का प्रभावित होना तो साधारण सी बात है, कभी कभी बाढ के वेग से पुल नष्ट हो जाते है तथा बाँध टूट जाते है। सन् १९५५ की बाढ से आजमगढ का लालडिग्गी बाँध टूट गया।

(१०) **जीवन यापन के स्तर का गिरना**—हमारे देश के निवासियो के जीवन-निर्वाह का स्तर ससार के अन्य उन्नत देशो की तुलना मे वैसे ही लगभग सबसे नीचा है। हमारी राष्ट्रीय सरकार इसे ऊपर उठाने के लिये सतत प्रयत्न कर रही है। उपर्युक्त

विवेचना से स्पष्ट है कि जीवन स्तर को नीचा करने मे भूमि के अपक्षरण का भी महत्व-पूर्ण हाथ है। चरागाहो का नष्ट होना और कृषि की उपज का घटना अपक्षरण के ही दुष्परिणाम हैं। घास के घट जाने से गाय-भैंसो का स्वास्थ्य प्रभावित होता है और वे कम दूध देती हैं। वनो के नष्ट हो जाने से बहुमूल्य लकडियाँ, जीव एव पक्षी तथा भैष-जीय जडी-बूटियाँ सदा के लिये लुप्त हो जाती हैं। मनुष्य और जानवर दोनो को ही पर्याप्त भोजन नही मिलता। अतएव जीवन-यापन के स्तर का गिरना स्वाभाविक ही है।

## ९ उपाय

अब प्रश्न यह है कि भूमि के अपक्षरण को कैसे रोका जाय। अपक्षरण के लिये ये उपाय अपेक्षित हैं —

(१) **वनस्पति का पुनः स्थापन**—जहाँ कही भी वनस्पति नष्ट हुई हो, उसे तुरन्त वहाँ स्थापित किया जाय। वनो से जितने वृक्ष काटे जायँ, उतने ही नवीन वृक्ष लगा दिये जायँ। इस सम्बन्ध मे श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का 'वन महोत्सव का कार्य-क्रम नितान्त स्तुत्य है और सही दिशा मे सही कदम है।

(२) जहाँ पर भी ढाल हो वहाँ खेती के लिये **उत्तल** ( Terraces ) **बनाये जायँ**।



चित्र १६३—उत्तलो (Terraces) की व्यवस्था

(३) बाढ रोकने के लिये **बाँध बनाये जायँ**। इन बाँधो में सचित जल अनेक प्रकार से उपयोग मे लाया जा सकता है।

(४) अपक्षरण द्वारा जो भूमि नष्ट हो रही है, उसे पुन प्राप्त ( Reclaim ) किया जाय। **जलदरियो** (Gullies) **के पाटने के लिये मशीनो का प्रयोग भी अभीष्ट है।**

(५) **कृषि की दोषपूर्ण प्रणालियाँ त्याग दी जायँ**—उदाहरण के लिये स्थानान्तरण की खेती (Shifting cultivation) तुरन्त रोक दी जाय।

## १० भारतवर्ष में भूमि के अपक्षरण की दशा

अब हमें भारतवर्ष मे भूमि के अपक्षरण की दशा का सक्षिप्त अध्ययन करेंगे। अपक्षरण की दृष्टि से भारतवर्ष को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है :—

१ हिमालय प्रदेश
२ सिन्ध-गगा का मैदान
३ प्रायद्वीपीय भारत

## १ हिमालय प्रदेश

इसके पुन तीन विभाग किये जा सकते है—(१) पूर्वी हिमालय (२) मध्य हिमालय तथा (३) पश्चिमी हिमालय।

### (१) पूर्वी हिमालय

पूर्वी हिमालय के प्रदेश मे भूमि के अपक्षरण के मुख्य कारण ये है —

(१) वनस्पति का नष्ट होना—इसका एक फल यह है कि यहाँ से प्रवाहित होने वाली नदियो मे बाढ बहुत आती है।

(२) स्थानान्तरण की खेती (Shifting cultivation)—जो आज भी आसाम और बगाल के कुछ भागो मे प्रचलित है।

(३) वर्षा का आधिक्य—जिससे अपक्षरण अधिक होता है।

### (२) मध्य हिमालय

उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग की दशा इतनी बुरी नही है, जितनी पूर्वी हिमालय प्रदेश की। यहाँ पेड इतनी लापरवाही से नही काटे गये है। खेती के लिये ढालो पर उत्तल (Terraces) बनाये गये है। काठगोदाम से नैनीताल जाते समय ऐसे अनेक उत्तल दृष्टिगोचर होते है।

### (३) पश्चिमी हिमालय

यहाँ की शुष्क जलवायु आँशिक रूप से भूमि के अपक्षरण के लिये उत्तरदायी है। दीर्घकाल तक वर्षा न होने से तथा वर्षा की मात्रा कम होने से भूमि की पेड-पौधो को बृद्ध करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। कम वर्षा का एक दूसरा परिणाम है—भेड-बकरियो द्वारा घास का अतिभक्षण। इसके अतिरिक्त यहाँ भी असावधानी से वनस्पति नष्ट की गई है। इन्ही सब कारणो से यहाँ भूमि का अपक्षरण बहुत होता है।

## २ सिन्ध—गंगा का मैदान

यहाँ पर प्रवाहित होने वाली प्राय सभी नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलती है। इसका उल्लेख तो हो ही चुका है कि हिमालय-प्रदेश मे बिना सोच-विचार किये लापरवाही के साथ जगल काटे गए है। इसका फल यह होता है कि इन नदियो मे प्रति-वर्ष भयानक बाढ आती है।

पजाब की नहरो मे वायु के परिवाहन द्वारा बहुत सी रेत एकत्र होती रहती है, जिससे उनकी गहराई क्रमश घटती रहती है।

## ३. प्रायद्वीपीय भारत

इस क्षेत्र मे स्तर-अपक्षरण (Sheet Erosion) अधिक महत्वपूर्ण है। कही-कही पर भेड-बकरियो के अतिभक्षण (Overgrazing) द्वारा वनस्पति नष्ट हो गई है। किन्तु सतोष का विषय यह है कि यहाँ सिंचित क्षेत्रो (Irrigated Areas) मे काफी बाँध बनाये गये है तथा नील-गिरि के चाय के प्रदेश मे उत्तलो (Terraces) की सुन्दर व्यवस्था है।

# बाइसवाँ परिच्छेद

# भारतवर्ष के भौम्याकारिकीय विभाग

## (Physiographic Divisions of India)

## १. भौम्याकारिकीय विभाग

भौम्याकारिकी की दृष्टि से भारतवर्ष के तीन विभाग किये जा सकते है —

(१) प्रायद्वीपीय भारत अर्थात् विन्ध्य-श्रेणियो दक्षिण का भ.ग।

(२) अप्रायद्वीपीय भारत अर्थात् हिमालय प्रदेश जो हिमालय पर्वत की श्रेणियो से निर्मित है।

(३) सिन्ध गगा का मैदान—उपर्युक्त दोनो विभ.गो को पृथक करता है। यह विभाग सिन्ध (प० पाकिस्तान) मे सिन्धु नदी की घाटी से लेकर आसाम मे ब्रह्मपुत्र नदी की घ.टी तक फैला हुआ है।

## २. प्रायद्वीपीय तथा अप्रायद्वीपीय भारत

इन भौमिकीय विभागो की निजी विशेषताये है, जिनका अध्ययन चार शीर्षको के अन्तर्गत किया जा सकता है —

(क) स्तृत भौमिकीय (Stratigraphic)

(ख) रचनाभौमिकीय (Geotectonic)

(ग) भौम्याकारिकी के विभेदन (Diversity in Physiography)

(घ) भूपर्पटी की कोटि (Type of Earth-Crust)

### (क) स्तृत भौमिकीय (Stratigraphic)

स्तृत-भौमिकी (Stratigraphy) भूगर्भ-शास्त्र की एक शाखा है। इसके अन्तर्गत विभिन्न भूभागो के भौमिकीय इतिहास (Geological History) का अध्ययन किया जाता है। जब से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, तब से लेकर आज तक के काल को भूगर्भ-वेत्ताओ ने निम्नलिखित कल्पो तथा युगो मे विभाजित किया है —

| कल्प (Eras) | युग (Periods) |
|---|---|
| ६ तुरीय कल्प (Quaternary) | अभिनव (Recent)<br>प्रातिनूतन (Pleistocene) |
| ५ तृतीयक कल्प (Tertiary) | अतिनूतन (Pliocene)<br>मध्यनूतन (Miocene)<br>आदिनूतन (Oligocene)<br>प्रादिनूतन (Eocene) |

| | | |
|---|---|---|
| ४ | मध्य कल्प (Mesozoic) | क्रिटेशियसे (Cretaceous)<br>जूरासिक (Jurassic)<br>ट्रायसिक (Triassic) |
| ३ | पुराकल्प (Palaeozoic) | परमियन (Permian)<br>कार्बोनिफैरस (Carboniferous)<br>डिवोनियन (Devonian)<br>और्डोविशियन (Ordovician)<br>कैम्ब्रियन (Cambrian) |
| २ | उष कल्प (Eozoic) | आदि (Algonkian) |
| १ | आद्य कल्प (Archaean) | आद्य (Archaean) |

स्तत-भौमिकी की दृष्टि से प्रायद्वीपीय भारत कैम्ब्रियन युग से निरन्तर स्थल-पुञ्ज रहा है, किन्तु अप्रायद्वीपीय भारत अधिकाश काल मे समुद्र मे डूबा रहा है।

## (ख) रचना-भौमिकीय (Geotectonic)

रचना भोमिकीय अध्ययन से हमे विदित होता है कि प्रायद्वीपीय भारत की शिलाये क्षैतिज दिशा मे व्यवस्थित है, जबकि अप्रायद्वीपीय भारत की शिलाओ मे भजन (Folding) तथा विभगन (Faulting) का प्रक्रियाये बहुत अधिक मात्रा मे घटित हुई है।

## (ग) भौम्याकारिकी के विभेदन

भौम्याकारिकी (Physiography) की दृष्टि से प्रायद्वीपीय भारत के अधिकाश पर्वत अवशिष्ट (Relict) प्रकार के है। अन्य शब्दो मे ये पर्वत शिलाओ के कठोर पुञ्जों के अवशेषो को प्रदर्शित करते है, जो ऋतुक्षरण और अपनयन से बच गये है। प्रायद्वीपीय भारत की नदी-घाटियाँ चौड़ी और उथली है क्योकि इन नदियो ने अपने आधार-समतल (Base Level) को प्राप्त कर लिया है। अप्रायद्वीपीय भारत के पर्वत अन्त कृत (Tectonic) कोटि के है। अन्य शब्दो में उनकी उत्पत्ति भूपर्पटी के स्पष्ट उन्मज्जन से हुई है। अप्रायद्वीपीय भारत की नदियाँ यवावस्था मे है, जिससे उनके लम्बवत अपक्षरण का वेग अधिक है

## (घ) भूपर्पटी की कोटि

चतुर्थ दृष्टिकोण से अर्थात् भूपर्पटी की कोटि के विचार से प्रायद्वीपीय भारत होर्स्ट (Horst)[१] का द्योतक है। जब दो सामान्य विभगो (Normal Faults) के मध्य का स्थलखण्ड ऊपर उठ जाता है, तब उसे हम होर्स्ट (Horst) कहते है। होर्स्ट बडी परिदृढता (Rigidity) का स्थिर (Stable) स्थलपुञ्ज होता है, जिस पर बाद के भौमिकीय युगो मे घटित पर्वतकारक गतियो का कोई प्रभाव नही पडता। इसके विपरीत अप्रायद्वीपीय भारत अनम्य (Flexible) भूर्पपटी से निर्मित है, जो पर्वतीकरण को गतियो से बहुत प्रभावित हुआ है।

१—'होर्स्ट' के विशेष विवरण के लिये कृपया दूसरा परिच्छेद देखिये ।

## ३ सिन्ध-गंगा का मैदान

सिन्ध-गगा का मैदान यद्यपि आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक धनी है, तथापि भूगर्भशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से सबसे कम महत्व का है। इसके विषय मे तीन विचारधाराये हैं —

(१) **स्वेस** (Suess)—के अनुसार यह एक अग्र-निम्नन (Fore-deep) है। अन्य शब्दो मे, यह हिमालय पर्वत के आगे अस्तित्व मे आया निम्नन है, जो बाद मे, हिमालय पर्वत से प्राप्त अवसादो से भर गया।

(२) **बुर्राड** (Burrard)—के अनुसार यह पृथ्वी की अनुपर्पटी मे गहरी दरार-घाटी है जो बाद में व्यपघर्षण के निक्षेपो (Detrital Deposits) से भर गई।

(३) **सबसे आधुनिक दृष्टिकोण**—यह है कि यह भूपर्पटी के एक अवनमन (Sag) को प्रदर्शित करता है जो उत्तर की ओर प्रवाहित होनेवाले भारतीय स्थल-खण्ड और टेथिस-सागर मे एकत्र अपेक्षाकृत कोमल अवसादो के मध्य मे स्थित था।

## ४ हिमालय पर्वत

### (१) विस्तार

हिमालय पर्वत बलूचिस्तान (पश्चिमी पाकिस्तान) से लेकर आसाम तक फैला हुआ है। इसकी लम्बाई लगभग १५०० मील है तथा चौडाई १०० मील से लेकर २५० मील तक है।

### (२) भौगोलिक विभाग

#### (क) अनुप्रस्थ प्रच्छेद

कर्नल बुर्राड ने हिमालय पर्वत को चार विभागो में बाँटा है —

(१) पजाबी विभाग, (२) कुमायूँ विभाग, (३) नैपाली विभाग, तथा (४) आसामी विभाग।

(१) **पजाबी विभाग**—इसका विस्तार सिन्ध नदी से लेकर सतलज नदी तक है। इसकी लम्बाई लगभग ३५० मील है। इसकी सबसे ऊँची चोटी नगा पर्वत (२६, ६२० फुट) है। पीर पजाल इसकी दक्षिणी शाखा है।

(२) **कुमायूँ विभाग**—इसका विस्तार सतलज नदी से लेकर काली नदी तक है। इसकी उल्लेखनीय चोटियाँ नन्दा देवी, त्रिशूल, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गगोत्री आदि हैं। इनमे नन्दादेवी (२५, ६४५ फुट) सबसे ऊँची है।

(३) **नैपाली विभाग**—इसका विस्तार काली नदी से लेकर तिस्ता नदी तक है। इसकी लम्बाई लगभग ५०० मील है। इसकी उल्लेखनीय चोटियाँ एवरैस्ट, कचनजगा, धौलगिरि, अन्नपूर्णा, गोसाईंथान आदि है। एवरैस्ट (२९, १४१ फुट) ससार का उच्चतम गिरि शिखर है।

(४) **आसामी विभाग**—इसका विस्तार तिस्ता नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र के मोड तक है। इसकी लम्बाई लगभग ४५० मील है। इसकी उल्लेखनीय चोटियाँ नामचा बरवा (२५,४४५ फुट) तथा कुला कागडी (२४,७८४ फुट) हैं।

#### (ख) अनुदैर्घ्य प्रच्छेद (Longitudinal Section)

हिमालय पर्वत को दक्षिण से उत्तर की ओर चार प्रायः समानान्तर कटिबन्धो मे बाँटा जा सकता है —

(१) बाह्य हिमालय (The Outer Himalayas )
(२) लघु हिमालय ( The Lesser Himalayas)
(३) मध्य हिमालय (The Central Himalayas )
(४) पार-हिमालय (The Trans-Himalayas)

(१) **बाह्य हिमालय**—इसकी चौडाई ५ मील से लेकर ३० मील तक है तथा औसत ऊँचाई लगभग ३,००० फुट है। यह विभाग जगली तथा दलदली है।

(२) **लघु हिमालय**—इसकी चौडाई ४० मील से लेकर ५० मील तक है तथा ऊँचाई १२,००० फुट से लेकर १५,००० फुट तक है।

(३) **मध्य हिमालय**—इसकी औसत ऊँचाई २०,००० फुट है। इस विभाग मे उच्चतम शिखर पाये जाते हैं।

(४) **पार-हिमालय**—इसकी औसत चौडाई लगभग २५ मील है। इसमे नदियो की घाटियाँ १४,००० फुट की ऊँचाई पर स्थित हैं।

## (३) भौमिकीय विभाग

भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से हिमालय पर्वत के चार विभाग किये जा सकते हैं, जो क्रमश दक्षिण से उत्तर की ओर स्थित है —

(१) **शिवालिक**—ये ऊपरी तृतीयक (Upper Tertiary ) युग की शिलाओ से बने हैं।

(२) **उप-हिमालय**—इनके और शिवालिक के मध्य मे मुख्य सीमा स्थित विभग ( Main Boundary Fault) है। ये प्रि-कँम्ब्रियन से लेकर तृतीयक युग तक की रचनायें हैं।

(३) **मुख्य हिमालय**—ये पुराना युग की रूपान्तरित शिलाओ से बने है।

(४) **तिब्बती हिमालय**—इसकी शिलाये कैम्ब्रियन से लेकर प्रादिनूतन (Eocene ) युग तक की है। ये शिलाये महासागरीय है तथा इनमे निखातक (Fossils) पाये जाते है।

## (४) संरचना (Structure)

अभी तक सम्पूर्ण हिमालय पर्वत की सरचना का अध्ययन नही किया जा सका है। कुमायू के पूर्व के भाग का अभी तक किसी ने अन्वेषण नही किया। सभवत इसका कारण यह है कि इस भाग मे हिमालय का दक्षिणी ढाल बहुत प्रपाती है, तलहटी अत्यन्त सकीर्ण है तथा जलवायु प्रतिकूल है। हिमालय पर्वत की सरचना के विषय में जो कुछ भी हमारा वर्तमान ज्ञान है, उसका श्रेय सर्वश्री पिलग्रिम, वैस्ट, वाडिया, ऑडैन, हेडन, ओल्डैम बुर्राड आदि विद्वानो को है।

पश्चिमी हिमालय मे निम्नलिखित सरचनात्मक पेटियाँ पाई जाती है —

(१) **बाह्य तथा उप-हिमालय** (Outer and Sub Himalayas)—इसमें दो पेटियाँ है —

(क) **शिवालिक पेटी**—यह मध्य-मध्यनूतन (Mid Miocene) से लेकर निम्न प्रातिनूतन ( Lower Pleistocene ) तक के सरिता-निक्षपो से बनी है। यह पेटी हिमालय पर्वत के सम्पूर्ण पद के अनरूप फैली है। इसमें ज़रा प्रकार के भज पाये जाते हैं।

(ख) **सिरमूर पेटी**—यह नैनीताल से उत्तर-पश्चिम की ओर फैली है। नैनीताल के पूर्व मे यह अनुपस्थित है। यह तृतीयक (Tertiary) युग के उपह्रद निक्षेप (Lagoon deposits) से बनी है। इसमे समाभिनत फज (Isoclinal Folds) पाये जाते हैं।

(२) **मध्य हिमालय** (Central Himalayas)—इसमे तीन पेटियाँ हैं —

(ग) **पूर्वावस्थित पेटी** (Autochthonous Belt)—पूर्वावस्थित पेटी ऐसी पेटी को कहते है जिसकी शिलाये अपनी मूल स्थिति मे रहती हैं अर्थात् वे स्थानान्तरित नहा होता। अन्य शब्दो मे यह पेटी पर्वतो के मूल की द्योतक है। इस पेटी की शिलाये कार्बोनिफैरस युग से लेकर प्रादिनूतन (Eocene) युग तक की हैं। इसमे शायी भजन पाये जाते हैं। दक्षिण को ओर ये शिलाये तृतीयक युग की शिलाओ पर चढ गई हैं। पजाल वाल्कैनिक (Panzal Volcanic) तथा स्रोल सिरीज (Srol Series) की शिलाये पूर्वावस्थित पेटी के अन्तर्गत हैं।

(घ) **पुराना युग की प्रच्छद पेटी** (Purana Nappe Belt)—पूर्वास्थित पेटी के पश्चिमी भाग मे निखातक हीन स्लेट शिलाये उत्क्षिप्त हैं।

(ङ) **मणिभीय प्रच्छद पेटी** (Crystalline Nappe Belt)—यह पेटी प्राचीन रूपान्तरित शिलाओ से निर्मित है। इसमे ग्रेनाइट के नितोदन (Intrusions) बहुत पाये जाते हैं।

(३) **पार-हिमालय** (Trans-Himalayas) इसमे केवल एक पेटी है :—

(च) **तिब्बती पेटी**—यह पेटी कैम्ब्रियन से लेकर प्रादिनूतन युग तक की महासागरीय शिलाओ से बनी है। इन शिलाओ मे निखातक (Fossils) पाये जाते हैं। ये शिलाये टैथिस भूद्रोणी मे अवसादो के एकत्र होने से बनी है।

## (५) सरचनात्मक विशेषताये

हिमालय पर्वत मे निम्नलिखित सरचनात्मक विशेषताये पायी जाती हैं —

(१) हिमालय पर्वत चाप की आकृति के हैं। यह चाप प्रायद्वीपीय भारत की दिशा मे उन्नतोदर है तथा तिब्बत की दिशा मे नतोदर।

(२) हिमालय पर्वत मे दो उल्लेखनीय मोड हैं। एक उ० प० मे गिलगिट और नगा पर्वत के निकट है, जहाँ सिन्ध नदी मुडती है, दूसरा उ० पू० है, जहाँ ब्रह्मपुत्र मुडती है।

(३) हिमालय पर्वत के ढाल दक्षिण की ओर प्रपाती हैं और उत्तर की ओर मन्द।

(४) सामान्य अभिलम्बा (Strike) की दिशा उ० प० से द० पू० है।

(५) सम्पूर्ण हिमालय की लम्बाई के अनुरूप कश्मीर से लेकर आसाम तक एक विपरीत विभग चला गया है, जिसे मुख्य सीमा स्थित विभग (Main Boundary Fault) की सज्ञा दी गई है। यह विभग शिवालिक शिलाओ को अपेक्षाकृत प्राचीन शिलाओ से पृथक करता है।

(६) मुख्य सीमा स्थित विभग के अनुरूप भूपर्पटी में गतियाँ होने के कारण हिमालय प्रदेश भूकम्प की पेटी मे आता है।

(७) कुछ नदियो ने हिमालय पर्वत के आरपार गहरी और प्रपाती पार्श्वो वाली घाटियाँ बनाई हैं। सभवत ये नदियाँ पूर्वगामी प्रवाह (Antecedent Drainage) की द्योतक हैं।

## (५) उद्भव (Origin)

**पुराकल्प का पुराभूगोल** (Palaeo-geography of the Palaeozic Era)—मध्य पुराकल्प मे स्थल और जल का वितरण इस प्रकार था —

(क) द० अमरीका, अफोका, प्रायद्वीपीय भारत, आस्ट्रेलिया और अण्टार्कटिका एक दूसरे से जुडे हुए थे और एक महान स्थलखण्ड का निर्माण करते थे, जिसे 'गोण्डवानालैण्ड' (Gondwanaland) की सज्ञा दी गई है।

(ख) दूसरी ओर उ० अमरीका, योरप और एशिया एक दूसरे से जुडे हुए थे और एक दूसरे स्थलखण्ड का निर्माण करते थे जिसे 'लॅरेशिया' (Laurasia) की सज्ञा दी गई है।

लॅरेशिया उत्तर मे था और गोण्डवानालैण्ड दक्षिण मे और इनके मध्य मे एक सकरा सा सागर था, जिसे भूगर्भ-वेत्ताओ ने टैथिस सागर (Tethys Sea) की सज्ञा दी है।

**हिमालय के विकास का इतिहास**—टैथिस सागर मे लॅरेशिया और गोण्डवानालैण्ड की नदियो द्वारा लाये गये अवसाद से हिमालय पर्वत बना है। उसके विकास मे वे सभी प्रावस्थाये हुई, जिनकी विवेचना ५५ वे परिच्छेद मे 'भूद्रोणी विषयक उपकल्पना' के अन्तर्गत को गई है।

**अग्र प्रदेश तथा पृष्ठ प्रदेश**—हिमालय पर्वत के बनने के लिये तिब्बत की दिशा से दबाव पडा और प्रायद्वीपोय भारत ने उसे रोका। अतएव हिमालय के निर्माण मे तिब्बत पृष्ठ प्रदेश (Hinterland) था और द० पठार अग्रप्रदेश (Foreland) था।

**हिमालय पर्वत का उन्मज्जन**—हिमालय पर्वत एक बार मे ऊपर नही उठा है। उसका प्रथम उन्मज्जन मध्य-प्रादिनूतन (Mid Eocene) युग मे हुआ। इसके फलस्वरूप जलज शिलाओ की मध्यवर्ती मणिभोय अक्ष (Central Crystalline Axis) ऊपर उठी। दूसरा उन्मज्जन मध्यनूतन (Miocene) युग के मध्य मे हुआ। इसके फलस्वरूप लघु-हिमालय की श्रेणियाँ ऊपर उठो। तीसरा उन्मज्जन अतिनूतन (Pliocene) युग मे हुआ। इसके फलस्वरूप शिवालिक श्रेणियाँ ऊपर उठी तथा हिमालय पर्वत का वर्तमान विन्यास अस्तित्व मे आ गया।

# द्वितीय खण्ड

# उदधि

(THE OCEAN)

# Introduction

It is with great pleasure that I write this introduction to Professor J. P. Srivastava's treatise on oceans entitled 'Udadhi'. Professor Srivastava worked as a lecturer in Geography in Nagpur University for a session and in that capacity he demonstrated a remarkable ability in handling courses in Physical Geography. He has a solid background both in Geology and Geography and in addition, he has made extensive studies in Hindi Literature. All this makes it evident that Professor Srivastava is an extremely competent person to write a treatise of this nature in Hindi. Advanced students of geography will find a great deal of information in this work and others will find it immensely interesting. There is no geographical aspect of the ocean which has not been dealt with and this small volume distills from a vast subject practically all facts and phenomena of interest and importance. Professor Srivastava possesses a clear and charming style and by writing this book he has made a vary valuable contribution to the national language of the country. I heartily congratulate Professor Srivastava, my former colleague, for this laudable enterprise and wish to recommend his book to every student of Physical Geography.

Geography Department
Indiana University,
Bloomiug, U. S. A.
Sept. 20, 1954.

**S. Mookerji.**
*Formerly Head of the Department of Geography, Nagpur University*
*At present—Exchange Visitor under Fulbright Act,*
*Indiana University, U. S. A.*

लेखक की ओर से

# निवेदन

प्रस्तुत खण्ड 'उदधि' मे महासागरो पर भौगोलिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

× × ×

भूपृष्ठ का ७१ प्रतिशत भाग जल द्वारा आच्छादित है। इसीसे महासागरो की महत्ता प्रकट है।

× × ×

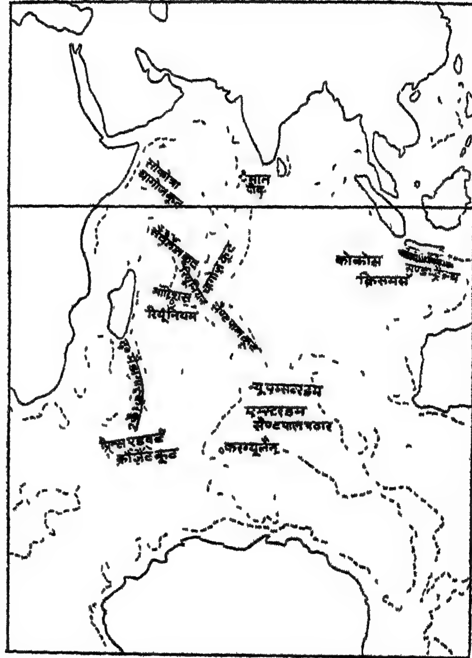
हम भारतवासियों के लिये यह गर्व, गौरव एव गरिमा का विषय है कि ससार मे सर्व प्रथम मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी ने महासागर पर पूर्ण विजय प्राप्त की थी–

'बान्ध्यो बन निधि, नीर निधि, जलधि, सिन्ध, बारीस।
सत्य तोयनिधि, कम्पति, उदधि, पयोधि, नदीस ॥'

× × ×

नागपुर विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग के अध्यक्ष डा० सितांशु मुखर्जी ने इस खण्ड की भूमिका लिखी है। उनके प्रति मै अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ।

—जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव




चित्र १८०—हिन्द महासागर के कूट तथा अथाह [सन्दर्भ पृष्ठ १९७]

# समर्पण

पूज्य भ्राता

श्रीमान महावीर प्रसाद श्रीवास्तव आई० ए० एस०

गृह सचिव, मध्यप्रदेश शासन



के

कर कमलों में

सादर समर्पित

(पृष्ठ १७३ के सामने



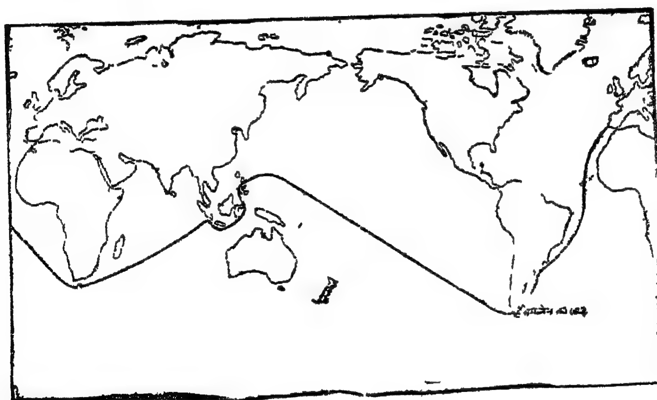
चित्र १६४—आँस्ट्रेलिया की महान परातट प्रवा ी
(Great Barrier Reef of Australia)

# तेइसवाँ परिच्छेद

# ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अत्यन्त प्राचीन काल मे ग्रीस के निवासियो को भूमध्यसागर का व्यवहारिक ज्ञान था। वे इसे 'थालासा' (Thalassa) कहते थे।

ईसा के चार शताब्दी पूर्व पिथियस (Pytheas) नामक ग्रीस निवासी ब्रिटिश द्वीप समूह के तट तक नौकारोहण करने मे समर्थ हुआ। लगभग एक शताब्दी ईसा पूर्व हिप्पालस (Hippalus) ने हिन्द महासागर के मानसून वायु के क्षेत्र को खोज की।



चित्र १६५—मागेलन अभियान का पथ

सन् १४९२ और सन् १५२२ ई० के बीच मे भूपृष्ठ विषयक ज्ञान मे विशेष अभिवृद्धि हुई है। इसी काल मे कोलम्बस अन्धमहासागर के मार्ग द्वारा अमरीका पहुँचा, वास्कोडिगामा उत्तम आशा अन्तरीप होता हुआ भारतवर्ष पहुँचा और मागेलन-अभियान ( Magellan's expeditions ) के उत्तरजीवक (Survivers) जलयान द्वारा पृथ्वी के गोलाभ का सर्वप्रथम परिनौकारोहण (Circumnavigation) करने मे सफल हुए। चित्र १६५ मे मागेलन अभियान का पथ प्रदर्शित किया गया है।

इस भाँति इस अल्पकाल मे पृथ्वी का लगभग आधा भाग खोजा जा सका। इस विषय मे यह मनोरजक घटना उल्लेखनीय है, कि सन् १५२१ में प्रशात पार करते समय जब मागेलन ने विवृतसागर मे ध्वनीकरण (Sounding) का प्रयत्न किया और उसकी रज्जु सागर नितल तक न पहुँच सकी, तब उसने इसका यह निष्कर्ष निकाला, कि वह सबसे अधिक गहरे महासागर की खोज करने में सफल हुआ।

सोलहवी और सत्रहवी शताब्दियो मे जो जलयात्राये की गई, उनसे विभिन्न

महासागरो के पृष्ठ विस्तार का ज्ञान बढा है। सागरपृष्ठ का तापक्रम, लवणता, तरगे, ज्वारभाटा आदि का अध्ययन हुआ। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे कैप्टन कुक ने प्रशात महासागर मे, कैप्टन फिप्स (Capt Phipps) ने आर्कटिक सागर मे और सन् १८४० ई० मे सर जौन रौस (Sir John Ross) ने अण्टार्कटिक सागर मे ध्वनीकरण का। केवल अत्यन्त गहरे भागो को छोडकर इन सबके फल पर्याप्त रूप मे यथार्थ थे।

योरप और अमरीका के बीच मे विद्युत-सदाम ( Electric Cable ) की व्यवस्था के कारण भी महासागरीय अन्वेषण मे उन्नति हुई है। सन् १८५० ई० के लगभग ब्रुक ने सागर-नितल के अध्ययन के लिए एक नवीन रीति की खोज की। इसमे रज्जु (Line) और नली (Tube) को नीचे ले जाने वाला गुरु-भार (Heavy weight) सागर नितल पर पहुँचकर वही रह जाता है और नली नितल का निक्षेप भरकर ऊपर आ जाती है। इस नवीन रीति से अगाध सागरो मे बार-बार ध्वनीकरण की जाने लगी और अधिक यथार्थ फल प्राप्त होने लगे।

एजियन सागर मे अनेक अन्वेषणो के उपरात सन् १८४० के लगभग एडवर्ड फोर्बे (Edward Forbe) इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि महासागरो मे जीव और पादप निश्चित गहराई तक ही पाये जाते है और जीवो की अपेक्षा पादप कम गहराई तक मिलते हैं। इनका कथन था कि जीव केवल ३०० फैदम की गहराई तक ही मिलते हैं। बाद मे माइकैल सार्स (Michael Sars), वायविल्ले थोमसन (Wyville Thomson) तथा डब्ल्यू० बी० कारपैण्टर (W B Carpenter) आदि अन्वेषको ने योरप के अटलाण्टिक तट की खोज द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि जीव एक-दो मील की गहराई तक पाये जाते हैं।

यहाँ पर एक मनोरजक घटना उल्लेखनीय है। भूमध्यसागर मे एक समुद्रान्तर सदाम (Submarine Cable) को सुधारने के लिये जब जलपृष्ठ पर लाया गया, तब उसमे बहुत से जीव चिपटे हुए थे। स्पष्ट है, कि ये जीव सागर नितल मे उसी स्थान पर रहते होगे जहाँ सदाम विद्यमान था। इस घटना के कारण लोगो की रुचि खोज की दिशा मे और भी अधिक बढी।

परिणामस्वरूप जो अन्वेषण किये गये, उनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य ब्रिटिश जलयान चैलेञ्जर (Challenger) का है। इसने सन् १८७३ और १८७६ के बीच मे पृथ्वी की परिक्रमा लगाकर महासागरीय-अनुसधान किया। इस जलयान मे वैज्ञानिको और विशेषज्ञो का एक दल था। इस दल के नेता सर जॉन मरे थे। इसने विभिन्न गहराइयो मे जीव, पादप, निक्षेप, तापक्रम, घनत्व आदि प्रत्येक वस्तु का वैज्ञानिक, नियमित और क्रमबद्ध अध्ययन किया। महासागरीय ज्ञान-भण्डार में चैलेञ्जर-रिपोर्ट का आज भी महत्वपूर्ण स्थान है।

चैलेजर के अतिरिक्त पिछली शताब्दी के अधिक उल्लेखनीय अभियान ये हैं —

(१) **टसकैरोरा** (Tuscarora)—इसने सन् १८७४ से लेकर सन् १८७६ तक प्रशान्त महासागर में अन्वेषण किया ।

(२) स्कैण्डिनेविया के नाविको का कार्य—इनमें **नानसेन, एमण्डसेन** तथा **पैटरसेन** विशेष उल्लेखनीय हैं।

(३) **माइकेल सार्स** (Michael Sars)—ने सन् १९१० मे उत्तरी अन्ध महासागर मे अन्वेषण किया।

(४) जर्मनी का **मैटियोर** (Meteor) अभियान जिसका कार्यकाल १९२५-२७ था।

(५) सन् १९३२ मे दक्षिणी महासागर मे **डिसकवरी द्वितीय** (Discovery II) का अभियान।

(६) सन् १९४७-४८ मे स्वेडन के **एलबाट्रोस** ( Albatross ) का अभियान

(७) सन् १९५०-५१ मे **डिसकवरी द्वितीय** का अभियान

(८) सन् १९५१ मे **चैलेञ्जर** का अभियान

(९) सन् १९५१-५२ मे **हालैण्ड द्वारा सम्पन्न अभियान**

(१०) **अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिकी वर्ष** (International Geophysical Year ) **के अन्तर्गत विभिन्न अभियान** जिनमे अधिक उल्लेखनीय **नॉटिलस** (Nautilus) [उत्तरी ध्रुव पहुँचनेवाली पनडुब्बी] तथा सर विवियन फुश का **कौमनवैल्थ अण्टार्कटिका • पार अभियान** (Commonwealth Trans-Antarctic Expedition) है।

अभिनव काल मे बहुत से देशो ने महासागरीय अन्वेषण का स्तुत्य कार्य किया है। उत्तरी सागर और नार्वेजियन-सागर के अध्ययन के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन नियुक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक नगरो मे सामुद्र-प्रयोगशालाये (Marine Laboratories) स्थापित की गई है, जहाँ अन्वेषण का बहुत सा कार्य हुआ और हो रहा है।

# चौबीसवाँ परिच्छेद

# अन्वेषण सम्बन्धी यन्त्र

महासागरो के अन्वेषण के लिये जो साधन अपनाये जाते है, उनमे अधिक उल्लेखनीय ये है —

१—**ध्वनीकरण** (Sounding)—अगाध सागर के अन्वेषण के लिये उपयोग मे आनेवाले उपकरणो मे ध्वनीकरण का यत्र मुख्य है। इससे गहराई ज्ञात की जाती है। चैलञ्जर के समय मे जो रीति अपनाई जाती थी, वह अत्यन्त सरल किंतु श्रमजनित और अशुद्ध थी। इस रीति मे रज्जु द्वारा भार सागर नितल तक ले जाया जाता था। बाद मे रज्जु का स्थान वीणातन्तु (Piano Wire) ने ले लिया। इस रीति से गहरे सागर के ध्वनीकरण मे घटो लग जाते थे और यदि कही कोई व्यतिक्रम हो गया तो सहस्रो गज लम्बा बहुमूल्य ततु व्यर्थ चला जाता था। अभिनव काल मे प्रतिध्वनि-ध्वनीकरण ( Echo-Sounding) की नवीन रीति ज्ञात हुई है और अब इसी का प्रयोग होता है। इस नवीन यत्र की विस्तृत विवेचना यहाँ पर सम्भव नही है। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इस प्रणाली के अन्तर्गत जलयानो के तल मे एक प्राचीर ( Diphragm) रहता है जिसमे विद्युत प्रदोलन किया जाता है। ये प्रदोलन ( Oscillations ) सागर-नितल तक जाते है और जब वहाँ से परावर्त्तित (Reflct ) होकर वापिस लौटते है तब एक प्रापण-प्राचीर ( Receiving-diaphragm ) द्वारा ग्रहण और बिजली द्वारा आलेखित किये जाते है। गहरे से गहरे सागर मे और अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी इस प्रकार के ध्वनीकरण के लिये कठिनता से कुछ ही सैकण्ड लगते है।

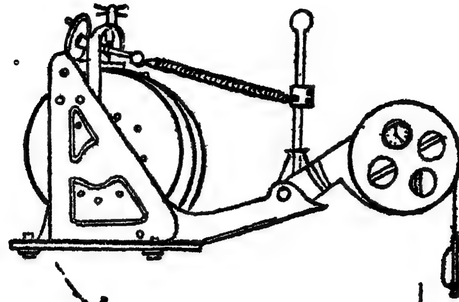
२—**निकर्षण** ( Dredging )—अधिक गहराई मे रहने वाले जीवो के अध्ययन के लिये यह रीति विशेष सुविधाजनक है।

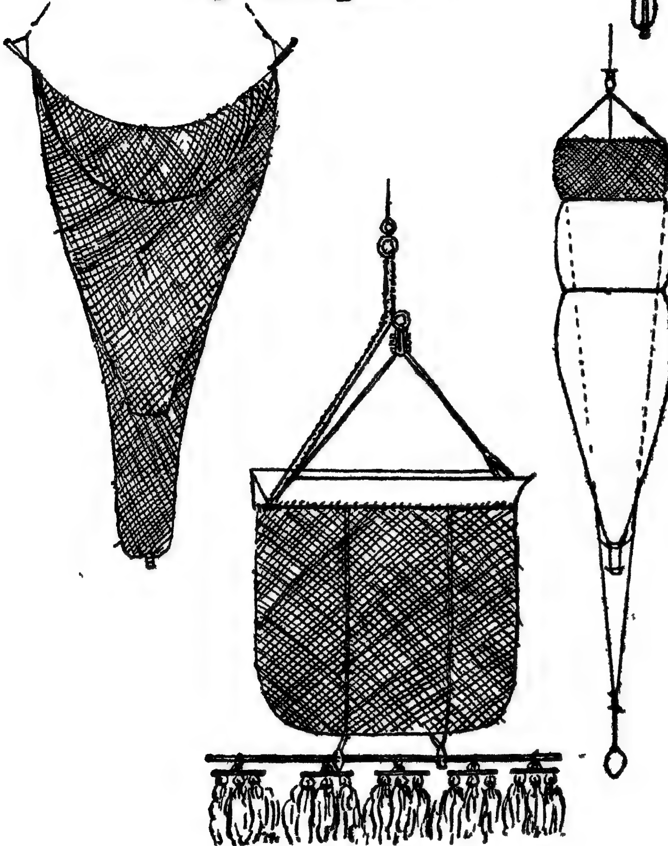
निकर्ष ( Dredge ) अनेक फुट लम्बा लौह-ककाल होता है, जिसमे बहुत से थैले लगे रहते है। सागर नितल मे डालकर इसे घटो घसीटा जाता है। फिर पृष्ठ पर खीचकर इसकी अन्तर्वस्तु की परीक्षा की जाती है।

यह आशा करना कि इस रीति से अथाह सागर के जीवो का यथार्थ बोध हो जायगा—भ्रममात्र ही है, क्योकि तेज चलने वाले जीव तो तुरन्त भाग जाते है और फसते है तो केवल वे अभागे जन्तु जो इतने छोटे है कि जाल मे समाजाते है और जिनकी गति इतनी मन्द है कि वे तुरन्त भागने मे नितान्त असमर्थ है।

३—**कर्ष-जाल** (Tow-nets) **और उदग्र-जाल** ( Vertical nets )—जलपृष्ठ पर तैरने वाले और बीच के प्रदेशो के जीवो और पादपो के फसाने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है।

४—**मथित्र** ( Centrifuge )—आधुनिक अन्वेषणो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महासागर मे रहने वाले बहुत से जीव इतने सूक्ष्म है कि वे अच्छे से अच्छे रेशम के जालो की अक्षि ( Mesh ) से भी निकल जाते है। महासागर जल को

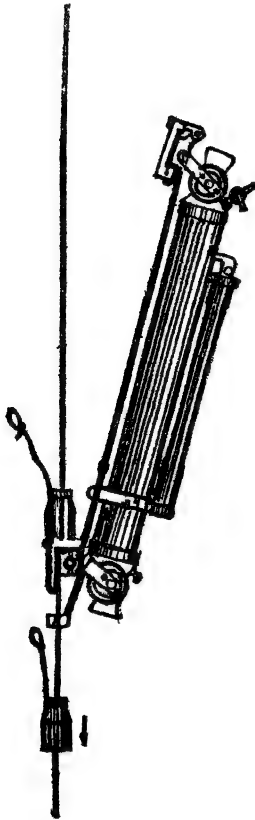



चित्र १६६—महासागरीय अन्वेषण के कुछ साधन

क=लूका का ध्वनीकरण (Sounding) का यत्र
ख=ओटर का आनाय-जाल (Otter's Trawl)
ग=माइकैल सार्स का उदग्र कर्ष-जाल (Vertical Tow Net)
घ=चैलेञ्जर का निकर्ष-जाल (Challenger's Dredge)

मथकर ही ये जीव एकत्र किये जा सकते है। 'माइकैल सार्स' मे एक बडा मत्रिथ था, जिसमे १२०० घन सैण्टीमीटर सागरजल एक साथ मथा जा सकता था और इसमे छै कॉच लगे हुए थे। यह एक मिनट मे ७०० से ८०० परिक्रमाये करता था और आठ मिनट के बाद सारे जीव कॉचो के तल मे एकत्र हो जाते थे। तब निर्मल जल गिरा दिया जाता था और निक्षेप को नोकदार पेंदी के छोटे कॉच मे रखकर हस्त-मथित्र से पुन मथते थे। इस प्रकार सारी अन्तर्वस्तु जो सैकडो घन सैण्टीमीटर सागर जल मे विद्यमान थी एक ही बूद मे एकत्र हो जाती थी। तदन्तर उसकी परीक्षा अण्वीक्ष्य-यत्र (Microscope) से की जाती थी।



चित्र १६८—तापमापक सहित प्रतिवर्ती जलकपी

**५—अगाध-सागरीय तापमान** (Deep Sea Thermometer)—अगाध सागरो का तापमान जानने के लिये सिक्स का अधिकतम एव न्यूनतम तापक्रम-मापक (Six's Maximum and Minimum Thermometer) सर्वप्रथम प्रयोग मे लाया गया। चैलेञ्जर के अन्वेषण-काल मे मिलर (Miller) तथा कसैला (Caselli) द्वारा सशोधित रूप काम मे लाया गया। यह तापमापक विवृत सागर के लिये, जिसमे गहराई के साथ तापक्रम घटता है, सन्तोपजनक है। ध्रुवीय प्रदेशो और कुछ समावृत सागरो मे भिन्न तापक्रमो के स्तर विद्यमान है अर्थात् गहराई के साथ टापक्रम कभी घटता है, तो कभी बढता है। ऐसी दशा मे सिक्स का तापमापक असफल सिद्ध होता है। अतएव उसके स्थान पर एक नवीन तापमापक का आविष्कार किया गया। इस तापमापक को उलटा जा सकता है। इससे किसी भी गहराई का तापक्रम लिया जा सकता है। इस प्रतिवर्ती-तापमापक (Reversing thermometer) मे नैग्रैट्टी (Negretti), जम्ब्रा (Zambra) तथा रिचर (Richter) ने महत्वपूर्ण सपरिवर्तन और सशोधन किये है।



चित्र १६७ प्रतिवर्ती तापमापक

**६—जल कूपियाँ** (Water bottles)—इनका प्रयोग सागर के किसी विशेष स्तर का जल

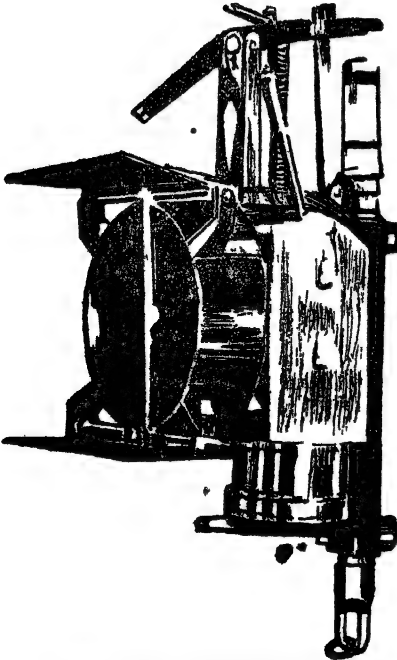
लाने के लिये किया जाता है। हाल ही मे एक प्रतिवर्ती जलकूपी (Reversing water bottle) प्रयोग मे लाई गई है, जिसमे तापक्रममापक भी रखा जा सकता है। इस प्रकार तापक्रम- वाचन और जल न्यादर्श सचयन दोनो कार्य एक साथ हो जाते हैं।



चित्र १६९—हॉलैण्ड-हैनन का भामान

७—भामान (Photometer)—महासागरो मे सूर्यप्रकाश कितनी गहराई तक जाता है—यह अध्ययन करने के लिये अनेक प्रकार के भामान यत्र समय समय पर काम मे लाये गये हैं।

८—प्रवाह-मान (Current-Measurer)—जल प्रवाहो का गति वेग और दिशा जानने के लिये अनेक युक्तियाँ काम मे लाई गई हैं। पृष्ठ-प्रवाह के अध्ययन के लिये तैरने वाली वस्तुओ जैसे हिमशिला (Ice-berg) प्रवाह-कूपी (Drift bottle) आदि से लाभ उठाया जाता है।

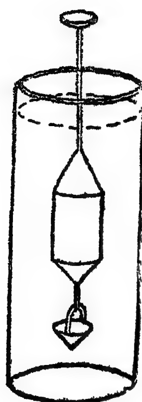


चित्र १७०—तरग मापक

अध स्थ-धाराओ (Under-rurrents) के प्रत्यक्ष मापन के लिये प्रवाहमान (Current Measurer) काम मे लाया जाता है। इस यत्र की रचना जटिल है।इसके आधुनिक रूप का श्रेय वी० डब्ल्यू ऐकमैन (V. W Ekman) को है।

९—सरलमापक (Hydiometer)—इसी सागर जल का घनत्व निर्धारित किया जाता है। यह साधारणत, कॉच अथवा धातु का बेलन होता हैजो पानी मे तैरता है।

१०—घनत्वमापक (Densimeter)—सागरजल के विभिन्न न्यादर्शो घनत्व के मापन के लिये श्री जे० जे० मैनलै (J. J Manley) ने भिन्नक घनत्वमापक (Differential Densimeter) का आविष्कार किया है। इसकी रचना जटिल है।



इसका निर्माण इस उद्देश्य से हुआ था कि इसे सागरतट पर स्थित सामुद्र-प्रयोग-शालाओ मे प्रयोग मे लाया जा सके। अभिनव काल मे इस यन्त्र मे इतने अधिक सशोधन और परिवर्तन किये गये है कि अब इसे सरलता से जलयानो मे भी उपयोग कर सकते है।

चित्र १७१—तरलमान



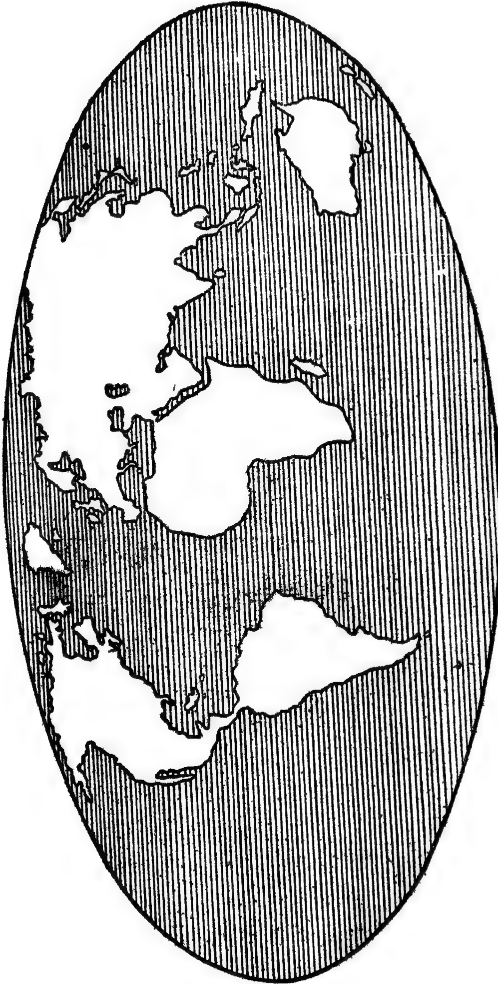
चित्र १७२—घनत्वमापक

पच्चीसवाँ परिच्छेद

# महासागर-जल के सामान्य गुण

## १—क्षेत्रफल तथा गहराई

पृथ्वी के समस्त धरातल का क्षेत्रफल प्राय: बीस करोड वर्ग मील है। इसका



चित्र १७३—भूपृष्ठ पर जल का विस्तार

लगभग ७१ प्रतिशत अंश जल द्वारा आच्छादित है; शेष २९ प्रतिशत स्थल है।

महासागरो मे विद्यमान समस्त जल के आयतन की महत्ता का अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है, कि यदि समस्त पृथ्वी को समतल कर दिया जावे, तो भी उस पर दो मील ऊँचा जल का स्तर रहेगा।

सर जौन मरे के अनुसार महासागरो की गहराई इस प्रकार है —

| गहराई | समस्त पृथ्वी का प्रतिशत |
|---|---|
| ० फुट से ६०० फुट तक | ५ |
| ६०० फुट से ३००० फुट तक | ३ |
| ३००० फुट से ६००० फुट तक | २ |
| ६००० फुट से १२००० फुट तक | १५ |
| १२००० फुट से १८००० फुट तक | ४१ |
| १८००० फुट से अधिक | ५ |

## २—पृष्ठ की प्रकृति

महासागर पृष्ठ, जो स्थल की अपेक्षा इतना अधिक समतल है कि उसे सागर-समतल (Sea-Level) की सज्ञा दी गई है, वास्तव मे वक्राकार है और पृथ्वी की आकृति के सदृश है। महाद्वीपो की वृहद स्थल-राशि महासागर जल को अपनी ओर आकृष्ट करती है, जिसके कारण महासागर पृष्ठ कही ऊँचा है, तो कही नीचा और सर्वत्र पृथ्वी के गोलाभ के समान नही है। यह आकर्षण बहुत कुछ स्थल की मात्रा और घनत्व पर निर्भर है। आगणन द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि हिमालय की आकृष्टि के कारण हिन्द महासागर का जल बंगाल की खाडी के उत्तरी भाग मे लका तट की अपेक्षा ३०० फुट अधिक ऊँचा रहता है। इसी प्रकार उ० अमरीका के पूर्वी तट का जलपृष्ठ पश्चिमी तट की अपेक्षा नीचे रहता है। इसका कारण रॉकी पर्वत श्रेणी है।

## ३—संरचना

महासागर जल का ३.५ प्रतिशत भाग घुले हुए खनिजो से रचित है इन खनिजो का तीन-चौथाई भाग सोडियम क्लोराइड ( Sodium Chloride ) है। मैग्नेशियम क्लोराइड (Magnesium Chloride), कैल्शियम सल्फेट। (Calcium Sulphate) तथा पोटेशियम सल्फेट (Potassium Sulphate) भी विद्यमान है (विशेष विवरण के लिये सागर की लवणता का प्रकरण देखिये) और इनके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी नगण्य मात्रा मे रहते है, यहाँ तक कि सोना और चॉदी के यौगिक (Compounds) भी मिलते है। यदि महासागरो का समस्त लवण एकत्र किया जावे तो वह समस्त पृथ्वी पर ४०० फुट मोटी पर्पटी बनाने में समर्थ होगा। इससे महासागरो मे विद्यमान लवण की मात्रा का अनुमान किया जा सकता है।

## ४—घनत्व तथा दबाव

घुले हुए खनिजो के कारण सागर-जल का घनत्व अलवण-जल (Fresh Water ) की अपेक्षा अधिक होता है। महासागर-पृष्ठ के जल क औसत घनत्व १.०२६ है। वर्षामय उष्ण कटिबन्ध में और बडी नदियो के मुहानो में जहाँ

अलवण जल की अपरिमित राशि मिलती रहती है, घनत्व औसत से कम है। दूसरी ओर शुष्क व्यापारिक वायु के कटिबन्धो मे जैसे लालसागर अथवा भूमध्य-सागर मे, जहाँ वाष्पीकरण अधिक होता है, घनत्व औसत की अपेक्षा अधिक है।

मीलो ऊँचे जल के स्तर के भार के कारण सागर-नितल मे दबाव बहुत रहता है। एक मील की गहराई मे प्रत्येक वर्ग इच पर एक टन भारी जल-स्तम्भ का दबाव रहता है। महासागरीय अथाहो मे प्रति वर्ग इच दबाव लगभग छै टन होता है।

## ५ वर्ण (Colour) एवं भासा (Phosphorescence)

### (अ) वर्ण

### नीला और हरा जल

महासागर जल सामान्यत नीला होता है किन्तु कही कही हरा वर्ण भी पाया जाता है। महासागरो के उष्ण भागो मे सबसे अधिक नीला वर्ण पाया जाता है—जैसे गल्फ-स्ट्रीम मे। दूसरी ओर शीतल सागरो मे हरा जल पाया जाता है, जैसे आर्कटिक महासागर मे। कुछ तटो पर भी हरा जल पाया गया है। वर्ण के इस विभेदन का सन्तोषजनक स्पष्टीकरण अभी तक नही हो सका हैं।

### आकाश के वर्ण से सम्बन्ध

हम अनुमान करते है कि महासागर जल की नीलिमा आकाश के परावर्त्तन (Reflection ) के कारण है। निस्सन्देह यह एक कारण है भी, किन्तु जब हम यह देखते है कि बदली छायी रहने पर भी उष्ण महासागरो के जल का वर्ण नीला ही रहता है और दूसरी ओर प्रखर आतप मे भी आर्कटिक जल हरा ही रहता है, तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वर्ण-विभेदन का केवल यह कारण नही हो सकता।

### शुद्धता से सम्बन्ध

काँच की लम्बी परखनली मे भरे हुए आसुत जल ( Distilled Water) के अवलोकन द्वारा यह ज्ञात होता है कि उसका स्वाभाविक वर्ण नीला है, किन्तु यदि उसमे प्रागारिक (Organic) अथवा अप्रागारिक (Inorganic) अशुद्धियो का समावेश कर दिया जावे, तो उसका वर्ण हरा हो जाता है। इससे तो यही निकर्ष निकलता है कि नीले जल के महासागर अत्यन्त शुद्ध है और हरे जल के महासागरो मे अशुद्धियो का बाहुल्य है। सागरजल मे प्रवेश करते समय स्वेत-प्रकाश व्याभगित (Diffract) होता है और लघुतम दैर्घ्य (Shortest wave length) की प्रकाश-तरगे [नील (Blue), निनील (Indigo) एव नीललोहित (Violet)] प्रविक्षेपित (Scatter) होकर परावर्त्तित (Reflect) होती है, जिसका परिणाम नीला वर्ण है। यदि अशुद्धियो की मात्रा अधिक हुई तो स्थूल हरी तरगे भी परावर्त्तित होती है और वर्ण-निर्धारण मे प्रमुख रहती है।

### नदियो से सम्बन्ध

सागरतट के निकट जल के हरे होने का एक कारण निलम्बित अवसाद (Suspended Sediments) हो सकते है, जो स्थल से किसी भाति वहाँ तक पहुँच गये हो। कुछ आंशिक समावृत सागरो (Partially enclosed seas)

मे जैसे बाल्टिक सागर मे अवसाद के कारण जल विवर्णित (Discoloured) हो गया है। बहुत सी पकमयी सरिताओ (जैसे मिसीसिपी) के मुहाने के निकट सागर बहुत दूर तक विवर्णित हो गया है। चीन के पीले-सागर (Yellow Sea) के नामकरण का भी यही रहस्य है। प्रवृत्य-प्रविक्षेपण (Selected Scattering) तथा स्वेत-प्रकाश की कुछ विशेष तरगो का परावर्त्तन ही सभवत सागर जल के नीले और हरे वर्ण का कारण है, हाँ, आकाश के वर्णों का परावर्त्तन किसी अश तक इसमे अवश्य सहायक होता है।

### जीवो से सम्बन्ध

प्राय सभी महासागरो के जल मे सूक्ष्म एव अण्वीक्ष्य (Microscopic) जीव रहते है। सभव है, इन जीवो की सख्या और प्रकृति के अनुसार महासागर जल का वर्ण कही नीला है तो कही हरा। यदि ये जीव उष्णजल की अपेक्षा शीतल जल मे अधिक हो, जैसा कि अनेक प्रमाणो से सिद्ध होता है, तो हरित रश्मियो का प्रवृत्य-प्रविक्षेपण स्पष्ट हो जाता है। लाल सागर का वर्ण उसमे विद्यमान प्रचुर सूक्ष्म लाल आप्यका (Reddish algae) के कारण ही है।

### लवणता (Salinity) और घुली हुई गैसो (Dissolved gases) से सम्बन्ध

वर्ण-विभेदन के दो और कारण हो सकते हैं—लवणता और घुली हुई गैसो की मात्रा में अन्तर। शीतल जल मे उष्ण जल की अपेक्षा लवणता कम होती है किन्तु घुली हुई गैसो की मात्रा अधिक। उथले जल मे नितल के कारण हुआ परावर्त्तन भी किन्ही अशो में वर्ण-निर्धारण के लिये उत्तरदायी है। प्रवाली श्रृखलाओ के क्षेत्रो मे सामान्य निनील-नील (Indigo-blue) वर्ण तथा महासागरो के मध्य में सागर नितल के विभिन्न भागो द्वारा परावर्तित नील-लोहित और हरा वर्ण बडा ही सुन्दर लगता है।

### (ब) भासा (Phosphorescence)

कभी कभी, विशेषकर शान्त रजनी में, महासागर जल रजत-रश्मियो द्वारा ज्वलित हो उठता है, जिसे हम भासा कहते है। महासागर के पृष्ठ जल मे ऐसे अगणित सूक्ष्मतम अण्वीक्ष्य जन्तु विद्यमान है, जो इस अनोखे प्रकाश का स्फुलिंग (Spark) उत्पन्न करने मे समर्थ है और इस विषय मे उनकी शक्ति समयानुसार घटती-बढती रहती है। यही कारण है कि किन्ही रात्रियो मे महासागरजल प्रकाश से सर्वथा उन्मुक्त रहता है और किन्ही रात्रियो मे प्रत्येक तरग के साथ नवीन रजत-रश्मि प्रज्वलित हो उठती है। कभी कभी जब नौकारोहण द्वारा जलपृष्ठ में विक्षोभ होता है, तो नौका के पीछे पीछे भासा की चमक द्वारा एक छोटा सा पश्च-पथ बनता जाता है।

## ६—आलगत्व (Viscosity)

महासागर जल का आलगत्व महत्वपूर्ण है क्योकि उस पर जीवो का प्लावन और अनेकानेक प्राणिकीय वृत्त (Biological phenomena) निर्भर हैं।

आलगत्व का विभेदन मुख्यत तापक्रम के विभेदन पर निर्भर है। लवणता की सामान्य सीमाओ (३० से ३५ प्रति सहस्त्र) के अन्दर लवणता-विभेदन के कारण आलगत्व के विभेदन नगण्य है। आलगत्व तापक्रम की वृद्धि के साथ घटता जाता है, जैसा कि निम्नाकित तालिका द्वारा स्पष्ट है —

| तापक्रम | आलगत्व ३२ फ पर अलवण जल = १०० | |
|---|---|---|
| | लवणता ३० प्रति सहस्त्र | लवणता ३५ प्रति सहस्त्र |
| ३२° फ | १०३ | १०३ |
| ४१° फ | ८७ | ८८ |
| ५०° फ | ७५ | ७६ |
| ५९° फ | ६६ | ६६ |
| ६८° फ | ५८ | ५९ |
| ७७° फ | ५२ | ५३ |
| ८६° फ | ४७ | ४७ |

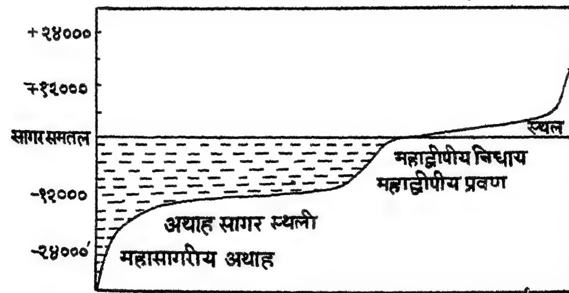
## छब्बीसवाँ परिच्छेद

# महासागर नितल की आकृति

### १ उच्चतामितीय बक्र

(The Hypsographic Curve)

यह वक्र उच्चतम गिरि-शिखर से लेकर अधम महासागरीय-अथाह तक के क्रमिक समतल प्रदर्शित करता है।




चित्र १७४—उच्चतामितीय वक्र

### २ समुद्रान्तर भौम्याकार (Submarine Topography)

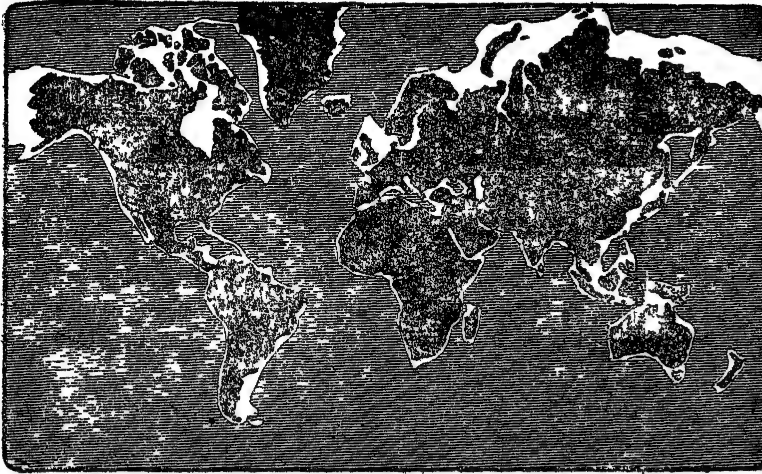
जैसा कि उच्चतामितीय वक्र के रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट है, महासागर नितल को हम चार भागो में विभाजित कर सकते हैं।—

#### (१) महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf)

यह स्थल का स्पर्श करता है और इसका प्रवण (Slope) अत्यन्त मन्द (Gentle) है। यह ६०० फुट तक की गहराई तक फैला हुआ है। इसका निर्माण अपक्षरण (Erosion) और निक्षेपण ( Deposition ) द्वारा हुआ है। नदियो द्वारा लाया गया अवसाद ( Sediments ) इसमे ही एकत्र होता है। ६०० फुट की गहराई तक सूर्य प्रकाश का कुछ अश प्रविष्ट हो सकता है, अतएव इस भाग में वनस्पति पाई जाती है और मछली आदि जल-जन्तु भी मिलते हैं। समस्त पृथ्वी का ५ प्रतिशत भाग महाद्वीपीय-निधाय है।

#### (२) महाद्वीपीय प्रवण (Continental Slope)

यह भाग महाद्वीपीय निधाय के ठीक नीचे है। इसका प्रवण प्रपाती (Steep)



चित्र १७५ महाद्वीपीय निधाय का विस्तार

है और इसका विस्तार लगभग ६०० फुट की गहराई से लेकर १२००० फुट की गहराई तक है। केवल सूक्ष्म मृत्तिका ( Fine Clay ) यहाँ तक पहुँचती है।

### (३) अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain)

महासागर–नितल का अधिकतर भाग इसी प्रकार का है। यह चौडा और प्राय समतल क्षेत्र है जिसकी गहराई १२००० फुट से १८००० फुट तक है। इसके प्रवण अत्यन्त मन्द है। नदियो द्वारा लाया गया अवसाद यहाँ तक नही पहुँचता। इसके निक्षेप (Deposits) सूक्ष्म पक (Fine Mud) और सागरपृष्ठ पर रहनेवाले और मरनेवाले जीव-जन्तुओ की अस्थियो और कर्परो (Shells) से बने है। एक प्रकार की लाल मृत्तिका (Red Clay) जो सभवत ज्वालामुखीय उद्भव की है, वायु द्वारा सागर तक परिवाहित होती है और डूबकर अथाह सागर स्थली तक पहुँच जाती है और उसके निक्षेप के निम्नतम स्तर का निर्माण करती है। भूपृष्ठ का ४१ प्रतिशत भाग अथाह सागर स्थली है

### (४) महासागरीय अथाह (Oceanic Deeps)

ये महासागर के सबसे अधिक गहरे भाग है। ये महासागर नितल मे विस्तृत कुओ और घाटियो की तरह विद्यमान है। नितल के अन्य भागो की अपेक्षा इनका क्षेत्रफल बहुत कम है। अधिकतर ये महासागरो के मध्यभाग मे नही पाये जाते वरन स्थलखण्डो के समीप ही मिलते है। इस प्रकार के चार महत्वपूर्ण निम्नन प्रशान्त महासागर मे और दो अन्ध महासागर मे पाये गये है। सबसे गहरा अथाह मैरियाना द्वीप के निकट स्थित है।

### (५) अन्य विषमताये

अपेक्षाकृत लघु आकार की अन्य विषमताये जैसे लम्बे और सकरे उभार, विस्तृत उभार, ज्वालामुखीय शकु आदि अधिकतर अथाह सागर स्थली पर पाई जाती है।

## ३ महासागर नितल के रूपधेयों की उत्पत्ति

महासागर नितल के रूपधेय सामान्यत निम्नलिखित क्रियाओ से बनते है —

(१) समुद्वर्तन (Diastrophism) अथवा भूपर्पटी के कुछ भाग का ऊपर उठ जाना अथवा नीचे धँस जाना।

(२) ज्वालामुखी की क्रिया। (३) निक्षेपण।

अपवाद केवल महाद्वीपीय-निधाय ( Continental Shelf ) है, जिनमें अपक्षरण से भी कुछ रूपधेय बन जाते है।

महासागर मे ज्वालामुखी की क्रिया से अनेक प्रकार की आकृतियाँ बन जाती है। बहुत सी ज्वालामुखीय शकु ( Volcanic cones ) सागर-समतल के ऊपर है और बहुत सी नीचे। इनके अतिरिक्त समुद्र के गर्भ मे अनेक लावा के पठार एव अन्य ज्वालामुखीय निक्षेप भी पाये जाते है।

समुद्रान्तर भौम्याकार की रचना में ज्वालामुखी की अपेक्षा समुद्वर्तन (Diastrophism ) का कार्य महत्वपूर्ण है। सभी सागर-द्रोणियाँ धँसे हुए क्षेत्र है। महाद्वीपीय प्रवण कही विभग रेखा (Fault Line) का द्योतक है तो कही नितल के विभजन ( Warping ) से बन गया है। सागर-नितल के विस्तृत पठार ऐसे अश है, जिन पर भजन की क्रिया का कोई प्रभाव नही पडा। समुद्रान्तर पर्वत-श्रेणियाँ तथा घाटिया नितल के भजन की द्योतक है। नितल की आकृति को प्रभावित करने वाली ये क्रियाये अभी भी गतिशील है।

सागर-नितल मे निक्षेप सदैव एकत्र होते रहते है, हाँ इतना अवश्य है कि स्थलीय निक्षेप अगाध सागर तक नही पहुँच पाते, दूसरी ओर महाद्वीपो के निकट विशेषकर महाद्वीपीय-निधाय मे स्थलीय-निक्षेप अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महाद्वीपीयनिधाय ये निक्षेप समतलन (Gradation) का कार्य करते है अर्थात् वे निचले भागो को भरकर समतल कर देते है। यही नही, स्वय निधाय का अधिकाश भाग स्थल- जन्य निक्षेप से बना है। बगाल की खाडी मे गगा के डेल्टा का आगे बढ़ना निक्षेपण का ही तो फल है।

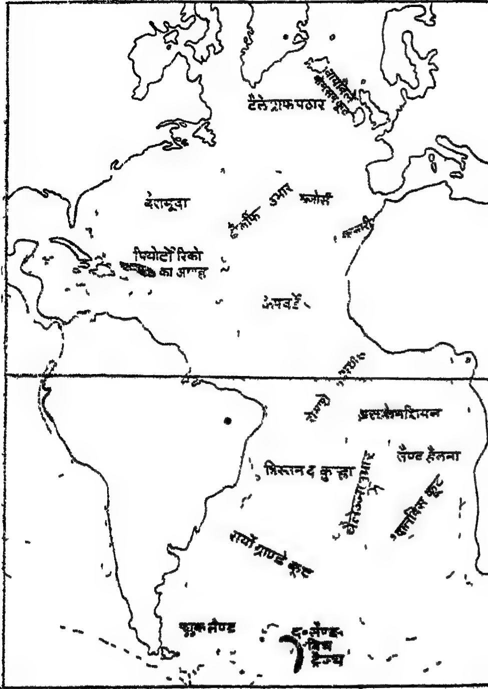
## ४. अन्ध महासागर

**आकार**—तटीय सागरो रहित अन्धमहासागर का क्षेत्रफल लगभग ३.१५ करोड वर्गमील है। अन्य शब्दो मे यह भूपृष्ठ का लगभग ⅙ भाग घेरे हुए है । प्रशान्त महासागर की अपेक्षा इसका क्षेत्रफल आधे से भी कम है।

**आकृति**—इसकी आकृति अगरेजी के अक्षर S से मिलती जुलती है। दक्षिण मे जहाँ यह अण्टार्कटिक महासागर से मिलता है—वहाँ इसकी चौडाई काफी अधिक है, किन्तु भूमध्य रेखा के निकट यह सकरा हो गया है। उत्तर की ओर अफ्रीका और उत्तरी अमरीका के बीच मे पुन चौडा हो गया है किन्तु और उत्तर मे चौडाई घटती गई है। ग्रीनलैण्ड तथा आइसलैण्ड द्वीपो के कारण इसका उत्तरी सिरा इतना खुला नही है, जितना दक्षिणी।

**तटीय सागर**—अटलाण्टिक महासागर के दोनो किनारो पर अनेक सागर हैं जो उससे यद्यपि सकरे जलविभागो से जुडे हुए हैं तथापि अन्य अर्थों में पूर्णत पृथक् हैं। उत्तरी अटलाण्टिक में पश्चिम की ओर हडसन और बैफिन की खाडियाँ हैं और पूर्व में

उत्तरी सागर तथा बाल्टिक सागर है। ये सभी उथले हैं। मध्य अन्ध महासागर मे पश्चिम की ओर मैक्सिको की खाडी और कैरिबियन सागर है तथा पूर्व मे भूमध्यसागर है। ये सभी गहरे हैं। दक्षिणी अन्ध-महासागर मे तटीय सागरो का अभाव है।




चित्र १७६—अन्ध महासागर

**द्वीप**—अन्ध महासागर मे ब्रिटिश द्वीप समूह तथा न्यू-फाउण्डलैण्ड नामक महाद्वीपीय द्वीप है। आइसलैण्ड और फैरोज द्वीप ग्रीनलैण्ड तथा स्कॉटलैण्ड के मध्य मे स्थित समुद्रान्तर कूट के उठे हुए भाग है। पश्चिमी द्वीपसमूह द्वीप-चाप का निर्माण करते हैं। दक्षिण मे फॉकलैण्ड तथा उसके निकट के द्वीप दक्षिणी अमरीका की दक्षिणी नोक और अण्टार्कटिका के बीच मे स्थित समुद्रान्तर कूट के उठे हुए भाग हैं।

वास्तविक महासागरीय द्वीप मध्य अन्धमहासागरीय कूट पर स्थित हैं। इनमें उत्तर मे अजोर्स (Azores), मध्य मे एसकैनशियन (Ascension) तथा दक्षिण मे त्रिस्तन द कुन्हा (Tristan de Cunha) अधिक उल्लेखनीय है। बारामूदा के द्वीप प्रवाली रचनाये है, जो ज्वालामुखीय शकु पर बनी हैं।

अन्ध महासागर के अन्य द्वीप मुख्य स्थलखण्डो के पठार सदृश समुद्रान्तरीय विस्तार पर स्थित हैं जैसे कैनारी द्वीप, केप वर्डे के द्वीप तथा गिनी की खाडी के द्वीप।

## अन्ध महासागर का नितल

(क) **गहराई**—अन्धमहासागर की औसत गहराई दो मील से भी अधिक है।

(ख) **महाद्वीपीय निधाय**—उत्तरी अन्धमहासागर के पूर्वी और पश्चिमी दोनो ही तटो पर महाद्वीपीय निधाय अत्यन्त स्पष्ट है। दक्षिणी अन्धमहासागर में केवल फाक-लैण्ड द्वीप के निकट महाद्वीपीय निधाय विद्यमान है, जिस पर वह स्वय स्थित है। दक्षिणी अमरीका के शेष तट पर तथा अफ्रीका के सम्पूर्ण पश्चिमी तट पर महाद्वीपीय निधाय अस्पष्ट है।

(ग) **द्रोणियाँ**—अन्ध महासागर मे अनेक द्रोणियाँ विद्यमान हैं। इनमे प्रमुख ये है —

(१) **लैब्रेडोर की द्रोणी**—यह लैब्रेडोर के पूर्व मे स्थित है।

(२) **उत्तरी अमरीका की द्रोणी**—इसे पश्चिमी भारतीय द्रोणी भी कहते है। यह सयुक्त राज्य अमरीका के पूर्व मे स्थित है।

(३) **गायना की द्रोणी**—यह दक्षिणी अमरीका के गायना तट के निकट स्थित है। वास्तव मे यह उत्तरी अमरीका की द्रोणी का दक्षिणी अश मात्र है। अन्ध महासागर की सबसे अधिक गहराई इसी मे मिलती है।

चित्र १७७—अन्धमहासागर के कूट तथा अथाह

(४) **ब्राजील की द्रोणी**—यह ब्राजील के पूर्वी तट पर स्थित है। इसके बीच मे एक बडा गड्ढा है।

(५) **अर्जेण्टाइना की द्रोणी**—यह अर्जेण्टाइना के पूर्वी तट पर स्थित है। इसमें एक महासागरीय अथाह है।

(६) **आइबेरिया की द्रोणी**—यह पुर्तगाल के पश्चिम मे है।

(७) **केप वर्डे की द्रोणी**—यह अफ्रीका महाद्वीप के उ० प० मे है।

(८) **कैनारी की द्रोणी**—यह द्रोणी आइबेरिया की द्रोणी और केप वर्डे की द्रोणी के मध्य मे स्थित है।

(९) **अगोला की द्रोणी**—यह ब्राजील की द्रोणी के ठीक सामने अफ्रीका के पश्चिम मे स्थित है।

(१०) **अन्तरीप की द्रोणी**—यह अफ्रीका के द० प० मे अर्जेण्टाइना की द्रोणी के ठीक सामने स्थित है। उत्तम आशा अन्तरीप के निकट होने के कारण इसका यह नाम पडा।

(ङ) **महासागरीय अथाह**—अन्धमहासागर मे प्रशान्त की अपेक्षा महासागरीय अथाह कम पाये जाते है। इसका सबसे गहरा अथाह पियूर्टो रिको (Puerto Rico) के उत्तर मे स्थित पियूर्टोरिको अथाह (Puerto Rico Deep) है। इसकी गहराई ४८१२ फैदम है। अन्य उल्लेखनीय अथाह रोमाशे अथाह (Romanche Deep) तथा दक्षिणी सैण्डविच ट्रेञ्च (South Sandwich Trench) है। रोमाशे अथाह ४०३० फैदम गहरा है तथा ठीक विषुवत रेखा पर मध्य अन्धमहासागरीय कूट के आर पार चला गया है। द० सैण्डविच ट्रैञ्च द० सैण्डविच द्वीपो के निकट स्थित चाप की आकृति का अथाह है। इसकी गहराई ४५४५ फैदम है।

**समुद्रान्तर कूट**—अन्धमहासागर के बीच मे एक उभार है, जिसे मध्य अन्धमहासागरीय कूट (Central Atlantic Ridge) कहते है। उत्तरी अन्धमहासागर मे इसे डोलफिन कूट (Dolphin Ridge) कहते है तथा दक्षिणी अन्ध महासागर मे इसे चैलेञ्जर कूट (Challenger Ridge) कहत है। भूमध्य रेखीय भागो को छोड़कर इस मध्य अन्धमहासागरीय कूट का कोई भी भाग २००० फैदम से अधिक गहरा नही है। अजोर्स (Azores), अस्कैनशियन (Ascension), त्रिस्तन द कुन्हा (Tristan de Cunha) आदि द्वीप इसी पर स्थित है। डोलफिन कूट उत्तर मे चौडा हो गया है, जहाँ उसे टैलेग्राफ प्लैटो कहते है। टैलेग्राफ प्लैटो का विस्तार आयरलैण्ड से लैब्रेडोर तक है।

अन्धमहासागर मे अनेक आडे (Transverse) कूट भी है। वालविस कूट (Walvis Ridge) त्रिस्तन द कुन्हा के निकट से आरभ होकर उ० पू० दिशा मे अफ्रीका के तट तक चला गया है। रायो ग्राण्डे कूट (Rio Grande Ridge) भी चैलेञ्जर उभार के निकट से आरभ होकर दक्षिणी अमरीका के तट तक चला गया है। उत्तरी स्कॉटलैंण्ड और आइसलैण्ड के मध्य में वायविले थोमसन कूट (Wyville-Thomson Ridge) स्थित है।

## ५. प्रशान्त महासागर

**आकार**—प्रशान्त महासागर का क्षेत्रफल सम्पूर्ण ससार के स्थलीय भाग से अधिक है। इसका क्षेत्रफल लगभग ६.४ करोड वर्गमील है। तटीय सागरो सहित यह ससार के क्षेत्रफल का लगभग एक तिहाई भाग घेरे हुए है।

**आकृति**—इसकी आकृति त्रिभुज जैसी है। अटार्कटिक सागर इस त्रिभुज के आधार पर स्थित है और इसका शीर्ष उत्तर मे है। प्रशान्त महासागर की सर्वाधिक चौडाई (लगभग १०७००० मील) नितान्त दक्षिण मे न होकर भूमध्यरेखा के निकट है।

**उत्पत्ति विषयक धारणायें**—प्रशान्त के निम्नन की उत्पत्ति वाद-विवाद का विषय रही है। इसमे निहित जल का आयतन लगभग १७ ४ करोड घन मील है। एक विचारधारा यह है कि प्रशान्त महासागर पृथ्वी ने चन्द्रमा के पृथक हो जाने से बना गड्ढा है। इसके विरुद्ध यह आपत्ति है कि चन्द्रमा का आयतन प्रशान्त-निम्नन के आयतन से लगभग ३० गुना है। दूसरी विचारधारा यह है कि भूतकाल मे वर्तमान प्रशान्त महा सागर के स्थान पर दो—एक उत्तर मे तथा दूसरा दक्षिण मे—स्थलखण्ड थे, जो धीरे धीरे सभवत तृतीयक (Tertiary) युग के आरभ मे नीचे डूब गये। इसकी पुष्टि के लिये यह प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है कि प्रशान्त के द्वीप-चापो तथा उसके सागरो मे अब भी निमज्जन की क्रिया जारी है।

**नितल की शिलायें**—प्रशान्त महासागर के नितल की शिलाओ के विषय में हमारा ज्ञान बहुत ही सीमित है। भूकम्प की लहरो के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रशान्त के नितल की शिलाओ का घनत्व अधिक है।

**तटीय सागर**—प्रशान्त महासागर के प्राय सभी तटीय सागर पश्चिमी किनारे पर हैं। पूर्वी तट का एक मात्र आशिक समावृत जल क्षेत्र कैलिफोर्निया की खाडी है प्रशान्त के पूर्वी किनारे पर तटीय सागरो का अभाव इसलिये है कि अमरीका का पश्चिमी तट निमज्जन से बना है।

पश्चिमी प्रशान्त मे एशिया और द्वीप-चापो के मध्य मे अनेक अशत समावृत सागर स्थित है। उदाहरण के लिये —(१) बैरिंग सागर एलूशियन द्वीपो से अशत घिरा है। (२) ओखोट्स्क सागर कमचटका प्रायद्वीप, साखालिन द्वीप समूह तथा क्यूराइल द्वीपो से अशत घिरा है (३) जापान सागर कोरिया तथा जापान प्रमुख से अशत घिरा है (४)पूर्वी चीन सागर चीन और र्‍यूकू द्वीप समूह से अशत घिरा है (५) दक्षिणी चीन सागर फिलिपाइन्स, बोर्नियो, मलाया, हिन्दचीन तथा द० चीन से अशत घिरा है। हिन्देशिया के द्वीपो के मध्य मे अनेक अशत समावृत सागर हैं—जैसे सैलेबीज सागर, जावा सागर बण्डा सागर आदि। पीले सागर के अतिरिक्त जिसका अधिकतर भाग ६०० फुट से भी कम गहरा है, ये सभी सागर शेष प्रशान्त की भाँति गहरे है।

**द्वीप**—प्रशान्त महासागर मे द्वीपो की सख्या बहुत अधिक है। ऐसा अनुमान है कि इसमे लगभग २०,००० द्वीप होगे। इन द्वीपों का सयुक्त क्षेत्रफल अपेक्षाकृत कम है। बडे आकार के द्वीप 'महाद्वीपीय' (Continental) हैं, अर्थात् वे महाद्वीपो के अश है और बीच की भूमि के धँस जाने से वे मूल महाद्वीपो से पृथक हो गए है। शेष द्वीप या तो ज्वालामुखीय उद्‌भव के है(जैसे हवाई)अथवा प्रवाली रचना (जैसे सोलोमन) है।

## प्रशान्त नितल

(क) **गहराई**—प्रशान्त महासागर के निम्नन का अधिकाश भाग अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain) है। इसकी औसत गहराई अन्य महासागरो की तुलना मे अधिक है और लगभग २.५ मील है।

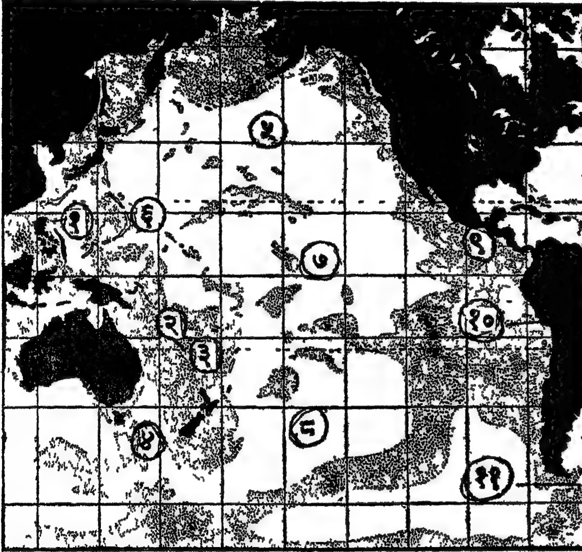
(ख) **महाद्वीपीय निधाय**—यदि किनारो पर स्थित सागरो का विचार न किया जाय, तो यह ज्ञान होता है कि प्रशान्त महासागर मे महाद्वीपीय निधाय या तो बहुत सकीर्ण है या है ही नही, जिससे तटो पर प्रवण बड़े प्रपाती हैं।

### (ग) समुद्रान्तर कूट (Submarine ridges)

(१) अटलाण्टिक की भाति प्रशान्त महासागर मे उसे दो भागो मे विभाजित करने वाला कोई भी समुद्रान्तर कूट नही है, किन्तु अथाह सागर स्थली अनेक स्थानो पर समुद्रान्तर पठारो के रूप मे ऊपर उठ गई है। इन पठारो पर अनेक द्वीप समूह स्थित हैं—विशेषकर दक्षिणी प्रशान्त मे।

(२) प्रशान्त के पूर्वी भाग मे मध्य अमरीका से आरम्भ होकर द० प० की दिशा मे न्यूजीलैण्ड के दक्षिण मे अण्टार्कटिका तक एक समुद्रान्तर कूट चला गया है। इसे पूर्वी प्रशान्त का कूट कहते है। यह २००० फैदम से भी कम गहरा है। यह प्रशान्त के मध्यवर्ती निम्नन को दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तट पर स्थित गहरी द्रोणियो से पृथक करता है।

(३) सोलोमन द्वीप समूह के चारो ओर सोलोमन का उभार है। इसकी गहराई लगभग २५०० फैदम है।




चित्र १७८—प्रशान्त महासागर का नितल

(४) मध्य प्रशान्त मे हवाई का उभार है, जिस पर हवाई द्वीपसमूह स्थित है। यह लगभग २२०० फैदम गहरा है।

(५) एक उभार आस्ट्रेलिया के द० पू० से लेकर अण्टार्कटिका तक चला गया है।

### (घ) द्रोणियाँ (Basins)

द्रोणियो के अध्ययन की दृष्टि से प्रशान्त महासागर के तीन भाग किये जा सकते हैं —

(१) **पश्चिमी प्रशान्त**—इसकी मुख्य द्रोणियाँ ये हैं—(१) फिलिपाइन द्रोणी (२) कैरोलिन द्रोणी, सोलोमन द्रोणी, कोरल द्रोणी, न्यू हैब्राइड्स द्रोणी (३) फीजी द्रोणी तथा (४) पूर्वी आस्ट्रेलिया की द्रोणी।

(२) **मध्य प्रशान्त**—इसकी मुख्य द्रोणियाँ ये हैं—(५) उत्तरी प्रशान्त की द्रोणी (६) मैरियाना की द्रोणी (७) मध्य प्रशान्त की द्रोणी तथा (८) दक्षिणी प्रशान्त की द्रोणी (टोगा-कर्माडेक का निम्नन तथा वायर्ड का अथाह इसी के अन्तर्गत है।)

(३) **पूर्वी प्रशान्त**—इसकी मुख्य द्रोणियाँ ये हैं—(९) ग्वाटेमाला की द्रोणी (१०) पेरू की द्रोणी तथा (११) प्रशान्त-अण्टार्कटिक द्रोणी।

चित्र १७८ मे द्रोणियो की सख्या उपर्युक्त वर्णन के अनुरूप अकित की गई है।

### (ड) महासागरीय अथाह (Oceanic Deeps)

अधिकाश महासागरीय अथाह स्थलखण्डो के निकट स्थित हैं उदाहरण के लिये टसकैरोरा अथाह (Tuscarora Deep) जापान के तट पर स्थित है तथा अटाकामा अथाह (Atacama Deep) दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तट पर स्थित है। समुद्रान्तर पठारो के निकट भी कुछ अथाह वर्तमान है।

प्रशान्त महासागर का अभी तक ज्ञात सबसे गहरा अथाह मैरियाना अथाह है इसकी गहराई ५९४० फैदम अर्थात् लगभग ६ मील है। अन्य उल्लेखनीय गहरा अथाह फिलिपाइन द्वीप के निकट एमडन अथाह है, जिसकी गहराई ५९०२ फैदम है।

## ६. हिन्द महासागर

**आकार**—हिन्द महासागर आकार मे अन्धमहासागर से छोटा है। इसका क्षेत्रफल लगभग २८४ करोड वर्ग मील है।

**प्रशान्त तथा अन्धमहासागर से अन्तर**—यह प्रशान्त तथा अन्ध महासागरो से इन दृष्टियो मे भिन्न है—

(१) यह उत्तर में स्थल द्वारा घिरा हुआ है।

(२) इसका विस्तार कर्क-रेखा के थोडे ही उत्तर तक है।

(३) प्रायद्वीपीय भारत और लका के बीच मे आ जाने से उत्तरी हिन्द महासागर दो भागो मे बँट जाता है—पश्चिम मे अरब सागर तथा पूर्व मे बगाल की खाडी।

**सीमाय**—इसका तट अधिकाशत प्राचीन पठारो (अफ्रीका, अरब, प्रायद्वीपीय भारत तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया) द्वारा निर्मित है। अन्य शब्दो मे यह उ० पू० सीमा को छोडकर शेष सभी दिशाओ में गोण्डवानालैण्ड के अवशेषो से समावृत है। उ० पू० मे यह हिन्देशिया की द्वीपमाला तथा ब्रह्मा के तट के अनुरूप भंजित श्रेणियो से घिरा हुआ है। दक्षिण मे अण्टार्कटिका का तट है जो लगभग २०° पू० से लेकर ११५° पू० तक फैला हुआ है।

**तटीय सागर**—हिन्द महासागर को समावृत करने वाले पठारो के तट प्रपाती (Steep) तथा नियमित ( Regular ) है। उनमे ऐसे बडे कटान (Indentations ) बहुत कम है, जिन्हे तटीय सागर की सज्ञा दी जा सके। अरब सागर तथा बगाल की खाडी मुख्य हिन्द महासागर के ही उत्तरी विस्तार है, जो प्रायद्वीपीय भारत द्वारा पृथक हो गए है। मुजम्बिक चैनेल एक चौडा जलडमरूमध्य है जो मैडागास्कर को अफ्रीका से पृथक करता है। अण्डमान सागर अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह तथा क्रा स्थलडमरूमध्य (Kra Isthmus) द्वारा घिरी हुई द्रोणी (Basin) है।

वास्तव में हिन्द महासागर के यथार्थ तटीय सागर केवल दो है—लाल सागर तथा फारस की खाडी। लाल सागर अफ्रीका और अरब के मध्य मे दरार-घाटी (Rift Valley ) है। फारस की खाडी एक उथली द्रोणी है, जो दजला-फरात के अवसादो से क्रमश भरती जा रही है। ओमान प्रायद्वीप के कारण इसका ओमान की खाडी तथा हिन्द महासागर से बहुत कम सम्बन्ध रह गया है।

**द्वीप**—हिन्द महासागर के सबसे बडे द्वीप—मैडागास्कर तथा श्रीलका महाद्वीपीय (Continental) द्वीप है। अन्य शब्दो में मैडागास्कर किसी समय अफ्रीका का अश था तथा श्रीलका भारत का। छोटे आकार के कुछ द्वीप भी जैसे सोकोत्रा, जजीबार तथा कोमोरो इसी कोटि के है। बगाल की खाडी में स्थित अण्डमान तथा निकोबार के द्वीप ब्रह्मा के अराकानयोमा के ही विस्तार है। भारत के दक्षिण-पश्चिम मे लकादीव तथा मालदीव प्रवाल (Coral) द्वारा रचित है। कुछ प्रवाली रचनाये मध्य हिन्द महासागर मे भी है जैसे चागोज द्वीप। मैडागास्कर के पूर्व मे मॉरिशस तथा रियूनियन द्वीप ज्वालामुखीय शकुओ (Volcanic Cones ) के द्योतक है। हिन्दमहासागर के पूर्वी भाग मे द्वीपो का अभाव है, क्योकि वहाँ सागर-नितल सर्वत्र एकरूप से गहरा है अपवाद केवल कोकोस तथा क्रिसमस द्वीप है।

## नितल

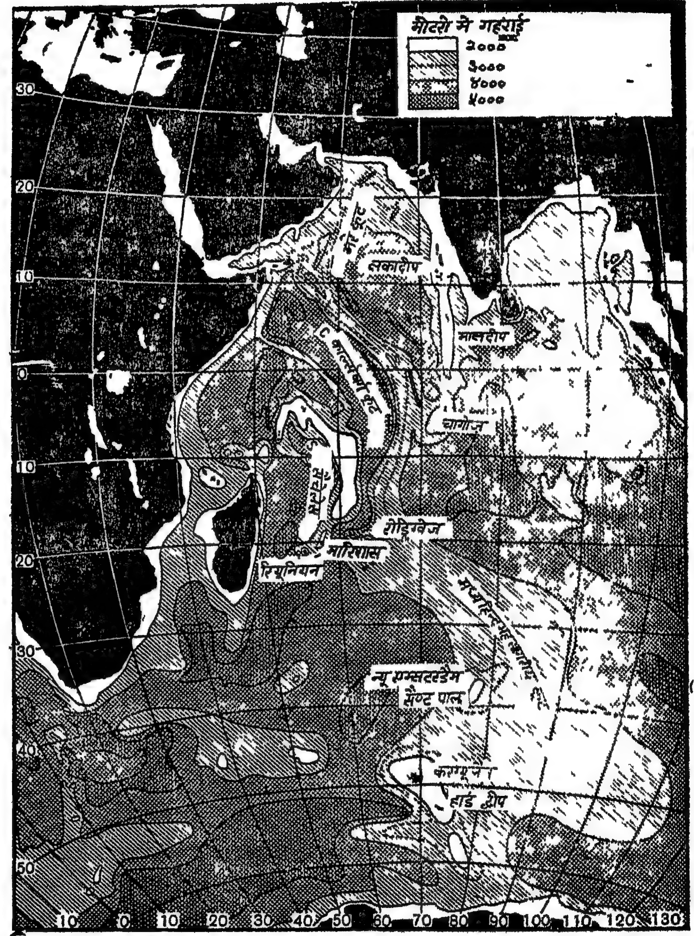
**(क) प्रकृति**—अन्ध तथा प्रशान्त महासागरो की तुलना मे इसका नितल कम विषम है।

**(ख) गहराई**—हिन्दमहासागर का अधिकांश भाग अर्थात् लगभग ६० प्रतिशत—अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain ) है, जिसकी गहराई २००० और ३००० फैदमो के मध्य में है।

**(ग) अथाह** (Deeps)—हिन्द महासागर मे सुण्डा ट्रैन्च ( Sunda Trench) को छोडकर लम्बे अथाह नही है। यह अथाह जावा द्वीप के दक्षिण मे उसके समानान्तर चला गया है। इसकी अधिकतम गहराई ४०७६ फैदम है।

**(घ) समुद्रान्तर दरियाँ** (Submarine gullies )—भारत के तट के निकट कम से कम दो समुद्रान्तर दरियाँ तो निश्चित रूप से है ही, सभव है अधिक भी हो। पश्चिम मे सिन्ध नदी के मुहाने पर 'इण्डस स्वाच' ( Indus Swatch) नामक जलदरी है, जो महाद्वीपीय निधाय के सिरे पर ३० मीटर गहरी है और क्रमश बढते बढते मुहाने पर ११३४ मीटर गहरी हो गई है। इस जलदरी के दोनो ओर २०० मीटर ऊँची दीवाले है।

इसी प्रकार बगाल की खाडी मे गगा नदी के मुहाने पर भी एक ऐसी ही जलदरी है, जिसे 'स्वाच आॅफ तो ग्राउण्ड' ( Swatch of no ground ) की सज्ञा दी गई है। इस जलदरी की गहराई महाद्वीपीय निवाय के सिरे पर ३० मीटर और मुहाने पर ११०० मीटर है।




चित्र १७९—हिन्द महासागर

अण्डमान सागर मे इरावदी नदी के मुहाने पर भी इस प्रकार की जलदरी सभव है, हो। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण भी उपलब्ध हुए है।

इन समुद्रान्तर दरियो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो विचारधाराये है। एक

विचारधारा के अनुसार ये जलदरियाँ पूर्वकाल मे नदियाँ थी, जो कालान्तर मे जलमग्न हो गईं। इस विचारधारा के अनुसार महाद्वीपीय निधाय महाद्वीप का एक मौलिक और अविच्छिन्न भाग है। यह विचारधारा सर्वमान्य नही है। दूसरी विचारधारा यह है कि नदियो द्वारा लाये गये अवसाद—रेत तथा पक—उसके दोनो तटो पर एकत्र होते रहते है, नदी के जल-प्रवाह के नीचे उसकी विपरीत दिशा मे सागर-जल प्रवाहित होता है, जिससे वहाँ पर निक्षेपण नही हो पाता। इस प्रकार ये जलदरियाँ अस्तित्व में आईं।

(ङ) **समुद्रान्तर कूट**—हिन्द महासागर मे अनेक विस्तृत समुद्रान्तर कूट है। ये अथाह सागर स्थली की अनेक द्रोणियो को पृथक करते है। एक कूट कुमारी अन्तरीप से आरम्भ होकर दक्षिण मे अण्टार्कटिका महाद्वीप तक चला गया है। इस कूट के भिन्न भागो मे भिन्न नाम है जैसे चागोज कूट, सैण्ट पाल कूट, एम्सटरडम—सैण्ट पाल पठार। यह कूट दक्षिण मे चौडा हो गया है, जहाँ इस पर करग्यूलैन, हार्ड, मैकडोनल्ड आदि द्वीप है। इस कूट से उ० प० दिशा में तीन शाखाये निकली है—(१) सोकोत्रा—चोगोज कूट (२) काल्सबर्ग कूट तथा (३) सैचेलैस कूट। काल्सबर्ग कूट दो समानान्तर श्रेणियो से जो घाटी द्वारा पृथक हूं, निर्मित है। काल्सबर्ग कूट के उत्तर मे मरे कूट है। यह भी दोहरा है। इसकी मध्यवर्ती घाटी लगभग ३६६० मीटर गहरी है। यह कूट सिन्ध की किरथर श्रेणी का विस्तार प्रतीत होता है। हाल ही मे समुद्र के अन्दर एक तीसरी अतरित गिरि श्रृखला का पता चला है जो बलूचिस्तान और ईरान के तट पर पूर्व-पश्चिम दिशा मे फैली है। यह जैग्रोस पर्वत प्रणाली का समुद्रान्तर अश प्रतीत होती है। मैडागास्कर द्वीप के दक्षिण मे दक्षिणी मैडागास्कर का कूट है, जो दक्षिण मे चौडा हो गया है और प्रिन्स एडवर्ड क्रौजेट कूट ( Prince Edward Crozet Ridge ) के नाम से विख्यात है।

अण्डमान-निकोबार द्वीप-श्रखला के पश्चिम मे एक समुद्रान्तर कूट है। इसका विस्तार उत्तर-दक्षिण दिशा मे है। इसे कार्पेण्टर कूट (Carpenter Ridge) कहते है। यह सागर नितल से २२८० मीटर ऊपर उठा हुआ है।

अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह के पूर्व मे एक ज्वालामुखीजन्य श्रखला है। और अधिक पूर्व मे एक अन्तरित ( Interrupted) शैल श्रृखला की खोज हुई है, जो ब्रह्मा के वर्तमान तट के समानान्तर चली गई है। इस श्रृखला के अनेक अश लगभग सागर-समतल तक उठे हुए हैं, किन्तु कही भी यह श्रृखला सागर पृष्ठ से ऊपर नही उठ सकी है।

## ७. आर्कटिक महासागर

**आकार**—आर्कटिक महासागर का क्षेत्रफल लगभग ५५ लाख वर्गमील है। यह प्रशान्त महासागर का लगभग $\frac{1}{12}$ भाग है।

**आकृति**—आर्कटिक महासागर स्थूल रूप से वृत्ताकार आकृति का है। इसकी अधिकाश सीमा उत्तरी गोलार्ध के महाद्वीपो के उत्तरी तटो से बनी है। उत्तरी ध्रुव साइबेरिया-अलास्का (४७° उ० की) अपेक्षा ग्रीनलैण्ड (८३° उ०) के अधिक निकट है।

आर्कटिक महासागर के अधिकाश भाग मे वर्ष भर स्थायी रूप से बर्फ जमी रहती है। सयुक्त राज्य अमरीका की जलसेना द्वारा प्रकाशित उत्तरी गोलार्ध की हिम मान-चित्रावली (Ice Atlas of North Hemisphere), में स्थायी अनाव्य ध्रुवीय हिम

(Permanent unnavigable polar ice) तथा सकुलित हिम (Pack ice) के अधिकतम तथा न्यूनतम विस्तार का अन्तर स्पष्ट किया गया है।

**तटीय सागर**—स्थलखण्डो के उत्तरी तटो पर उथले तटीय सागर है जैसे अलास्का के तट पर ब्यूफोर्ट सागर, साइबेरिया के तट पर पूर्वी साइबेरियन सागर तथा लाप्टेव सागर नोवाया जैमल्या ( Novaya Zemlya ) और ओब नदी के मुहाने के मध्य मे कारा सागर तथा नौरवे और स्पिट्सबर्गेन के मध्य मे बैरैण्टस् सागर। कनाडा के उत्तर में स्थित द्वीपो के मध्य में अनेक छोटे मोटे चैनेल तथा जलडमरूमध्य है।

**द्वीप**—आर्कटिक महासागर की सीमा के निकट चारो दिशाओ मे अनेक द्वीप हैं। इन्हे दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है —(१) कैनाडा के द्वीप समूह (Canadian Archipelago ) न्यूसाइबेरियन द्वीप तथा नोवा जैमल्या—स्थलखण्डो के डूबे हुए किनारो के अश है। (२) स्पिट्जबर्गेन, बेयर द्वीप (Bear Island) तथा जान मायेन (Jan Mayen) समुद्रान्तर कूटो के उच्चतर भाग है।

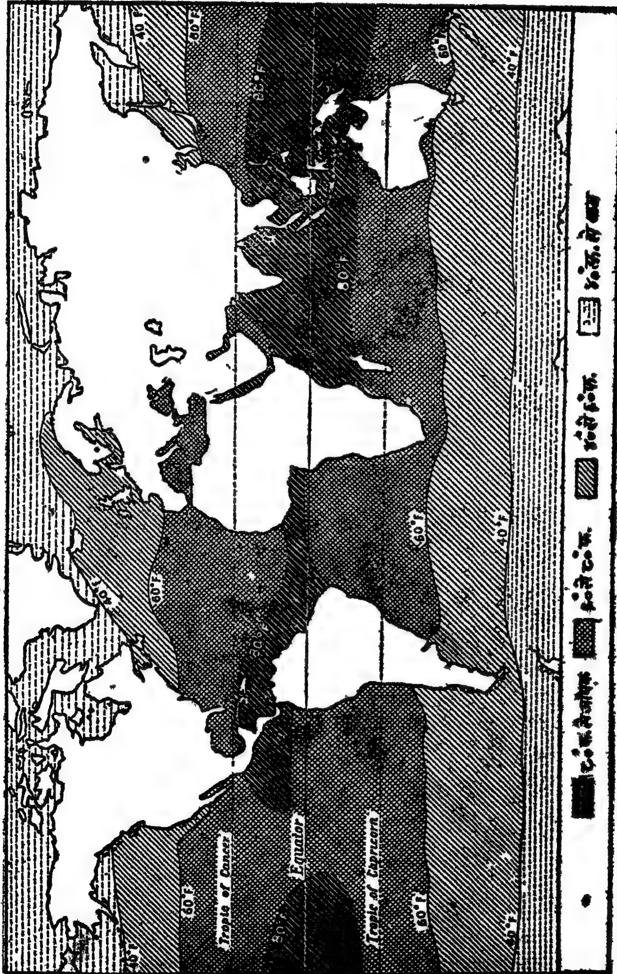
**नितल**—अण्टार्कटिक महासागर के नितल के विषय मे हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। सभवत इसमे केवल एक द्रोणी ( Basin ) है—उत्तरी ध्रुवीय द्रोणी, जिसकी औसत गहराई २००० फैदम है तथा अधिकतम गहराई ३०७६ फैदम है (७८° उ०, १७५° प० पर)। इसके चारो ओर १००० फैदम से भी कम गहरे तटीय सागर है।

## सत्ताइसवाँ परिच्छेद

# महासागरों का तापक्रम

### १ सागर पृष्ठ का तापक्रम

भूमध्य रेखा के निकट सागर पृष्ठ के जल का तापक्रम लगभग ८०° फ०




चित्र १८१—महासागरों के पृष्ठ का तापक्रम-

है। ध्रुवो की ओर तापक्रम क्षीण होता जाता है। ध्रुवीय प्रदेशो का तापक्रम केवल

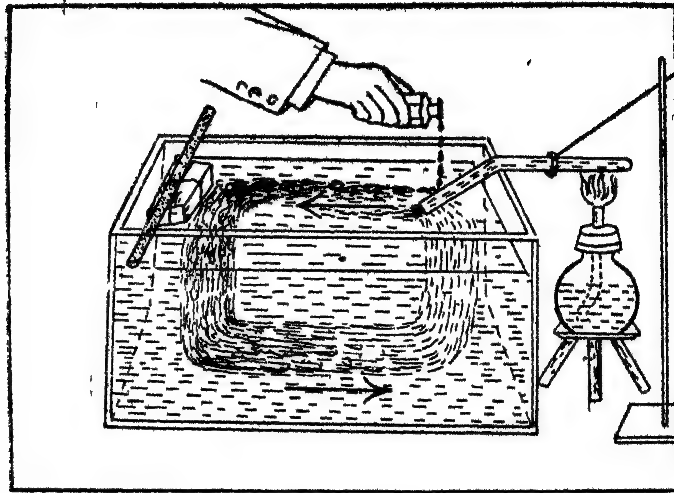
२८° फ० है। उत्तर और दक्षिण की दिशा मे तापक्रम का क्षीण होना क्रमिक नही है। प्रचलित वायु, धाराये तथा समुद्रान्तर कूट सागर के तापक्रम को प्रभावित करते हैं।

## २ तापक्रम का लम्बवत् वितरण

इस विषय मे केवल दो तथ्यो का उल्लेख मात्र ही पर्याप्त होगा—

(१) सागर मे नितल-जल की अपेक्षा पृष्ठ-जल का तापक्रम सदैव अधिक रहता है। निम्नलिखित प्रयोग इस कथन की पुष्टि करता है —

प्रयोग—जैसा कि चित्र १८२ मे प्रदर्शित किया गया है, जल के एक पात्र मे एक ओर तन्तु-जाली (Wire gauge) द्वारा कुछ बर्फ लटका दीजिए और दूसरी ओर एक धातु की शलाका को इस प्रकार युक्त कीजिये कि उसका एक सिरा जल-पृष्ठ का स्पर्श



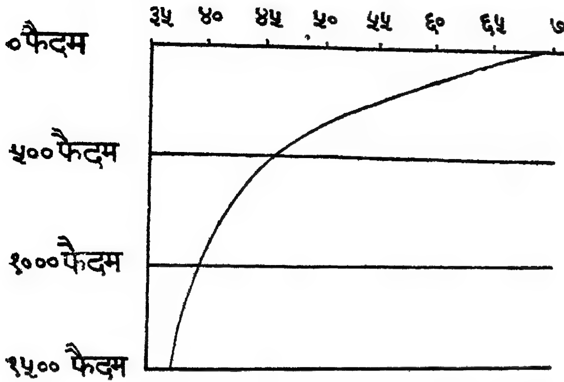
चित्र १८२—तापक्रम और धाराओ का पारस्परिक सम्बन्ध

करे और दूसरे सिरे को ताप पहुँचाया जा सके। ताप मिलते ही जल चित्र मे अंकित तीर की दिशाओ में प्रवाहित होगा। शलाका के निकट का जल उष्ण होने से हल्का होकर ऊपर उठता है, दूसरी ओर बर्फ वाले सिरे में जल शीतल होने से सिकुडता है जिससे वहाँ का पृष्ठ-जल नीचे दब जाता है। क्योकि जल सदैव ऊँचे समतल से नीचे समतल की ओर प्रवाहित होता है, अतएव पात्र में शलाका की ओर से बर्फ की ओर पृष्ठ-प्रवाह होता है। दूसरी ओर नितल जल विपरीत दिशा मे प्रवाहित होता है, जैसा कि चित्र से प्रकट है।

यहाँ पर जल-पात्र का उष्ण भाग भूमध्य रेखा का द्योतक है, जहाँ सूर्य की प्रखर और सीधी किरणो के कारण तापक्रम अधिक रहता है और शीतल भाग ध्रुवो का द्योतक है जहाँ सर्वदा हिमावरण रहने के कारण तापक्रम कम रहता है।

(२) पृष्ठ से थोडी गहराई अर्थात् कुछ सैकडे फुट तक तापक्रम बड़े वेग से

क्षीण होता है, फिर वह धीरे धीरे घटने लगता है और लगभग ६००० फुट के नीचे तो तापक्रम प्राय स्थिर ही रहता है।

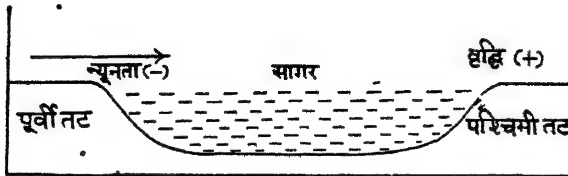



चित्र १८३—महासागरो मे तापक्रम का लम्बवत वितरण

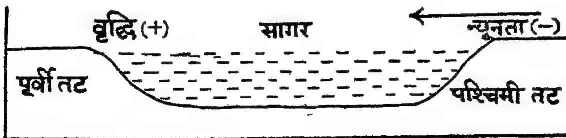
## ३ वायु का प्रभाव

प्रबल प्रचलित वायु पृष्ठ-जल के उष्ण-स्तर को अपने साथ आगे बहा ले जाती है, जिसके फलस्वरूप नीचे का शीतल जल ऊपर उठ आता है। अतएव जब प्रबल वायु स्थल से जल की ओर चलती है तो किनारे का जल शीतल रहता है। उदाहरणार्थ अन्ध महासागर में ५०° उ० अक्षाश के निकट योरप के तट पर तापक्रम अधिक रहता है और अमरीका के तट पर अपेक्षाकृत कम। इसका कारण दक्षिण- पश्चिम से चलने वाली वायु है, जो पृष्ठ-जल के उष्ण स्तर को अमरीका के तट से योरप की ओर बहा ले जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ पर शीतल जल ऊपर उठ आता है।

इसके विपरीत यदि वायु की दिशा जल से स्थल की ओर हो तो तट पर उष्ण जल एकत्र होता है।




क




ख

चित्र १८४—तापक्रम के वितरण पर वायु का प्रभाव

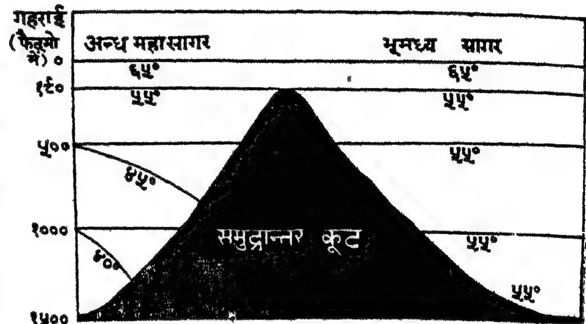
(इन चित्रो से यह स्पष्ट होगा कि वायु जिस तट से चलती है, उसका तापक्रम घट जाता है और जिस तट की ओर प्रवाहित होती है, उसका तापक्रम बढ जाता है)

## ४. धाराओं का प्रभाव

सागर जल का तापक्रम कुछ अशो मे उसमे प्रवाहित होने वाली धाराओं की प्रकृति पर भी निर्भर है। भूमध्य रेखा से ध्रुवो की ओर प्रवाहित होने वाली धाराये अपने साथ उष्ण प्रभाव ले जाती है जैसे उत्तरी अधमहासागर का प्रवाह (North Atlantic Drift) ब्रिटिश सागर के तापक्रम को बढाता है। इसके विपरीत शीतल धाराये अपने साथ शीतल प्रभाव ले चलती है—जैसे लेब्रेडोर की धारा कनाडा के पूर्वी तट का तापक्रम घटा देती है।

## ५ समुद्रान्तर कूटों (Submarine Ridges) का प्रभाव

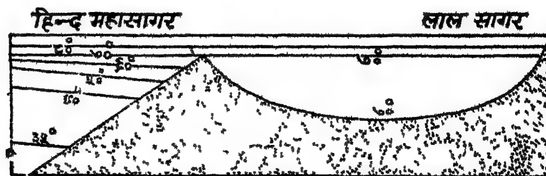
जिब्राल्टर के निकट भूमध्य-सागर के पृष्ठ जल का तापक्रम ६५° फ० है, जो निकटवर्ती अधमहासागर के पृष्ठ जल के तापक्रम के लगभग ही है। प्राय १९० फैदम (११४० फुट) की गहराई तक दोनो सागरो में तापक्रम समान रूप से क्षीण होता है, जैसा कि चित्र १८५ द्वारा प्रगट है। किन्तु इसके नीचे भूमध्य सागर का तापक्रम ५५° फ० पर स्थिर रहता है, जब कि अन्ध महासागर का तापक्रम क्रमश घटता जाता है।




चित्र १८५—तापक्रम के वितरण पर जलमग्न कूट का प्रभाव

तापक्रम के उपर्युक्त वैचित्र्य का कारण यह है कि दोनो सागरो के मध्य मे एक समुद्रातर कूट विद्यमान है। साधारणत जल कम लवणतावाले अधमहासागर से अधिक लवणता वाले भूमध्य सागर की ओर प्रवाहित होता है किन्तु इस कूट के कारण जल का यह आदान-प्रदान केवल ११४० फुट की गहराई तक ही सम्भव है इसके नीचे नही। अतएव अधमहासागर के नीचे का शीतल जल भूमध्यसागर मे नही आ पाता और भूमध्य सागर के नितल का तापक्रम वही है जो उसमें बाहर से अर्थात् अन्ध-महासागर से आने वाले सबसे अधिक शीतल जल का तापक्रम है।

इस प्रकार की दशा लाल सागर की भी है—




चित्र १८६—तापक्रम के वितरण पर जलमग्न कूट का प्रभाव

ऊपर के चित्र से स्पष्ट होगा कि हिन्द महासागर का ७०° फ० से कम तापक्रम का जल समुद्रान्तर कूट के कारण लाल सागर में नही जा पाता।

## अट्ठाइसवाँ परिच्छेद

# सागर की लवणता

### १. लवणता क्या है ?

सागरजल मे नमक अथवा लवण घोल के रूप मे सदैव विद्यमान रहता है। १००० ग्राम सागरजल मे जितने ग्राम लवण रहता है, उसी सख्या को हम उस जल की लवणता कहते हैं। मान लीजिए १००० ग्राम सागरजल मे ३५ ग्राम लवण घुला हुआ है, ऐसी दशा मे उस जल की लवणता ३५ होगी, जो इस प्रकार प्रकट की जाती है ३५‰ (पैंतीस प्रति सहस्र)।

### २ लवणता सम्बन्धी विभिन्नता

लवणता स्थिर नही है। न केवल एक सागर की लवणता दूसरे सागर से भिन्न है, प्रत्युत एक ही सागर के विभिन्न भागो की लवणता मे अन्तर पाये जाते हैं। भूमध्यसागर की लवणता ३८ है और उत्तरी सागर की लवणता केवल ३४ है। कैस्पियन सागर के उत्तर मे अन्य भागो की अपेक्षा लवणता बहुत कम है।

### ३ सागर जल की संरचना

सागर की लवणता मुख्यत सोडियम क्लोराइड ( Sodium Chloride ) के कारण है, यद्यपि उसमें अन्य लवण भी विद्यमान है। माध्यत १००० ग्राम सागर जल मे ३५ ग्राम लवण रहते है, जिनमे प्रमुख ये है —

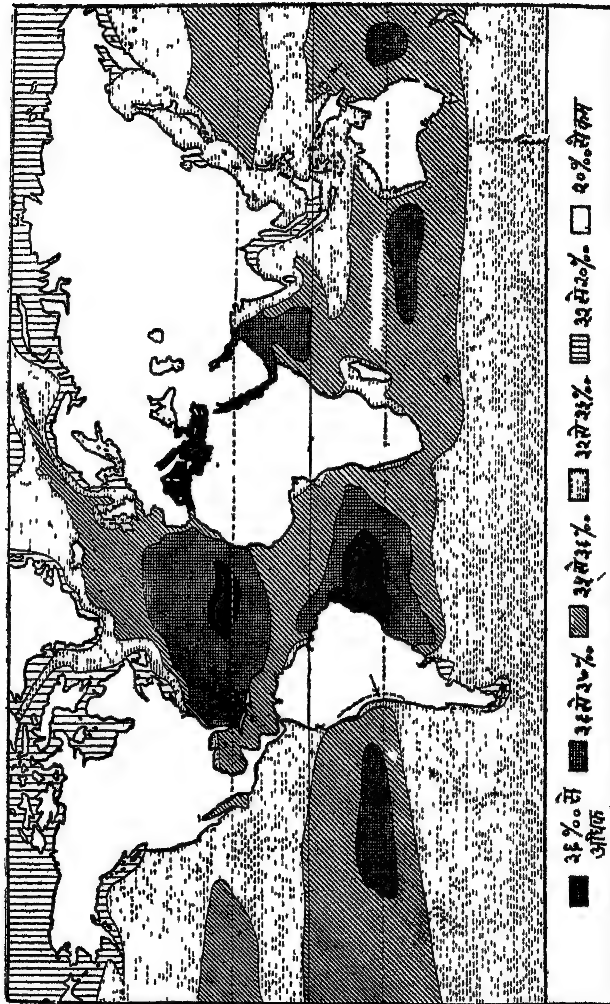
| | |
|---|---|
| सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) | २७ २ ग्राम |
| मैग्नेशियम क्लोराइड (Magnesium Chloride) | ३ ८ ग्राम |
| मैग्नेशियम सल्फेट (Magnesium Sulphate) | १ ६६ ग्राम |
| कैलशियम सल्फेट (Calcium Sulphate) | १ २६ ग्राम |

सागर की लवणता कुछ भी क्यो न हो लवणो का उपर्युक्त अनुपात स्थिर है।

### ४ सागर में लवण की उत्पत्ति

नदियो के जल में लवण घोल के रूप मे विद्यमान रहता है, जिसे वे सागर को अपने ही साथ समर्पित कर देती है। वाष्पीकरण की क्रिया सागर से जल का तो अपहरण करती है किन्तु लवण की मात्रा मे उसका कोई प्रभाव नही पडता और वह स्थिर रहता है। फलस्वरूप सागर की लवणता शनै शनै बढती जाती है। यदि हम सागर की लवणता का मुख्य कारण नदियो को माने, तब तो सागर-जल की सरचना नदी-जल के समान होनी चाहिए। किन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। सागर जल मे अन्य लवणो की अपेक्षा सोडियम क्लोराइड ( Sodium Chloride ) का अनुपात कही अधिक है। इसके विपरीत नदियो में कैल्शियम कार्बोनेट ( Calcium Carbonate ) का बाहुल्य है। इस वैचित्र्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है कि प्रवाली पुर्वंगक (Coral Polyp) एव अन्य जल-जन्तु सागर मे नदियो द्वारा लाये गये कैल्शियम

क्लोराइड का उपभोग कर डालते है। किन्तु सागर और नदियो के जल की सरचना मे अनेक अन्य विभेदन है—जैसे नदी-जल मे सल्फेट क्लोराइड की अपेक्षा अधिक होता है और सागरजल मे क्लोराइड का अनुपात सल्फेट से अधिक होता है—जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार नही किया जा सकता। अतएव या तो सागर के लवण सर्वांश में नदियो द्वारा उपलब्ध नही है या सागरजल की सरचना मे परिवर्तन होते रहते हैं।



चित्र १८७—लवणता का वितरण

## ५ लवणता निर्धारक प्रतिकारक

लवणता दो प्रतिकारको पर निर्भर है:—

(१) अलवण जल की प्राप्ति (Supply of fresh water) अलवण जल जितनी अधिक मात्रा मे प्राप्त होगा, लवणता उतनी ही कम होगी।

(२) वाष्पीकरण की मात्रा (Degree of evoporation) वाष्पीकरण जितना ही अधिक होगा, लवणता उतनी ही अधिक होगी।

इसके अतिरिक्त लवणता में सागर की गहराई के साथ भी विभेदन होते है किन्तु यहाँ पर हमारा प्रयोजन केवल पृष्ठ जल से है।

## ६. लवणता का वितरण

### (क) विवृत सागर (Open Oceans)

कर्क एव मकर रेखाओ के समीप लवणता अधिक है कितु ध्रुवो और विषुवत-रेखा की ओर वह घटती जाती है। कर्क और मकर रेखाओ के निकट लवणता ३६ प्रतिसहस्र है, जबकि ध्रुवो और विषुवत रेखा के क्षेत्र मे वह केवल ३४ प्रतिसहस्र है।

कर्क और मकर-रेखाओ के समीप लवणता के आधिक्य के कारण —

(१) वाष्पीकरण का आधिक्य—निर्मल आकाश और प्रखर सूर्य की किरणे वाष्पीकरण के वेग को बढाती है।

(२) अधिक वर्षा का अभाव, इसके अतिरिक्त बडी बडी नदियाँ इन सागरो मे नही मिलती। अन्य शब्दो मे अलवण जल की अधिक प्राप्ति नही होती।

विषुवत-रेखा के निकट लवणता की न्यूनता के कारण —

(१) वर्ष भर घनघोर जल-वृष्टि अपरिमित अलवण जल प्रदान करती हैं।

(२) वर्ष के अधिकतर भाग मे आकाश मे बदली छायी रहने के कारण वाष्पीकरण का वेग घट जाता है।

ध्रुवीय क्षेत्रो में लवणता की न्यूनता के कारण —

(१) बर्फ के पिघलने से अतुलित अलवण जल की प्राप्ति होती है।

(२) तापमान निम्न रहने से वाष्पीकरण कम होता है।

### (ख) आशिक समावृत सागर
### (Partially enclosed seas)

विवृत सागरो की अपेक्षा आशिक समावृत सागरो मे लवणता का विभेदन अधिक मात्रा मे पाया जाता है।—

| | | लवणता |
|---|---|---|
| १ | लाल सागर | ३७ से ४१ तक |
| २ | फारस की खाडी | ३७ से ३८ तक |
| ३ | भूमध्य सागर | ३७ से ३९ तक |
| ४ | बाल्टिक सागर | (उत्तर में) ३ से (दक्षिण मे) १५ तक |
| ५ | उत्तरी सागर | ३१ से ३५ तक । |

लालसागर, फारस की खाडी और भूमध्य सागर मे लवणता अधिक होने के कारण ये है —

(१) ये अधिक तापक्रम वाले कटिबन्ध मे स्थित है, जहाँ ग्रीष्म ऋतु मे सूर्य की प्रखर किरणो के कारण वाष्पीकरण बडे वेग से होता है।

(२) कुछ थोडी ही छोटी नदियाँ इन्हे अपना अलवण जल प्रदान करती है।

इसके विपरीत बाल्टिक और उत्तरी सागर से निम्नलिखित कारणो से लवणता अपेक्षाकृत कम है —

(१) ये अपेक्षाकृत शीतल कटिबन्ध मे स्थित है जहाँ तापक्रम कम होने से वाष्पीकरण अधिक वेग से नही होता।

(२) बडी-बडी नदियाँ इन सागरो को अपरिमित अलवण जल प्रदान करती है।

### (ग) पूर्ण समावृत सागर (Enclosed Seas) और झीले (Lakes)

ऐसे समावृत सागरो और झीलो की लवणता कम है जिनमे कुछ नदियाँ मिलती है और जिनसे कुछ नदियाँ निकलती भी है। किन्तु ऐसे सागरो की लवणता अधिक है, जिनसे कोई नदी नही निकलती, क्योकि वाष्पीकरण की क्रिया नदियो द्वारा लाये गये जल और लवण से जल का तो हरण कर लेती है, किन्तु लवण पर उसका कोई प्रभाव नही पडता जिससे उसकी मात्रा मे क्रमश वृद्धि होती रहती है। मृतक सागर (Dead Sea) जिसकी लवणता २३७ ५ प्रति सहस्र है, ससार मे सबसे अधिक लवणमय (खारा) सागर है।

## ७. समलवण रेखायें (Iso-halines)

ऐसी कल्पित रेखाओ को, जो सागर मे समान लवणता वाले स्थानो को जोडती है समलवण रेखाये कहते है।

उन्तीसवाँ परिच्छद

# महासागरों की जलराशियाँ

# (WATER MASSES OF THE OCEANS)

## १ परिभाषा

सागरो और महासागरो मे पाये जाने वाले जल के ऐसे विशाल पुञ्ज को जलराशि ( Water Mass ) कहते हैं, जिसके प्राकृतिक लक्षण विशेषकर तापक्रम लवणता और घनत्व एक से हो।

## २ महत्त्व

महासागर-विज्ञान मे जलराशियो ( Water Masses ) की अवधारणा उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी मौसम-विज्ञान ( Meteorology ) मे वायुराशियो ( Air Masses ) की।

## ३ वायु राशियों और जलराशियों में अन्तर

जलराशियाँ वायुराशियो से निम्नलिखित दिशाओ मे भिन्न होती हैं —

(१) जलराशियो और वायुराशियो के निर्माण मे यह प्रमुख अन्तर है कि समुद्र मे स्थिर दशा वायुमण्डल की अपेक्षा अधिक मात्रा मे प्राप्त हो जाती है।

(२) जलराशियो और वायुराशियो के वितरण मे यह प्रमुख अन्तर है कि विभिन्न जलराशियो की सीमाये प्राय सदैव एक से क्षेत्रो मे पाई जाती है।

(३) जलराशियो के मध्य की अर्ध-क्षैतिज ( Quasi Horizontal ) सीमाये उतनी ही निश्चित और महत्वपूर्ण होती है जितनी झुकी हुई सीमायें।

## ४ जलराशियों के स्तर

निम्न तथा मध्य अक्षाशो की जलराशियो मे निम्नाँकित स्तर पाये जाते है —

(१) पृष्ठ का स्तर (Surface Layer)
(२) मध्यान्तर का जल ( Intermediate Water)
(३) गहरा जल (Deep Water)

तथा कही कही (४) नितल का जल ( Bottom Water )

उच्च अक्षाशो मे मध्यान्तर का जल प्राय अनुपस्थित होता है तथा पृष्ठ के स्तर का जल गहरे जल के सदृश होता है।

### घनत्व

लम्बवत दिशा मे जल का घनत्व गहराई के साथ बढता जाता है। क्षैतिज दिशा मे घनत्व ध्रुवो की दिशा मे बढता जाता है।

मध्य तथा उच्च अक्षाशो मे पृष्ठ-जल जब नीचे डूबता हे, तब वह उचित घनत्व के पृष्ठ ($\sigma$ त पृष्ठ) के अनुरूप फैलता है, अतएव इन अक्षाशो मे घनत्व का लम्बवत वितरण उस ऋतु का क्षैतिज वितरण प्रदर्शित करता है जिसमे पृष्ठजल का घनत्व सबसे अधिक होता है।

## जलराशियों का वर्गीकरण

ससार के विभिन्न महासागरो मे पृष्ठ जल के डूबने से निम्नलिखित जलराशियाँ अस्तित्व मे आ जाती है —

१ अण्टार्कटिक महासागर का नितल जल (Antarctic Bottom Water)

२ उत्तरी अन्धमहासागर का गहरा तथा नितल जल (North Atlantic Deep and Bottom Water)

३ अण्टार्कटिक महासागर का मध्यान्तरीय जल (Antarctic Intermediate Water)

४ उत्तरी अन्धमहासागर का मध्यान्तरीय जल (North Atlantic Intermediate Water)

५ उत्तरी प्रशान्त महासागर का मध्यान्तरीय जल (North Pacific Intermediate Water)

६ विभिन्न महासागरो की मध्यवर्ती जलराशियाँ (The Central Water Masses of Different Oceans)

७ समुद्रान्तर कूटो द्वारा पृथक सागरो की जलराशियाँ (Water Masses of Seas Separated by Submarine Ridges)

८ उपपृष्ठीय मिश्रण से बनी जलराशियाँ (Water Masses Formed by Subsurface Mixing)

### १ अण्टार्टिक नितल जल
### (Antarctic Bottom Water)

इसका निर्माण अण्टार्कटिका महाद्वीप के निकट विशेषकर वैडैल सागर (Weddell Sea) के क्षेत्र मे, जो अन्धमहासागर के दक्षिण मे स्थित है, होता है। महाद्वीपीय निधाय (Continental Slope) पर हिम के घनीभूत होने से जल की लवणता बढ जाती है, जिससे जलराशि का निर्माण लगभग ३४ ६२ प्रति सहस्र की लवणता तथा –१.९° फ० के तापक्रम पर होता है। इस जल के $\sigma$ त का मूल्य २७ ८९ है, जो निकटवर्ती परिध्रुवीय जल ((Circumpolar water) से जिसकी लवणता तथा तापक्रम क्रमश ३४ ६८ प्रति सहस्र तथा ० ५° फ० है अधिक है। अतएव, महाद्वीपीय निधाय पर पानी नीचे डूबता है। वह महाद्वीपीय प्रवण

---

दृष्टव्य—$\sigma$ एक ग्रीक अक्षर है। इसे छोटा सिगमा कहते है।

(Continental Shelf) के अनुरूप नीचे की ओर डूबता है किन्तु नीचे जाते समय वह अपेक्षाकृत अधिक उष्ण तथा अधिक खारे जल से सम्मिश्रित हो जाता है। फल-स्वरूप, एक नितल जल का निर्माण होता है, जिसे हम अण्टार्कटिक नितल जल ( Antlrctic Bottom Water ) कहते हैं। इस जल-राशि की लवणता तथा तापक्रम क्रमश ३४ ६६ प्रति सहस्र तथा —०.४° फ० है।

## २ उत्तरी अन्ध महासागर का गहरा तथा नितल जल

## (North Atlantic Deep and Bottom Water)

इसका निर्माण लैब्रेडोर सागर तथा आइसलैण्ड और द० ग्रीनलैण्ड के मध्य मे स्थित महासागरीय क्षेत्र मे होता है। वहाँ पर उ० अटलाण्टिक प्रवाह (North Atlantic Drift) के उष्ण तथा लवणमय जल पूर्वी ग्रीनलैण्ड धारा के अपेक्षाकृत शीतल तथा कम लवणमय जल से मिलते हैं। जाडो मे जब यह मिश्रित जल पृष्ठ पर शीतल होता है तब उसके σ त० का मूल्य २७ ८८ हो जाता है जो नीचे डूबने के लिये यथेष्ट है। १००० मीटर से अधिक नीचे डूबने वाले जल की लवणता ३४ ९० तथा ३४ ९६ प्रति सहस्र के बीच मे होती है तथा तापक्रम २ ८° तथा ३ ३° के मध्य में होता है।

उत्तरी प्रशान्त मे इस प्रकार की जलराशि नही पाई जाती।

## ३ अण्टार्कटिक महासागर का मध्यान्तरीय जल

## (Antarctic Intermediate Water)

यह जल अण्टार्कटिक ससृति (Convergence) पर डूबता है। इस ससृति का सन्तोषप्रद स्पष्टीकरण अभी तक नही किया जा सका है। यह अण्टार्कटिका महाद्वीप के चारों ओर प्रबल पछुवा हवाओ की पेटी मे पाया जाता है। इस ससृति मे डूबने वाला जल एक विशिष्ट जल है, जिसकी लवणता सर्वत्र ३३ ८ प्रति सहस्र है, तापक्रम लगभग २ २°फ है तथा σ त का मूल्य २७ ०° है। जब जल पृष्ठ को त्याग देता है तब वह ऊपर और नीचे के जलपुजो के सम्मिश्रण से एक जलराशि को जन्म देता है जो उत्तर दिशा में σ त = २७ २ तथा σ त = २७°४ के पृष्ठो के बीच में फैल जाती है। उसके मध्यवर्ती भाग मे लवणता सबसे कम होती है।

## ४ उत्तरी अन्ध महासागर का मध्यान्तरीय जल

## (North Atlantic Intermediate Water)

यह जल लैब्रेडोर सागर के दक्षिण की ससृति मे उपरोक्त विधि से बनता है, यद्यपि यह अपेक्षाकृत कम मात्रा मे बनता है।

## ५ उत्तरी प्रशान्त महासागर का मध्यान्तरीय जल

## (North Pacific Intermediate Water)

इसी प्रणाली से उत्तरी प्रशान्त महासागर के उ० पू० भाग मे (४०° उ० अक्षाश के निकट) उत्तरी प्रशान्त महासागर का मध्यान्तरीय जल बनता है किन्तु जब वह

पश्चिम और दक्षिण दिशाओ मे फैलता है, तब उसमे विशाल मात्रा मे उपपृष्ठीय जल मिलता है। अतएव उत्तरी प्रशान्त के मध्यान्तरीय जल मे वे गुण नही पाये जाते जो उसमे उस दशा मे होते जब वह मुख्यत पृष्ठ जल के डूबने से बनता—जैसे घुली हुई ऑक्सीजन का अधिक अनुपात। अण्टार्कटिक महासागर तथा उत्तरी अन्धमहासागर के मध्यान्तरीय जलो की तुलना मे यह जलराशि ऑक्सीजन मे निर्धन होती है।

## ६ विभिन्न महासागरों की मध्यवर्ती जलराशियाँ

## (Central Water Masses Of Different Oceans)

ये जलराशियाँ उपोष्ण प्रदेशो की ससृति पर जल के डूबने से बनती है। सभी महासागरो मे उपोष्ण कटिबन्धीय ससृति ३५° और ४०° अक्षाशो के मध्य मे पाये जाते है। इन ससृतियो मे जाडो मे पृष्ठ-जल अधिक गहराई तक डूबता है। अतएव, इनसे जो जलराशियाँ बनती है, वे शीतलतम ऋतु मे पृष्ठ के तापक्रम एव लवणता को दर्शाती है।

## ७ समुद्रान्तर कूटो द्वारा पृथक सागरो की जलराशियाँ

## (Water Masses Of Seas Separated By Submarine Ridges)

ऐसे सागरो मे जो महासागर से समुद्रान्तर कूटों (Submarine Ridges) द्वारा पृथक है, विशेष प्रकार के जल पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये नौरवेजियन सागर में वैसी ही प्रक्रियाओ से गहरा जल बनता है, जैसी प्रक्रियाओ से अन्ध महासागर का गहरा जल बनता है। नौरवेजियन सागर के पश्चिमी भाग मे ग्रीनलैण्ड के तट के अनुरूप निम्नाकित दो जल मिलते है —

(१) अन्धमहासागर का उष्ण जल जो स्कॉटलैण्ड के उत्तर में नौरवेजियन सागर मे प्रविष्ट होता है।

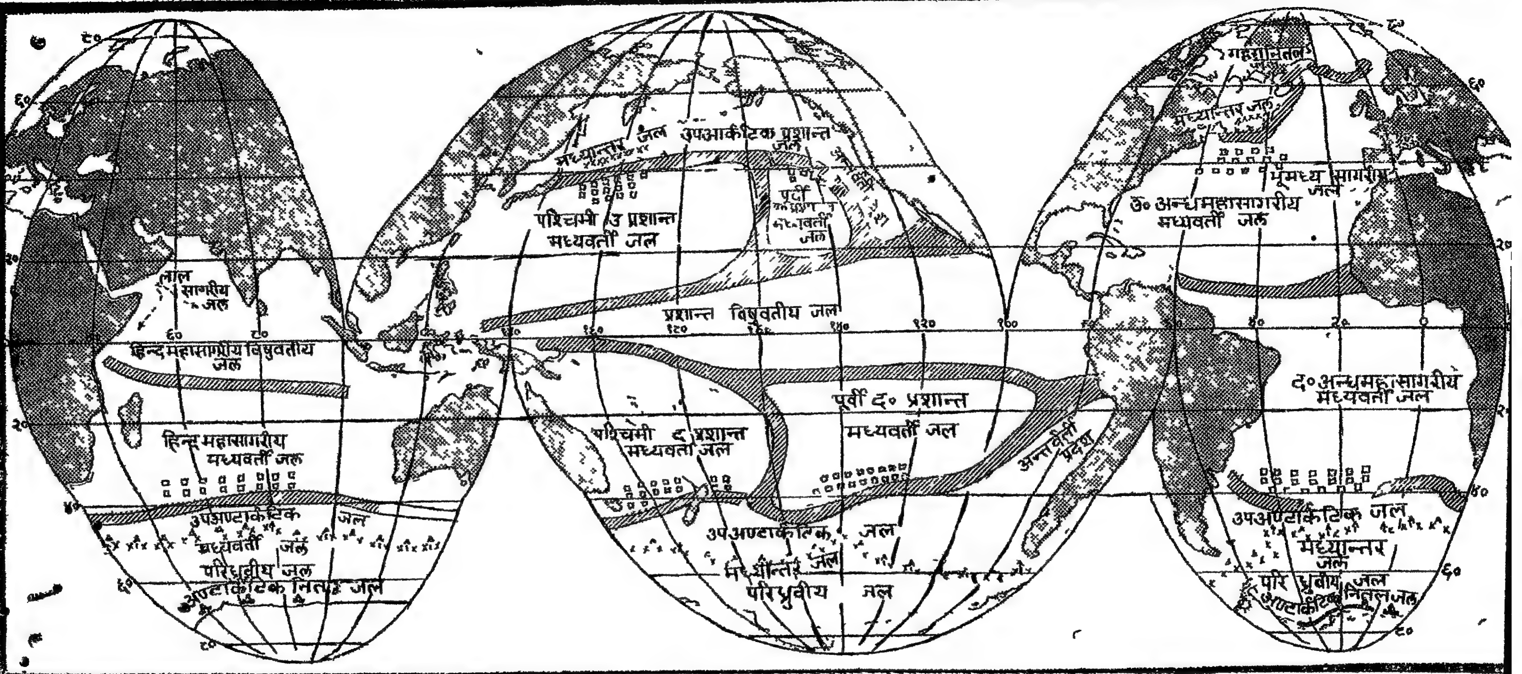
(२) पूर्वी ग्रीनलैण्ड धारा का शीतल जल।

इन जलो का सम्मिश्रण जाडो मे ठण्डा होता है और लम्बवत् सवाहन की धाराओ द्वारा उससे गहरा जल (Deep Water) बनता है। इस गहरे जल का तापक्रम –० ८° और –१ २° के बीच मे रहता है तथा लवणता ३४.८९ और ३४.९२ प्रति सहस्र के मध्य मे रहती है।

भूमध्यसागर में वाष्पीकरण तथा जाडे मे शीतल होने की क्रिया से गहरे जल का निर्माण होता है। इस गहरे जल का तापक्रम १३ ०° और १३.६° के बीच मे रहता है तथा लवणता ३८ ४ और ३८ ७ प्रति सहस्र के मध्य मे रहती है। यह भूमध्यसागरीय जल जिब्राल्टर के जलसयोजक के अनुरूप अन्धमहासागर मे प्रवाहित होता है, जहाँ वह अन्धमहासागर के जल से मिश्रित होता है और फिर σ त= २७ ५ तथा σ त – २७ ७ के पृष्ठो के बीच मे अर्थात् अण्टार्कटिक मध्यान्तरीय जल के नीचे फैलता है।

लाल सागर मे इसी प्रकार का किन्तु अधिक उष्ण और अधिक लवणमय नितल जल बनता है। इसका तापक्रम २१ ५° तथा २२ ०° के बीच मे रहता है तथा लवणता ४० ५ तथा ४१ ० प्रति सहस्र के मध्य में रहती है।

यह लाल सागरीय जल बाब-एल-मण्डैब जलसयोजक के नितल के अनुरूप हिन्द-महासागर मे प्रवाहित होता है जहाँ यह अन्य जलराशियो से मिश्रित होता है और फैलता है। लाल सागर से हिन्दमहासागर मे प्रवाहित होने वाले जल की मात्रा




चित्र १८८—महासागरो की ऊपरी जल राशियाँ

( दृष्टव्य—इस चित्र में अंकित वर्ग उन प्रदेशों को दर्शाते हैं, जहाँ मध्यवर्ती जलराशियाँ (Central Water Masses) बनती हैं। × चिन्ह उन रेखाओं को दर्शाते है, जिनके अनुसार अटलांटिक और अण्टार्कटिक मध्यान्तर जल डूबता है।)




चित्र २१०—हिन्द महासागर की धारायें (जुलाई)




चित्र २११—हिन्द महासागर की धारायें (जनवरी) [सन्दर्भ पृष्ठ २२७

भूमध्यसागर से अन्धमहासागर मे प्रवाहित होने वाले जल की अपेक्षा बहुत कम है, अतएव लालसागरीय जल का प्रभाव अपेक्षाकृत कम पडता है।

## (८) उपपृष्ठीय मिश्रण से बनी जलराशियाँ (Water Masses Formed By Subsurface Mixing)

महासागरो की अन्य महत्वपूर्ण जलराशियाँ पृष्ठ जल के डूबने से नही बनती वरन् उपपृष्ठीय मिश्रण की प्रक्रियाओ से बनती है। इनमे सबसे विशाल अण्टार्कटिक परिध्रुवीय जलराशि ( Antarctic Circumpolar Water Mass ) है, जो मुख्यत अन्धमहासागरीय गहरे जल तथा अण्टार्कटिक नितल जल के मिश्रण से बनती है, किन्तु इसमे कुछ अण्टार्कटिक मध्यान्तरीय जल भी रहता है तथा भूमध्यसागरीय जल का भी कुछ अश रहता है।

उपअण्टार्कटिक जलराशि (Sub Antarctic Water Mass) अण्टार्कटिक ससृति तथा दक्षिणी उपोष्ण ससृति के मध्य मे पाई जाती है। यह दक्षिणी महासागरो और अण्टार्कटिक परिध्रुवीय जलराशियो की अन्तर्वर्ती अवस्था की द्योतक है।

इसी प्रकार उत्तरी उपोष्ण ससृति के उत्तर मे उप आर्कटिक जलराशि (Sub Arctic Water Mass) पाई जाती है। इसके बनने के तीन कारण है—(१) मिश्रण (२) जाडो मे शीतल होने की क्रिया तथा (३) अतिरेक वृष्टि (Excess Precipitation)

प्रशान्त महासागर मे उत्तरी और दक्षिणी मध्यवर्ती जलराशियो ( Central Water Masses ) के बीच मे एक विषुवतीय जलराशि ( Equatorial Water Mass ) विद्यमान है। हिन्द महासागर मे भी ऐसी एक विषुवतीय जलराशि है, किन्तु अन्ध महासागर मे वह अनुपस्थित है।

उत्तरी तथा दक्षिणी प्रशान्त मे उप-आर्कटिक तथा उपअण्टार्कटिक जलराशियाँ क्रमश उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तटो के अनुरूप विषुवत रेखा की ओर बढती है, जहाँ पृष्ठ के उष्ण होने से तथा वाष्पीकरण के कारण उनके लक्षणो मे परिवर्तन हो जाता है।

चित्र १८८ मे विभिन्न महासागरो की प्रमुख जलराशियाँ प्रदर्शित की गई है। इस चित्र के अध्ययन से स्पष्ट होगा कि यद्यपि विभिन्न महासागरो मे समान स्थिति मे समान लक्षणो की जलराशियाँ है, तथापि अन्ध महासागर और प्रशान्त महासागर मे उल्लेखनीय अन्तर है। अन्ध महासागर मे उत्तरी तथा दक्षिणी भागो की मध्यवर्ती जलराशियाँ प्रमुख है, इसमे विषुवतीय जलराशि नही है तथा उपध्रुवीय जलराशियो का विस्तार अत्यन्त सीमित है। दूसरी ओर प्रशान्त महासागर मे एक विशाल विषुवतीय जलराशि है और उत्तरी और दक्षिणी अमरीकाओ के पश्चिमी तटो के अनुरूप उपध्रुवीय जल विषुवत-रेखा की ओर अग्रसर होता है। दूसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उत्तरी और दक्षिणी प्रशान्त दोनो मे दो-दो मध्यवर्ती जलराशियाँ है। इन जलराशियो के अस्तित्व का कारण सभवत यह है कि प्रशान्त के उत्तरी और दक्षिणी दोनो भागो मे दो-दो उच्च वायुभार के क्षेत्र है। उत्तरी अन्ध महासागर की मध्यवर्ती जलराशि उत्तरी प्रशान्त की मध्यवर्ती जलराशि से बिलकुल भिन्न है—उ० अन्धमहासागर की मध्यवर्ती जलराशि की लवणता बहुत अधिक है, उत्तरी प्रशान्त की मध्यवर्ती जलराशियो की लवणता बहुत कम है। यह अन्तर सभवत वाष्पीकरण तथा वृष्टि के विभेदन के कारण है।

# तीसवाँ परिच्छेद

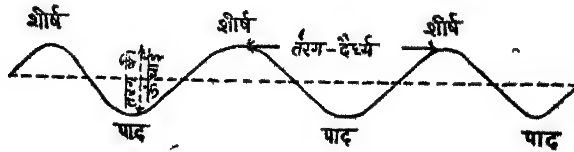
# तरंगे

## १ परिभाषा

वायु द्वारा सागर-पृष्ठ के जल के ऊपर उठने और नीचे गिरने की क्रिया का ही नाम 'तरग' है। तरग मे जल आगे नही बढता। वह केवल ऊपर उठता और नीचे गिरता है। इसकी तुलना हम उस रस्सी से कर सकते है, जिसके एक सिरे पर झटका दिया गया हो। ऐसी दशा मे तरग रस्सी के एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर चलती है, यद्यपि रस्सी की स्थिति मे कोई परिवर्तन नही होता, वह जहाँ थी वही रहती है।

## २ सम्बन्धित शब्दावली

तरग के सर्वोच्च भाग को तरग-शीर्ष (Crest) और सबसे नीचे भाग को तरग-पाद (Trough) कहते है। दो उत्तरोत्तर तरग-शीर्षों अथवा तरगपादो के क्षैतिजान्तर को तरग-दैर्घ्य (Wave Length) कहते है। तरग-पाद के ऊपर तरग शीर्ष के उच्चत्व को दोलन-विस्तार (Amplitude) कम्पविस्तार अथवा तरग का उच्चत्व (Height of the wave) कहते है।

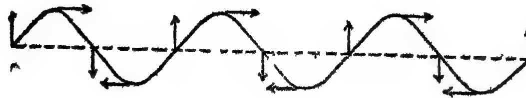



चित्र १८९—तरगो से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द

महासागर मे उठनेवाली बडी तरगो का 'तरग-दैर्घ्य' प्राय ३०० से ६०० फुट तक होता है और उनका दोलन-विस्तार प्राय २० से ४० फुट तक होता है।

### ३ तरग मे जलकणो की गति

गहरे जल मे पृष्ठ के कणो की गति प्राय वृत्ताकार होती है। जैसा कि चित्र १९० मे प्रदर्शित किया गया है जलकणो की गति शीर्ष मे आगे की ओर पाद



चित्र १९०—तरग मे जलकणो की गति

में पीछे की ओर, अगले ढाल के मध्य मे ऊपर की ओर और पिछले ढाल के मध्य में नीचे की ओर होती है।

## ४ तरंगों का वेग

निम्नलिखित सूत्र तरगो का वेग निर्धारित करते हैं—

व ∝ ग का वर्गमूल यदि ग कम है $\frac{द}{२}$ से

व ∝ द का वर्गमूल यदि ग अधिक है $\frac{द}{२}$ से

जहाँ पर व = तरग का वेग

द = तरग दैर्घ्य

ग = जल की गहराई

## ५ तरंगों का महत्व

(१) जल की तरगो का भौगोलिक महत्व उनकी तट के काटने की क्रिया मे निहित है, जो केवल दो सौ फुट की गहराई तक ही सीमित है।

(२) तरग द्वारा सागर-जल जब ऊपर उठता है तब वह अपने अन्दर वायु को सोख लेता है। सागर जल मे इस प्रकार घुली हुई वायु पर अनेकानेक जीव-जन्तुओ का जीवन निर्भर है।

## ६ तरंगों का भौगोलिक कार्य

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तरगो का कार्य-क्षेत्र बहुत कम गहराई तक ही सीमित है तो भी प्रभावित होने वाले क्षेत्र का विस्तार बहुत है, क्योंकि समस्त स्थल-खडों की तट-रेखाओ की लम्बाई का योग लाखो मील है।

तरगो के भौगोलिक कार्य को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—

(१) अपक्षरण का कार्य

(२) निक्षेपण का कार्य

### (१) अपक्षरण का कार्य

महासागरीय अपक्षरण का अधिकाश कार्य तरगो द्वारा सम्पन्न होता है। इसे प्रभावित करनेवाले प्रतिकारको की विवेचना तेतीसवे प्रकरण मे की गई है। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, तरग मे जलकण ऊपर उठते और नीचे जाते है। छोटी तरगो में यह गति पृष्ठ-जल तक ही सीमित रहती है, किन्तु बडी तरगो मे काफी गहराई पर स्थित नितल-जल का मन्थन होता है। इस क्रिया से उथले सागर-नितल के उभारो का पदार्थ हट जाता है और धाराओ द्वारा वह निचले भागो मे एकत्र होता रहता है। इस प्रकार नितल के ऊँचे भाग नीचे होते रहते हैं और निचले भाग ऊँचे होते रहते हैं; अन्य शब्दो में तट के निकट तरगो और धाराओ द्वारा सागर-नितल का समतलन (Levelling) होता रहता है।

विवृत सागर की तरगो मे जलकणों की अग्रगति नगण्य होती है। जल की आकृति मे परिवर्तन अवश्य होता है, किन्तु अग्रगति नही होती। पूर्व मे तरग की तुलना उस रज्जु के की जा चुकी है, जिसके एक सिरे पर झटका दिया गया हो।

यह तुलना बडी उपयुक्त है। तथापि जब तरग उथले सागर मे प्रवेश करती है तब उसकी आकृति और गति दोनो मे अन्तर होता है। तरग की आकृति क्षैतिज दिशा मे सकुचित होती है, किन्तु उसकी ऊँचाई बढ जाती है। ऊपरी भाग आगे की ओर झुक जाता है और निचला भाग कुछ पीछे खिसक आता है। परिणाम यह होता है कि जब लहर टूटती है, तब वह आगे की ओर काफी पानी फेकती है। टूटती हुई लहरो द्वारा फेका गया यह पानी तट पर आगे बढता है। उसका वेग क्रमश क्षीण होता जाता है और अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब गुरुत्वाकर्षण के कारण उसे आगे बढने वाली लहरो के नीचे पीछे को ओर लौटना पडता है। लौटते हुए इस जल को अध कर्ष (Undertow) कहते है। इसमे अपक्षरण करने की पर्याप्त क्षमता होती है।




चित्र १९१—उथले सागर मे तरग की क्रिया

(इस चित्र से यह स्पष्ट होगा कि उथले सागर मे तरग तट से कुछ दूरी पर टूट जाती है।)



चित्र १९२—गहरे सागर मे तरग की क्रिया

(इस चित्र से यह स्पष्ट होगा कि गहरे सागर मे तरग तट पर जाकर ही टूटती है)

**तरगों द्वारा अपक्षरण दो प्रकार से होता है**—एक तो जब लहर टूटती है, उस समय जल की अग्रगति द्वारा और दूसरे रेत के कणो और शिलाखण्डो द्वारा जो उसके औजार का कार्य करते है। दोनो ही दशाओ मे मुख्य कार्य उसी स्थान पर होता है, जहाँ लहर टूटती है। खुले हुए तटो पर जहाँ पानी की गहराई काफी होती है, बडी बडी लहरे भी उस समय तक नही टूटती जब तक वे तट-रेखा का स्पर्श नही करती। इन विशाल तरगों में जल के भार का भी प्रभाव पडता है। प्रति वर्ग फुट पर एक टन का भार होना साधारण सी बात है। शिलाओ के बडे-बडे खण्डो को मूल-शिला

(Parent Rock) से वियुक्त करने मे ये थपेडे समर्थ होते है। अध कर्ष (Under-tow) इन शिला-खण्डो को गहरे जल मे बहा ले जाता है और फिर तट की ओर बढने वाली लहरो द्वारा ये तट की ओर प्रवाहित होते है। इस प्रकार लहरो के अपक्षरण की क्रिया निरन्तर चला करती है।

तरगो के अपक्षरण के कुछ प्रमुख प्रभाव निम्नाकित है —

(१) तट रेखाओ का सीधा होना
(२) तट पर नितल का समतलन
(३) स्थल का क्षेत्रफल घटना
(४) तटीय प्रक्षेपो का पीछे की ओर कटना
(५) तट पर अनेक विशिष्ट रूपो का निर्माण जैसे महासागरीय फलकियाँ (Marine Benches) सागर-उच्छृग (Sea Cliff) आदि

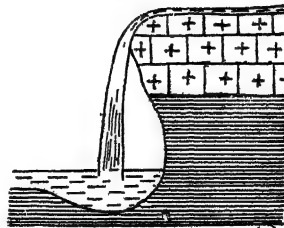
## (२) निक्षेपण का कार्य

तरगे और धारायें तरग द्वारा अपक्षरित पदार्थ को तथा नदियो द्वारा निक्षेपित अवसाद को बहा ले जाती है, किन्तु अन्त मे कही न कही उसे एकत्र अवश्य करती है। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, इनकी प्रधान प्रवृत्ति 'समतलन' करने की होती है अर्थात् ये पदार्थ नितल के निचले भागो मे एकत्र होते है। तरग का कार्य-क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, उसका विस्तार अधिक गहराई मे नही है, अतएव समस्त अवसाद, जो अधिकतर स्थल-जन्य होता है, तट के निकट ही रहता है। ज्यो-ज्यो तट से दूरी बढती जाती है, त्यो-त्यो अवसाद के कणो का आकार भी घटता जाता है। अन्य शब्दो मे अवसाद का मोटा भाग गहराई की ओर रहता है। यह कथन निक्षेप के निम्नाकित क्रम से स्पष्ट हो जायगा—

बडे बडे गण्डाश्म ( Large boulders )
अष्टीला (Pebbles)
ककर (Grave)
बालू (Sand)
पक (Mud)
चूना (Lime)

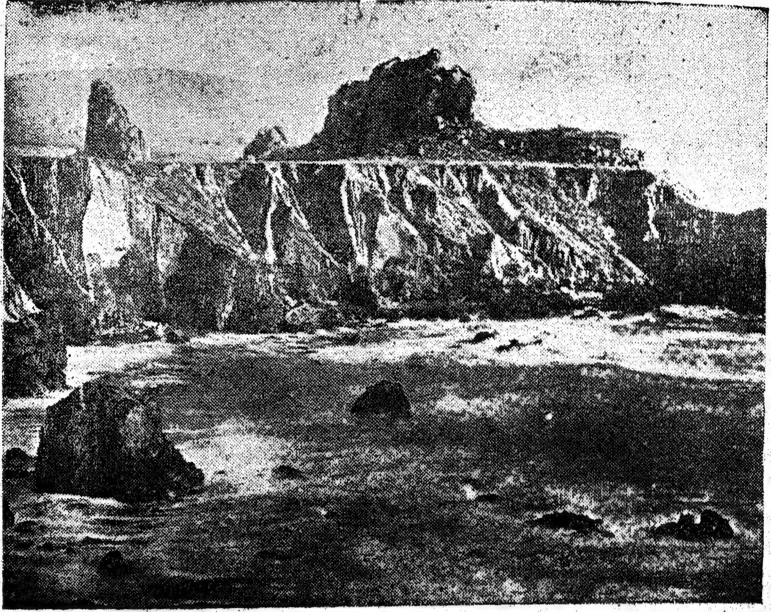
## ७. लहरों की क्रिया से बने रूपधेय अथवा तटीय भूदृश्य

(१) सागरीय उच्छृग ( Sea Cliff )—समुद्रतट पर स्थित ऊँचे, प्रपाती तथा समुद्राभिमुख शैल पार्श्व को सागरीय-उच्छृग कहते है। कभी कभी इनका ऊपरी भाग समुद्र की दिशा मे आगे की ओर प्रक्षिवित करता है।



चित्र—१९३—सागरीय उच्छृग

(२) महासागरीय फलकियाँ (Benches) Benches)—कभी कभी लहरो द्वारा सम्पन्न अपक्षरण मात्र से और कभी कभी लहरो के अपक्षरण तथा बाद मे हुए निक्षेपण से फलकियो (Benches) जैसी आकृतियाँ बन जाती है, जिन्हे हम महा-सागरीय फलकियाँ कहते है।



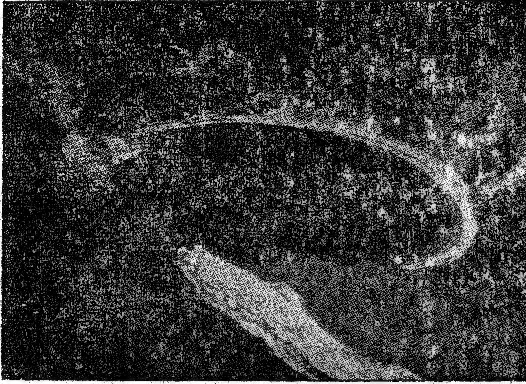
चित्र १९४—महासागरीय फलकियाँ (Marine benches)

(३) खाड़ियाँ तथा प्राग्र (Bays and promontories)—यदि किसी समुद्र तट पर तटरेखा के प्रति समकोण बनाती हुई दिशा में कठोर और मृदुल शिलायें एकान्तर पर हों, तो महासागरीय अपक्षरण से मृदुल शिलायें घिसकर खाड़ियों का रूप ग्रहण कर लेती हैं और कठोर शिलायें प्राग्र (Promontories or Headlands) के रूप में बाहर की ओर निकली रहती हैं।



चित्र १९५—खाड़ियाँ तथा प्राग्र

(४) कोव (Coues)—यदि किसी समुद्रतट पर तट-रेखा के समानान्तर कठोर और मृदुल शिलायें पाई जाती हैं, तो सागर-जल कठोर शिलाओं के निर्बल भागों में प्रविष्ट हो जाता है और अन्दर की कोमल शिला को स्वभावतः अधिक मात्रा में काटता है, जिससे दीर्घ वृत्ताकार निम्नन अस्तित्व में आ जाते हैं। न्हीं दीर्घवृत्ताकार निम्ननों को कोव (Cove) की संज्ञा दी गई है। दक्षिणी



चित्र १९६—कोव

इँगलैण्ड में कोव बहुत पाये जाते हैं।

(५) समुद्रतटीय कन्दरायें ( Sea Caves )—समुद्र की लहरें तटीय शिलाओं के निर्बल भागों और विवरों को सबसे पहले प्रभावित करती हैं। जब लहर उठती है, तब विवर का मुख बन्द हो जाता है, जिससे उसके अन्दर की वायु संकुचित होती है। जब लहर गिरती है, तब यह वायु प्रस्तरित होती है। इस प्रकार वायु के एकान्तर पर सिकुड़ने और फैलने से विवर का आकार बढ़ता जाता है और कालान्तर में वह कन्दरा अथवा गुफा का रूप ग्रहण कर लेता है।



चित्र १९७—समुद्रतटीय कन्दरा

(६) तरंग घर्षित उत्तल (Wave cut Terrace)—सागरीय उच्छृंग (Sea-cliff) के नीचे लहरों के थपेड़ों तथा अधःकर्ष की (To and fro) गति के फलस्वरूप जो शैलनिधाय अस्तित्व में आ जाता है, उसे तरंग घर्षित उत्तल कहते हैं।

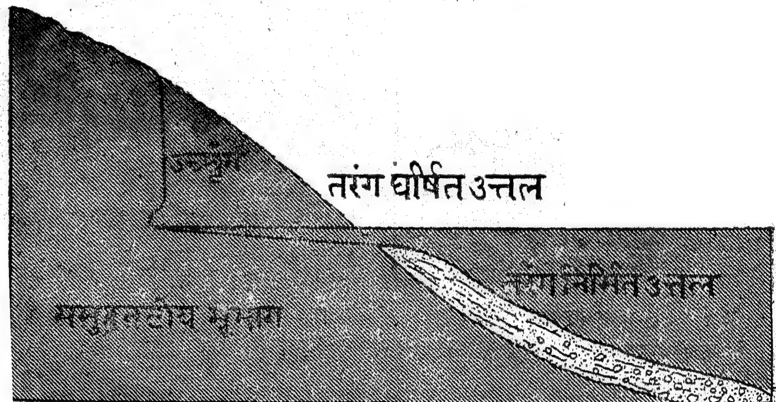
(७) तरंग निर्मित उत्तल ( Wave Built Terrace )—तरंग घर्षित उत्तल के नीचे स्थित अपेक्षाकृत प्रपाती प्रवण में लहरों द्वारा सम्पन्न निक्षेपण से जो उत्तल बन जाते हैं, उन्हें हम तरंग निर्मित उत्तल कहते हैं।

(८) फाड़े हुए छेद ( Blow Holes )—कभी कभी लहरों की क्रिया से समुद्र-तटीय कन्दराओं की छतों में छेद हो जाते हैं, जिन्हें हम फाड़े हुए छेद (Blow Holes) कहते हैं। लहरों द्वारा ढकेली गई हवा जब इन छेदों में से होती हुई ऊपर उठती है तब सीटी बजने की ध्वनि होती है।



चित्र १९८—फाढ़ा हुआ छेद

(९) बीच (Beech)—सागरीय उच्छृंग ( Sea Cliff ) के अपक्षरण से जो पदार्थ प्राप्त होता है, वह तरंग घर्षित उत्तल में एकत्र हो जाता है। इसे ही हम 'बीच' (Beech) कहते हैं यह उच्च तथा निम्न जल चिन्हों के मध्य में स्थित होता है।

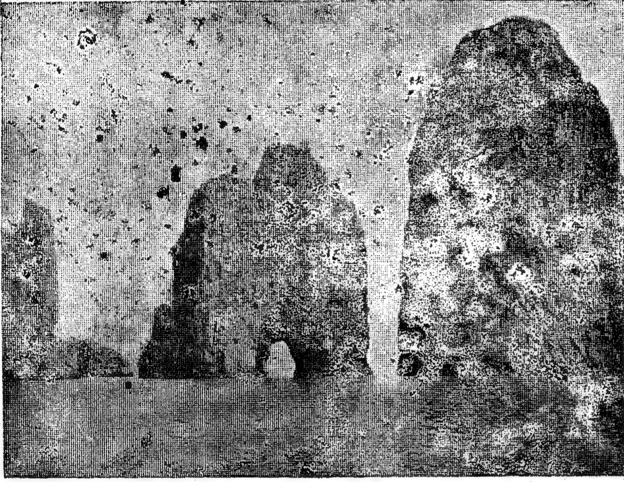



चित्र १९९—तरंग घर्षित उत्तल, तरंग निर्मित उत्तल तथा बीच

(१०) समुद्रतटीय स्तम्भ (Stack)—जब समुद्रतटीय मेहराब की छत ऋतु-क्षरण एवं लहरों की क्रिया द्वारा नष्ट हो जाती हैं, तब जो अवशिष्ट स्तम्भ खड़े रह जाते हैं, उन्हें समुद्रतटीय स्तंभ कहते हैं।

(११) समुद्रतटीय स्तंभ मूल ( Stump)—समुद्रतटीय स्तम्भ के अपक्षरित हो जाने पर उसका अपेक्षाकृत अवरोधी मूल शेष रह जाता है। इसे ही स्तम्भमूल Stump कहते हैं। प्रकाशगृह (Light Houses) प्रायः इन्हीं पर स्थापित किये जाते हैं।

[ पृष्ठ २१८ के सामने

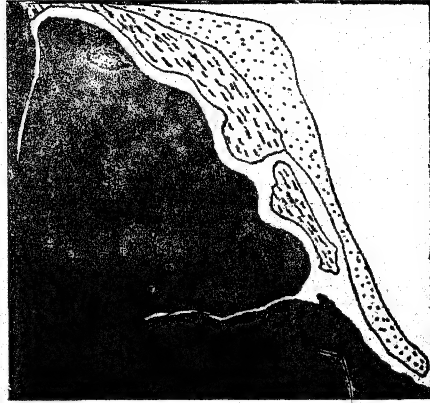


चित्र २००--समुद्रतटीय स्तम्भ-मूल, मेहराब तथा स्तंभ



चित्र २०६--टोम्बोलो

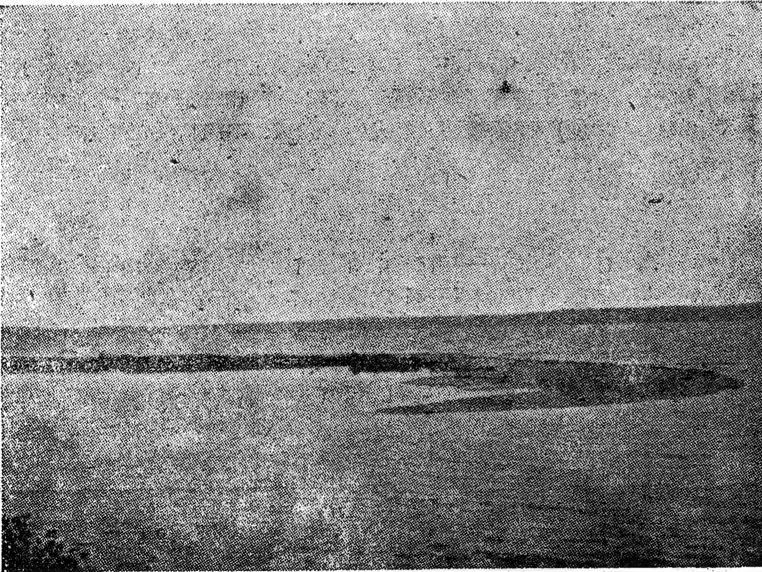
(१२) सिकता द्रण्ड ( Sand bar )—नदियों द्वारा समुद्र को समर्पित किये गये अवसाद से कभी कभी उनके मुहाने पर समुद्र में रेत के टीले बन जाते हैं। इन्हें ही हम सिकता दण्ड कहते हैं।



चित्र २०१—सिकता दण्ड

(१३) अंकुश (Hook)—ऐसे सिकता-दण्ड को जिसका एक सिरा मुड़ा हुआ हो, अंकुश (Hook) कहते हैं।

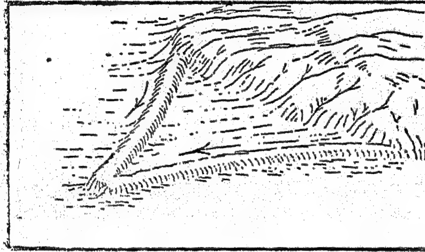
(१४) पाश (Loop)—जब किसी अंकुश का मोड़ क्रमशः विकसित होते होते स्थल से मिल जाये, तब उसे हम पाश (Loop) कहते हैं। (चित्र २०३)



चित्र २०२—अंकुश

(१५) टोम्बोलो (Tombolo)—ऐसे सिकता-दण्ड को जो एक द्वीप को दूसरे द्वीप से अथवा किसी द्वीप को मुख्य स्थलखण्ड से मिलाता हो, हम टोम्बाला कहते हैं।

(१६) उपह्रद (Lagoon)—कभी कभी सिकता-दण्डों से खाड़ी का मुख



२०३—पाश




चित्र २०४—उपह्रद

बिल्कुल बन्द हो जाता है और वह समावृत्त जलाशय में परिणत हो जाती है, जिसे हम उपह्रद (Lagoon) कहते हैं। पूर्वी जर्मनी में सिकता-दण्डों की ऐसी लम्बी तथा संकरी पट्टियों को जिनसे समुद्रतट पर अनेक उपह्रद बन गए हैं हाफ (Haff) कहते हैं। इसी आधार पर इस प्रकार की तटरेखा को हाफ तट रेखा (Haff Coast line) कहते हैं। चित्र २०४ में पुर्वी जर्मनी का हाफ तट प्रदर्शित किया गया है।

(१७) जिह्वा (Spit)—सागर में प्रक्षिप्त संकरी, निचली और जिह्वा सदृश बालुका निर्मित भूरूप को जिह्वा (Spit) कहते हैं। सिकता दण्ड और जिह्वा में मुख्य अन्तर यह है कि जिह्वा का एक सिरा स्थल से जुड़ा रहता है, सिकतादण्ड का नहीं।




चित्र २०५— जिह्वा

# इकतीसवाँ परिच्छेद

# धारायें

## १ परिभाषा

महासागर के एक भाग से दूसरे भाग को जाने वाले जल के प्रवाह को 'धारा' कहते है। धारा का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है कि सागर पृष्ठ का कुछ जल एक चौडी नदी के रूप मे आगे बढता है। यह जल काफी प्रबल वेग से प्रवाहित होता है। उदाहरणस्वरूप गल्फ-स्ट्रीम नामक धारा का वेग आरम्भ में प्रति घण्टे तीन मील से पॉच मील तक है। हमारी गगा भी प्राय इसी वेग से बहती है। तरगो और धाराओ मे यही मुख्य अन्तर है कि तरग मे पानी केवल ऊपर उठता और नीचे गिरता है किन्तु धारा मे पानी आगे बढता है।

## २ धाराओं की प्रकृति

विषुवत् रेखा से उत्तर-दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली धारायें उष्ण है। इसके विपरीत ध्रुवो से विषुवत रेखा की ओर प्रवाहित होने वाली धारायें शीतल है।

## ६ धाराओं की उत्पत्ति का कारण

धाराओ की उत्पत्ति के तीन मुख्य कारण है —

(१) तापक्रम की विभिन्नता
(२) लवणता की विभिन्नता
(३) वायु का प्रभाव

### (१) तापक्रम की विभिन्नता

विषुवत रेखा के निकट का जल सूर्य की सीधी एव प्रखर किरणो द्वारा सदैव तपता रहता है जिससे वह अन्य भागो के जल की अपेक्षा सदैव अधिक उष्ण रहता है। उष्ण होने के फलस्वरूप वह प्रस्तरित है और उत्तर-दक्षिण की ओर प्रवाहित होता है

### (२) लवणता की विभिन्नता

लवणता जितनी अधिक होगी जल का उतना ही अधिक घनत्व होगा और उतना ही अधिक वह भारी भी होगा। हल्का अलवण जल सागरपृष्ठ पर तैरता रहता है जबकि अधिक घनत्व का लवण जल नीचे रहता है। जब भिन्न लवणता के दो सागर एक दूसरे से सम्बन्धित होते है, तब जल प्रवाह सदैव कम लवणता वाले सागर से अधिक लवणता वाले सागर की ओर होता है। भूमध्यसागर की लवणता अन्धमहासागर की अपेक्षा अधिक है अतएव पृष्ठजल सदैव अन्धहासागर से भूमध्य सागर की दिशा में प्रवाहित होता है।

### (३) वायु का प्रभाव

प्रबल प्रचलित वायु सागरजल के पृष्ठ के स्तर को अपने साथ आगे बहा ले जाती है और इस प्रकार धाराये अस्तित्व मे आ जाती है। इस विषय मे अब

मतभेद नही है कि वायु ही सागर मे धाराओ का मुख्य कारण है। ससार की प्रमुख धाराओ की उत्पत्ति का कारण व्यापारिक (Trade) और पछुवा (Westerlies) हवाये है। यदि वायु की दिशा मे ऋतु-सम्बन्धी अथवा अन्य किसी कारण कोई अन्तर होते है तो उसी प्रकार के परिवर्तन धाराओ मे हो जाते है। उदाहरणार्थ हिदमहासागर मे जाडो मे जब मानसून हवाये उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर चलती है, तब धाराये भी इसी दिशा मे बहने लगती है, गरमी मे मानसून के साथ ही धाराओ की दिशा भी विपरीत हो जाती है।

## ४ धाराओं की दिशाओ में परिवर्तन

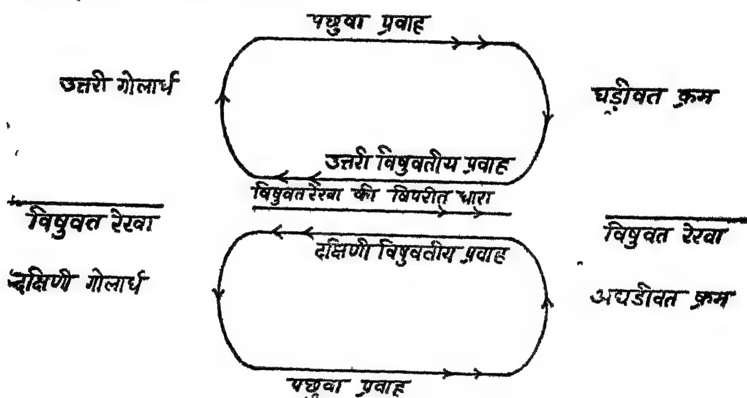
धाराओ की दिशाओ मे परिवर्तन मुख्यत दो कारणो से होते है —

(१) **महाद्वीपो की आकृति**—धाराओ की दिशा को प्रभावित करती है। धाराये सीधे न बहकर तट के अनुरूप बहती है।

(२) **फैरेल का सिद्धान्त**—फैरेल के सिद्धान्त के अनुसार वायु की भाति धाराये भी उत्तरी गोलार्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्ध में अपनी बायी ओर मुड जाती है।

## धाराओं का सामान्य क्रम

जैसा कि चित्र २०७ से स्पष्ट होगा, उत्तरी गोलार्ध मे धाराओ का क्रम घडीवत है और दक्षिणी गोलार्ध मे अघडीवत।




चित्र २०७—धाराओ की सामान्य दिशाये

## ६ महासागरो की प्रमुख धारायें

### (१) अन्ध महसागर की धाराये

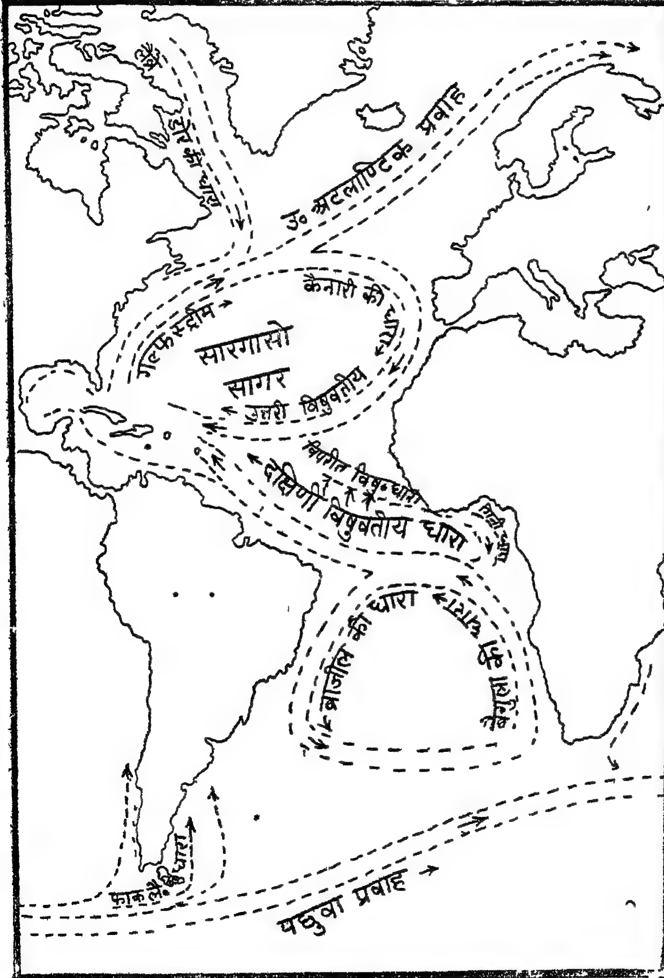
### (क) उत्तरी अधमहासागर

**उत्तरी विषुवतीय प्रवाह** (North Equatorial Current) इस प्रवाह का मुख्य कारण उत्तरी पूर्वी व्यापारिक वायु है। यह प्रवाह प्राय विषुवत रेखा के समानान्तर ही पश्चिम की ओर बहता है। कैरिबियन सागर में पश्चिमी द्वीप-समूह

इस प्रवाह को दो भागो मे बाँट देता है—(१) एक धारा उत्तर की ओर बहती है। यह उत्तरी अमरीका के पूर्वी तट के अनुरूप प्रवाहित होती है। आगे चलकर इसे ही 'गल्फस्ट्रीम' की सज्ञा दी गई है। (२) दूसरी धारा दक्षिण की ओर प्रवाहित होकर मैक्सिको की खाडी मे पहुँचती है।

### गल्फ स्ट्रीम, उत्तरी अटलाटिक का प्रवाह तथा कनारीज प्रवाह

**गल्फ स्ट्रीम** फ्लोरिडा और क्यूबा द्वीपो के मध्य मे स्थित सकीर्ण जलडमरू-मध्य से होकर उत्तरी अमरीका के पूर्वी किनारे पर उत्तर की ओर बहती है। केप




चित्र २०८—अन्धमहासागर की धारायें

हट्टेरास के निकट यह धारा पछुवा हवाओ के प्रभाव से आ जाती है, जो इसे उत्तर-पूर्व की ओर बहा ले जाती है। आगे चलकर यह दो भागो मे विभाजित हो जाती है—(१) एक धारा नॉरवे की ओर बहती है, जिसे हम **उत्तरी अटलांटिक का प्रवाह** कहते हैं, (२) दूसरी धारा जो **कनारीज प्रवाह** के नाम से विख्यात है, दक्षिण की ओर मुडकर स्पेन, पुर्तगाल तथा उत्तरी अफ्रीका के तटानुसार बहती है। यह ठडी धारा है। व्यापारिक वायु के प्रभाव मे आकर यह प्रवाह पुन उत्तरी विषुवत-रेखा के प्रवाह में विलीन हो जाता है।

इस प्रकार उत्तरी अन्धमहासागर मे धाराओ का एक वृहद चक्र निर्मित होता है। इस चक्र की धाराओ की दिशा घडीवत (Clock-wise) है। इसके मध्य का जल स्थिर रहता है जिससे उसमे बहुत सी घास-फूस, सेवार आदि एकत्र हो जाती है। महासागर के इस भाग को 'सारगासो सागर' (Sargasso Sea) कहते है। यह नाम स्पेनवालो ने रखा था, क्योकि सर्वप्रथम जब उन्होने इसको देखा तो उनको अपने देश के कुओ मे पैदा होने वाली एक घास की याद आई, जिसे वे 'सारगासो' कहते है।

## लेब्रेडोर की धारा

उत्तरी ध्रुवसागर के शीतल जल की एक धारा ग्रीनलैण्ड द्वीप के पश्चिमी तटानुसार दक्षिण की ओर बह आती है। इसको लेब्रेडोर की धारा कहते हैं। इसकी उत्पत्ति का प्रमुख कारण लवणता की विभिन्नता है। अतुलित हिम के पिघलने के कारण उत्तरी ध्रुवसागर दक्षिण के अन्धमहासागर की अपेक्षा कम लवणमय है—अतएव यह धारा उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। न्यूफाउण्डलैंड के निकट यह धारा गल्फ-स्ट्रीम से मिलती है। इन दोनो धाराओ के मिलने से घना कुहरा उत्पन्न होता है। लेब्रेडोर धारा के साथ अनेक हिम-शिलाये ( Icebergs ) बह आती है। कुहरे के कारण वे दिखाई नही देती। इनसे जहाजो को बडी जोखिम रहती है। सन् १९१२ ई० मे प्रसिद्ध ब्रिटिश जहाज टाइटैनिक ऐसी ही एक हिमशिला से टकराकर नष्ट हो गया।

## (ख) दक्षिणी अन्ध महासागर

### ८० विषुवतीय प्रवाह, ब्राजील की धारा तथा बेंगुला की धारा

**दक्षिणी विषुवतीय प्रवाह**—दक्षिण-पश्चिमी व्यापारिक वायु ही इसकी उत्पत्ति का मुख्य कारण है। पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण यह प्रवाह पश्चिम की ओर प्राय विषुवत रेखा के समानान्तर ही बहता है। द० अमरीका के उ० पूर्वी तटपर स्थित केप सैण्ट रोक के निकट यह दो भागो मे बँट जाता है—(१) एक धारा उत्तर की ओर बहती हुई मैक्सिको की खाडी में प्रवेश करती है और आगे चलकर गल्फस्ट्रीम मे विलीन हो जाती है (२) दूसरी धारा द० अमरीका के पूर्वी तट के अनुरूप दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। इसे ब्राजील की धारा कहते हैं। आगे चलकर यह धारा पछुवा हवाओ के प्रवाह मे विलीन हो जाती है और पूर्व दिशा मे बहने लगती है। इसका एक भाग, जिसे हम बेंगुला की धारा कहते हैं, उत्तर की ओर मुड़ जाता है और अफ्रीका के तटानुरूप बहता हुआ दक्षिणी विषुवत रेखा के प्रवाह में विलीन हो जाता है।

**फॉकलैण्ड प्रवाह**—यह उत्तरी अन्धमहासागर के लैब्रेडोर-प्रवाह के समान है। यह प्रवाह द० अमरीका के दक्षिणी भाग के पूर्वी किनारे पर दक्षिण से उत्तर की ओर बहता है।

**अण्टार्कटिक प्रवाह**—यह प्रवाह और भी दक्षिण मे पूर्व की ओर प्रवाहित होता है। स्थलखण्डो के अभाव के कारण यह अत्यन्त प्रबल वेग से बहता है। इसे पछुवा हवा का प्रवाह भी कहते है।

### (ग) मध्य अन्ध महासागर

**विषुवत रेखा की विपरीत धारा** ( Counter Equatorial Current ) जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, व्यापारिक हवाओ के कटिबन्ध मे सागर पृष्ठजल उत्तरी और दक्षिणी विषुवत रेखा की धाराओ के रूप मे पश्चिम की ओर बहता है। मध्य अमरीका के पूर्वी तट पर यह जल एकत्र होता रहता है और धीरे धीरे वहाँ के जल का समतल पूर्वी अन्धमहासागर की अपेक्षा ऊपर उठ जाता है। क्योकि जल सदैव ऊँचे समतल से नीचे समतल की ओर प्रवाहित होता है, अतएव यह सचित जलराशि पुन पूर्व की ओर विषुवत रेखा की विपरीत धारा के नाम से बहने लगती है।

## प्रशान्त महासागर की धारायें

### (क) उत्तरी प्रशान्त

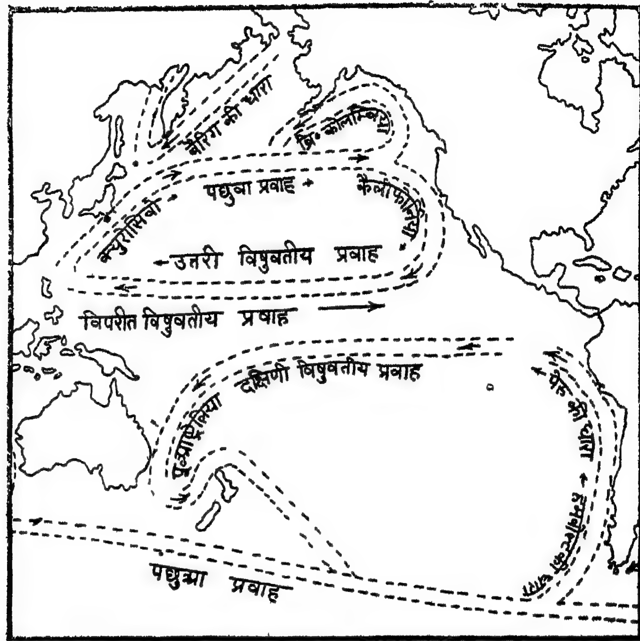
**उत्तरी विषुवतीय प्रवाह**—उ० पू० व्यापारिक वायु इसकी जन्म-दाता है। यह प्रवाह प्राय विषुवत रेखा के समानान्तर ही उसके कुछ उत्तर मे पश्चिम की ओर बहता है।

**क्यूरोसिवो**—यह उष्णधारा अन्ध महासागर की गल्फ स्ट्रीम के सामान है। जापान के दक्षिण मे यह धारा दो भागो मे विभाजित हो जाती है—(१) पश्चिमी शाखा जापान-सागर मे बहती हुई उत्तर की शीतल कमचटका की धारा मे विलीन हो जाती है और (२) पूर्वी शाखा पछुआ हवाओ के कारण उ० पू० की ओर बहने लगती है और उत्तरी प्रशान्त जलधारा के नाम से ब्रिटिश कोलम्बिया के पश्चिमी तट तक पहुँचती है।

**कमचटका को धारा**—यह धारा अन्धमहासागर की लैब्रेडोर धारा के समान है। साईबेरिया के पूर्वी तट पर यह धारा बेरिग स्ट्रेट मे होती हुई दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। इसे बैरिग की धारा भी कहते है।

**उत्तरी प्रशान्त प्रवाह**—यह उ० अटलाण्टिक प्रवाह के समान ही है। इसे पछुवा प्रवाह भी कहते है। ब्रिटिश कोलम्बिया के पश्चिमी तट पर यह दो भागो मे विभाजित हो जाता है—एक धारा उत्तर की ओर बहती है जिसे ब्रिटिश कोलम्बिया प्रवाह कहते है और दूसरी धारा कैलिफोर्निया की धारा के नाम से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है।

**कैलिफोर्निया की धारा**—यह शीतल धारा कैलिफोर्निया और मैक्सिको के पश्चिमी तट पर उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। कुछ और दक्षिण जाकर यह उत्तरी विषुवत रेखा के प्रवाह मे विलीन हो जाती है।




चित्र २०९—प्रशात महासागर की धारायें

इस प्रकार उ० प्रशान्त मे भी उ० अन्ध-महासागर की भाँति धाराओं का घडीवत् चक्र बन जाता है।

## (ख) दक्षिणी प्रशात

**अण्टार्कटिक प्रवाह**—यह प्रवाह अत्यन्त दक्षिण मे पूर्व की ओर बहता है। इस प्रवाह का कारण पछुवा हवाये है।

**हमबोल्ट अथवा पेरू प्रवाह**—द० अमरीका के द० कोने पर अण्टार्कटिक प्रवाह का कुछ अश उ० की ओर घूम जाता है और हमबोल्ट अथवा पेरू के शीतल जल-प्रवाह के नाम से द० अमरीका के पश्चिमी तट पर बहता है। मकर-रेखा को पार कर यह दक्षिणी विषुवतीय प्रवाह मे विलीन हो जाता है।

**द० विषुवतीय प्रवाह**—यह धारा विषुवत रेखा के निकट दक्षिण में पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। आस्ट्रेलिया के उ० पू० मे यह धारा दो भागो मे विभाजित हो जाती है—(१) एक भाग पश्चिम की ओर बहता हुआ पूर्वी द्वीप समूह को पार करता है और उत्तरी विषुवत रेखा की धारा मे विलीन हो जाता है; (२) दूसरा भाग पूर्वी आस्ट्रेलिया की उष्ण जल-धारा के नाम से दक्षिण दिशा में मुड जाता है। द्वीपो की बहुलता के कारण दक्षिणी विषुवतीय धारा कई भागो में बँट जाती है।

**पूर्वी आस्ट्रेलिया की धारा**—यह धारा आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर दक्षिण की ओर बहती है और अन्त में अण्टार्कटिक प्रवाह मे विलीन हो जाती है। यह उष्ण प्रवाह है।

### (ग) मध्य प्रशान्त

**विषुवत रेखा की विपरीत धारा**—अटलाटिक महासागर की भाति प्रशात महासागर मे भी यह धारा विद्यमान है

## हिन्द महासागर की धाराये

### (क) दक्षिणी हिन्द महासागर

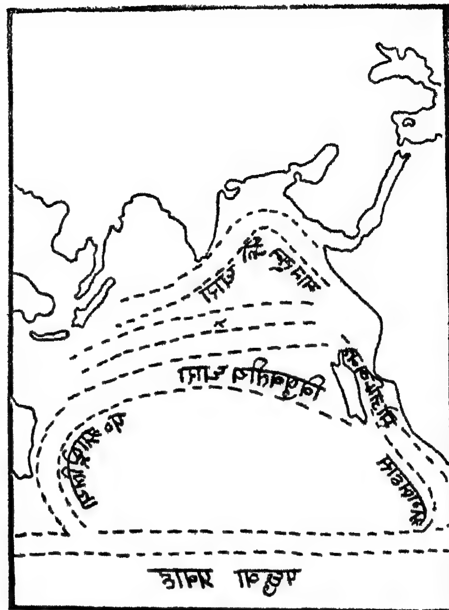
दक्षिणी हिन्द-महासागर की धाराओ का क्रम द० अटलाटिक और द० प्रशात महासागर की धाराओ जैसा ही है। आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पश्चिम मे अटार्कटिक जलधारा की एक शाखा उत्तर की ओर घूम कर **पश्चिमी आस्ट्रेलिया की शीतल जल धारा** के नाम से आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट पर उत्तर की ओर प्रवाहित होती है। मकर रेखा को पार कर यह धारा दक्षिणी विषुवतीय प्रवाह मे विलीन हो जाती है।

**दक्षिणी विषुवतीय प्रवाह**—पश्चिम की ओर बहती है और मैडागास्कर के निकट दक्षिण की ओर घूम जाती है और **मोजम्बिक की उष्ण जल धारा** कहलाती है।

आगे चलकर इसे **अगुलहास की धारा** कहते है। आगे चलकर यह पछुवा हवाओ के प्रभाव मे आकर पूर्व की ओर बहती है और अन्त मे अण्टार्कटिक जलधारा मे मिलकर चक्र पूरा करती है।




चित्र २१०हिन्द महासामर की धाराये (जुलाई)



चित्र २११—हिन्द महासागर की धाराये (जनवरी)

## (ख) उत्तरी हिन्द महासागर

उत्तरी हिन्द महासागर की धाराओ का क्रम मौसिमी हवाओ की दिशा के अनुसार निश्चित होता है। ग्रीष्म ॠतु मे द० प० मानसून के प्रभाव के कारण इनकी दिशा अरब के पूर्वी तट पर दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व रहती है और शीत काल में उ० पू० मानसून के कारण ये धाराये विपरीत दिशा मे प्रवाहित होने लगती है।

## ७ जल-धाराओं का प्रभाव

इनमे कुछ प्रमुख ये है —

(१) उष्ण जलधाराये अपने प्रभाव के क्षेत्रो का तापक्रम ऊँचा करने में समर्थ होती है। इसके विपरीत शीतल जलधार अपने निकटस्थ प्रदेशों का तापक्रम घटाती है। गल्फस्ट्रीम के कारण उ० प० योरप का तापक्रम उन्ही अक्षाशो पर स्थित अन्य स्थल-खण्डो की अपेक्षा अधिक रहता है। दूसरी ओर पूर्वी कनाडा का तापक्रम लेब्रेडोर धारा के कारण बहुत घट जाता है। इतना ही नही, गल्फस्ट्रीम के कारण प० योरपीय तट जाडो मे भी नही जमता, जब कि लेब्रेडोर की धारा कनाडा के पूर्वी तट के जम जाने मे और भी सहायक होती है।

(२) उष्ण जलधारा के ऊपर बहने वाली वायु शीतल जल धारा के ऊपर बहने वाली वायु की अपेक्षा अधिक शुष्क होती है अतएव उसमें अधिक आर्द्रता ग्रहण करने की क्षमता रहती है। यही कारण है कि उष्ण धाराओं के ऊपर से बहने वाली वायु अतिशय वाष्पमय होती है। गल्फस्ट्रीम के कारण ही प० योरप में वर्षा अधिक होती है। द० प० अफ्रीका मे कलाहारी मरुभूमि का अस्तित्व आशिक रूप से शीतल बैंगुल की धारा के कारण है।

(३) ऐसे स्थानो पर जहाँ शीतल एव उष्ण जलधाराये मिलती है, घना कुहरा उत्पन्न होता है, जो जहाजो के लिये बहुत खतरनाक है। टाइटेनिक नामक ब्रिटिश जहाज इसी कुहरे ही के कारण नष्ट हो गया, क्योकि कुहरा छाया होने के कारण उत्तर से बहकर आने वाली हिमशिलाये (Icebergs) दृष्टिगोचर न हो सकी और उनसे टकरा कर यह महान जलयान चूर-चूर हो गया।

(४) उष्ण जल धाराओ के कारण उत्तरी अक्षाशो मे स्थित बन्दरगाह शीतकाल मे भी नही जमते जिससे उनमे वर्ष भर सतत रूप से व्यापार होता रहता है। गल्फस्ट्रीम के कारण ही नाँरवे का नार्थ केप (७१° उ०) नामक बन्दरगाह वर्ष भर खुला रहता है।

(५) धाराओ के प्रवाह की दिशा जलयानो के चलने मे सहायक होती है। आधुनिक वाष्पयुग के पूर्व जलयान अनुकूल धाराओ के अनुसार ही चला करते थे। आजकल भी अमरीका से योरप जानेवाले अधिकाश जहाज गल्फ-स्ट्रीम के अनुरूप चलते है।

(६) शीतल धाराये अपने प्रवाह के साथ मछलियो के झुण्ड के झुण्ड ले आती है, जिससे मात्सिकी (Fisheries) को प्रोत्साहन मिलता है। उ० जापान और न्यूफाउण्डलैण्ड मात्सिकी की दृष्टि से यदि आज इतने अधिक महत्वपूर्ण है, तो इसका समस्त श्रेय वहाँ पर उत्तर से प्रवाहित होने वाली शीतल जलधाराओ को है।

(७) धाराये सागर-जल को स्थिर नही होने देती। इस प्रकार वे स्थिर जल के अस्वास्थ्यप्रद परिणामो और हानियो को रोकती है।

(८) कभी कभी शीतल जल धाराओ के साथ बडी बडी हिम-शिलायें बह आती है, जिनसे जहाजो को बडी हानि पहुँचती है। इस सम्बन्ध मे टाइटैनिक का उदाहरण दिया ही जा चुका है।

(९) जल धाराओ पर सागर के जीवजन्तुओ का जीवन निर्भर है। उष्ण धाराये प्रवाल के विकास के लिये अत्यन्त अनुकूल है। जलधाराओ द्वारा ही सागर के प्राणियो को ऑक्सीजन और भोजन की उपलब्धि होती है।

(१०) उ०-प० योरप में मानव वसति (Settlement) अत्यन्त घनी है, जब कि इन्ही अक्षाशो पर स्थित पूर्वी साइबेरिया प्राय अनिवसित है इसका कारण भी धाराये है।

उपर्युक्त पक्तियो से स्पष्ट है कि जल धाराओ द्वारा जलवायु, व्यापार मात्सिकी, बन्दरगाहो का विकास, सागरीय प्राणियो का जीवन, मानव-वसति आदि सभी कुछ प्रभावित और निर्धारित होता है।

## (८) प्रवाह (Drift) धारा (Current) और स्रोत (Stream) का अन्तर

इनमे कोई मौलिक भेद नही है, केवल सीमा की निश्चितता तथा जल के वेग का अन्तर है। प्रवाह से तात्पर्य है, जल के ऊपरी स्तरों की गति, जिनकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित नही की जा सकती जैसे उत्तरी अटलाण्टिक का प्रवाह। इसकी अपेक्षा धारा मे जल का वेग अधिक होता है और उसकी सीमाये भी अधिक निश्चित होती है जैसे लैब्रेडोर की धारा। श्रोत अथवा स्ट्रीम और भी अधिक निश्चित होती है। उदाहरण के लिये गल्फ-स्ट्रीम के अधिकाश भाग के लिए निश्चित सीमाये निर्धारित की जा सकती है, जिससे उसे महासागर मे उष्ण जल का श्रोत कहना सार्थक ही है। इसकी पश्चिमी सीमा सबसे अधिक निश्चित है जहाँ यह लैब्रेडोर की धारा का स्पर्श करती है। इसके प्रवाह का वेग प्रतिदिन १०-१५ मील से अधिक नही होता। दूसरी ओर धारा अथवा स्ट्राम की गति प्रति घण्टे ४—५ मील होती है। मुख्यत वायु से उत्पन्न होने के कारण प्रवाह सामान्यतः विस्तृत भी अधिक होता है—किन्तु धारा और श्रोत अपेक्षाकृत सकुचित, निश्चित सीमा मे बद्ध और अधिक वेगवान होते हैं।

# बत्तीसवाँ परिच्छेद

# ज्वार-भाटा

## १ परिभाषा

समुद्रतट के निवासी जानते है, कि सागर-जल चौबीस घंटे मे दो बार धीरे-धीरे स्थल की ओर अग्रसर होता है और फिर पीछे हटकर अपनी पूर्व दशा पर आ जाता है। सागर-जल के इस चढाव-उतार को ज्वार भाटा कहते हैं—जल के आगे बढने को ज्वार कहते है और पीछे हटने को भाटा।

## २ ज्वार-भाटा का कारण

ज्वारभाटा का कारण सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति है। सूर्य तथा चन्द्रमा दोनो ही पृथ्वी को अपनी ओर खीचते हैं यद्यपि सूर्य चन्द्रमा की अपेक्षा आकार मे बहुत बडा है, तथापि वह दूर भी बहुत है। सूर्य पृथ्वी से चन्द्रमा की अपेक्षा ९,२७,५०,००० मील अधिक दूर है, अतएव पृथ्वी पर चन्द्रमा के आकर्षण का प्रभाव सूर्य की अपेक्षा कही अधिक होता है। पृथ्वी के प्रति चन्द्रमा और सूर्य के आकर्षण का अनुपात ११ ५¼ है।[1] चन्द्रमा पृथ्वी को अपनी ओर आकृष्ट करता है, किन्तु

---

१ आकर्षण शक्ति न्यूटन के नियम से निर्धारित होती है। न्यूटन का नियम यह है कि यदि ऐसे दो पिण्ड हों, जिनकी मात्रा क्रमश $M_1$ और $M_2$ हो तथा जिनकी पारस्परिक दूरी d हो तो उनकी पारस्परिक आकर्षण शक्ति $\frac{M_1 \times M_2}{d^2}$ के अनुपात मे होगी।

पृथ्वी से सूर्य की दूरी लगभग ९ करोड ३० लाख मील है। पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी लगभग २½ लाख मील है। सूर्य की मात्रा चन्द्रमा की मात्रा की तुलना मे लगभग ६६,०४७ गुना है।

अतएव—

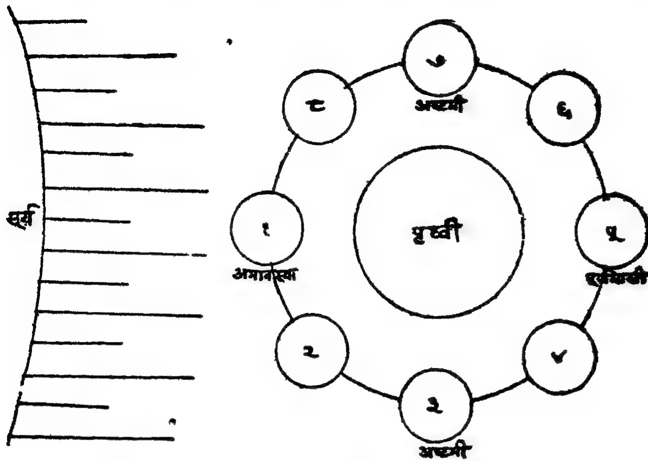
$$\frac{\text{पृथ्वी के प्रति चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति}}{\text{पृथ्वी के प्रति सूर्य की आकर्षण शक्ति}} = \frac{\dfrac{\text{पृथ्वी की मात्रा} \times \text{चन्द्रमा की मात्रा}}{(\text{पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी})}}{\dfrac{\text{पृथ्वी की मात्रा} \times \text{सूर्य की मात्रा}}{(\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी})}}$$

$$= \frac{\text{पृथ्वी की मात्रा} \times \text{चन्द्रमा की मात्रा}}{(\text{पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी})^2} \times \frac{(\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी})^2}{\text{पृथ्वी की मात्रा} \times \text{सूर्य की मात्रा}}$$

$$= \frac{\text{चन्द्रमा की मात्रा}}{\text{सूर्य की मात्रा}} \times \left(\frac{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}}{\text{पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी}}\right)^2$$

[ शेष गणना अगले पृष्ठ के नीचे ]

जल, जो द्रव पदार्थ है, शीघ्रता से खिंच जाता है और महासागर के उस भाग का जल




चित्र २१२—चन्द्रमा की विभिन्न स्थितियाँ

जो चन्द्रमा के ठीक सामने पडता है, ऊपर की ओर उठ आता है। यह ज्वार आस-पास के पानी के सिमटने से ही बनता है। जिस समय किसी स्थान पर ज्वार होता है,

---

$$= \frac{१}{६६,०४७} \times \left(\frac{९,३०,००,०००}{२,५०,०००}\right)^{२}$$

$$= \frac{१}{६६,०४७} \times (३७२)^{२}$$

$$= \frac{१३८३८४}{६६०४७}$$

$$= \frac{१३८३८४ \div ३१४५}{६६०४७ \div ३१४५}$$

$$= \frac{४४}{२१} \text{(लगभग)}$$

$$= \frac{११ \times ४}{२१}$$

$$= \frac{११}{\frac{२१}{४}}$$

$$= \frac{११}{५\frac{१}{४}}$$

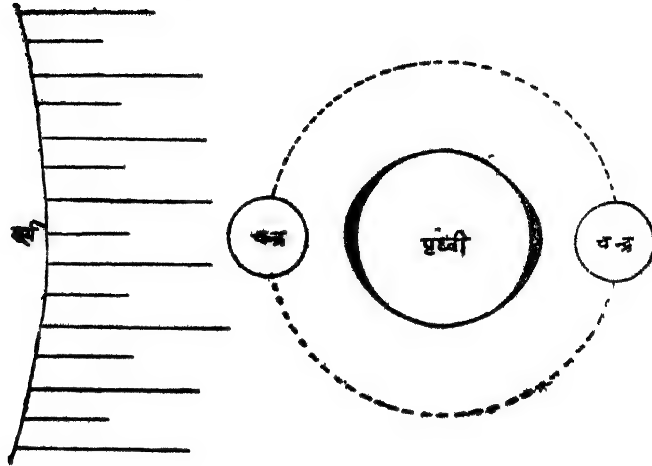
अन्य शब्दो मे—

पृथ्वी के प्रति चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति पृथ्वी के प्रति सूर्य की आकर्षण शक्ति $= ११ \quad ५\frac{१}{४}$

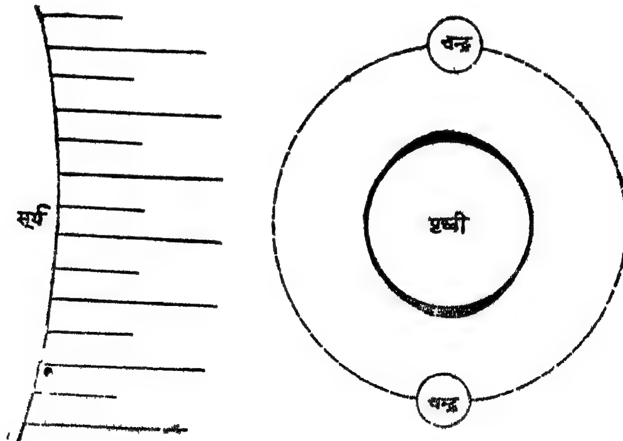
तो पृथ्वी पर ठीक उसके दूसरी ओर भी अर्थात् उस स्थान पर जो १८० के कोण पर स्थित होता है वैसा ही ज्वार उठता है, क्योकि चन्द्रमा स्थल को भी तो अपनी ओर खीचता है और ऐसा होने से दूसरी ओर जल एकत्र हो जाता है। इस प्रकार एक ही समय मे दो विपरीत स्थानो मे ज्वार उठा करता है। परन्तु जो स्थान इन स्थानो के प्रति समकोण बनाते है, वहाँ पानी नीचा होता है अर्थात् वहाँ भाटा रहता है।

ज्वार-भाटा विषयक सिद्धान्तो के अध्ययन के लिये कृपया ५९वाँ परिच्छेद देखिए।

महीने मे दो बार पूर्णमासी और अमावस्या के दिन सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी तीनो एक सीध मे आ जाते है। इन दो दिनो का ज्वार अन्य दिनो की अपेक्षा




चित्र २१३—दीर्घ ज्वार




चित्र २१४ —लघु ज्वार

अधिक होता है, क्योकि ऐसी दशा मे सूर्य और चन्द्रसा दोनो की सम्मिलित शक्तियाँ पृथ्वी के जल को आकर्षित करती है। इसे ही दीर्घ-ज्वार कहते है। कलकत्ते में हुगली का जल दीर्घ-ज्वार मे १५ फुट ऊँचा उठ आता है।

इसके विपरीत अष्टमी के दिन जब पृथ्वी के प्रति सूर्य और चन्द्रमा समकोण बनाते है, तब ज्वार अपेक्षाकृत हल्का होता है। इस दशा मे सूर्य की शक्ति चन्द्रमा की शक्ति के विरुद्ध कार्य करती है। इसे लघु-ज्वार ( Neap Tide ) कहते हैं। कलकत्ते मे हुगली का जल लघु-ज्वार मे छै फुट ऊँचा उठता है।

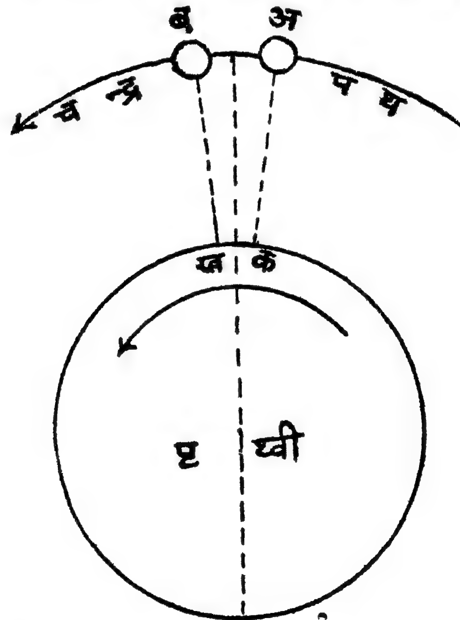
## दो उत्तरोत्तर ज्वारों का मध्यान्तर

चन्द्रमा पृथ्वी के किसी स्थान पर चौबीस घण्टे मे एक बार आता है और उसके विपरीत स्थान पर भी वह चौबीस घण्टे मे एक ही बार आता है। अतएव प्रत्येक स्थान पर चौबीस घण्टे मे दो बार ज्वार आता है।

यदि चन्द्रमा स्थिर होता, तो प्रकट है कि पृथ्वी का प्रत्येक स्थान चौबीस घटे मे एक बार चन्द्रमा के सम्मुख आता। ऐसी दशा मे किसी स्थान पर दो उत्तरोत्तस ज्वारो का मध्यान्तर बारह घटे ही होता। किन्तु जब, पृथ्वी का कोई स्थान चौबी' घण्टे बाद अपनी पूर्व स्थिति मे आता है तब चन्द्रमा, अपनी परिक्रमण गति के कारण आगे बढ आता है और उस स्थान को चन्द्रमा के ठीक सामने होने के लिए कुछ समय और लग जाता है। यही कारण है, कि किसी स्थान पर दो उत्तरोत्तर ज्वारो के मध्य मे लगभग बारह घण्टे छब्बीस मिनट का अन्तर होता है।

### गणित द्वारा स्पष्टीकरण

मान लीजिए चन्द्रमा 'अ' पर है (चित्र २१५)। ऐसी दशा मे उसकी आकर्षण शक्ति से 'क' पर ज्वप होता है। 'क' को सम्पुर्ण परिक्रमा लगाताप अपनी पूर्व-स्थिति मे अ ने के लिए २४ घण्टे लगते है, किन्तु इस काल मे चन्द्रना 'अ' से 'ब' पर पहुँच जाता है, फलत ज्वार की अनुभूति के लिए 'क' को 'ख' पर पहुँचना आवश्यक हो जाता है। पृथ्वी की पूर्ण परिक्रमा लगाने के लिए,




चित्र २१५—दो उत्तरोत्तर ज्वारो के मध्यान्तर का निर्धारण

चन्द्रमा को २८ दिन[1] लगते हैं । अर्थात् क ख पृथ्वी की पूर्ण परिधि का २८ वाँ अश है।

क को १ परिक्रमा लगाने मे २४ घण्टे लगते है

$$\frac{१}{२८} \quad ,, \quad \frac{२४ \times ६०}{२८}$$ मिनट लगते है

=लगभग ५२ मिनट

परिक्रमा लगाते समय 'क' जब अपनी प्रतिध्रुवीय स्थिति पर पहुँचता है, तब उसमे पुन, ज्वार होता है। उपर्युक्त गणित के अनुसार ऐसा होने के लिए २४ घटे ५२ मिनट का आधा समय अर्थात् १२ घण्टे २६ मिनट लगना चाहिए, जो वास्तविकता भी है।

## ४ ज्वार का चढ़ाव

विवृत महासागर मे ज्वार का चढाव एक दो फुट ही होता है। बाल्टिक और भूमध्यसागर जैसे आँशिक समावृत सागरो मे यह चढाव और भी कम होता है, किन्तु जब ज्वार द्वारा उठे हुए जल को उथली अथवा चौडे मुह की सकीर्ण घाटी मे प्रविष्ट होना पडता है तो वह बहुत ऊँचा उठ आता है। उत्तरी अमरीका की फण्डी की खाडी मे वह ७० फुट ऊँचा उठ आता है, जो ससार मे सबसे अधिक है। जल के इस प्रकार ऊपर उठने को 'बोर' ( Bore ) कहते हैं। यदि नदी की एस्चुअरी ज्वार आने का दिशा में हो तो पानी बहुत ऊँचा उठता है।



चित्र २१६—फण्डी की खाडी

## ५ समज्वार रेखायें (Cotidal Lines)

वे कल्पित रेखाये जो सागर के उन स्थानो को मिलाती है जहाँ ज्वार एक ही समय आता है, समज्वार रेखाये कहा जाती है।

## ६ ज्वार भाटा से लाभहानि

### (क) लाभ

(१) भाटा नदियो के मुहाने से कूडा-करकट बहा ले जाता है और उसे महासागर मे दूर फेक देता है।

(२) बडे बडे जहाज ज्वार की सहायता से बन्दरगाहो तक पहुँच जाते है

---

1 Lunar Month—The interval of time in which moon makes one complete revolution round the earth from the new moon to new moon is approximately 29 5 days It is often poupularly taken to be a period of 28 days—W. G Moore (A Dictionary of Geography)

और भाटा के साथ बाहर निकल आते हैं। बिना ज्वार के लन्दन प्रसिद्ध बन्दरगाह न होता और केवल एक भीतरी नगर रह जाता।

(३) ज्वार में सिमटे हुए जल को सचय कर अनेक लाभ उठाये जा सकते है। ज्वार-भाटा से जल-विद्युत भी उत्पन्न की जा सकती है।

## (ख) हानि

(१) ज्वार-भाटा द्वारा कभी कभी बडी वेगवती और भयानक धाराये उत्पन्न होती है, जिन्हे हम 'ज्वार धाराये' (Tidal Currents) कहते है। जहाजो को इनसे बड़ी हानि पहुँचती है।

(२) खाड़ियों में और बन्दरगाहो के निकट ज्वार द्वारा कभी कभी बहुत सी रेत एकत्र हो जाती है। ऐसे बन्दरगाहो को गहरा बनाये रखने के लिये बहुत सा धन व्यय करना पड़ता है।

## तेतीसवाँ परिच्छेद

# महासागरीय अपक्षरण और तट रेखाएँ

### १ सागर का विनाशात्मक कार्य

### (क) महासागरीय अपक्षरण

सागर का विनाशात्मक कार्य, जो केवल तट तक ही सीमित है, मुख्यत: लहरो से होता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से वायु पर निर्भर है। ज्वारभाटा और धाराओ से अपेक्षाकृत कम विनाश होता है। सागरीय अपक्षरण निम्नलिखित प्रतिकारको के अनुसार होता है —

(क) तटीय शिलाओ की सरचना (Structure)
(ख) तटीय शिलाओ की कठोरता (Hardness)
(ग) तटीय शिलाओ की अभिनति (Dip)
(घ) जलवायु का प्रभाव
(ङ) जीवजन्तुओ और पादपो का प्रभाव

### (क) तटीय शिलाओ की सरचना

यदि तट अबद्ध कणो ( Loose particles ) द्वारा निर्मित होता है, तो लहरे स्वय ही तट काटने मे समर्थ होती है, किन्तु यदि तट दृढ और ठोस शिलाओ द्वारा निर्मित हुआ तो इनका कार्य अप्रत्यक्ष रूप से होता है। ऐसी दशा मे अष्टोला ( Pebbles ) रेती का कार्य करते है। शिलाओ के निर्बल भाग और विवर ( Openings ) इनसे सर्वप्रथम प्रभावित होते है। जल की ऊँची लहरें इन विवरो का मुख बन्द कर देती है, जिससे अन्दर की वायु रुद्ध हो जाती है। जब लहरे नीचे जाती है तो वायु पुन प्रस्तरित होती है। इस प्रकार वायु के एकान्तर पर सकोचन ( Compression ) और विस्तार (Expansion) के फलस्वरूप विवर गुफा का रूप धारण कर लेते है और धीरे-धीरे उनकी छत और पार्श्वभित्तियाँ ( Sidewalls ) अपदलित होकर गिर पडती है। इस प्रकार लहरे किनारे को नष्ट करती रहती है।



चित्र २१७—लहरो की क्रिया से बनी गुफा

## (ख) तटीय शिलाओ की कठोरता



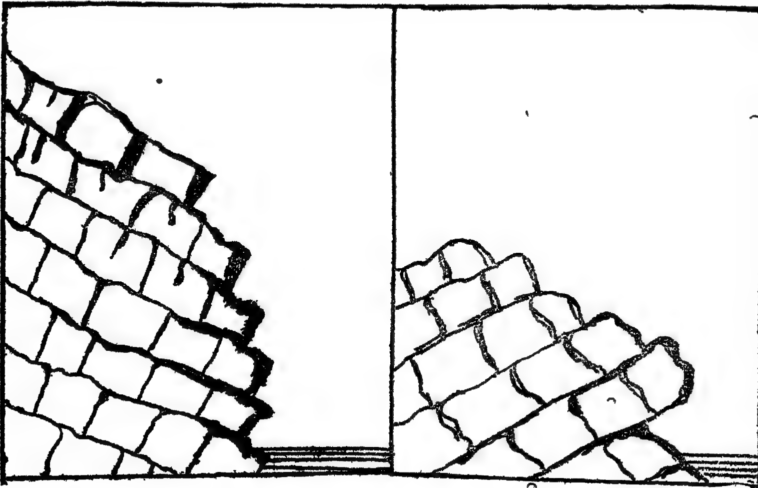
चित्र २१८—शिलाओ की कठोरता का सागरीय अपक्षरण पर प्रभाव

मृदुल शिलाओ मे कठोर शिलाओं की अपेक्षा अपक्षरण अधिक सरलता से होता है अतएव यदि कोई तट अनेक प्रकार की शिलाओ द्वारा निर्मित हो, तो उसकी मृदु शिलाये घिसकर सागर-कुक्षि (Bay) का रूप ग्रहण कर लेती है और कठोर शिलाये बाहर की ओर निकली रहती है। आयरलैण्ड का दक्षिण-पश्चिमी तट इसका एक सुन्दर उदाहरण है। इसे चित्र २१८ मे प्रदर्शित किया गया है।

## (ग) तटीय शिलाओ की अभिनति

यदि तटीय शिलाओं की अभिनति सागर की दिशा मे हो और सन्धियों का स्थल की दिशा मे (चित्र २१९-क) (Joints) तो तटीय शिलाओं के बडे-बडे टुकडे बडी सरलता से तट से पृथक होकर गिर पडते है।

इसके विपरीत यदि तटीय शिलाओ की अभिनति स्थल की ओर होती है और सन्धियो की सागर की दिशा मे (चित्र २१९ ख) तो तटीय शिलाओ के चटख जाने पर भी उनके टुकडे सरलता से पृथक नही होते। इस अवस्था मे अपक्षरण अपेक्षाकृत कम होता है।




चित्र २१९—सागरीय अपक्षरण पर शिलाओ के अभिनति कोण की दिशा का प्रभाव

## (घ) जलवायु का प्रभाव

जलवायु भी सागर द्वारा तट के अपक्षरण की क्रिया को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिये अधिक वर्षा के क्षेत्रो मे जहाँ लहरे किनारे को नीचे से तोडती है, वहाँ वर्षा-जल उसे ऊपर से काटता है। इस प्रकार तटीय अपक्षरण और भी अधिक वेग से होता है।

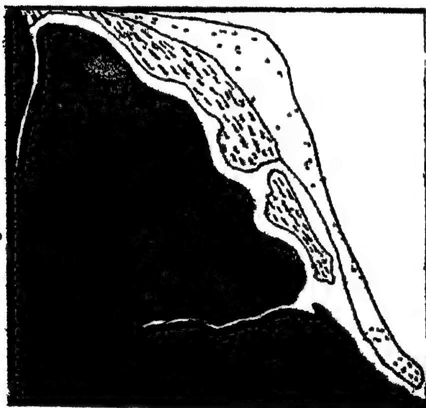
## (ङ) जीव जन्तुओ और पादपो का प्रभाव

कुछ सागरीय जन्तु तटीय शिलाओ मे छिद्र करके उन्हे निर्बल बना देते है, जिससे लहरे उन्हे सरलतापूर्वक नष्ट करने मे समर्थ होती है। इसके विपरीत पादपो की जडे तटीय शिलाओ को स्थायी बनाने मे सहायक होती है।

# २. सागर का सृजनात्मक कार्य

सागर, यदि एक स्थान पर स्थल का अपक्षरण करता है, तो दूसरी ओर वह उसी पदार्थ को बालुका-दण्ड (Sand bar) और जिह्वा ( Spit ) के रूप मे अन्यत्र (जैसे नदियो के मुहाने और सागर-कुक्षि मे) निक्षेपित भी करता है। कभी-कभी तो सागर-कुक्षि बालुका दण्डो से बिल्कुल बन्द हो जाती है।

(क) सिकता-दण्ड अथवा बालुका दण्ड (Sand bar)—नदियो द्वारा सागर को समर्पित अतुलित अवसाद ( Sediments ) बालुका दण्ड की सृष्टि के लिये अनिवार्य सामग्री प्रदान करता है। कभी-कभी सागर-कुक्षि (bay) के बालुका दण्डो द्वारा बिल्कुल बन्द हो जाने से उपह्रद (Lagoons) बन जाते है। कभी-कभी मुहाने पर स्थित सिकता-दण्डो से नदियों के प्रवाह की दिशा बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्वी इगलैण्ड मे एल्ड नामक नदी की धारा बालुका दण्ड के कारण दक्षिण की ओर मुड गई है।



चित्र २२०—सिकतादण्ड ( Sand bar ) के कारण एल्ड नदी की धारा का दक्षिण की ओर मुड जाना

(ख) **जिह्वा (Spits) और सिकता द्वीप**—सागर मे प्रक्षिप्त सकीर्ण और निचली बालू से बनी जीभ सदृश आकृति को 'जिह्वा' ( SPIT ) की सज्ञा दी गई है। बालुका दड और जिह्वा मे मुख्य अन्तर यह है कि जिह्वा का एक सिरा स्थल मे जुड़ा रहता है, बालुका दड का नही। सागर-कुक्षि-द्वार को प्रभावित करने

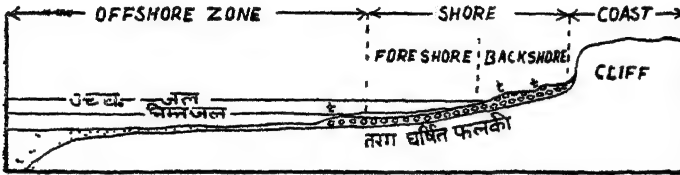
वाली धाराओ से जिह्वाओ ( Spits ) की सृष्टि होती है। जर्मनी के तट पर बालुका दड और जिह्वा अत्यन्त प्रचुर मात्रा मे पाये जाते है। इनके द्वारा समावृत सागरो को यहाँ हॉफ (Haffs) कहते हैं। कभी-कभी महाद्वीप दूर स्थित द्वीपो से जिह्वा द्वारा जुड जाते है। उदाहरण के लिए दक्षिणी इगलैंड मे पोर्ट-लैंड नामक द्वीप एक लम्बी और अविराम जिह्वा द्वारा मुख्य स्थलखड से जुड गया है। कभी-कभी सागर द्वारा निक्षेपित पदार्थ इतना मोटा होता है कि दलदल बन जाते हैं। दक्षिणी इगलैण्ड का रौमने दलदल इसी प्रकार बना है। ऐसे दलदलो के सूखने पर अत्यन्त उपजाऊ भूमि उपलब्ध होती है।




चित्र २२१—जिह्वा (Spit) द्वारा पोर्टलैंड द्वीप का मुख्य स्थलखड से सम्बन्ध

## (ख) तट रेखायें (Shore Lines)

हिन्दी मे अग्रेजी के Coast, Shore तथा Beech तीनो भिन्न अर्थ के शब्दो के लिये प्राय एक ही शब्द 'तट' प्रयुक्त होता है, जो अशुद्ध है। भूगोल तथा भूगर्भ के छात्रो के लिये यह नितान्त आवश्यक है, कि वे Coast, Shore तथा Beech के अन्तर को स्पष्टत समझे और उनका सही प्रयोग करे।




चित्र २२२—तटीय कटिबन्ध के विभिन्न भाग

उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट होगा कि—

Coast—उच्छृग (Cliff) के तुरन्त पीछे के स्थलीय कटिबन्ध को Coast कहते हैं।

Shore—सागर-नितल के उस भाग को Shore कहते हैं, जिसका विस्तार निम्न जल के समतल से लेकर उच्छृग के पद तक होता है।

Shore के पुन दो विभाग किये जा सकते है —

(१) Fore-Shore—उच्च-जल तथा निम्न जल से समतलो के मध्य के भाग को Fore Shore कहते हैं।

(२) Back-Shore—उच्च जल के समतल के ऊपर के भाग को Back-Shore कहते हैं।

Off-Shore—तटीय कटिबन्ध के उस भाग को, जो निम्नजल के समतल के नीचे होता है, हम Off-Shore कहते हैं।

Beech—Shore पर अस्थायी रूप से एकत्र हुए मलवे (Debris) को हम Beech कहते है। यह मलवा तरग घर्षित फलकी ( Wave cut bench )

पर स्थापित होता है। यदि इसका विस्तार Off-Shore zone में भी होता है, तो उसे हम Off-Shore Beech Terrace कहते हैं।

## तट-रेखाओं का वर्गीकरण
## (Classification of Shore Lines)

तटरेखा से हमारा तात्पर्य है सागरीय उच्छृ ग (Cliff) के पद की सीमा अथवा स्थल की सीमा।

तटरेखाओ का वर्गीकरण मुख्यत दो आधारो पर किया जा सकता है —

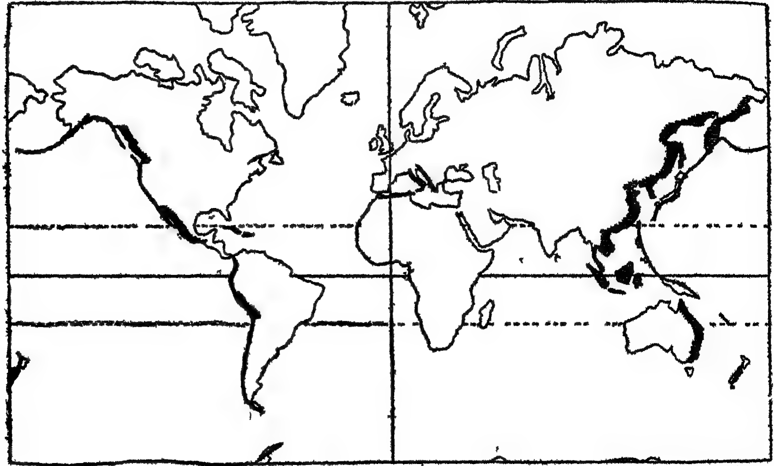
(१) तटीय स्थलखण्ड की सरचना के आधार पर

(२) उद्‌भव के अनुसार

### (१) तटीय स्थलखड की सरचना के आधार पर तटरेखाओ का वर्गीकरण

सुएस (Suess) ने इस आधार पर तटरेखाओं को दो मुख्य प्रकारो में विभाजित किया है —

(१) **प्रशान्त प्रकार की तट रेखा** (Pacific type Coastline)— ये तटरेखायें नवीन भजित पर्वत-श्रेणियो के समानान्तर हैं। इनके पुन दो विभाग किये जा सकते हैं—(१) प्राथमिक (Primary) तथा (२) गौण (Secondary)।



चित्र २२३—प्रशान्त तथा अटलाण्टिक प्रकार की तट रेखाये

(दृष्टव्य—इस मानचित्र मे प्राथमिक प्रशान्त तट रेखा मोटी रेखा द्वारा, गौण प्रशान्त-तट जो प्रशान्त प्रकार की हैं जैसे बृम्हा का पश्चिमी तट समानान्तर रेखाओ द्वारा तथा अटलाटिक प्रकार की तट रेखा पतली रेखा दारा प्रदर्शित की गई है। इस मानचित्र में सभी अकित नही हो सका है।

(२) **अटलाण्टिक प्रकार की तट रेखा** (Atlantic type Coastline)—इन तटरेखाओ का महाद्वीपो के किनारे की सरचना से कोई सम्बन्ध नही है।

वौन रिचथोफैन ने इसी वर्गीकरण के लिये दूसरे नाम सुझाये है —

(१) **अनुदैंध्य तट** ( Longitudinal Coast )—सरचनात्मक कणो के समानान्तर होते हैं।

(२) **अनुप्रस्थ तट** (Transverse Coast)—सरचनात्मक कणो की समकोण दिशा में कटे होते हैं।

अन्य शब्दो मे अनुदैंध्य तट प्रशान्त तट का दूसरा नाम है तथा अनुप्रस्थ तट अटलाण्टिक तट का दूसरा नाम है।




चित्र २२४—(क) विसवादी (Discordant) तट (द० प० आयरलेंड)
(ख) सवादी (Concordant) तट (डालमैशिया)

बुशर (Bucher) ने प्रशान्त एव अटलाण्टिक तटो को क्रमश. सवादी (Concordant) एव विसवादी (Discordant) तटो की सज्ञा दी है।

## २ उद्भव के अनुसार तट-रेखाओं का वर्गीकरण

## (Genetic Classification of Shore-Lines)

जौन्सन ने तट-रेखाओ को, उद्भव के अनुसार, चार प्रमुख वर्गो में विभाजित किया है —

(१) निमज्जन की तट रेखाये (Shore-Lines of Submergence)—तट पर स्थित स्थल के विशेष रूपो के आशिक जलमग्न हो जाने से अथवा Coast के कुछ भाग के समुद्र मे धँस जाने से ये तट-रेखायें बनती है।

(२) **उन्मज्जन की तट रेखायें** (Shore-Lines of Emergence)—सागर-नितल के ऊपर उठने अथवा सागर के जलपृष्ठ के नीचे जाने से इनका निर्माण होता है।

(३) **उदासीन तट रेखायें** (Neutral Shorelines)—इन तट रेखाओ के बनने मे न उन्मज्जन होता है और न निमज्जन ही।

(४) **यौगिक तट रेखायें** ( Compound Shore Lines)—वे तट रेखाये हैं, जिनमे पूर्वोक्त किन्ही दो अथवा तीनो प्रकार की तटरेखाओ के गुण विद्यमान हो।

अधोलिखित स्थल के रूपो के निमज्जन से ये तटरेखाये अस्तित्व मे आ जाती है –

(१) **नदियो की घाटियाँ**—जब समुद्रतट पर स्थित नदियो की घाटिया सागरजल में डूब जाती है तब जा तट-रेखा अस्तित्व मे आ जाती हे, उसे हम रियाँ तट (Rid Coast) कहते है। (चित्र २२५)

(२) **हिमनदियो की घाटियाँ**—जब समुद्रतट पर स्थित हिमनदियों की घाटियाँ सागर-जल में डूब जाती है, तब जो तट-रेखा अस्तित्व मे आ जाती है, उसे हम फियोर्ड तट (Fiord Coast) कहते है। (चित्र २२६)



चित्र २२५—रिया तट



चित्र २२६—नॉरवे का फियोर्ड तट

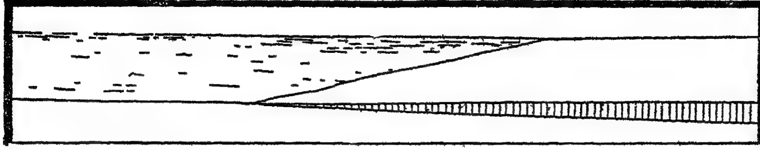


चित्र २२७—डालमैशियन समुद्र तट

(३) **पर्वत श्रेणियाँ**—एड्रियाटिक सागर के पूर्वी तट पर अनेक लम्बे सकरे पर्वतीय द्वीप विद्यमान हैं। उनके विस्तार की दिशा तट के समानान्तर हे। वास्तव मे वे उन पर्वत-श्रेणियो की चोटियॉ है जो सागर जल मे डूब चुकी है। इस प्रकार की तट रेखा को डालमैशियन तट रेखा (Dalmation Coast) कहते है। चित्र २२७ मे डालमैशियन तट प्रदर्शित किया गया है।

## (२) उन्मज्जन की तट रेखाये
## (Shore Lines of Emergence)

ये तट रेखाये समुद्रान्तर मैदान के ऊपर उठने से बन जाती है। ये तट रेखाये सीधी होती ह।



चित्र २२८—उन्मज्जन की तटरेखा

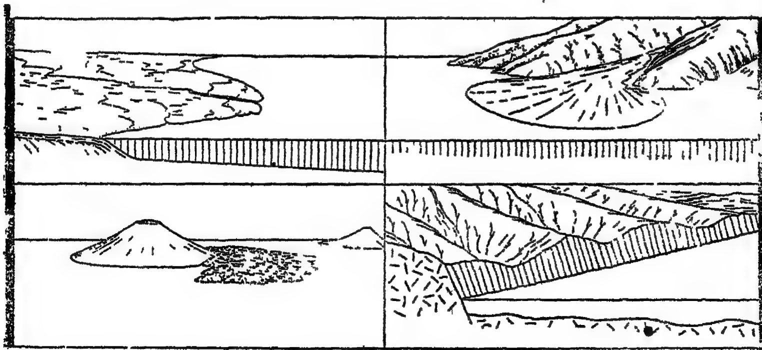
(समूद्रान्तर मैदान के ऊपर उठने से बनी तट रेखा)

इनकी पहचान निम्नलिखित विशेषताओ से होती है —

(१) ऊपर उठे तथा लहरो से कटे मैदान
(२) लहरो द्वारा निर्मित उत्तल
(३) पूर्वकालीन तट के वर्तमानकालीन तट से ऊपर होने के चिह्न
(४) अभिनवकालीन सागरीय अवसादो की उपस्थिति
(५) तट रेखा का सीधा होना (इस मापदण्ड को सावधानी से उपयोग मे लाना चाहिये, क्योकि लहरे और धाराये टेढे-मेढे तट को भी अपनी क्रिया से सीधा कर देने मे समर्थ है)

## (३) उदासीन तट रेखाये
## (Neutral Shorelines)

ऐसी तट रेखाओ को जिनमे न तो उन्मज्जन के लक्षण हो और न ही निमज्जन के, हम उदासीन तट रेखाये (Neutral Shorelines) कहते है।




चित्र २२९—उदासीन तट रेखाये

(क) डेल्टा की तट रेखा (ख) कछारी मैदान की तट रेखा
(ग) ज्वालामुखी की तट रेखा (घ) विभग मे बनी तट रेख

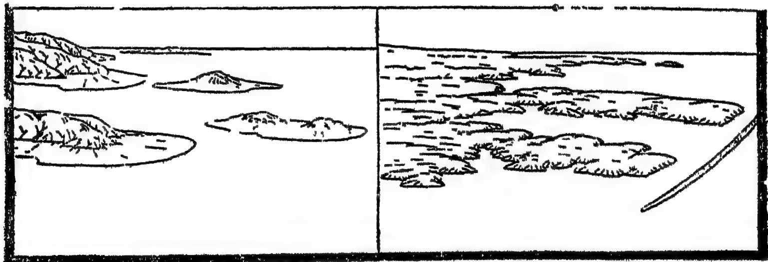
(क) डेल्टा की तट रेखा (ख) कछारी व्यजन की तट रेखा (ग) ज्वालामुखी की तटरेखा

इनके अन्तर्गत—(१) डेल्टा तट (२) कछारी व्यजन का तट (३) उत्क्षालित स्थली का तट (४) ज्वालामुखी का तट (५) प्रवाली रचना का तट. .आदि आते हैं।

## (४) यौगिक तट रेखायें (Compound Shore lines)

इन तट रेखाओ मे उन्मज्जन और निमज्जन दोनो के ही लक्षण पाये जाते हैं।

(क) निमज्जन के उपरान्त उन्मज्जन से बनी तट रेखा
(ख) उन्मज्जन के उपरान्त निमज्जन से बनी तट रेखा




चित्र २३०—यौगिक तट रेखाये

(क) निमज्जन के वाद उन्मज्जन (ख) उन्मज्जन के बाद निमज्जन

चित्र २३०(क) में जो तट-रेखा प्रदर्शित की गई है, वह निमज्जन के उपरान्त उन्मज्जन की द्योतक है। चित्र २३० (ख) की तटरेखा उन्मज्जन के उपरान्त निमज्जन को प्रदर्शित करती है।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

# महासागरीय निक्षेप तथा प्रवाली रचनायें

# (MARINE DEPOSITS AND CORAL FORMATIONS)

## (१) महासागरीय निक्षेप का अर्थ

### (क) महासागरीय निक्षेप

'महासागरीय निक्षेप' के अन्तर्गत वे सभी पदार्थ आ जाते हैं, जो महासागरो के नितल मे एकत्र होते रहते हैं। स्थलखण्डो के अपक्षरण से जो अवसाद प्राप्त होते हैं, उनका अधिकाश भाग अन्तत महासागरो मे ही पहुँचता है। इनके अतिरिक्त महासागरो के नितल पर रहनेवाले तथा उनके जलपृष्ठ पर तैरनेवाले जीवजन्तुओ एव वनस्पति के अवशेष भी महासागर नितल मे सचित होते हैं। इस प्रकार, कालान्तर मे महासागर नितल पर काफी मोटा निक्षेप स्थापित हो जाता है।

## (२) महासागरीय निक्षेपों का वर्गीकरण

महासागरीय निक्षेपों का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है, जैसे स्थिति के अनसार, उत्पत्ति के अनुसार आदि।

### (क) स्थिति के अनुसार वर्गीकरण

इस आधार पर कि महासागर नितल के किस भाग मे कौन-सा निक्षेप पाया जाता है, हम महासागरीय निक्षेपो को चार विभागों में बाँट सकते हैं —

(१) **समुद्रतटीय निक्षेप** ( Littoral Deposits )—ये निक्षेप दीर्घ ज्वार के उच्चजल तथा निम्नजल के समतलों के मध्य मे पाये जाते हैं।

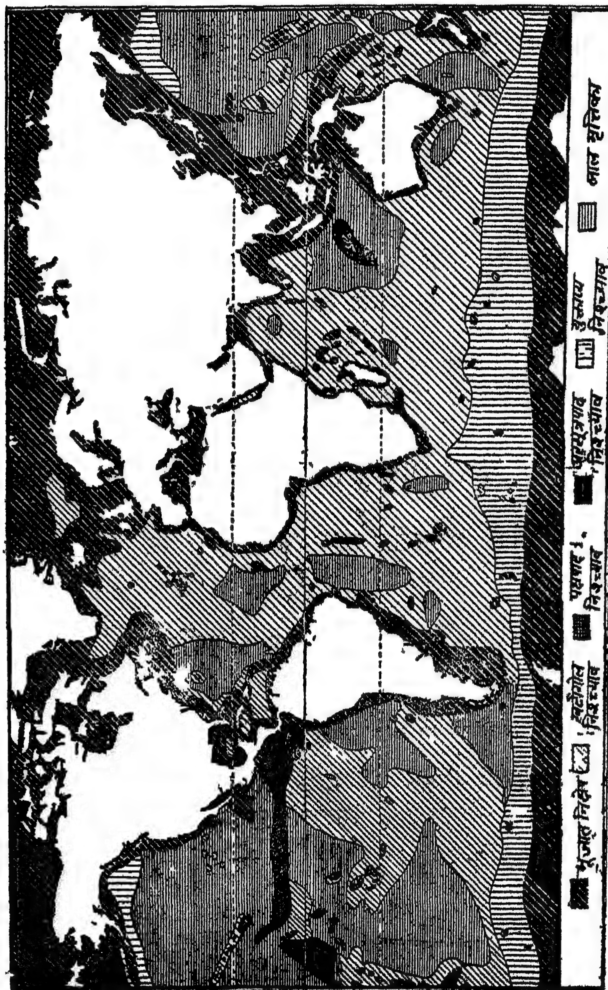
(२) **गाध जल के निक्षेप** ( Shallow Water Deposits )—ये निक्षेप निम्न जल के समतल से लेकर १०० फैदम (अर्थात् ६०० फुट ) की गहराई तक पाये जाते हैं।

(३) **गभीर जल के निक्षेप** ( Bathyal Deposits )—ये निक्षेप महाद्वीपीय प्रवण ( Continental Slope ) पर पाये जाते है।

(४) **अथाह सागरीय निक्षेप** ( Abyssal Deposits)—ये निक्षेप अथाह सागर स्थली ( Deep Sea Plain ) तथा महासागरीय अथाहो ( Oceanic Deeps) मे पाये जाते हैं।

## (ख) उत्पति के अनुसार वर्गीकरण

उत्पत्ति के विचार से महासागरीय निक्षेपो को दो विभागो मे बाँटा जा सकता है —




चित्र २३१—महासागरीय निक्षेप

नक्षेप ( Terrigenous Deposits )—ये स्थल के अपक्षरण से प्राप्त होते हैं। नदियो द्वारा समर्पित अवसाद इसी कोटि में आते हैं। ये

निक्षेप दूसरे प्रकार के निक्षेप अर्थात् अवयवी निक्षेप की तुलना मे अधिक शीघ्रता से स्थापित होते हैं।

(२) **अवयवी निक्षेप** ( Organic Deposits )—ये महासागरीय जीवजन्तु तथा वनस्पति के अवशेषो से बनते हैं। इनका सचयन बहुत धीरे धीरे होता है। उदाहरण के लिये प्रशान्त नितल मे २०,००० वर्षों मे एक इच मोटा निक्षेप स्थापित होता है।

अवयवी निक्षेप के पुन दो उपविभाग किये जा सकते हैं —

(क) नैरिटिक निक्षेप (Neritic Deposits)—ये निक्षेप शख मीन (Shell fish), सागरीय कण्ठमूष (Sea urchins) तथा प्रवाल (Corals) आदि के अवशेषों से बनते है। ये समुद्र-तटीय कटिबन्ध एव गाध जल कटिबन्ध में पाये जाते हैं।

(ख) तलप्लावी निश्च्याव ( Pelagic Oozes )—ये तैरने वाले जीव जन्तुओ तथा वनस्पति के अवशेष से बनते हैं। ये अथाह सागर स्थली तथा महा-सागरीय अथाहो मे पाये जाते है।

## (ग) चैलेजर के अनुसार वर्गीकरण

तेइसवे परिच्छेद मे ब्रिटिश जलयान चैलेञ्जर के अभियान का उल्लेख हो चुका है। इस अभियान के नेता सर जौन मरे थे। इस अभियान का एक उद्देश्य महासागरीय निक्षेपो का अध्ययन भी था। फलस्वरूप महासागरो के विभिन्न भागो से निक्षेप एकत्र किये गये। इन महासागरीय निक्षेपो का वर्गीकरण मरे तथा रैनार्ड ने इस प्रकार किया है —

## महासागरीय निक्षेप

| | | |
|---|---|---|
| १ समुद्रतटीय निक्षेप (Littoral Deposits) | ककड<br>अष्टीला<br>बालू<br>पक | १ भूजात निक्षप (Terrigenous Deposits) |
| २. गाध जल के निक्षेप (Shoal water deposits) | ककड<br>बालू<br>पक<br>चूर्णिय निक्षेप<br>चूर्णिय पक<br>ज्वालामुखीय पक<br>प्रवाली पक | |
| ३ अथाह सागरीय निक्षेप (Deep sea deposits) | हरा पक<br>नीला पक<br>लाल पंक<br>चूर्णिय निक्षेप | |
| | फोरामिनिफेरल ऊज<br>टेरोपोड ऊज<br>डायएटम उज<br>रेडियोलारियन ऊज<br>महासागरीयलाल मृत्तिका | २ तलप्लावी निक्षेप (Pelagic Deposits) |

## (३) महासागरीय निक्षेप के पदार्थों का संक्षिप्त वर्णन

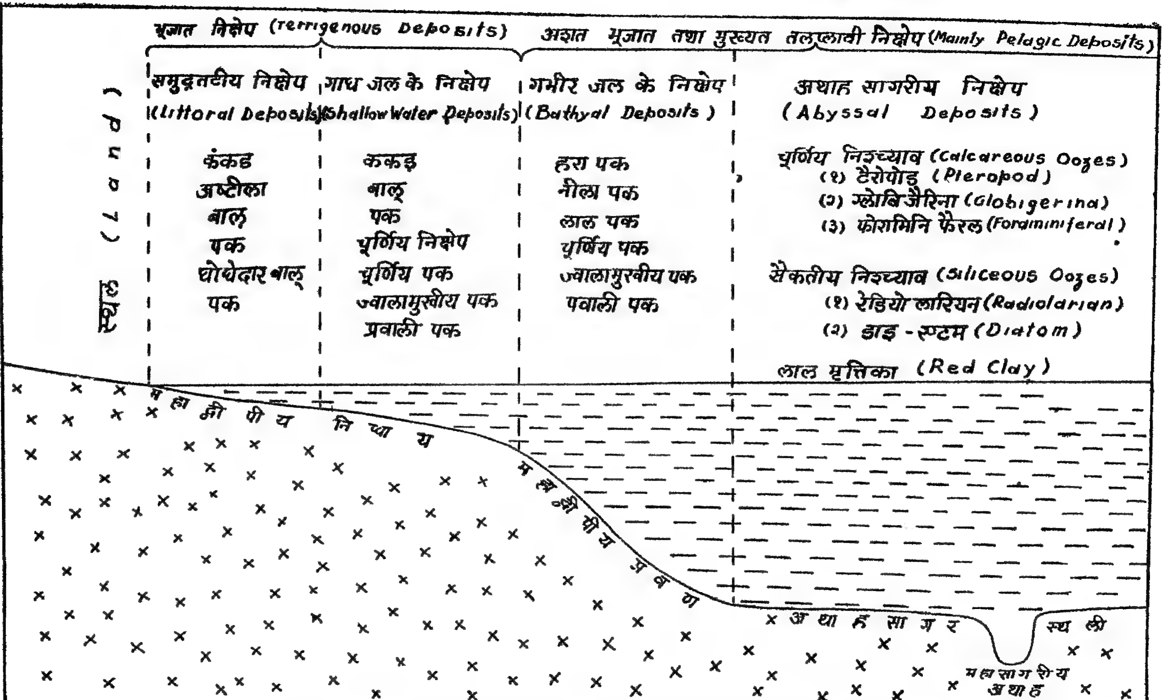
### (क) महाद्वीपीय निधाय तथा महाद्वीपीय प्रवण के निक्षेप

महासागर-नितल के उपर्युक्त विभागो मे पाये जाने वाले निक्षेपो मे अधिकाशत नदियो द्वारा लाया गया अवसाद अथवा लहरो द्वारा तट के कटने से प्राप्त पदार्थ होता है। यह पदार्थ आकार के अनुसार स्थापित होता है। बडे आकार के पदार्थ स्थल की ओर एकत्र होते हैं और सागर की दिशा मे निक्षेपित पदार्थ आकार मे क्रमश छोटे होते जाते हैं। यह स्वाभाविक ही है क्योकि जो पदार्थ जितना स्थूल होगा, वह उतना ही कम परिवाहित हो सकेगा और जो पदार्थ जितना सूक्ष्म होगा वह उतनी ही अधिक दूर तक परिवाहित होगा।

महाद्वीपीय प्रवण मे पक बहुलता से पाये जाते है। बयन (Texture) मे ये बालू की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म होते है। इनका रग रासायनिक सरचना के अनुसार होता है। उदाहरण के लिये लाल पक की लालिमा लोहे के ऑक्साइड के कारण होती है तथा हरे पक का हरा रग लोहे के सिलिकेट (ग्लॉकोनाइट) के कारण होता है। सब पंकों मे नीले पक का विस्तार सबसे अधिक है।

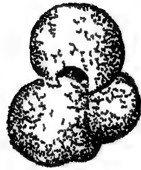
ज्वालामुखीय प्रदेशो में ज्वालामुखीय रेत तथा पक पाये जाते हैं। ये लावा से निर्मित होते है।

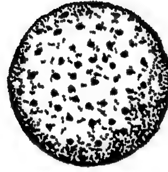
[ पृष्ठ २४८ के सामने



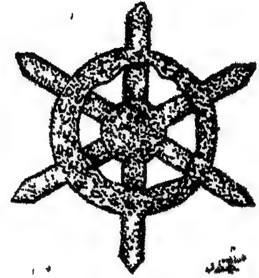

चित्र २३२—स्थिति के अनुसार महासागरीय निक्षेपो का वर्गीकरण

[ पृष्ठ २४९ के सामने





चित्र २३५—फोरामिनिफैरल ऊज



चित्र २३६—रेडियोलारियन ऊज़

प्रवाली विकास के क्षेत्रो मे प्रवाली पक तथा चूर्णिय निक्षेप पाये जाते है।

## (ख) अथाह सागर स्थली तथा महासागरीय अथाहों के निक्षेप

भूजात पदार्थ महाद्वीपीय प्रवण के आगे नही बढ पाता। अथाह सागर स्थली और महासागरीय अथाहो मे मुख्यत तलप्लावी निक्षेप पाये जाते है। तलप्लावी निक्षेप सागर-समतल पर तैरनेवाले जोवजन्तुओ तथा वनस्पति के अवशेषो से निर्मित होते है। वायु द्वारा परिवाहित ज्वालामुखीय धूलि भी इसी के अन्तर्गत है। गहरे सागर के नितल मे जोवजन्तु तथा वनस्पति कम मात्रा मे पाये जाते है, अतएव उनके अवशेष महासागरीय निक्षेप के निर्माण मे विशेष योग नही देते।

तलप्लावो निक्षेप बाहर निकालने पर तरल पक के रूप का होता है। इसे ऊज (Ooze) अथवा निश्च्याव कहते है। ऊज सूक्ष्म जीव-जन्तुओ तथा सूक्ष्म वनस्पति के अवशेष से बने है। उन्ही के अनुसार इनका नामकरण भी हुआ है। सरचना की दृष्टि से इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

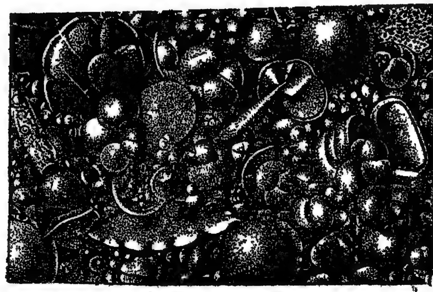
**ऊज़ Oozes**

चूर्णिय (Calcareous)
- (१) टैरोपौड ऊज (Pteropod Ooze)
- (२) ग्लोबिजैरिना ऊज (Globigerina Ooze)
- (३) फोरामिनिफैरल ऊज (Foraminiferal Ooze)

सैकतीय (Siliceous)
- (१) डाइ-एटम ऊज (Diatom Ooze)
- (२) रेडियोलारियन ऊज (Radiolarian Ooze)



चित्र २३३—टैरोपौड ऊज



चित्र २३४—ग्लोबिजैरिना ऊज

अन्ध तथा हिन्द महासागरों के नितल का अधिकांश भाग ग्लोबिजैरिना ऊज से ढका हुआ है। ग्लाबिजैरिना उष्ण तथा शीतोष्ण दोनों प्रदेशों में विकसित होता है अतएव इसका ऊज इन दोनों कटिबन्धों में पाया जाता है। रेडियोलारिया केवल उष्ण जल में पनपता है और डाइ-एटम केवल शीतल जल में। अतएव, रेडियोलारियन ऊज मुख्यत: उष्ण प्रदेशों में तथा डाइएटम ऊज ध्रुवीय प्रदेशों में पाये जाते हैं। टेरोपोड भी उष्ण जल में पनपता है, किन्तु ग्लोबिजैरिना की तुलना में यह सरलता से घुल जाता है अतएव इसका ऊज उतनी गहराई तक नहीं पाया जाता जितनी गहराई तक ग्लोबिजैरिना के ऊज पाये जाते हैं। उष्ण जल में रेडियोलारिया की तुलना में फोरामिनिफर अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, किन्तु गहरे जल में इनके कर्पर घुल जाते हैं जिससे वहाँ रेडियोलारिया का अनुपात बढ़ जाता है।

तलप्लावी निक्षेपों में लालमृत्तिका का विस्तार सबसे अधिक है। प्रशान्त महासागर का आधे से अधिक भाग यह ढके हुए हैं। हिन्द तथा अन्ध महासागरों के भी विस्तृत भाग इससे आच्छादित हैं। यह पतला निक्षेप है। यह ज्वालामुखीय उद्‌भव की है। यह वायु द्वारा धूलि के रूप में अथवा लहरों द्वारा झामक (Pumice) के रूप में समुद्र में परिवाहित होती है। इसका निक्षेपण अत्यन्त मन्द वेग से होता है। संरचना की दृष्टि से यह यथार्थ मृत्तिका है और मुख्यत: अल्यूमीनियम के हाइड्रेटेड सिलिकेट से निर्मित हैं। इसका लाल रंग लोहे के ऑक्साइड के कारण है।

## (१) प्रवाल (Coral)

प्रवाली पुर्वंगक ( Coral Polyp ) महासागरों में रहनेवाला एक जीव है। यह सागर-जल से कैलशियम कार्बोनेट ( Calcium Carbonate ) खींचता है। फिर उससे अपने कोमल शरीर को सँभालने के लिये कटोरी बनाता है।

इन प्रवाली जीवों की संख्या इतने वेग से बढ़ती है कि थोड़े ही काल में वे वृहद् श्रृंखलाओं का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

## (२) प्रवाली विकास के लिये अनुकूल दशायें

इनमें प्रमुख ये हैं:—

(१) अलवण जल प्रवाली विकास के लिये अनुकूल नहीं है, अतएव प्रवाली-रचनायें ऐसे तटों पर कम पाई जाती हैं, जहाँ नदियाँ सागर को अतुलित अलवण जल समर्पित करती हैं।

(२) खारे अथवा लवणमय होने के अतिरिक्त जल का निर्मल (अर्थात् बालू और पंक से मुक्त) होना भी प्रवाली—विकास के लिये आवश्यक है।

(३) जल का तापक्रम ७०° फ० से कम न होना चाहिए।

(४) प्रवाल १२० फुट से अधिक गहराई में नहीं पाये जाते।

(५) उष्ण धारायें प्रवाली विकास में सहायक होती हैं।

## (३) प्रवाली रचनाओं का वितरण

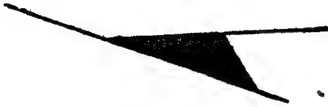
प्रवाली रचनायें महाद्वीपों के पूर्वी-तट पर ३०° उ० और ३०° द० अक्षांशों के मध्य में पाई जाती है। व्यापारिक वायु (Trade Wind) अमरीका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट का तापक्रम घटा देती है, (स्पष्टी-करण के लिये कृपया

'सागर का तापक्रम' शीर्षक परिच्छेद देखिये) अतएव इन स्थानो मे प्रवाली श्रखलायें नगण्य हैं। प्रवाली श्रखलाओ मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित वृहत् परातट प्रवाली ( Great barrier reef ) है।

## (४) प्रवाली रचनाओं का वर्गीकरण

प्रवाली रचनाये मुख्यत तीन प्रकार की हैं —

(१) **अनुतट प्रवाली** ( Fringing reef )—ये द्वीपो और महाद्वीपो के तटो पर पाई जाती हैं। इनका धरातल असम होता है और इनका तल प्राय:



चित्र २३७—अनुतट प्रवाली

निम्न-जल-चिन्ह के निकट रहता है। कही कही प्रवाली श्रखला और तट के मध्य मे लघु और उथला जलाशय होता है, किन्तु सदैव नही। अण्डमान द्वीप मे ऐसी ही एक अनुतट-प्रवाली है।

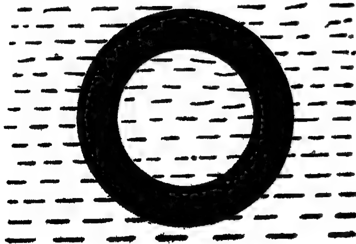
(२) **परातट-प्रवाली** ( Barrier Reef )—यह अत्यन्त विस्तृत प्रवाली श्रखला है जिसका जल मे काफी गहराई तक विस्तार होता है। इसके और तट



चित्र २३८—परातट-प्रवाली

के मध्य मे एक चौड और ारहग दउपह ( Lagoon ) अनिवार्य रूप से रहता हे। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण आस्ट्रेलिया के पूर्वीतट पर स्थित बृहद्-परातट-प्रवाली ( Great Barrier Reef ) है।

(३) **अटोल** ( Atoll )—जब प्रवाली रचना वलय ( Ring ) की आकृति की होती है और उसके मध्य में जलमय उफ्ह्द होता है, तो उसे हम अटोल कहते हैं। प्रशान्त महासागर मे अटोलो का बाहुल्य है।



चित्र २३९—अटोल

## ६ अटोलों की संरचना

कृपया सत्तावनवॉ परिच्छेद देखिये।

## ७ प्रवाली द्वीप

प्रवाल-विकास के लिये अनुकूल दशाओ का उल्लेख पूर्व मे हो चुका है। प्रवाली द्वीप अधिक ऊँचे नही होते। बहुधा वे सागर समतल से कुछ ही फुट ऊपर उठे रहते हैं। कालान्तर मे चूर्ण प्रस्तर का पृष्ठ ऋतुक्षरण से भूमि में परिणत हो जाता है। तब उसमे पेड-पौधे उगते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन द्वीपो मे वनस्पति के बीज चिडियाँ ले आती हैं। इन द्वीपो के प्रमुख वृक्ष नारियल और ताल (Palm) हैं। लकादीव एव मालदीव इसके उदाहरण हैं।

# पैंतीसवाँ परिच्छेद

# महासागरीय जीव एवं वनस्पति

## (क) महासागरीय जीव

प्रकाश एव अध स्तर (Substratum) का विचार करते हुए हम महासागरो में रहने वाले जीबो को निम्नांकित तीन मुख्य विभागो मे बाँट सकते है.—

(१) वेला-प्रदेशीय ( Littoral )—इस विभाग के अन्तर्गत वे जीव आते है, जिन्हे प्रकाश एव अध स्तर दोनो उपलब्ध है।

(२) तलप्लावी ( Pelagic )—इस विभाग के जीव प्रकाश चाहते है, अध.स्तर नही।

(३) अथाह सागरीय (Abyssal)–इस विभाग के जीव अध स्तर चाहते है, प्रकाश नही।

## (१) वेला प्रदेशीय जीव

### (क) वेला-प्रदेश का विस्तार

वेला-प्रदेश का विस्तार स्थल के तट से लेकर महाद्वीपीय—निधाय ( Continental Shelf) के अन्त तक है अर्थात् यह लगभग ६०० फुट की गहराई तक फैला हुआ है। इसके नीचे प्रवण (Slope) एकदम प्रपाती ( Steep) है और वहाँ वेला प्रदेशीय जीवो के स्थान पर तलप्लावी ( Pelagic) जीव पाये जाते है।

### (ख) वेला प्रदेश में भोजन की प्राप्ति

भोजन अथवा आहार की दृष्टि से वेला प्रदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे पाये जाने वाले आहार के तीन साधन है —(१) स्थलक्षेप्य (Waste of land) (२) तटीय शिलाओं की बद्ध आयका (Fixed algae ) तथा (३) सूक्ष्म प्लावी आप्यका (Minute Floating algae) अथवा उद्भिद मन्द प्लवक ( Phyto plankton)

नदी-मुख पर एकत्र पक से आहार ग्रहण करने वाले जीवो की सख्या से ही स्थल-क्षेप्य की महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। यदि जल निर्मल होता है, तो उसमे शम्बुक (Mussels) तथा शुक्ति (Oysters) जैसे शख जीव ( Shell Fish ) कठिनन ( Crustacea) एव अन्य सामुद्रिक जीव, जो मछलियो को आहार प्रदान करते है, बहुत पाये जाते है। स्थल-क्षेप्य का विस्तार सागर मे अधिक गहराई तक नही होता। अतएव, तलप्लावी ( Pelagic ) एव अथाह सागरीय ( Abyssal ) जीव इससे लाभ नही उठा सकते। बद्ध आप्यका (Fixed algae) की उत्पत्ति केवल ऐसे स्थानों मे सभव है, जहाँ उसे आसञ्जन के लिये दृढ धरातल मिल सके और जहाँ तीव्र सूर्य-प्रकाश भी पहुँच सके। अतएव ये केवल स्थल-तटो तक ही सीमित है, जहाँ ये बहुमूल्य प्राशन भूमि (Feeding ground) की सृष्टि करती है। लघु-ज्वार चिन्ह के ठीक नीचे के प्रदेश को कपिशाप्यक प्रदेश (Laminarion

Zone ) कहते है। यह कठिनन ( Crustacea) चूर्णप्रावारा (Mollusca) प्रवालादय ( Coelenterate ) जैसे लघु जीवो के लिये सदैव से प्रसिद्ध रहा है। उच्च ज्वार के समय यह प्रदेश काफी गहराई तक जल से ढक जाता है, जिससे यहाँ विशालकाय मछलियाँ आ जाती है ओर इस प्रकार मछुओ के लिये यह प्रदेश बहुमूल्य हो जाता है। तटीय जल मे सूक्ष्म आप्यका बहुत पाई जाती है। यद्यपि इनकी प्रकृति, गुण एव लक्षणो का अध स्तर की उपस्थिति से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है, तथापि अप्रत्यक्ष रूप से सागर-नितल तथा स्थल-क्षेप्य इन्हे प्रभावित करते है। तटीय जल मे युक्ताप्यका (Diatom) का विशेष बाहुल्य है। वास्तव मे, यहाँ पर विवृत सागर से भी अधिक इनकी जातियाँ पाई जाती है।

## (ग) वेला प्रदेश की प्राकृतिक विशेषताये

वेला-प्रदेश मे जल सदैव गतिवान रहता हे। धाराये और ज्वार-भाटा उसे गति प्रदान करते है, उसे मीठा बनाये रखते है तथा उसे सतत रूप से भोजन और ऑक्सीजन प्रदान करते है। यही कारण है कि विवृत सागरो (Open seas) के तट पर बहुमूल्य जीव-जन्तु पाये जाते है, और समावृत सागरो (Enclosed Seas) और झीलो के तट पर नही। यद्यपि तटीय जीवो मे अनेक तैरने मे कुशल होते है, जो सकटकाल मे तैरकर अपनी रक्षा कर सकते है, तथापि अनेक तटीय मछलियाँ जैसे ह्वेल (Whale) एव शिशुमार (Dolphin) जीवन-रक्षा के प्रयास मे असफल होती है और किनारो पर मृतावस्था मे पाई जाती है। दूसरी ओर बेचारे निर्बल जीव तब तक नितल से चिपके रहते है, जब तक सकट-काल समाप्त नही हो जाता।

तटीय जीवो को एक अन्य सकट से भी अपनी रक्षा करनी पडती है। वह है—सागर-जल के तापक्रम एव लवणता मे अविरल परिवर्तन। उष्णप्रदेशीय सागरो (Tropical Seas) मे तापक्रम का गोचर (Range) कम अर्थात् लगभग १०° फ० होता हे और औसत तापक्रम अधिक अर्थात् लगभग ८०° फ० होता है। ध्रुवीय सागरो मे तापक्रम का गोचर कम है और औसत तापक्रम भी कम ही है अर्थात् लगभग २८° फ० है। शीतोष्ण प्रदेशो ( Temperate Regions ) मे तापक्रम का गोचर अधिक है और औसत तापक्रम न बहुत अधिक ही है और न बहुत कम। जल का आपेक्षिक ताप (Specific Heat) अधिक होने के कारण सागर के किसी भी भाग के तापक्रम-गोचर की तुलना स्थल के साथ नही की जा सकती। बहुत से स्थलीय जीवो के शरीर मे जैसे उष्ण रक्त वालो मे ताप नियत्रण (Heat regulating) की व्यवस्था रहती है, जिससे वे तापक्रम के विभेदन के अनुसार अपने को समायोजित कर लेते है। यद्यपि सागर के जीवो मे यह गुण नही है, तथापि ह्वेल आदि मे जिनके पूर्वज स्थल-निवासी थे, यह विशेषता है। इस भाँति तापक्रमान्तर सहने की क्षमता के अनुसार हम सागरीय जीवो को दो प्रमुख विभागो मे बाँट सकते है —

(१) महातापान्तर जीवी ( Euthermal )—जो तापक्रम के महान अन्तरो को सह सकते है।

(२) अल्प-तापान्तर जीवी (Steno-thermal)—जिनके लिये तापक्रम के महानि अन्तर प्राणघातक है।

सामान्यत यह कहा जा सकता है, कि शीतोष्ण प्रदेश के वेलाप्रदेशीय जीव महातापान्तर जीवी है और उष्ण प्रदेशीय तथा ध्रुवीय सागरो के जीव अल्पतापान्तर जवी है। लवणता के अन्तर से भी इस प्रकार निष्कर्ष निकाले जा सकते है।

प्रत्येक सागरीय जीव के क्रिया-कलाप के क्षेत्र भी भिन्न है। डा० जोर्ट (Hjort) का कथन है, कि उत्तरी सागर और नौरवे सागर मे पाई जानेवा ी कौड (Cod) मछली की सत्रह जातियो मे से प्रत्येक अपने अनुकूल गहराई, तापक्रम और लवणता के अनुसार पृथक अण्डजनन क्षेत्र (Spawning ground) चुनती है।

## (घ) वेला प्रदेशीय जीव

वेला-प्रदेश मे जीवो की निम्नाकित जातियाँ पाई जाती है --

(१) वेला-पक्षी (Littoral Birds) जैसे उड न सकने वाली पेनगुइन (Flightless penguines), समुद्रचिल्ली (Sea gulls) आदि।

(२) सरीसृपा (Reptiles)—जैसे चर्म-कश्यप (Leathery turtle), हरित कश्यप (Green turtle), सामुद्रिक सर्प (Sea Snake), सामुद्रिक गोधिका (Sea lizard) आदि।

(३) स्तनिन (Mammals) जैसे ह्वेल, सील, सामुद्रिक गौ (Sea Com) आदि।

(४) मीन (Fish) जैसे सागरीय अश्व (Sea horse)
(५) उदरपादा (Gastropod) जैसे पुटिक प्रजानि (Mya)
(६) वलयिन (Annelid) जैसे सागरीय मूस (Sea mouse)
(७) कठिनन (Crustacea) जैसे अरित्रपाद (Copepod)
(८) शल्यपृष्ठा (Echinodermata) जैसे शल्यतारक (Star fish)
(९) प्रवालादय (Coelentera)
(१०) छिद्रिष्ठाति (Sponges) आदि आदि।

## (२) तलप्लावी जीव

## (ङ) तलप्लावी प्रदेश की प्रकृतिक विशेषताये

इस प्रदेश के जीवो को यद्यपि अध स्तर प्राप्त नही है, तथापि उन्हें सूर्यप्रकाश मिलता है। जहाँ तक जल की गति का सम्बन्ध है ज्वारभाटा यहाँ महत्वहीन है। इसके विपरीत धाराओं की यहाँ विशेष महत्ता है। ऐसे क्षेत्र जहाँ उष्ण एव शीतल धाराये मिलती है, तलप्लावी जीवो के लिये बहुत खतरनाक और प्राणघातक है। अल्पतापान्तर जीव तो तापक्रम मे आकस्मिक परिवर्तन होते ही मर जाते है। सागर-जल को दो स्तरो मे बाँटा जा सकता है—ऊपरी स्तर का जल उष्ण और हल्का होता है तथा निचले स्तर का जल अपेक्षाकृत शीतल और भारी। सागर के कोमलागी जीव इन दोनो विभागो को पृथक् करने वाले सन्धि-स्तर (Junction Layer) को पार नही कर पाते। डा० जोर्ट (Hjort) ने इस सन्धि-स्तर को जहाँ जीवित और मृत प्लवक एकत्र होते रहते है, कूट-नितल (False Bottom) की सज्ञा दी है। जीव-जन्तुओ की सख्या की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

जहाँ तक जल के तापक्रम का सम्बन्ध है, जो कुछ वेला-प्रदेश के विषय मे कहा गया, वह तलप्लावन प्रदेश मे भी घटित होता है। हाँ, इतना अवश्य है, कि १००० फैदम के नीचे तापक्रम प्राय स्थिर है।

जहाँ तक प्रकाश का सम्बन्ध है, प्रयोगो द्वारा यह सिद्ध हो चुका है, कि जल मे ५० फैदम की गहराई तक प्राय प्रत्येक प्रकार की रश्मियाँ प्रविष्ट हो जाती है।

३०० फैदम की गहराई पर लाल और हरी रश्मियों का लोप हो जाता है, किन्तु नीली और बैंगनी रश्मियाँ रहती हैं। १०० फैदम के उपरांत अन्धकार है।

उपर्युक्त कथन मध्य-अक्षांशों के लिये है। अन्य प्रदेशों में सूर्य की किरणों द्वारा निर्मित कोण के अनुसार अन्तर पाये जाते हैं।

तलप्लावी जीवों का मुख्य आहार उद्भिद-प्लवक (Phyto plankton) है, जो जलपृष्ठ पर तैरनेवाली सूक्ष्म आप्यकाः है। जल में ५० फैदम की गहराई तक ये बहुलता से पाई जाती हैं।

## (ख) तलप्लावी जीवों का वर्गीकरण

वितरण के विचार से तलप्लावी जीवों को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है :—

१ पृष्ठ के जीव (Surface forms )—ऊपर के १०० फैदम जल में ये बहुत पाये जाते हैं। इनमें प्लवक (Plankton) एवं तलप्लावी डिम्भ (Pelagic. Larva) प्रमुख है।

२ मध्य तल प्लावी (Meso pelagic) अथवा मध्यान्तर के जीव—ये प्रकाश की निम्नतम सीमा जो अक्षांश के अनुसार बदलती रहती है के निकट पाये जाते हैं। रजत मीन ( Silvery fish ) आदि इसी विभाग के अन्तर्गत हैं।

३ गम्भीर तल प्लावी जीव (Bathy pelagic forms)—ये प्रकाश-सीमा के नीचे पाये जाते हैं, यद्यपि सागर-नितल पर ये अनुपस्थित हैं। इनके उदाहरण दीप्तरक्त चिंगट (Brigt red prawn), कृष्ण मीन (Black fish) आदि हैं।

पृष्ठ के जीव मणिभ सदृश उज्जबल, नीले अथवा हल्के बैंगनी वर्ण के होते हैं। ऐसे प्रदेशों के जीव जहाँ केवल नीली अथवा बैंगनी रश्मियाँ पहुँचती हैं, रजत वर्ण के हैं। अधिक नीचे रहनेवाले जीव लाल अथवा काले हैं।

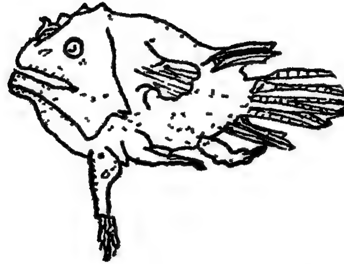
## (३) अथाह सागरीय जीव

अथाह सागर में एक ऐसी विशेषता पाई जाती है, जो अन्य भागों में नहीं पाई जाती। वह यह है—कि यहाँ का जल स्थायी रूप से शांत रहता है। यह प्रदेश छिद्रिप्ठाति (Sponge) के विकास के लिये अत्यन्त अनुकूल है, अतएव यहाँ पर उनका बाहुल्य है। अधःस्तर (Substratum) पर ये अवद्धरूप से पड़े रहते हैं। इन जीवों के ऊपर जल का मीलों ऊँचा स्तर रहने से दबाव भी बहुत रहता है। यद्यपि इस प्रदेश में पेड़-पौधे नहीं हैं, तो भी ऑक्सीजन का प्राचुर्य है। इसका कारण विवृत महासागरों में होने वाला जल का परिवहण (Circulation ) है। इसके विपरीत समावृत सागरों में ऑक्सीजन का अभाव है। उदाहरण के लिये काले सागर (Black Sea) में इतनी गहराई पर हाइड्रोजन सल्फाइड ( $H_2$ 6) की अधिकता और ऑक्सिजन की न्यूनता के कारण जीवजन्तु नहीं पाये जाते। भूमध्यसागर की दशा इतनी परम ( Extreme ) नहीं है, तो भी इतनी गहराई में जीवों का वहां भी अभाव है। प्रकाश तो यहां तक पहुँचता नहीं, जल भी स्थायी रूप से शीतल है; ऐसी दशा में जो जीवजन्तु ऊपरी प्रदेशों से मृत्यु प्राप्त कर नीचे गिर जाते हैं वही यहाँ भोजन के मुख्य साधन हैं। इस प्रदेश के बहुत से जीव पंक-भक्षी हैं। सागर-नितल में रहनेवाले जीवों की संख्या विवादास्पद विषय है। इस सम्बन्ध में अभी तक कोई सन्तोषप्रद निर्णय नहीं हो सका है। यह निर्विवाद है, कि इस प्रदेश में अपृष्ठवंशी

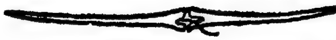
( Invertebrate ) जीव बहुत पाये जाते हैं, विशेषकर खटीगोल निश्च्याब ( Globigerina Ooze ) से ढके क्षेत्रो मे। इन अपृष्ठवशी जीवो मे छिद्रिष्ठाति ( Sponge) और शल्यपृष्ठा (Echinoderms) प्रमुख है। कठिनन ( Crustacea ) प्रजाति मे चूर्णप्रावारा ( Molluscs ) एव कर्कट (Crabs) कम पाये जाते है। छिद्रिष्ठाति मे सैकतीय रूप ( Siliceous forms ) अधिक पाये जाते है, चूर्णिय (Carcareous) कम। शल्यपृष्ठा ( Echidoderms ) की प्राय सभी जातियाँ पाई जाती है। सागरीय कठमूषो (Sea urchins) मे अनियमित आकृति के जीव बहुत पाये जाते है विशेषकर निखातक (Fossil) के रूप मे। लाल रग की चिकनी मिट्टी (Red Clay) के प्रदेश मे वलयिन (Annelids) बहुत पाई जाती है। विस्तृत क्षेत्र मे समान दशाये विद्यमान होने के कारण अथाह सागरीय जीवो का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यहाँ के जीव बहुत कुछ ध्रुवीय जीवो से मिलते जुलते है क्योकि दोनो के तापक्रम मे साम्य है।

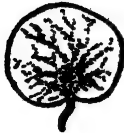


क—सागरीय अश्व



ख–अथाह सागर की मछली









ग—घूर्णकशा (Dinoflagellates)   घ—छिद्रिष्ठाति (Sponge).   ङ—शुक्ति (Oyster)

चित्र २४०—महासागरीय जीव एव वनस्पति

इसके विकास के लिए जल का लवणमय एव शीतल होना आवश्यक है, अतएव उच्च-अक्षाशो के समुद्र तट मे ही यह पाई जाती है।

### (घ) रक्त आप्यका

रग की दृष्टि से सागरीय आप्यकाओ मे यह सबसे अधिक सुन्दर और आकर्षक है। इसका भौगोलिक विस्तार बहुत है, किन्तु शीतोष्ण सागरो मे यह प्रचुरता से पाई जाती हे। इसके लम्बवत् वितरण के अध्ययन से ज्ञात होता हे कि इसके विकास के लिए अवमन्दित प्रकाश (Subdued light) आवश्यक है।

### (ड) पीतहरि आप्यका

पूर्वोक्त आप्यकाओ के असमान इस श्रेणी के पादप मुख्यत प्लावी है। प्रमुख जातियो मे अधिक महत्वपूर्ण ये है —

(१) युक्ताप्यति (Diatom)—यह सामान्यत वेलाप्रदेश के नितल मे पाई जाती है।

(२) घूर्णकशा (Dinoflagellata)—यह प्राय सभी सागरो मे पाई जाती हे, किन्तु इसका सर्वाधिक विकास उष्णजल ही मे पाया जाता हे। चित्र २४० मे इसे प्रदर्शित किया गया है।

## (२) महासागरों के उच्चर पादप अथवा बीजोद्भिद

यद्यपि महासागरो मे पादप-जगत की दो प्रसृटियो अर्थात् हरितोद्भिद (Bryophyta) और पर्णागादिका (Pterido phyta) का अभाव है, तथापि सर्वोच्च पादप बीजोद्भिद (Spermatophyta) के पुष्पी पादपो [सवृतबीज (Angiosperms)] की तीस जातियाँ पाई जाती है।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

# महासागरों का मानवीय एवं आर्थिक महत्व

जब हम यह अनुभव करते है कि हमारी सभी मुख्य और अधिकाश गौण आवश्यकताओ की पूर्ति स्थल करता है, तब ऐसा लगता है, कि भूपृष्ठ का तीन-चौथाई भाग जलाच्छादित होने से व्यर्थ चला गया। काश महासागरो के स्थान पर स्थल होता तो जनसख्या की वृद्धि की समस्या स्वत हल हो जाती।

गभीर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, कि उपर्युक्त धारणा भ्रामक है और महासागर मनुष्य के लिए उतने ही आवश्यक एव लाभदायक है, जितना कि स्थल है। निम्नाकित दस दिशाओ मे वे मानवता के लिए अत्यन्त कल्याणकारी है –

(१) वर्षा के दाता
(२) तापक्रम के यामक
(३) स्वास्थ्य की दृष्टि से
(४) खनिजो के भडार
(५) मछलियो के आगार
(६) तृणक एव प्लवक के कोष
(७) अवरोधक के रूप मे
(८) व्यापार के विचार से
(९) जलविद्युत के अपरिमित भडार
(१०) प्रवाल, छिद्रिष्ठ, मूगा-मोती, तेल एव उपसृष्ट पदार्थो के उत्पादक।

## (१) वर्षा के दाता

वर्षा पर ही हमारा जीवन निर्भर है और वर्षा का जल महासागर प्रदान करते है। विशालकाय महाद्वीपो के मध्यभाग मे जो वर्षा होती है, उसके लिए भी अनिवार्य जलवाष्प दूरस्थित महासागर ही प्रदान करते है। वर्षा के विचार से स्थल के जलाशयो मे होने वाला वाष्पीकरण उपेक्षणीय है। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि पृथ्वी की समस्त नदियो, तालाबो और झीलो को सुखा दिया जावे, तो उससे जो वर्षा होगी वह पृथ्वी की औसत वार्षिक वर्षा का केवल पन्द्रहवाँ भाग होगी।

## (२) तापक्रम के यामक

तापक्रम के यामक के रूप मे महासागरो का विशेष महत्व है। वे स्थल को केवल आर्द्रता ही नही प्रदान करते वरन् उसे अति उष्ण और अति शीतल होने से भी बचाते है। स्थल की अपेक्षा जल का आपेक्षिक ताप अधिक है, जिससे वह उष्ण भी अपेक्षाकृत देर से होता है और शीतल भी। फिर जल के सहज चलिष्णु (Mobile) होने के कारण उसमे धाराये शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। ये धाराये उष्ण कटिबन्ध

के उष्ण जल को शीतल कटिबन्ध मे बहा ले जाती है और शीतल कटिबन्ध के शीतल जल को उष्ण कटिबन्ध में बहा ले आती है। उपर्युक्त दोनो कारणो से अर्थात् स्थल की अपेक्षा आपेक्षिक ताप अधिक होने से और चलिष्णु होने से—महासागर गर्मियो मे स्थल की अपेक्षा ठंडे रहते है और जाडो मे गरम। फल यह होता है कि, महासागरो से आने वाली हवाये स्थल के तापक्रम को समशीतोष्ण (Moderate) बनाने मे सहायक होती है। निम्नांकित तालिका से यह प्रभाव स्पष्ट होगा—

| | जुलाई तापक्रम | जनवरी तापक्रम |
|---|---|---|
| बम्बई | ८३° फ० | ७४° फ० |
| लाहौर | ९५° फ० | ५४° फ० |

## (३) स्वास्थ्य की दृष्टि से

स्वास्थ्य के विचार से महासागर पाँच दिशाओ मे सहायक होता है —

१ वह तापक्रम की अति को रोकता है।

२ वह शुष्कता की अति को रोकता है।

३ उसके कारण लघु कालान्तर पर तापक्रम मे परिवर्तन होते रहते है।

४ समुद्रतट की नैसर्गिक सुषमा मनुष्य को नहाने, तैरने, सैर-सपाटे करने, नाव पर जल विहार करने और विभिन्न स्वास्थ्यप्रद क्रीडाओ मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती है।

५ महासागर आश्चर्यजनक शोधक ( Purifier ) है। स्थल से आने वाली समस्त अशुद्धियो ( Impurities ) का महासागरो में शोध हो जाता है।

महासागर के ये लाभदायक प्रभाव तटीय क्षेत्र तक ही सीमित है। उपर्युक्त दिशाओ मे से प्रथम तीन सागरीय वायु के कारण है, जिसका विवेचन ऊपर हो चुका है। सागरीय समीर तटीय प्रदेश को समशीतोष्ण बनाये रखती है, जिससे वहाँ के निवासी आन्तरिक भागो की अपेक्षा अधिक कार्यक्षम होते है। इसके अतिरिक्त सागरीय समीर मच्छर आदि स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओ को भगाने मे सहायक होती है। यही कारण है, कि विषुवतीय अफ्रीका के तटीय प्रदेशो के निवासी अपनी उच्चस्थित झोपडियाँ इस प्रकार बनाते है कि वे दोपहर में समुद्र से चलनेवाली स्वास्थ्यप्रद समीर से पूर्ण लाभ उठा सकें।

महासागर का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य मलप्रवाह का अपवहन है। मलप्रवाह की ऐसी व्यवस्था करना कि वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध न हो—आज एक जटिल एव व्ययजनित समस्या है। सामान्यत निकट के जलाशयो मे मल प्रवाहित कर दिया जाता है। इस प्रकार जलाशय दूषित हो जाता है और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होता है। ऐसे सागरतट जहाँ प्रबल ज्वारभाटा होता हो, मलप्रवाह के लिये अत्यन्त अनुकूल है।

## (४) खनिजों के भण्डार

सागरजल का ३ ५ प्रतिशत भाग (भार में) ऐसे ठोस पदार्थों द्वारा रचित है, जो उसमे घोल के रूप मे विद्यमान है। नदियाँ अपने जल के साथ घोल के रूप

मे अनेक खनिजो को सागर मे निरतर समर्पित करती रहती है। वाष्पीकरण द्वारा घोल का जल तो भाप बन जाता है, किंतु खनिज सागर मे एकत्र होते रहते है। इस प्रकार कालातर मे समुद्र मे अनेक लवण, चूर्ण एव रासायनिक यौगिक एकत्र हो गये है। यहाँ तक कि सोना चाँदी भी उसमे विद्यमान है, किंतु वे इतनी न्यून मात्रा मे है, कि उनका विदोहन (Exploitation) आर्थिक दृष्टि से सफल नही हो सकता। विशेषज्ञो का कथन है कि अन्धमहासागर के एक वर्गमील विस्तृत और ७६ फुट गहरे जल मे १४,७७३,००० पौड के मूल्य के रासायनिक पदार्थ विद्यमान है, जिनमें १२००० पौंड का केवल सोना-चाँदी होगा। इस मूल्य मे अलवण जल और उसमें घुली हुई गैसो का विचार नही किया गया है, अन्यथा इसमे विद्यमान कार्बन-डाइ ऑक्साइड से ही लाखो आइस-क्रीम तैयार किये जा सकते है। यह भी आगणन किया गया है, कि महासागरो मे लगभग २०००० टन रेडियम विद्यमान है। ट्रावनकोर के समुद्रतट की रेत मे थोरियम और मोनाजाइट नामक तेजोद्गर खनिज (Radio-active minerals) पाये जाते है।

## (५) मछलियों के आगार

युगो से मनुष्य के आहार में मछलियो का महत्वपूर्ण भाग रहा है। आज भी अनेक राष्ट्रो के भोजन में इनका विशेष स्थान है। आस्ट्रेलिया की वाणिज्य एव कृषि विभाग की एक विज्ञप्ति के अनुसार बहुत से सुअर और मुर्गियो के बच्चो को ह्वेल का मास खिलाया गया, जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा पडा। वे आशा से अधिक तगडे हो गये। विगत महायुद्ध के दिनो मे जर्मनी के नाजी नेताओ ने स्वय ह्वेल के आमिष का आहार किया था और उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की थी।

## ६ तृणक एवं प्लवक के कोष

### (क) तृणक

सागरीय तृणक का निम्नलिखित दिशाओ मे उपयोग होता है —

(१) खाद के रूप मे—इसकी महत्ता सर्वविदित है।

(२) रासायनिक पदार्थो के उत्पादन के लिये—जैसे कपिलाप्यक (Kelp) से आयडीन का निर्माण।

(३) जानवरो और मछलियो के आहार के रूप मे—सन् १९१४-१८ वाले महायुद्ध मे फ्रास मे खाद्यान्न के अभाव मे घोडो को तृणक दिया गया। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकला कि तृणक-भक्षक अश्व अन्य घोडो से अधिक स्वस्थ थे।

(४) मानव भोजन एव औषधि के रूप मे—जापान के निवासी अपने नित्य के भोजन मे तृणक का उपयोग करते है। गत महायुद्ध के पहले आस्ट्रेलिया की सरकार ने मनुष्य और जानवरो के आहार की दृष्टि से ५०० प्रकार की सागरीय तृणको की परीक्षा का आयोजन किया था। उसकी रिपोर्ट अत्यन्त अनुकूल रही। कुछ वर्ष पूर्व स्व० लॉयड जार्ज ने वेल्स की कन्याओ द्वारा बनाई गई तृणक की रोटियो की बड़ी प्रशसा की थी।

औषधि के रूप मे भी तृणक बहुमूल्य है। उदाहरण के लिये आयरलैंड मे छाती के दर्द के लिये इनका प्रयोग बहुत होता है। डाक्टरो का कथन है कि इनके जल मे स्नान करना भी स्वास्थ्यप्रद है।

(५) तृणको के अन्य बहुत से उपयोग हैं। इनसे रग बनाये जाते हैं। इनकी चटाई बनती है। इनमे ध्वनि-निरोध का विशिष्ट गुण है, जिससे लदन के कुछ हाटलों के फर्श मे इनका उपयोग किया गया है। इनके कारण एक खड की ध्वनि दूसरे खड मे नही जा पाती।

आहार की दृष्टि से प्लवक भी बहुमूल्य हैं। गत महायुद्ध मे खाद्यान्न के अभाव मे जर्मनी के सामुद्रिक प्राणिकीविदो ने अनेक प्लवको की परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि जीव-प्लवक सर्वोत्कृष्ट आमिष के समान और उद्‌भिद्-प्लवक नीवारिका (Rye) के आटे के समान स्वास्थ्यप्रद हैं।

महासागर अत्यन्त प्राचीन काल से अवरोधक के रूप मे महत्वपूर्ण रहे हैं। उनकी यह महत्ता अब घटती जा रही है। प्राचीन काल मे युगो तक किसी ने प्रशात और अधमहासागर को पार नही किया। नयी दुनिया और पुरानी दुनिया की पृष्ठभूमि मे यही रहस्य है। इसी कारण आस्ट्रेलिया के जीव एव पादप शेष जगत से भिन्न हैं। जलयानो के आविष्कार के पूर्व भारतवर्ष पर महासागर की दिशा से कभी आक्रमण नही हुआ। नैपोलियन का सैण्ट हैलेना नामक द्वीप मे निर्वासित किया जाना सागर का अवरोधक के रूप मे लाभ उठाने का ही एक उदाहरण है।

## ७ अवरोधक के रूप में

महासागर यदि प्राचीन काल मे अवरोधक के रूप मे महत्वपूर्ण थे, तो आधुनिक काल मे व्यापार की दृष्टि से वे और भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसके कारण निम्नाकित है —

१ ये स्वतत्र राजपथ है —
(क) जिनमे मार्ग-निर्माण का व्यय नही है।
(ख) जिनमे मार्ग के सधारण (Maintenance) का भी व्यय नही है।
और (ग) जो करो से उन्मुक्त हैं।

२ स्थल और वायु की अपेक्षा महासागरो मे शक्ति (Power) भी कम व्यय होती है।

३ जलयानो मे अपेक्षाकृत कम आदमियो से काम चल जाता है।

४ चलित्रो (Locomotives) की अपेक्षा जलयान के बनाने मे व्यय भी कम होता है।

५ स्थल और वायु की अपेक्षा जल में परिवाहन ( Transport ) भी सस्ता पडता है।

६ स्थल और वायु की अपेक्षा जल-परिवाहन मे सुरक्षा अधिक रहती है।

## ८ जलविद्युत के अपरिमित भण्डार

महासागर जल-विद्युत के अपरिमित भडार है। यदि ससार भर का कोयला, पेट्रोलियम और स्थल के विद्युत-साधन समाप्त हो जाय, तो महासागर उनकी पूर्ति कर सकते हैं। यही नही, इसस महासागरो के अपरिमित शक्ति भडार मे कोई विशेष अतर नही पडेगा। महासागरो की इस गुप्त और असीम शक्ति का सचयन तीन रीतियो से किया जा सकता है, जो उसके जल की गति, तापक्रम और ज्वार पर निर्भर है।

सागर तट पर उठने वाली विशालकाय लहरे उसकी महान शक्ति प्रकट करती है। इस शक्ति का यथार्थ अनुमान लगाना कठिन है। सागर के कटे हुये तट उच्छृग (Cliff) और रेत की असीम राशि इस शक्ति की महानता की द्योतक है लहरो की शक्ति सचय करने के लिए अनेक रीतियाँ सुझाई गई है। इनमे सबसे नवीन यत्र 'तरग-वहित्र' (WaveMctor) का प्रदर्शन गत महायुद्ध के पूर्व कैलिफोर्निया के बर्कले नामक नगर मे किया गया था। उससे दो अरब अश्व-शक्ति (H P) विद्युत उत्पन्न हुई। इस यत्र के अन्वेषक की यह धारणा है, कि बारह रभो (Cylinders) से युक्त इस यत्र के पूर्ण विकसित रूप से तीन सहस्र अश्व-शक्ति विद्युत पैदा की जा सकेगी।

जलशक्ति के उत्पादन का दूसरा साधन सागर के पृष्ठ और नितल के तापक्रम के अतर से लाभ उठाना है। इस गुप्त शक्ति की मात्रा का भी आगणन करना कठिन है। सन १९२८ ई० मे फ्रेंच वैज्ञानिक क्लॉड ने क्यूबा की मनटनजाज की खाडी मे इस रीति का प्रयोग किया। यहाँ पर पृष्ठ और नितल के तापक्रम मे २० सैन्टिग्रेड का अन्तर था। इस भाँति २० किलोवाट जलविद्युत उत्पन्न की जा सकी।

महासागर मे जलशक्ति का तृतीय साधन ज्वारभाटा है। प्रत्येक समुद्र तट पर दिन मे दो बार ज्वार आता है और वैज्ञानिको का यह अनुमान है कि ज्वार की आरोधन क्रिया (Braking action) मे बीस अरब अश्व-शक्ति विद्युत निहित है। आगणन द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि केवल ब्रिटेन के तट पर प्रति वर्ष विद्युत की १० अरब इकाइयाँ उत्पन्न की जा सकती है।

## ९ प्रवाल, छिद्रिष्ठ, मूंगा-मोती, तेल एवं अन्य उपसृष्ट पदार्थों के उत्पादक

### (क) प्रवाल

प्रवाल के आभूषण बनाये जाते है। औषधियो में भी इसका उपयोग होता है। टोना टुटका और सगुन के लिए भी ये काम मे लाये जाते है। उदाहरण के लिए अनेक लोगो की यह धारणा है, कि प्रवाल की माला पहन लेने से मनुष्य डूब नही सकता और वह रोग-मुक्त रहता है।

### (ख) छिद्रिष्ठ

शरीर का मैल छुटाने के लिये छिद्रिष्ठ का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से टर्की के छिद्रिष्ठ जगतविख्यात है। टर्किश-बाथ मे इनका उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त दीवाल, मेज-कुर्सी आदि भी छिद्रिष्ट से साफ किये जाते है। प्राचीन काल मे रोमन लोग भूमध्यसागर मे पाये जानेवाले 'गज-कर्ण' (Elephant Ear) नामक छिद्रिष्ठ से अपनी ढाले साफ किया करते थे। पश्चिमी अन्धमहासागर का ऊर्णा-छिद्रिष्ठ (Wool Sponge) सबसे कोमल माना जाता है।

### (ग) मूंगामोती

इस विषय मे अधिक कहना व्यर्थ है, यही कहना पर्याप्त होगा कि वर्तमान-काल मे मुगा-मोतियो का आभूषण के रूप मे इतना अधिक प्रयोग होने लगा है कि

ग्राहको की आवश्यकता की पूर्ति नही हो पाती। यही कारण है कि नकली मुगे मोती बनाये जाने लगे है।

## (घ) सीपी शख आदि

पूजापाठ करते समय हिन्दू लोग शख-ध्वनि करते है। कौडीके विविध उपयोग सर्वविदित है। बगाल मे महिलाओ की चूडियो और हार मे शख (Conch shell) का उपयोग होता है। वैद्य लोग सीपी से भस्म एव अन्य औषधियाँ बनाते है।

## (ङ) तेल

आज से हजार वर्ष पहले भी ह्वेल से तेल निकाला जाता था। स्वास्थ्यप्रद होने के अतिरिक्त जलाने के लिये भी यह उपयोगी है। कौड लिवर-ऑयल स्वास्थ्यप्रद होने से ही प्रसिद्धि पा सका है। शताब्दियो से सील मछली के तेल का उपयोग होता आ रहा है। बैरिंग जलडमरूमध्य की सील मछलियाँ ससार मे सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है।

## (च) अन्य उपसृष्ट पदार्थ

यदि महासागरो में पाये जाने वाले उपसृष्ट पदार्थो की विस्तृत विवेचना की जाय, तो केवल इसी विषय पर अनेक मोटे ग्रन्थ लिखे जा सकते है। यह विषय इतना विस्तृत है। यहाँ पर केवल ह्वेल मछली के उपसृष्ट पदार्थो का दिग्दर्शनमात्र कराया जा रहा है। उससे ही विषय की महत्ता प्रकट हो जायगी।

ह्वेल से हमे केवल मास और तेल ही नही मिलता, उसकी चरबी बहुमूल्य है, उसकी हड्डियो से हथियार बनाये जाते है, उसकी स्नायु से मछलीफसाने के लिये बसी बनाई जाती है, उसके पट्टे और चमडे के अनेक उपयोग है।

सागर मे पाये जानेवाले रासायनिक पदार्थो और खनिजो द्वारा लाखो उपयोगी वस्तुओ का निर्माण होता है। उनकी विवेचना यहाँ सम्भव नही है।

खण्ड ३

# अन्तरिक्ष

# THE ATMOSPHERE

## लेखक की ओर से

# निवेदन

प्रस्तुत खण्ड 'अन्तरिक्ष' मे वायुमण्डल का भौगोलिक अध्ययन किया गया है।

वायुमण्डल का बडा महत्व है। हम भोजन और जल के बिना भी पर्याप्त काल तक जीवित रह सकते है, किन्तु वायु के अभाव मे हमारा एक क्षण भी जीवित रहना असभव है। जीव-जन्तुओ एव पेड-पौधो का जीवन वायु पर ही निर्भर है। यह धारणा भ्रामक है कि सामुद्रिक जीवो को वायु की आवश्यकता नही पडती। उन्हे भी साँस लेने के लिये जलपृष्ठ के ऊपर आना पडता है अथवा वे पानी मे घुली हुई वायु का उपभोग करते हैं।

वायु के कण-कण की महत्ता है। हम धूलि-कणो को उपेक्षा की दृष्टि से देखते है, किन्तु यदि वायुमण्डल मे धूलि-कण न होते, तो वर्षा न होती और पृथ्वी पर जीवन सभव न होता।

वायु के एक बुलबुले का भी महत्व है। कुछ वर्ष पूर्व एक बुलबुले के कारण सम्पूर्ण भारत चिन्ताग्रस्त हो उठा था। स्व० सरदार पटल वायुयान द्वारा जयपुर जा रहे थे, उस समय पैट्रोल की टकी मे बुलबुला उत्पन्न हो जाने से वायुयान को नीचे उतारना अनिवार्य हो गया। तभी उस वायुयान का दिल्ली से बेतार के तार का सम्बन्ध टूट गया, जिससे समस्त भारत मे चिन्ता की लहर व्याप्त हो गई। वायुयान चालक के कौशल्य से भारत के 'लौह पुरुष' के जीवन की रक्षा हो सकी। इस घटना से वायु के लघुतम अश की महत्ता पर प्रकाश पडता है।

कृषि, वन-विकास, उद्योग, यातायात सभी वायुमण्डल सम्बन्धी दशाओ पर निर्भर है।

यह सन्तोष का विषय है कि वायुमण्डल मे पैदल पहुँचने की सर्वोच्च सभव ऊँचाई—एक भारतीय श्री टैनसिंह ने उपलब्ध की। यही नही भारतीय पक्षियो तक ने वायुमण्डल की उच्चतम सीमा का स्पर्श किया है। रामचरितमानस के उल्लेखनीय चरित्र जटायु के भाई सम्पाती का ही तो यह कथन है—

'हम द्वौ बन्धु प्रथम तरुनाई। गगन गये रवि निकट उडाई ॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मै अभिमानी रवि निअरावा ॥
जरे पख अति तेज अपारा। परेउ भूमि करि घोर चिकारा ॥'

इस खण्ड की रचना मे सहायक ग्रन्थो मे फिलिप लेक की रचना मुझे सर्वोत्कृष्ट लगी है मेरी व्यक्तिगत धारणा तो यह है, कि बी० ए०—बी० एस० सी० कक्षा के छात्रो की दृष्टि से भौतिक भूगोल के क्षेत्र मे लेक की कृति इस युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। कदाचित 'अन्तरिक्ष' खण्ड उनकी छाया से उन्मुक्त नही रह सका है। उनके प्रति मेरा ऋण इतना छोटा नही कि आभार-प्रदर्शन से मार्जित हो जाय।

—जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव

## समर्पण

आदरणीय

**प्रिन्सिपल हृदय नारायण सिंहजी**

एम० एल० सी०

तिलकधारी महाविद्यालय

जौनपुर

के

कर-कमलों में

पृष्ठ २६५ के सामने



चित्र २४१—एवरेस्ट विजेता

[ बायीं ओर : श्री टैनसिंह। दाहिनी ओर : सर एडमण्ड हिलारी, कर्नल सर जौन हन्ट (हाथ ऊपर उठाये हुए) तथा श्री टैनसिंह। ]

` सैंतीसवां परिच्छेद

# वायुमण्डल का सामान्य परिचय

## १ वायुमंडल क्या है ?

पृथ्वी पर सर्वत्र—जलमण्डल एव स्थलमडल दोनो ही के ऊपर वायु का आवरण है। इसकी ऊँचाई लगभग दो सौ मील है। इसी को हम 'वायुमण्डल (Atmosphere) कहते है। यदि पृथ्वी को एक फुट के व्यास के गोले द्वारा प्रदर्शित किया जाय, तो उस पर वायुमण्डल की ऊँचाई ३ इच से भी कम होगी। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण वायु का यह स्तर सदैव उससे सटा रहता है और कभी भी उससे विलग नही होता। पृथ्वी के साथ साथ वायुमण्डल भी घूमता है।



चित्र २४२—पृथ्वी के प्रमुख विभाग

## २ वायुमडल की महत्ता

वायुमण्डल का बडा महत्त्व है। जीव-जन्तुओ एव पेड-पौधो का जीवन वायु पर निर्भर है। यदि वायुमण्डल न होता तो पृथ्वी पर जीवन ही न होता।

जिस प्रकार महासागरो के नितल मे जीव-जन्तु रहते है, ठीक वैसी ही स्थिति हम लोगो की वायुमण्डल मे है। वायुमण्डल मे हम जन्म लेते है, वायुमण्डल मे हम जीवन व्यतीत करते है और वायुमण्डल मे ही हम मृत्यु को प्राप्त करते है।

## ३ वायुमडल के अन्वेषण की कठिनाइयाँ

जलवायु और भौतिक भूगोल सम्बन्धी सभी प्रक्रियाये वायुमण्डल ही में घटित होती है। सक्षेप मे वायुमण्डल भौतिक भूगोल का मूल आधार है।

मनुष्य वायुमण्डल के निम्नतम स्तर का निवासी है। यहाँ रहते-रहते उसके शरीर के अग इतने अधिक अभ्यस्त हो गए है, कि वे वायुमण्डल के ऊपरी स्तरो मे सक्रिय रहने मे नितान्त असमर्थ है। अतएव मनुष्य के लिए वायुमण्डल के ऊपरी भाग का अन्वेषण करना दुष्कर समस्या है। एवरेस्ट विजेता टैनसिंह के लिए बर्फ पर चढना उतना कठिन नही था, जितना विरल वायु मे अपने अगो को क्रियाशील रखना।

## ४ वायु का दबाव

वायुमण्डल मे विद्यमान वायु का भार लगभग १,१८,५०,००,००,००,००,००,००,००० पौण्ड है।

भूपृष्ठ के निकट वायु सबसे अधिक स्थूल है और वायुमण्डल मे हम जितने ऊपर

जाते हैं वायु उतनी ही सूक्ष्म होती जाती है। साढे तीन मील की ऊँचाई पर वायुभार लगभग आधा रह जाता है और सात मील की ऊँचाई पर तो वह प्राय चौथाई ही रह जाता है।

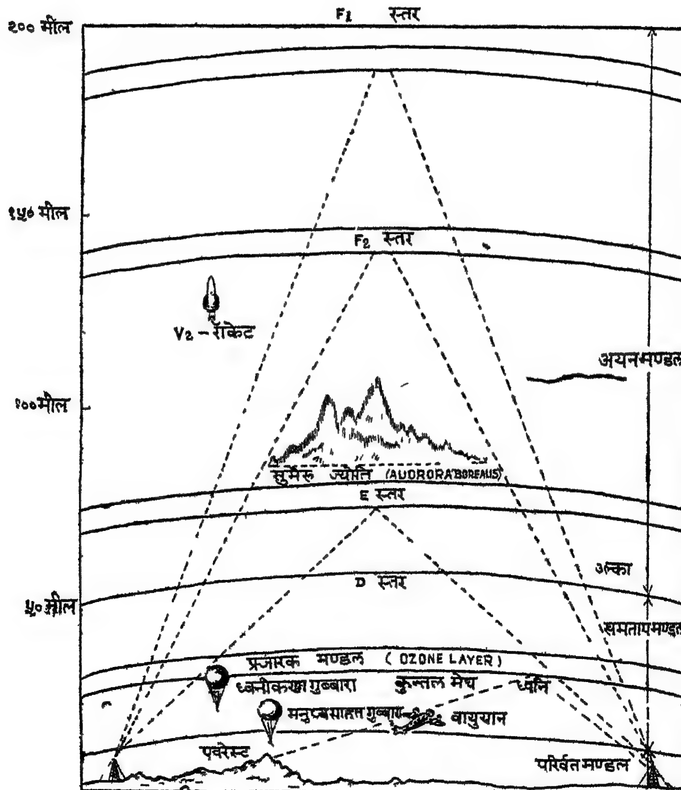
### ५ वायुमडल मे मनुष्य द्वारा पहुँची सबसे अधिक ऊँचाई

वायुमण्डल के ऊपरी भाग के सम्बन्ध मे हमारा ज्ञान बडा ही सीमित और अपूर्ण है। गुब्बारे (Balloon) द्वारा मनुष्य अधिक से अधिक १४ मील की ऊँचाई तक पहुँच सका है। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चका है वायुमण्डल की अगणित ऊँचाई लगभग दो सौ मील है। इस दृष्टि से १४ मील की उँचाई बहुत कम है।

मनुष्य बडा महत्त्वाकाक्षी है। वह विज्ञान के नवीनतम आविष्कार रैडर की सहायता से चन्द्रमा तक पहुँचने का स्वप्न देख रहा है।

### ६. वायुमडल के स्तर

जैसा कि चित्र २४३ से स्पष्ट होगा. वायुमण्डल मे वायु की व्यवस्था निम्नाकित स्तरो मे है —




चित्र २४३—वायुमण्डल के स्तर

(१) परिवर्तमण्डल (Troposphere)
(२) समतापमण्डल (Stratosphere)
(३) अँयनमण्डल (Ionosphere)

(१) **परिवर्तमण्डल**—यह वायुमण्डल का निम्नतम स्तर है। इसकी औसत ऊँचाई लगभग ७·५ मील अथवा १२ किलोमीटर है। इस स्तर मे ज्यो-ज्यो ऊँचाई बढती जाती है, त्यो-त्यो तापमान घटता जाता है। इसीलिये इसका नाम परिवर्तमण्डल रखा गया है। इसमे प्रत्येक १ किलोमीटर की ऊँचाई पर तापक्रम ६° सैण्टिग्रेड (अथवा प्रत्येक ३२० फुट की ऊचाई पर तापक्रम १° फ०) घटता जाता है। परिवर्तमण्डल की ऊपरी सीमा पर वायुभार धरातल की तुलना मे चौथाई रह जाता है। इस स्तर मे तापक्रम, वायु का वेग एव दिशा, बदली, वृष्टि, आर्द्रता आदि ऋतुसम्बन्धी तत्वो के महान विभेदन पाये जाते है। आँधियाँ और तूफान इसी स्तर तक सीमित है। मनुष्य-चालित गुब्बारे एव विशेष प्रकार से सज्जित वायुयान इसकी ऊपरी सीमा तक पहुँच सके है।

(२) **समतापमण्डल**—वायुमण्डल के दूसरे स्तर का नाम समतापमण्डल है। इसे यह सज्ञा इसलिये दी गई कि इसमे तापक्रम प्राय समान रहता है। परिवर्तमण्डल और समतापमण्डल की विभाजक सीमा को परिवर्तसीमान्त ( Tropopause ) कहते है। इसकी ऊँचाई विषुवतरेखा पर लगभग १० मील, सयुक्त राज्य अमरीका के ऊपर लगभग७ मील तथा घ्रुवो पर ५ मील है। समतापमण्डल की ऊपरी सीमा धरातल से ३५ मील से लेकर ५० मील तक की ऊँचाई पर पाई जाती है। इस ऊपरी सीमा पर वायुभार धरातल की तुलना मे १/८०० रह जाता है। यहाँ पर वायु का भार इतना क्षीण हो जाता है कि वायुयान अथवा गुब्बारे के उडने का प्रश्न ही नही उठता केवल विस्फोटन की प्रतिक्रिया द्वारा रॉकेट अथवा क्षिप्र विमान (Jet Plane ) यहाँ पहुँच सके है।

वायुमण्डल मे ४० और ५० किलोमीटर की ऊँचाई के बीच मे ओजोन् (Ozone) का बाहुल्य रहता है। अतएव इस स्तर का नाम ओजोन मण्डल ( Ozonosphere ) रख दिया गया है।

(३) अयनमण्डल (Ionosphere)—यह वायुमण्डल का सबसे ऊपर वाला स्तर है। रेडियो की तरगो पर इस स्तर का विशेष प्रभाव पडता है। इन्ही तरगो के कारण इसका अनुसन्धान हुआ है। धरातल से बाहर की ओर अग्रसर होने वाली रेडियो की तरग जब इस स्तर मे पहुँचती है, तब उनमे परावर्त्तन होता है। विभिन्न तरग दैर्घ्य (Wave length) की तरगे विभिन्न ऊँचाइयो पर परावर्त्तित होती है। ३०० से लेकर ४०० मीटर लम्बी रेडियो–तरगे ७० मील की ऊँचाई पर पहुँचकर परावर्त्तित होती है। परावर्त्तन के इस स्तर को कैनैली-हैविसाइड (Kennelly-Heaviside) अथवा E-स्तर कहते है। इसी प्रकार १४० मील की ऊँचाई पर स्थित स्तर को, जो अपेक्षाकृत छोटी तरगो को परावर्त्तित करता है, एपिलटन (Appleton) अथवा F-I स्तर कहते है। परावर्त्तन के स्तर ऋतु एव काल के अनुसार ऊपर नीचे खिसकते रहते है।

## ७ वायुमडल की सरचना

वायुमण्डल मे जलवाष्प की मात्रा प्रत्येक स्थान पर भिन्न है। उसके अतिरिक्त वायु की सरचना प्राय सर्वत्र समान है और इस प्रकार है —

| | प्रतिशत (आयतन) |
|---|---|
| नाइट्रोजन | ७८ ०३ |
| ऑक्सीजन | २० ९९ |
| आर्गन | ० ९४ |
| कार्बन डाइऑक्साइड | ० ०३ |
| हाइड्रोजन | ० ०१ |

लगभग २०,००० फुट की ऊँचाई तक उपर्युक्त सरचना पाई जाती है। इसके अनन्तर स्थूल गैसो की मात्रा कम होती जाती है और सूक्ष्म गैसो की मात्रा बढती जाती है।

जलवाष्प वायुमण्डल के निम्नतम स्तर तक ही सीमित है। जल-विभागो (जैसे महासागर, सागर, झील, तडाग, नदी आदि) के निकट यह अधिक मात्रा में पाई जाती है।

कार्बन डाइऑक्साइड, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन क्रमश १२, ६८ और ८० मील की ऊँचाई पर लुप्त हो जाती है।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

# वायुमण्डल के द्बाव का ऊँचाई और हवाओं से सम्बन्ध

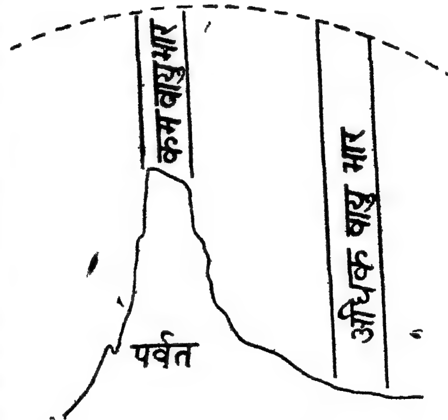
## १ वायुमडल का दबाव

अन्य पदार्थों की भाति वायु मे भी भार होता है। इस कथन को एक साधारण प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है—

**प्रयोग**—फुटबाल का एक खाली ब्लैडर लीजिए। उसे तोल लीजिये। फिर उसमे पम्प द्वारा हवा भरिए और दुबारा तौलिए। विदित होगा कि हवा भर देने से ब्लैडर का भार बढ गया। इससे सिद्ध है, कि वायु मे भार होता है। पहली बार जब ब्लैडर तोला गया तब भी उसमे हवा थी और यह कहना अशुद्ध है कि ब्लैडर खाली था। दूसरी बार तोलते समय उसमे हवा अधिक थी। दोनो भारो का अन्तर भरी गई हवा का भार प्रदर्शित करता है।

वायुमण्डल के दवाव का अर्थ है किसी स्थान के इकाई क्षेत्रफल पर वायु-मण्डल के स्तम्भ का भार। उदाहरण के लिये सागर-समतल पर प्रति वर्ग इच भूमि पर वायुमण्डल का जो स्तम्भ रहता है, उसका भार लगभग १४ ७ पौण्ड होता है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि किसी भी समतल पर वायुमण्डल का दबाव उसके ऊपर वायु का भार होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ज्यो-ज्यो ऊँचाई बढती जाती है, त्यो-त्यो वायुमण्डल का दबाव घटता जाता है। चित्र से यह कथन स्पष्ट होगा। हम यह जानते है कि वायुमण्डल के निचले भाग मे घनत्व ऊपरी भाग की अपेक्षा अधिक है, अतएव भूपृष्ठ के निकट ऊँचाई के साथ दबाव शीघ्रता से घटता है किन्तु वायुमण्डल मे अधिक ऊँचाई पर दबाव धीरे-धीरे घटता है।




चित्र २४४—दबाव और ऊँचाई का सम्बन्ध

## २ बैरोमीटर का दबाव

वायुमण्डल का दबाव जिस यत्र से नापा जाता है, उसे बैरोमीटर कहते है। बैरोमीटर अनेक प्रकार के होते है। फौरटिन्स बैरोमीटर मे लम्बवत् कॉच की नली मे पारा भरा रहता है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया गया है। इस पारे के स्तम्भ की ऊँचाई दबाव दर्शाती है। किसी भी स्थान पर वायुमण्डल का दबाव

वास्तव मे उतना ही होता है, जितना कि बैरोमीटर के पारे का दबाव। यही कारण है कि वायुमण्डल के दवाव को बैरोमीटर के पारे की ऊँचाई द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। सागर-समतल पर बैरोमीटर के पारे की ऊँचाई २९ ९ इच रहती है। इसी तथ्य को हम इस प्रकार प्रकट करते है कि समुद्र के धरातल पर बैरोमीटर अथवा वायुमण्डल का दवाव २९ ९ इच है। यदि हम २९ ९ इच ऊँचे पारे के स्तम्भ का जिसका अनुप्रस्थ प्रच्छेद (Cross-Section) एक वर्ग इच हो, तोले तो उसका भार १४·७ पौण्ड होगा। अतएव दबाव प्रदर्शित करने की दो रीतियाँ है —(१) सागर समतल पर वायुमण्डल का दबाव १४७ पौण्ड प्रति वर्ग इच है (२) सागर समतल पर बैरोमीटर का दबाव २९.९ इच है। दोनो का अर्थ एक ही है।

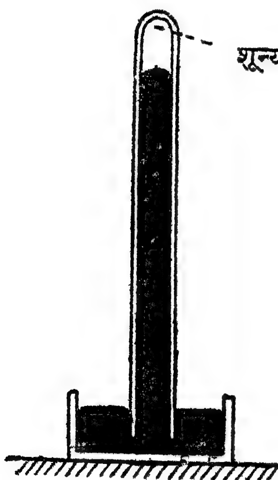
## ३ दवाव का नापना

यह तो ऊपर उल्लेख हो ही चुका है कि वायुमण्डल का दबाव बैरोमीटर द्वारा नापा जाता है। बैरोमीटर की तीन मुख्य प्रकारें है —

(१) पारे का सामान्य बैरोमीटर
(२) फौरटिन का बैरोमीटर
(३) अनेरौयड बैरोमीटर

### (१) पारे का सामान्य बैरोमीटर

इसकी रचना बडी सरल है। कोई भी व्यक्ति इसे आसानी से बना सकता है। लगभग ३६ इच लम्बी काँच की एक नली लीजिए, जिसका अनुप्रस्थ प्रच्छेद (Cross Section) एक वर्ग इच हो और जिसका एक सिरा बन्द हो। उसमे मुह तक पारा भर दीजिये और फिर उँगली से उसका मुह बन्द करके एक ऐसे बर्तन मे जिसमे पारा हो उसे इस प्रकार उल्टा खडा कीजिये कि नली का उँगली से बन्द मुह बर्तन के पारे मे काफी डूब जाय। चित्र से यह कथन स्पष्ट होगा। फिर उँगली को हटा लीजिए। उँगली हटाते ही नली का पारा कुछ नीचे की ओर जायगा और ऊपर शून्य (Vacuum) स्थापित हो जायगा। मापक द्वारा नापने से ज्ञात होगा, कि नली मे बर्तन के पारे के समतल से लगभग ३० इच ऊँचा पारा है। पारे के स्तम्भ की यह ऊँचाई वायुमण्डल का दबाव प्रदर्शित करती है।



चित्र २४५—पारे का सामान्य बैरोमीटर

### (२) फौरटिन का बैरोमीटर

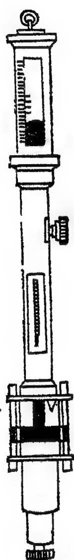
### (Fortin's Barometer)

पारे के सामान्य बैरोमीटर में, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, बर्तन के पारे का समतल तथा नली के पारे का समतल दोनो ही—वायुमण्डल की दशा के परिवर्तनो के अनुसार ऊँचे-नीचे होते रहते हैं। अतएव वायुमण्डल का दबाव ज्ञात करने के लिये दोनो समतलो का विचार करना पडता है। वास्तविक

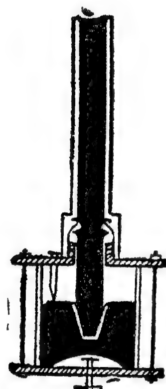
दबाव इनका अन्तर होता है। यदि किसी प्रकार बर्तन के पारे का समतल स्थिर रखा जा सके, तो हमे केवल नली के पारे की ऊँचाई ज्ञात करना रह जाय। फौरटिन के बैरोमीटर मे यही सुविधा है। इसमे बर्तन का नितल चमडे का होता है, जिसे स्क्रू द्वारा ऊपर नीचे किया जा सकता है। नली पर इच और सैण्टीमीटर के चिन्ह अकित रहते है। जैसा कि चित्र २४६ से स्पष्ट होगा बैरोमीटर के निचले भाग मे हाथी दॉत की नोक लगी रहती है। बैरोमीटर के अक इसी नोक से शुरू होते है, अर्थात नोक पर शून्य का चिन्ह होता है। दबाव नापने से पहले नीचे के स्क्रू को इस प्रकार घुमाया जाता है कि बर्तन का पारा हाथीदॉत की सुई की नोक का स्पर्श करने लगे।

## (३) अनेरौयड बैरोमीटर

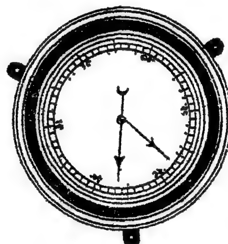
इस बैरोमीटर मे पारा अथवा अन्य किसी द्रव का उपयोग नही होता। इसका सबसे बडा गुण यह है कि इसे सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकता है। यह धातु का बेलनाकार ऐसा डिब्बा होता है, जिसमे से कुछ हवा निकाली गई हो। इसमे ऐसी व्यवस्था रहती है, कि वायुमण्डल का भार बढनें से जब डिब्बे का ऊपरी भाग नीचे दबता है अथवा दबाव घटने से जब वह ऊपर उठता है, तब उसमे लगी हुई सुई प्रभावित होती है और अकित मापक पर दबाव प्रदर्शित करती है।



चित्र २४६—फौरटिन का बैरोमीटर



चित्र २४७-फौरटिन के बैरोमीटर का निचला भाग



चित्र २४८—अनैरौयड बैरोमीटर

## (४) बैरोमीटर द्वारा ऊँचाई ज्ञात करना

किसी भी पहाडी की चोटी पर तलहटी (Foot) की अपेक्षा वायुमण्डल का दबाव कम होता है, क्योकि चोटी पर वायुमण्डल के स्तर की ऊँचाई तलहटी की अपेक्षा कम होती है। चित्र २४४ से यह कथन स्पष्ट होगा। अवलोकित तथ्यो से ज्ञात होता है कि प्रत्येक ९ फुट की ऊँचाई पर वायु का दबाव $\frac{१}{१००}$ इच घट जाता है।

अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है —

पहाडी की ऊँचाई=

$$\frac{\text{तलहटी पर वायु का दबाव (इचो मे)-चोटी पर वायु का दबाव (इचो मे)}}{१/१००} \times ९$$

यदि वायुमण्डल का घनत्व सर्वत्र समान होता, तो हम उपर्युक्त सूत्र की सहायता से किसी भी स्थान की ऊँचाई ज्ञात कर सकते थे, किन्तु वास्तविकता यह नही है। वायु का घनत्व तापक्रम पर आधारित है और तापक्रम ऊँचाई के साथ घटता जाता है। अतएव हमे वायु का औसत दबाव क और औसत तापक्रम ख जानना अभीष्ट है —

$$\text{क} = \frac{\text{तलहटी पर वायु का दबाव+चोटी पर वायु का दबाव}}{२}$$

$$\text{ख} = \frac{\text{तलहटी का तापक्रम + चोटी का तापक्रम}}{२}$$

तब हम निम्नाकित सारिणी से क और ख के लिये प्रतिकारक का मूल्य ज्ञात करते है, जिसे हम ९ के स्थान पर प्रयुक्त करते है —

सारिणी

| औसत तापक्रम | फ० | ३०° | ४०° | ५०° | ६०° | ७०° |
|---|---|---|---|---|---|---|
| औसत दबाव | २७ इच | ९७ | ९९ | १०१ | १०३ | १०६ |
| ,, | २८ ,, | ९३ | ९५ | ९८ | १०० | १०२ |
| ,, | २९ ,, | ९० | ९२ | ९४ | ९६ | ९८ |
| ,, | ३० ,, | ८७ | ८९ | ९१ | ९३ | ९५ |

निम्नलिखित उदाहरण द्वारा उपर्युक्त कथन स्पष्ट होगा।

**उदाहरण**—किसी पहाडी की तलहटी पर वायु का दबाव और तापक्रम क्रमश २९ इच और ६०° फ० है तथा उसकी चोटी पर वायु का दबाव और तापक्रम क्रमश २७ इच और ४०° फ० है। पहाडी की ऊँचाई बतलाइए ?

**गणना**—

पहाडी की तलहटी पर वायु का दबाव =२९ इच

,, चोटी ,, =२७ इच

औसत दबाव $= \frac{२९+२७}{२} =$ २८ इच

पहाडी की तलहटी का तापक्रम =६०° फ०

,, चोटी ,, =४०° फ०

औसत तापक्रम $= \frac{६०+४०}{२} =$ ५०° फ०

औसत दबाव (२८ इच) और औसत तापक्रम (५०° फ०) के लिये सारिणी से निर्धारित प्रतिकारक =९८

पहाडी की ऊँचाई

$$= \frac{\text{तलहटी पर वायु का दबाव} - \text{चोटी पर वायु का दबाव}}{\frac{१}{१००}} \times$$

सारिणी से निर्धारित प्रतिकारक

$$= \frac{२९ - २७}{\frac{१}{१००}} \times ९८$$

$$= २ \times १०० \times ९८$$

$$= १९६० \text{ फुट}$$

## ५ वायुमडल की ऊँचाई

यदि वायुमण्डल का घनत्व सर्वत्र समान होता, तो हम वायुमण्डल की ऊँचाई बडी सरलता से ज्ञात कर लेते। सागर समतल पर वायु का दबाव २९ ९ इच है तथा बायुमण्डल की ऊपरी सीमा पर दबाव शून्य है। अतएव—

चूकि $\frac{१}{१००}$ इच दबाव घट जाता है ९ फुट की ऊँचाई पर

२९ ९ ,, $९ \times १०० \times २९ ९$

$= २६, ९१०$ फुट

$= ५$ मील से अधिक

किन्तु हम जानते है कि वायुमण्डल मे हम जितने ऊपर जाते है, घनत्व उतना ही कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि वायुमण्डल के ऊपरी भाग मे सूक्ष्म गैसे स्थूल गैसो का स्थान ग्रहण कर लेती है। अतएव उपर्युक्त गणित अशुद्ध है।

वायुमण्डल की उँचाई निश्चित करने मे उल्काओ का अध्ययन सहायक सिद्ध हुआ है। उल्का छोटे आकार के ठोस पिण्ड होते है, जो ब्रह्माण्ड मे विचरा करते है। जव वे वायुमण्डल के सस्पर्श मे आते है, तब वे वायु की रगड से उष्ण होकर सफेद हो जाते हैं। १८८ मील की ऊँचाई तक उल्का देखे गए हैं। अतएव कम से कम १८८ मील की ऊँचाई तक वायुमण्डल का विस्तार निश्चित है।

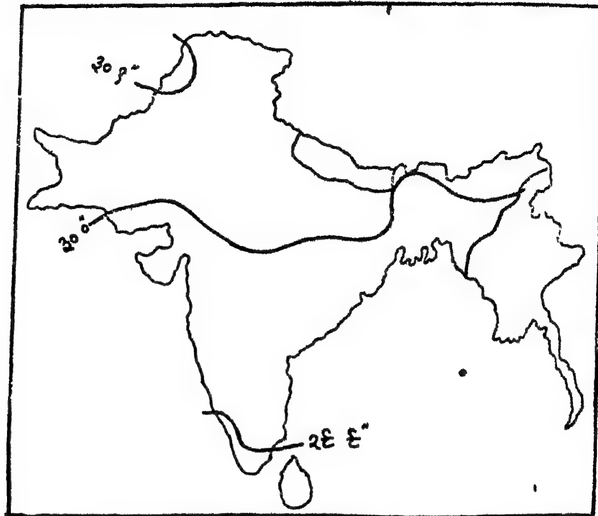
## ६. दबाव के परिवर्तन

किसी भी स्थान पर वायु का दबाव स्थिर नही है। मौसम और ऋतुओ के परिवर्तन के साथ उसमे अन्तर होते रहते है। उदाहरण के लिये वर्षा होने के पूर्व दबाव अकस्मात घट जाता है। इसकी सूचना बैरोमीटर के पारे के अचानक गिर जाने से मिलती है। ऋतुओ के अनुसार दबाव के परिवर्तन की विस्तृत विवेचना अध्याय ३९ मे की गई है।

## ७ समभार रेखाये (Isobars)

धरातल की आकृति के विभेदन के कारण किसी सीमित क्षेत्र पर भी वायु का दबाव सर्वत्र एक सा नही रहता। मान लीजिये किसी नगर मे एक छोटी सी पहाडी है। स्पष्ट है, कि इस पहाडी की चोटी पर तलहटी की अपेक्षा वायु का दबाव कम होगा। ऐसी दशा मे यह प्रश्न उठता है कि हम उस नगर के लिये वायु का दबाव कौन सा माने—तलहटी का अथवा चोटी का। इस समस्या के समाधान के लिये हम प्रत्येक स्थान के दबाव को सागर-समतल के दबाव मे परिणत कर लेते हैं और ऋतु-चित्रो मे सागर-समतल पर परिणत दबाव ही प्रयोग मे लाया जाता है। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए किसी नगर मे तीन ऐसे

स्थान है जिनकी ऊँचाई क्रमश ९००,१३५० और १८०० फुट है और जिनका वायु-भार क्रमश २८, २७½ और २७ इच है। हम यह जानते है, कि प्रत्येक ९०० फुट




चित्र २४९—भारतवर्ष की जनवरी की समभार रेखाये

की ऊँचाई पर वायुभार १ इच घट जाता है। इसे दृष्टि मे रखते हुए जब हम उक्त नगर के तीनो स्थानो के वायुभार को सागरसमतल पर परिणत करते है, तब हमे ज्ञात होता है कि उक्त नगर के प्रत्येक स्थान का सागरसमतल का वायुभार २९ इच है। अतएव समभार रेखा बनाते समय उक्त नगर का वायुभार २९ इच माना जायगा।

समभार रेखाये वे कल्पित रेखाये है, जो उन स्थानो के मिला देने से बन जाती है, जिनका सागर समतल पर वायु का दबाव एकसा होता है।

चित्र २४९ मे भारतवर्ष की जनवरी की समभार रेखाये प्रदर्शित की गई है।

## ८ वायुमण्डल के दबाव और प्रवाहित होनेवाली हवाओ का परस्परिक सम्बन्ध

(१) **दबाव और वायु की दिशा का सम्बन्ध**—पृथ्वी के विभिन्न स्थानो के दबाव मे अन्तर होने के कारण ही हवायें चलती है। हवाये सदैव ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की ओर प्रवाहित होती है।

(२) **दबाव और वायु का वेग**—जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है हवाये दबाव के अन्तर के कारण चलती है। उनका वेग इस अन्तर की मात्रा पर निर्भर करता है। यह अन्तर जितना अधिक होता है, वायु का वेग भी उतना ही अधिक होता है। दूसरी ओर यदि यह अन्तर कम होता है, तो वायु भी मन्द होती है। दबाव के अन्तर का ज्ञान समताप रेखाओ की पारस्परिक दूरी से हो जाता है। यदि यह दूरी कम हुई तो दबाव का अन्तर अधिक होता है और यदि यह दूरी अधिक हुई तो दबाव का अन्तर कम होता है। समताप रेखाओ के प्रति समकोण

दिशा मे मापित वायुमण्डल के दबाव के घटने या बढने के वेग (Rate) को बैरोमीटर की प्रवणता ( Barometric Gradient ) कहते है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि समताप रेखाये पास-पास हुई तो बैरोमीटर की प्रवणता अधिक होगी और हवाओ का वेग अधिक होगा। इसके विपरीत, जब समताप रेखाये दूर-दूर होगी, तब बैरोमीटर की प्रवणता कम होगी और हवाओ का वेग भी अपेक्षाकृत कम होगा।

(३) **हवाओ का दिशा के परिवर्तन**—यदि पृथ्वी स्थिर होती तो हवाय सदा समताप रेखाओ के प्रति समकोण बनाती हुई ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की ओर प्रवाहित होती, किन्तु पृथ्वी स्थिर नही है और वह अपनी धुरी पर घूमती रहती है, जिससे हवाओ की दिशा मे परिवर्तन हो जाते है। हवाओ की दिशा के परिवर्तन निम्नलिखित नियमो के अनुसार होते हैं —

(क) फैरल का नियम।

(ख) बाइज बैलट का नियम।

इन दोनो नियमो का साराश एक ही है।

## (क) फैरल का नियम

**परिभाषा**—पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध मे हवाये अपने दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे अपने बायी ओर घूम जाती है।

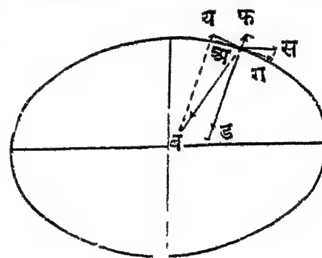
इस नियम को गणित द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

## गणितीय प्रमाण

पृथ्वी ध्रुवो पर चपटी है, अतएव उसकी आकृति दीर्घवृत्ताकार (Elliptical) है, जैसा कि चित्र मे प्रदर्शित किया गया है। मान लीजिए भूपृष्ठ पर अ बिन्दु पर एक कण स्थिर है। जब पृथ्वी घूमती है, तब इस कण पर दो बल लगते हैं —

(१) केन्द्राभिमुखी बल (Centripetal Force) अ ब दिशा मे लगता है।

(२) केन्द्रापसारी बल (Centrifugal Force) अ स दिशा मे लगता है।




चित्र २५०—फैरल के नियम का गणितीय प्रमाण

बलो के समानान्तर चतुर्भुज के सिद्धान्त (Law of parallelogram of forces) के अनुसार—अ स बल को अ ग एव अ फ नामक दो बलो में, जो एक दूसरे के प्रति समकोण बनाते हैं, विश्लिष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार अ ब बल को भी अ ड और अ य नामक दो बलो मे, जो परस्पर समकोण बनाते है, विश्लिष्ट किया जा सकता है।

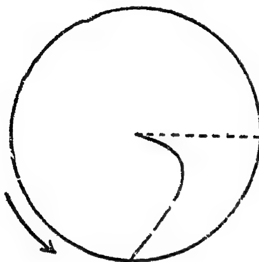
जब कण अ विन्दु पर स्थिर होता है, तब—अ फ बल अ ड बल को समतुलित कर लेता है तथा अ य बल अ ग बल को समतुलित कर लेता है।

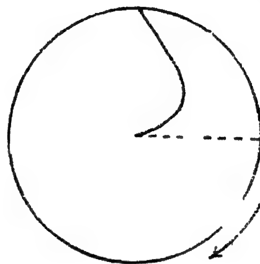
यदि हम अब कण को पूर्व दिशा मे गति प्रदान करे तो केन्द्रापसारी बल अ स बढ जायगा। उसके साथ ही अ फ और अ ग बल भी बढ जायँगे। अ फ बल के बढने से कण का भार घट जाता है क्योकि वह गुरुत्वाकर्षण के विपरीत दिशा मे लगता है। अ ग बल के बढ जाने से कण को विषुवत रेखा की दिशा मे गति मिलती

है। इस प्रकार कण पूर्व दिशा मे गतिशील न होकर दक्षिण-पूर्व की ओर गतिशील होता है। अन्य शब्दो में वह दाहिनी ओर मुड जाता है।

## प्रयोग द्वारा पुष्टि

ग्रामोफोन के रिकार्ड के बराबर दफ्ती का एक वृत्ताकार टुकडा काट लीजिए और उसके बीच मे रिकार्ड की तरह छेद भी कर दीजिये, जिससे उसे रिकार्ड के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सके। फिर उसे ग्रामोफोन मे रिकार्ड के स्थान पर रख कर मशीन चला दीजिये। जब वह दफ्ती का टुकडा रिकार्ड के स्थान पर घूमने लगे, तब उसके मध्य विन्दु से परिधि की ओर किसी भी दिशा मे पेसिल से त्रिज्या खीचिये। आप देखेगे कि यह त्रिज्या सीधी न बनकर चित्र २५१ के अनुसार घूम जायगी।


क


ख

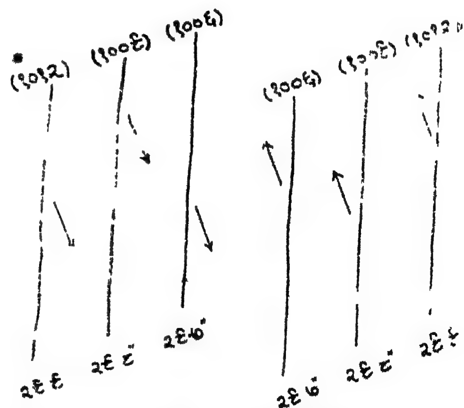
चित्र २५१—फैरल के नियम की प्रायोगिक पुष्टि

यदि कार्ड के घूमने की दिशा, चित्र२५१(क) के अनुसार हुई, तो रेखा दाहिनी ओर मुड जायगी। यदि कार्ड के घूमने की दिशा चित्र२५१(ख) के अनुसार हुई तो रेखा बायी ओर मुड जायगी। चित्र२५१(क) मे कार्ड का मध्य विन्दु ऊपर से देखने से उत्तरी ध्रुव का द्योतक है। चित्र२५१(ख) मे कार्ड का मध्य विन्दु नीचे से देखने से दक्षिणी ध्रुव का द्योतक है।

## (ख) बाइज बैलट का नियम (Buys Ballot's law)

चित्र२५२मे उत्तरी गोलार्ध मे समभार रेखाये और फैरल के नियम के अनुसार वायु की दिशाये प्रदर्शित की गई है। इस चित्र के अध्ययन से यह नियम बनाया जा सकता है —

'वायु की ओर पीठ करके खडे हो जाइए, यदि आप उत्तरी गोलार्द्ध मे है, तब आपके दाहिनी ओर अधिक दबाव होगा और बायी ओर कम, यदि आप दक्षिणी गोलार्द्ध मे है, तब आपके दाहिनी ओर कम दबाव होगा और बायी ओर अधिक।'



चित्र २५२—उत्तरी गोलार्ध मे हवाओ और समभार रेखाओ का सम्बन्ध

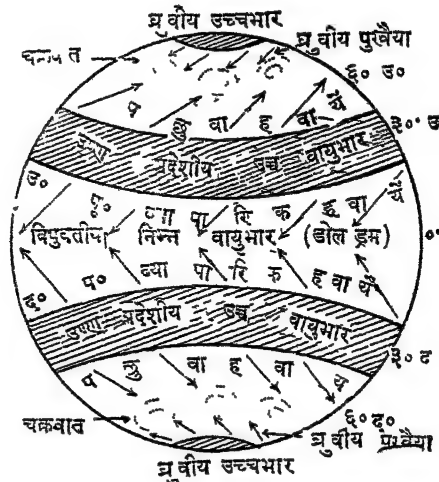
यही बाइज बैलट का नियम है। वास्तव मे यह नियम फैरल के सिद्धान्त का रूपान्तर मात्र है।

## उन्तालीसवां परिच्छेद

# भूपृष्ठ पर वायु के दबाव का सामान्य वितरण

### १ पृथ्वी पर वायुभार की पेटियाँ

ससार का जलवायु बहुत अशो मे वायु के दवाव के वितरण पर निर्भर है। पूर्व प्रकरण मे यह उल्लेख हो चुका है कि वायु सदैव ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की दिशा मे प्रवाहित होती है। वायु की केवल दिशा ही नही, वरन् वेग भी हवा के दबाव पर निर्भर है। दो स्थानो के दबाव में जितना अधिक अन्तर होगा, उनके बीच मे प्रवाहित होनेवाली वायु का वेग भी उतना ही तीव्र होगा। इसकी व्याख्या भी पूर्व मे हो चुकी है। किसी स्थान मे होनेवाली वर्षा वहाँ पर चलनेवाली वायु पर निर्भर है और वायु दबाव पर अवलम्बित है अतएव वर्षा दबाव से ही निर्धारित होती है।



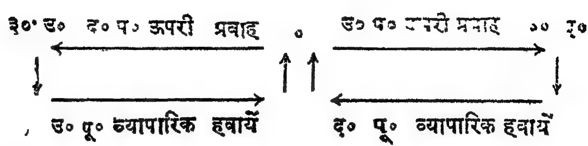
चित्र २५३—वायुभार की पेटियाँ और हवाये

वर्ष भर के औसत दबाव की दृष्टि से पृथ्वी को निम्न-लिखित कटिबन्धो मे बाँटा जा सकता है—

(१) **स्थायी निम्न वायु भार की विषुवतीय पेटी** (The equatorial belt of permanent low pressure)—इसका विस्तार ५° उ० से लेकर ५° द० अक्षाश तक है। इस कटिबन्ध मे सूर्य की किरणे प्राय वर्षभर लम्बवत पडती है। ताप के आधिक्य से यहाँ की वायु गरम होकर फैलती है, फैलने से उसका घनत्व घट जाता है और घनत्व घट जाने से वह ऊपर उठती है। अतएव इस कटिबन्ध मे वायु सदैव ऊपर उठती रहती है, जिससे दबाव सदैव नीचा रहता है। वायु के ऊपर उठने से इस प्रदेश मे वर्ष भर सवाहन की वर्षा होती है। ऊपर उठती हुई वायु चलती हुई नही प्रतीत होती, अतएव यह कटिबन्ध शान्त है। इसे 'डोलड्रम' भी कहते है। प्राचीन काल मे जब पालदार जहाज इस शान्त पेटी मे पड जाते थे तब उन्हे यात्रा मे बहुत समय लग जाता था।

(२) **स्थायी उच्च वायुभार की उष्णप्रदेशीय पेटियाँ** (The Tropical belts of permanent high pressure)—विषुवतीय कटिबन्ध की वायु वायुमण्डल मे ऊपर जाकर ध्रुवो की ओर प्रवाहित होने लगती है और ३०° और

३५° अक्षाश के बीच मे दोनो गोलार्द्धो मे नीचे उतरती है(चित्र २५४)। वायु के नीचे उतरने से उसका घनत्व बढ जाता है, जिससे दबाव की मात्रा भी बढ




चित्र २५४—वायु के सवाहन का प्रवाह

जाती है। अतएव भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण मे ३०° और ३५° अक्षाश के बीच मे ऊँचे दबाव के कटिबन्ध है। ये भी शान्त प्रदेश है। उत्तरी गोलार्द्ध के इस शान्त प्रदेश को 'घोडे का अक्षाश' (Horse Latitude) भी कहते है। इसका कारण यह है कि जब योरप निवासी अमरीका मे बस रहे थे, तब वे वहाँ घोडे भी जहाजो पर लादकर ले जाते थे। जब ये पालदार जहाज शान्त हवा की पेटी मे पड जाते थे, तब उन्हे यात्रा मे बहुत समय लग जाता था। कभी-कभी मार्ग मे चारा-पानी कम हो जाता था, तो घोडे समुद्र मे फेक दिये जाते थे।

(३) **स्थायी उच्च वायुभार की ध्रुवीय पेटियाँ** (The Polar belts of permanent high pressure)—ध्रुवीय प्रदेश मे वर्ष भर बर्फ जमी रहती है, जिससे वहाँ दबाव स्थायी रूप से ऊँचा रहता है।

**दृष्टव्य**—शीतोष्ण कटिबन्ध मे ६०° उ० और द० के निकट निम्न दबाव की दो पेटियाँ और है। ये पेटियाँ विषुवतीय निम्न दबाव की पेटियो से सर्वथा भिन्न है। इन पेटियो मे चक्रवातो के चलने से दबाव कम है। यद्यपि इन पेटियो मे वर्ष भर का औसत दबाव कम है, तथापि वास्तव मे ये काम दबाव के प्रदेश उसी समय होते है, जब इनमे चक्रवात चला करते है।

## २ सनातन हवाये

उपर्युक्त पेटियो के अध्ययन द्वारा यह सरलता से निश्चित किया जा सकता है कि सनातन हवाये किस क्षेत्र मे और किस दिशा मे प्रवाहित होगी। इस सबध मे हमे केवल दो बाते ध्यान मे रखना है —

(१) वायु सदैव ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की ओर प्रवाहित होती है।

(२) फैरल के नियम के अनुसार पृथ्वी के घूमने से उत्तरी गोलार्द्ध की हवाये अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध की हवाये अपनी बायी ओर मुड जाती है। यह अवश्य है कि विषुवतीय प्रदेश की अपेक्षा ध्रुवो के निकट वायु अधिक मुडती क्योकि वहाँ भूमध्य रेखा की तुलना मे परिभ्रमण का वेग बहुत अधिक होता है।

उष्णप्रदेशीय अधिक दबाव के कटिबन्ध से हवाये विषुवत रेखा के कम दबाव के प्रदेश की ओर प्रवाहित होती है। उत्तरी गोलार्द्ध मे इन हवाओ की दिशा उ० पू० से द० प० होती है और दक्षिणी गोलार्द्ध मे द० पू० से उ० प०। इन्हे व्यपारिक हवाये (Trade Winds) कहते है।

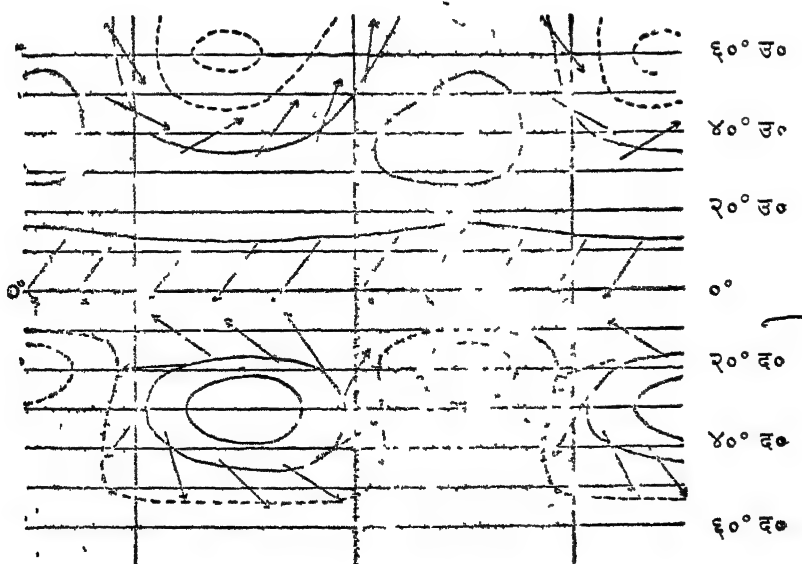
उष्णप्रदेशीय अधिक दबाव के कटिबन्ध से हवाये उत्तरी गोलार्द्ध मे उत्तर की ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे दक्षिण की ओर भी चलती है। फैरल के नियम के

अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध मे इनकी दिशा द० प० से उ० पू० और दक्षिणी गोलार्द्ध में उ० प० से द० पू० हो जाती है। इन्हे पछुवा हवाये (Westerlies) कहते हैं।

ध्रुवो के अधिक दबाव के प्रदेश से भी हवाये उत्तरी गोलार्द्ध मे दक्षिण की ओर और द० गोलार्द्ध मे उत्तर की ओर चला करती हैं। फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध मे इनकी दिशा उ० पू० से द० प० तथा दक्षिणी गोलार्द्ध मे द० पू० से उ० प० हो जाती है। इन हवाओ को ध्रुवीय पुरवैया (Polar Easterlies) कहते हैं। शीतोष्ण कटिबन्ध मे ध्रुवीय पुरवैया हवाये और पछुवा हवाये परस्पर विपरीत दिशा से एक दूसरे के सम्पर्क मे आती है। इनके मिलने से चक्रवात बनते हैं।

## ३. ऋतुओ के अनुसार वायुभार की पेटियो के विवर्तन

यदि पृथ्वी की धुरी झुकी न होती, तो सूर्य की किरणे विषुवत रेखा पर वर्ष भर लम्बवत् पडती। ऐसी दशा मे दबाव की पेटियाँ स्थायी रहती और उनकी स्थिति मे कोई परिवर्तन न होता। किन्तु जैसा कि हम जानते हैं, जब उत्तरी गोलार्द्ध मे ग्रीष्म ऋतु होती है, तब सूर्य की किरणे कर्क रेखा के निकट लम्बवत् पडती है, दूसरी ओर जब उत्तरी गोलार्द्ध मे जाडा होता है, तब सूर्य की किरणे मकर रेखा के निकट लम्बवत् पडती है। सूर्य की किरणो की गति के साथ-




चित्र २५५—जनवरी मे जल और स्थल के ऊपर वायुभार की दशा

( दृष्टव्य—इस चित्र मे ३० इंच से अधिक मूल्य की समभार रेखाये सतत रेखाओ द्वारा दर्शायी गई है और ३० इच से कम मूल्य की समभार रेखाये टूटी लाइनो द्वारा दर्शायी गई हैं।)

साथ दबाव की पेटियाँ भी खिसकती है, किन्तु उतना नही। उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु मे विषुवतीय कम दबाव की पेटी विषुवत रेखा के कुछ ही अश उत्तर मे रहती है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध के ग्रीष्म मे यह पेटी विषुवत् रेखा के कुछ अश दक्षिण मे खिसक जाती है।

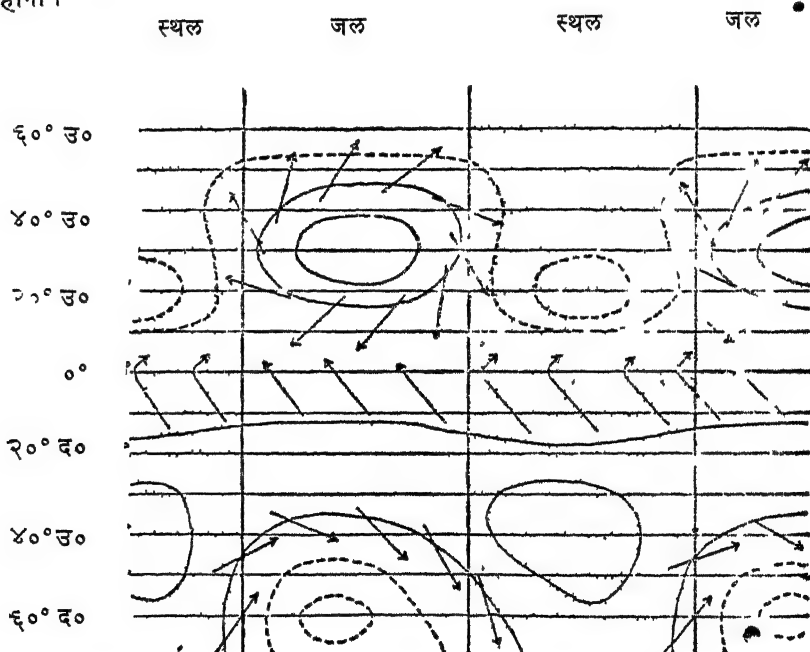
## (१) उत्तरी गोलार्ध का जाड़ा

जब उत्तरी गोलार्द्ध मे जाडे की ऋतु होती है, तब वहाँ का स्थल निकटवर्ती महासागर-जल की तुलना मे बहुत अधिक ठण्डा हो जाता है, जिससे वह ऊँचे दबाव (High Pressure) का क्षेत्र बन जाता है, अतएव उष्णप्रदेशीय अधिक दबाव की पेटी (Tropical H P Belt) एशिया और अमरीका पर उत्तर दिशा मे फैल जाती है।

यही काल दक्षिणी गोलार्द्ध का ग्रीष्म होता है। अतएव दक्षिणी गोलार्द्ध मे स्थलखण्ड जल की अपेक्षा कही अधिक गरम हो जाते है। वे कम दबाव के क्षेत्र बन जाते है। इसका प्रभाव दक्षिणी गोलार्द्ध की उष्ण-प्रदेशीय अधिक दबाव की पेटी (Tropical H P Belt) पर यह पडता है, कि वह द० अमरीका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया मे लुप्त हो जाती है।

## (२) उत्तरी गोलार्ध का ग्रीष्म

इसकी दशाये जाडो के विपरीत होती है। चित्र २५६ से यह कथन स्पष्ट होगा।




चित्र २५६—जुलाई मे जल और स्थल के ऊपर वायुभार की दशा

(दृष्टव्य—इस चित्र में ३० इच से कम मूल्य की समभार रेखाये टूटी लाइनों से दिखलाई गई है।)

## ४ वायुभार के वितरण का जलवायु पर प्रभाव

वायुभार का वितरण अनेक अशो मे जलवायु को निर्धारित करता है। इस कथन की पुष्टि के लिये कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं —

(१) डोलड्रम के प्रदेश मे वायु गरम होकर ऊपर उठती है। ऊपर जाने पर उसकी जलवाष्प द्रवीभूत होती है और वर्षा के रूप मे नीचे गिरती है। अतएव इस कटिबन्ध मे सालभर वर्षा होती है और बादल छाये रहते हैं।

(२) अश्व-अक्षाँशो (Horse Latitudes) पर हवाये ऊपर से नीचे उतरती हैं, जिससे वे सूखी होती हैं। यही कारण है कि इन क्षेत्रो मे वर्षा नही होती और आसमान खुला रहता है।

(३) ध्रुवो के अधिक दबाव के प्रदेश से शीतोष्ण कटिबन्ध की ओर हवाये चलती हैं। लगभग ६०° अक्षाँश पर ये हवाये पछुवा हवाओ के सम्पर्क मे आती है। इन दोनो वायुराशियो के मिलने से चक्रवात (Cyclones) अस्तित्व मे आते हैं। इन चक्रवातो के कारण शीतोष्ण कटिबन्ध के मौसम मे परिवर्तन होते रहते हैं।

## चालीसवां परिच्छेद

# समभार रेखाओं के विभिन्न रूप

समभार रेखाओ के प्रमुख रूप ये है—(१) चक्रवात ( Cyclone ) (२) प्रतिचक्रवात (Anti-cyclone ) (३) गौण चक्रवात ( Secondary Cyclone ) (४) टक (Wedge) (५) V—आकृति के निम्नन (V–Depression) (६) ग्रीवा (Col) तथा (७) सीधी समभार रेखाये ( Straight isobars) ।चित्र मे इन्हे प्रदर्शित किया गया है।

चित्र २५७—समभार रेखाओ की विभिन्न व्यवस्थाये

### १. चक्रवात

(१) आकृति एव समभार रेखाओ की व्यवस्था—चक्रवात समभार रेखाओ की एक विशेष व्यवस्था है। इसमे समभार रेखाये वृत्ताकार अथवा दीर्घ वृत्ताकार होती है। इसके बीच मे दबाव सबसे कम होता है और बाहर की ओर क्रमश बढता जाता है।

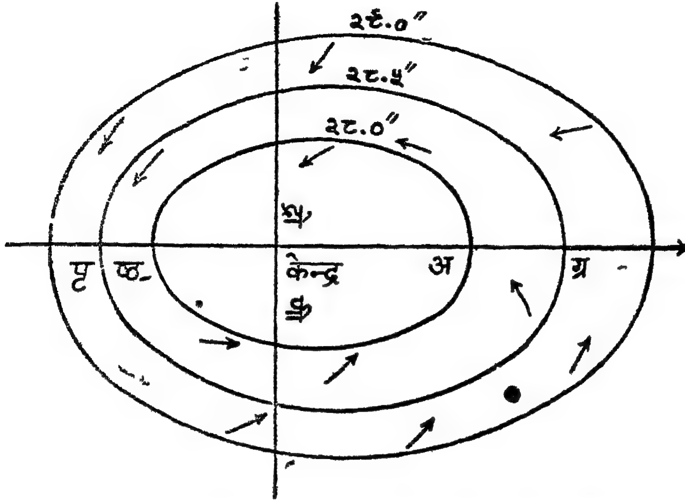
(२) आकार-चक्रवात के आकार मे बडे अन्तर पाये जाते है। शीतोष्ण कटिबन्ध मे चक्रवात का व्यास २००० मील तक पाया गया है। उष्ण प्रदेशीय चक्रवातो का व्यास कुछ सैकडे मील से कभी भी अधिक नही होता।

चक्रवात के आकार की तुलना मे उसकी ऊँचाई बहुत कम होती है। शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात की अधिक से अधिक ऊँचाई ७ या ८ मील होती है। चक्रवात की तुलना पतली तश्तरी या ग्रामोफोन के रिकार्ड से की जा सकती है।

(३) हवायें—चक्रवात के मध्य मे दबाव सबसे कम होता है, अतएव चारो ओर से हवाये चक्रवात के मध्य की ओर प्रवाहित होती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे अपनी बायी ओर मुड जाती है। चित्र २५८ से स्पष्ट होगा, कि चक्रवात के मध्य मे हवाओ की भँवर बन जाती हैं।

सबसे कम दबाव चक्रवात के ठीक बीचोबीच नही होता, वरन् कुछ पीछे की ओर होता है(चित्र २५८)। फिर भी उस विन्दु को चक्रवात का केन्द्र कहते हैं। चक्रवात के अगले भाग की अपेक्षा पिछले भाग मे समभार-रेखाये प्राय. पास-पास होती हैं। अतएव वहाँ वायु का वेग भी अधिक होता है। बहुधा चक्रवात के पिछले भाग की हवाये अगले भाग की अपेक्षा छोटा कोण बनाती हैं।

(४) **गति (क) दिशा**—चक्रवात बहुत कम स्थिर रहते है। प्राय वे प्रवाहित होने वाली वायु की दिशा मे चलते रहते है। यही कारण है, कि उत्तर-पश्चिमी योरप के अधिकाश चक्रवात पूर्व की ओर (पछुवा हवाओ के अनुरूप) अग्रसर होते है। व्यापारिक वायु के कटिबन्ध मे इनकी गति पश्चिम की ओर




चित्र २५८—चक्रवात मे समभार रेखाओ की व्यवस्था और हवाये

होती है। जब ये उष्णप्रदेशीय चक्रवात पछुवा हवाओ की पेटी मे प्रवेश करते है तब इनकी दिशा मे परिवर्तन हो जाता है और वे प्रवाहित होनेवाली वायु के अनसार पूर्व की ओर चलने लगते है।

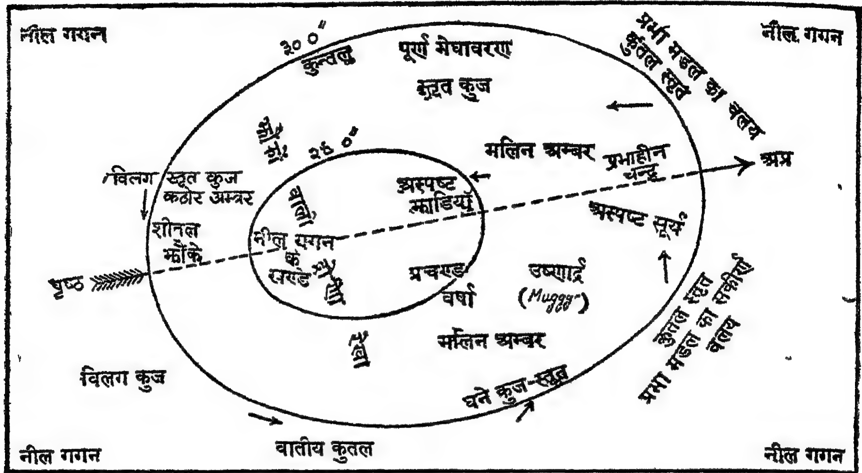
(ख) **वेग**—चक्रवातो के गति-वेग मे बडे अन्तर पाये जाते है। शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात १५ मील प्रति घण्टा से लेकर ४० मील प्रति घण्टा के वेग से चलते है। उष्ण प्रदेशीय चक्रवातो का गति-वेग और भी कम होता है। वे प्रति घण्टे २ मील से लेकर १० मील तक चलते है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि चक्रवात मे प्रवाहित होनेवाली हवाओ की गति और स्वय चक्रवात की गति दो नितान्त भिन्न वस्तुएँ है। उन हवाओ से जो उसके केन्द्र के चारो ओर चलती है, चक्रवात की गति का कोई भी सम्बन्ध नही है। यद्यपि उष्ण-प्रदेशीय चक्रवातो का गति-वेग शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो से कम होता है तथापि उनके अन्दर प्रवाहित होनेवाली हवाओ का वेग शीतोष्ण चक्रवातो का हवाओ से कही अधिक होता है।

(५) **ऋतु सम्बन्धी दशाये**—चक्रवातो की ऋतु सम्बन्धी दशाओ का अध्ययन करने के पूर्व हमे कुछ विशेष शब्द जान लेना आवश्यक है —

चित्र २५८ मे एक चक्रवात प्रदर्शित किया गया है। इसमे अकित तीर उसकी गति की दिशा प्रदर्शित करता है। चक्रवात मे सबसे कम दबाव का विन्दु उसके ठीक बीचो-बीच नही है, वरन् वह उसके मध्य विन्दु से कुछ पीछे हटा हुआ है। फिर

भी उसे हम चक्रवात का केन्द्र कहते हैं। यदि हम चक्रवात के केन्द्र से होती हुई एक ऐसी रेखा खींचें जो उसकी गति की दिशा के प्रति समकोण बनाती हो, तो उसे हम द्रोणी (Trough) कहेंगे। द्रोणी-रेखा के आगे के भाग को हम अग्र (Front) कहते हैं और पिछले भाग को पृष्ठ (Back)।




चित्र २५९—चक्रवात मे ऋतु सम्बन्धी दशाये

चित्र २५९ मे चक्रवात की सामान्य ऋतु-दशायें प्रदर्शित की गई है।

(६) **शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात**—(Temperate Cyclones)—इनकी रचना, आकृति, आकार, समभार रेखाओ की व्यवस्था आदि की विवेचना ऊपर की पंक्तियो मे हो चुकी है।

(क) **दबाव के परिवर्तन**—जब किसी स्थान से शीतोष्ण चक्रवात गुजरता है, तब वहाँ के दबाव मे परिवर्तन होते है। चित्र २६० में एक चक्रवात प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र में क स्थान पर २९ इच का दबाव है। जैसे-जैसे चक्रवात तीर की दिशा में आगे बढता है, वैसे-वैसे एक के बाद दूसरी समभार रेखा क से गुजरती है। यह तो स्पष्ट ही है कि २९ इच की समभार रेखा के गुजर जाने के बाद क्रमश कम भार की रेखाये आती है। यह क्रम तब तक चलता है, जब तक चक्रवात का केन्द्र 'क'-स्थान पर नही आ जाता। केन्द्र के गुजरते ही वायुभार पुनः बढने लगता है।

अब हम 'ख' स्थान का विचार करेंगे, जो केन्द्र के पथ मे नही पडता है। चक्रवात के चलने से यहाँ भी दबाव क्रमश घटेगा। यह क्रम उस समय तक चलता रहेगा, जब तक द्रोणी-रेखा नही आ जाती। द्रोणी-रेखा के गुजरते ही दबाव फिर बढना शुरू होगा।

जब हम क और ख दोनो स्थानो के दबाव के परिवर्तन की तुलना करते हैं, तब हमे विदित होता है, कि 'क' स्थान की अपेक्षा 'ख' स्थान मे दबाव का

हवा चलती हैं और दबाव क्रमश बढता है। किन्तु यह सुहावना मौसम थोडे ही समय रहता है और थोडी देर बाद उसका स्थान चक्रवातीय मेघ और वर्षा ले लेते हैं। जैसे ही द्रोणी-रेखा किसी स्थान से गुजरती है, वैसे ही वायु की दिशा मे अकस्मात परिवर्तन होते है। ये परिवर्तन जहाजो के लिये बडे खतरनाक सिद्ध होते हैं।

V–निम्नन मे बादलो और वर्षा के वितरण मे विभेदन पाये जाते है, किन्तु सामान्यत मौसम चक्रवात के समान होता है, यद्यपि अपेक्षाकृत कुछ तीव्र होता है।

प्राय V–निम्नन चक्रवात के उष्ण अथवा शीतल अग्र (Front) से सम्बन्धित होता है। यदि वह उष्ण अग्र का होता है तो चक्रवात के आगे बढ जाने के पूर्व उसमे वर्षा होती है। यदि वह शीतल अग्र का होता है तो उसमे आकाश निर्मल रहता है, हल्की बौछारे होती है और मौसम ठण्डा रहता है।

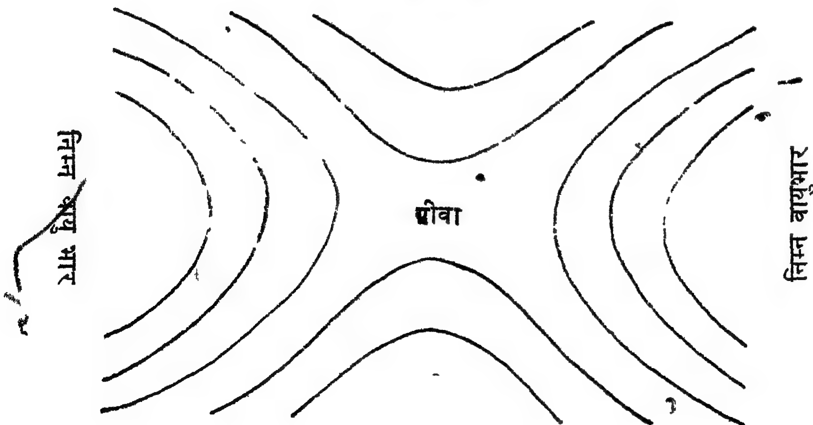
## ६ ग्रीवा (Col)

### (१) परिभाषा

दो ऊँचे और दो नीचे दबाव के स्थानो के बीच का भाग ग्रीवा (Col) कहलाता है।

### (२) ऋतु संबन्धी दशाये

ग्रीवाप्रदेश के अन्दर न तो चक्रवात के समान मौसम होता है और न प्रति-




चित्र २६७—ग्रीवा

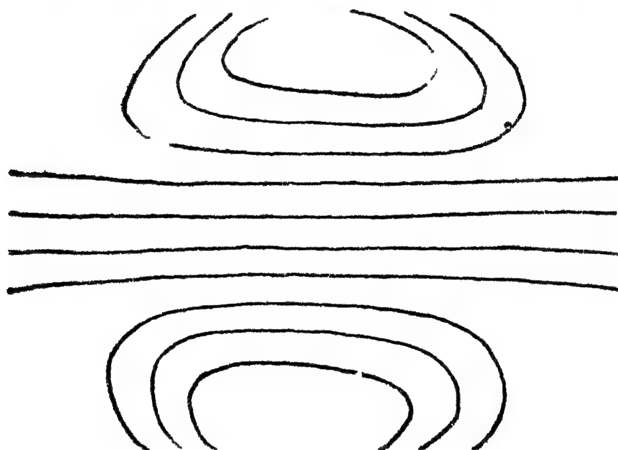
चक्रवात जैसा, बल्कि यह एक तटस्थ प्रदेश होता है। इसमे जाडो मे मौसम शान्त होता है और कुहरा पडता है। गर्मियो मे यदि आसमान खुला हो और वायु मे काफी आर्द्रता हो, तो तडितझझाये अथवा बिजली की कडकवाली ऑधियाँ आती है।

### (३) अवधि

ग्रीवा (Col) दीर्घकाल तक नही रहता।

## ७. सीधी समभार रेखाये

ये दो बडे चक्रवातो अथवा दो बडे प्रतिचक्रवातो के बीच के प्रदेश को दर्शाती है। इनमे हवाये अधिक दबाव से कम दबाव की ओर चलती है और फैरल के



चित्र २६८--सीधी समभार रेखाये

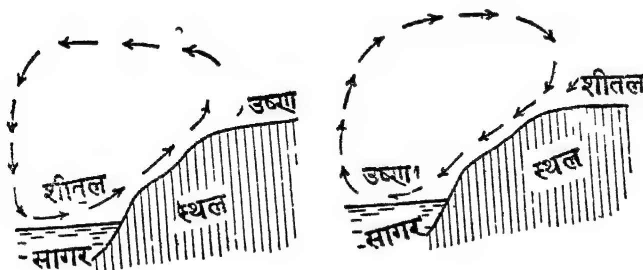
नियम के अनुसार मुड जाती है। यदि इन रेखाओ की पारस्परिक दूरी कम हुई तो इनमे वायु काफी तेजी से चलती है। दूसरी ओर यदि इनकी पारस्परिक दूरी अधिक हुई तो वायु का वेग कम होता है। इनमे अनेक प्रकार के मौसम पाये जाते है।

## इकतालीसवां परिच्छेद

# स्थानीय हवायें, मौसमी हवायें तथा विशेष प्रकार की आँधियाँ

## १. जल समीर और थल समीर (Land and Sea Breezes)

जल की अपेक्षा स्थल गर्म भी अधिक शीघ्रता से होता है और ठडा भी। दिन मे सूर्य के ताप के कारण जल की अपेक्षा स्थल अधिक गरम हो जाता है, जिससे उसके ऊपर की वायु गरम और हल्की होकर ऊपर उठती है। जो स्थान रिक्त होता है,




चित्र २६९—जल समीर चित्र २७०—थल समीर

उसकी पूर्ति के लिये समुद्र की ओर से हवाये चलती हैं। जल से स्थल की ओर जानेवाली इसी वायु को हम जलसमीर (Sea Breeze) कहते है।

रात्रि की दशा ठीक इसके विपरीत होती है और जल की अपेक्षा स्थल अधिक ठण्डा हो जाता है, जिससे स्थल से जल की ओर वायु चलती है। इसे हम स्थल समीर (Land Breeze) कहते हैं।

चित्र २६९ एव २७० मे जल और थल समीर प्रदर्शित की गई हैं।

इन समीरो के चलने के सागरतट का तापक्रम सम (Moderate) रहता है।

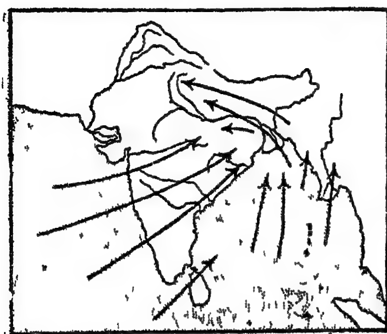
## २. मानसून हवायें

ये मौसमी हवाये है। वास्तव मे, मानसून हवाये जल और थल समीर का केवल वृहद रूप है। मानसून शब्द की उत्पत्ति एक अरबी शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है, मौसम। जिस सिद्धान्त के अनुसार स्थल और जल समीर क्रमश रात और दिन मे चलती है, उसी के अनुसार मानसून हवाये जाडो और गर्मियो की ऋतु मे चलती हैं।

गर्मियो मे स्थल महासागर की अपेक्षा अधिक गर्म होता है, अतएव इस ऋतु मे स्थल पर हवा का दबाव कम होता है और जल पर अधिक। वायु सदैव अधिक दबाव

से कम दबाव की ओर प्रवाहित होती है अतएव इस ऋतु मे समुद्र से स्थल की ओर हवाये चलती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार मुड जाती है। समुद्र से आने के कारण इनमे आर्द्रता होती है और इनसे वर्षा होती है।

जाडो मे दशाये विपरीत होती है। इस ऋतु मे समुद्र की अपेक्षा स्थल अधिक ठण्डा रहता है, जिससे स्थल के ऊपर वायुभार अधिक होता है और जल पर कम।



चित्र २७१—दक्षिण पश्चिमी मानसून



चित्र २७२—उत्तर पूर्वी मानसून

अतएव हवाये स्थल से जल की ओर चलती है। स्थल से आने के कारण ये हवाये सूखी होती है।

चित्र २७१ एव २७२ मे भारतवर्ष मे चलनेवाली मानसून हवाये प्रदर्शित की गई है।

## ३. मिस्ट्रल, बोरा तथा सिरौक्को

### (क) मिस्ट्रल (Mistral) तथा बोरा (Bora)

वास्तव मे मिस्ट्रल और बोरा, जाडो मे भूमध्य सागर के निम्नन (Mediterranean Depression) की ओर अग्रसर होनेवाले ध्रुवीय वायु-प्रवाह (Polar Air Stream) के स्थानीय नाम है। योरप के ठण्डे स्थलखण्ड के ऊपर से गुजरने के कारण ये हवाये विशेष ठण्डी होती हैं और तीव्र भी होती है। इनके मार्ग मे आल्प्स पर्वत की श्रेणियाँ बाधक होती है, जिससे ये विशेष पथो पर ही सीमित हैं। रोन की घाटी मे इन्हे 'मिस्ट्रल' कहते है और एड्रियाटिक सागर के ऊपरी भाग में 'बोरा'। उत्तरी अमरीका की शीतल तरगें (Cold waves) बहुत कुछ इसी प्रकार की है।

### (ख) सिरौक्को (Sirocco)

भूमध्यसागर के निम्नन (Mediterranean Depression) की ओर प्रवाहित होने वाले उष्णप्रदेशीय वायु प्रवाह (Tropical Air Stream) का ही नाम 'सिरौक्को' है। मरुस्थल के ऊपर से आने के कारण ये हवायें भूमध्यसागर के दक्षिणी तट पर सूखी और धूल से भरी होती है। भूमध्यसागर के ऊपर से गुजरते समय इनमे आर्द्रता का प्रवेश होता है। ऐसी आर्द्र और उष्ण हवाये द० इटली और सिसली मे पाई जाती है।

मिश्र मे सिरौक्को को खामसिम ( Khamsım) कहते है, जिसका अरबी भाषा मे अर्थ 'पचास' है। इस वायु का यह नाम इसलिये पडा कि यह लगभग ५० दिन चलती है। यह मार्च के अन्तिम भाग से लेकर मई के आरभ तक चलती है।

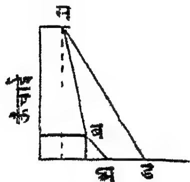
इसे द० पू० स्पेन मे लैवेशे ( Leveche ), लीबिया में गिबली (Gıblı) तथा ट्यूनिस मे 'चिली' (Chılı) कहते है।

सिरौक्को के कारण बहुधा बनस्पति नष्ट हो जाती है। इससे फसलो को बडी हानि पहुँचती है विशेषकर पूर्ण विकसित अगूर और जैतून की लताओ को।

## ४ फौन तथा चिनूक हवायें

### (क) फौन वायु (The Fohn)

ये हवाये पहाडो के पिछले ढालो पर उतरती है जिससे सूखी और गरम होती है। उत्तरी आल्प्स की घाटियो मे ये विशेष उल्लेखनीय है। यही पर इनका यह नाम पडा। ये हवाये उस समय चलती है, जब आल्प्स के उत्तर की ओर चलनेवाला चक्रवात दक्षिण की वायु को अपनी ओर खीचता है। आकृष्ट वायु आल्प्स के दक्षिणी ढाल पर चढती है, ऊपर जाने पर बादल बनते है और अधिक ऊपर जाने पर वर्षा होती है। जब यह वायु उत्तरी ढाल पर पहुँचती है, उस समय तक उसकी आर्द्रता प्राय समाप्त हो जाती है। अतएव उत्तर की घाटियो मे जब यह वायु चलती है, तब बहुत गरम और सूखी होती है। इससे वायुमण्डल का तापक्रम १५° से २०° तक बढ जाता है। इसके कारण बर्फ पिघल जाती है और पेड पौधे मकान आदि अतिशय शुष्क हो जाते है।



तापक्रम

चित्र २७३—फौन वायु के उष्ण प्रभाव की विवेचना

अ ब स वक्र—आल्प्स पर्वत के दक्षिणी ढाल पर चढने वाली वायु के क्रमिक तापक्रम का द्योतक है।

स ड वक्र—आल्प्स पर्वत के उत्तरी ढाल पर उतरने वाली वायु के क्रमिक तापक्रम का द्योतक है।

उत्तरी स्विट्जरलैण्ड मे फौन वायु वसन्त ऋतु मे बारम्बार चलती है और जाडो की जमी हुई बर्फ को पिघलाने मे सहायक होती है। शरद काल मे इसकी आवृत्ति (Frequency) वसन्त से कम किन्तु अन्य सभी ऋतुओं से अधिक होती है। इस समय यह फसलो—विशेषकर अगूर के पकने मे सहायक होती है। फौन सामान्यत दक्षिणी वायु है।

### (ख) चिनूक (The Chınook)

कनाडा और सयुक्त राज्य अमरीका मे रॉकी पर्वत के पूर्वी भाग पर चलने वाली फौन जैसी उष्ण एव शुष्क वायु को चिनूक कहते है। फौन की तुलना मे चिनूक का प्रभाव-क्षेत्र कही अधिक विस्तृत होता है। ये प्राय पूर्व की ओर चलनेवाले निम्नन के दक्षिणी भाग मे चलती है और इनकी दिशा प्राय दक्षिण-पश्चिम होती है। जाडो और वसन्त मे इन हवाओ की आवृत्ति बहुत होती है। रॉकी पर्वत से नीचे उतरने के कारण ये हवाये गरम और सूखी हो जाती है, अतएव इनके चलने से वायुमण्डल का तापक्रम बढ जाता है। कभी-कभी १५ मिनट के अन्दर तापक्रम ३०° से ४०° तक बढ जाता है। इन हवाओ से जाडो की बर्फ पिघल जाती है, जिससे जानवर जाड़ो भर

चरागाहो मे चर सकते है। इस दृष्टि से इन हवाओ का आर्थिक महत्त्व भी है। फोन का शक्तिशाली होना अथवा बारम्बार चलना यह सूचना देता है कि जाडा मामूली होगा और जानवर चरागाहो मे जाडो भर चर सकेगे। दूसरी ओर फौन वायु की अनुपस्थिति अथवा अभाव का अर्थ यह होता है कि जाडा तीव्र होगा और जानवरो की क्षति होगी।

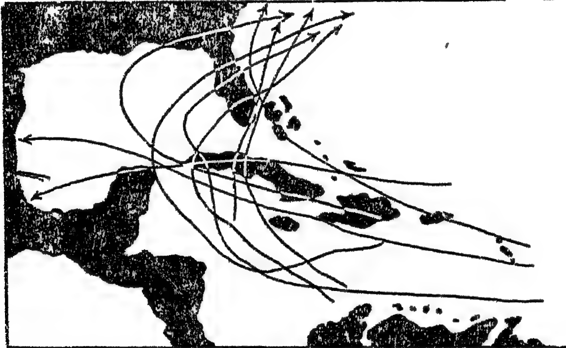
## ५ ब्लिज्जर्ड (Blizzard) और बुरान (Buran)

ब्लिज्जर्ड हिमकणो की भयानक आँधी है। ससार के कुछ भागो मे—जैसे अण्टार्कटिका, कैनाडा, साइबेरिया आदि मे—जाडो मे वृष्टि मुख्यत शुष्क एव सूक्ष्म हिमकणो के रूप मे होती है। हिमवृष्टि के अनन्तर जब तेज हवाये चलती है तब उनमे हिमकण (मुख्यत धरातल के और आशिक रूप से बादलो के) फँस जाते है जिससे धुधली छा जाती है। ये हिमकण इतने सूक्ष्म होते है कि वे दरवाजो और खिडकियो की पतली दरारो मे प्रवेश कर जाते है। जो यात्री ब्लिज्जर्ड मे फँस जाते है, उनका दिशा ज्ञान नष्ट हो जाता है। अण्टार्कटिका के अडैलीलैण्ड ( Adelie Land ) मे ब्लिज्जर्ड बहुत आते है और इसी कारण उसे 'ब्लिज्जर्ड का गृह' (Home of the Blizzard ) भी कहते है।

मध्य एशिया मे इस प्रकार की आँधी को बुरान ( Buran ) कहते है। ब्लिज्जर्ड के आने से जाडो मे तापक्रम, उत्क्रमण के कारण, अकस्मात बढ जाता है और गर्मियो मे घट जाता है।

## ६ हरीकेन, टाइफून टॉरनैडो एवं धूल का भूत

### (क) हरीकेन (Hurricane)



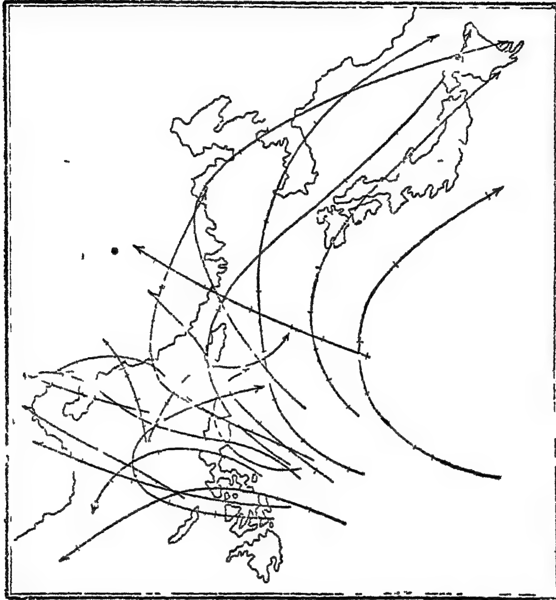
चित्र २७४—पश्चिमी द्वीप समूह के प्रदेश मे हरीकन के पथ

हरीकेन उस उष्ण प्रदेशीय चक्रवात ( Tropical Cyclone) का नाम है, जो पश्चिमी द्वीप समूह और मैक्सिको की खाडी मे आया करता है। इसकी उत्पत्ति प्राय पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्व मे केप वर्डे द्वीपो ( Cape Verde Islands ) के निकट होती है। यहाँ से वह पश्चिम की ओर चलता है। इसके पथ मे पडनेवाले द्वीपो को इससे कभी-कभी बहुत हानि होती है। आगे चलकर यह उत्तर-पूर्व की ओर मुड जाता है। हरीकेन से पश्चिमी द्वीपसमूह के अतिरिक्त सयुक्त राज्य अमरीका का खाडी तट तथा मध्य अमरीका का पूर्वी भाग भी प्रभावित होता है। सितम्बर और अक्टोबर के महीनो मे यह बहुत आता है।

### (ख) टाइफून (Typhoon)

चीन सागर मे आनेवाले उष्णप्रदेशीय चक्रवातो को टाइफून (Typhoon)

कहते है। ये ग्रीष्म ऋतु के अन्त मे और शरद के आरभ मे बहुत आते है। फिलीपाइन द्वीपसमूह अनेक टाईफूनो के पथ मे पडता है। दक्षिणी चीन के तटीय प्रदेश मे भी टाइफून प्रभावशाली होते है। अन्य उष्णप्रदेशीय चक्रवातो की भाति टाइफून मे भी बलवती हवाये चलती है और घनघोर वृष्टि होती है। यद्यपि स्थल में



चित्र २७५—चीन के तट पर टाइफून के पथ

प्रवेश करते समय इनकी शक्ति काफी क्षीण हो जाती है, तथापि इनसे काफी विस्तृत क्षेत्र को हानि पहुँचती है। उदाहरण के लिए स्वातो (Swatow) के अगस्त सन् १९२२ ई० के टाइफून मे केन्द्र के गुजरते ही वायु की दिशा मे अकस्मात् परिवर्तन हुआ जिससे एक भयानक लहर अस्तित्व मे आ गई। इस लहर से नगर भर में भयानक बाढ आ गई जिससे ५०,००० व्यक्ति काल के गाल मे चले गये।

## (ग) टॉरनैडो

टॉरनैडो भयानक भँवरदार आँधी है। इसका क्षेत्रफल अधिक नही होता। प्राय इसका व्यास ¼ मील के लगभग होता है। सयुक्त राज्य अमरीका मे रॉकी पर्वत के पूर्व में—विशेषकर मिसीसिपी के मध्यवर्ती मैदान में—टॉरनैडो बहुत आते है। इनसे क्षति भी बहुत होती है। इनके केन्द्र मे वायु का वेग २०० मील प्रति घण्टा से भी अधिक होता है। यही कारण है कि इस के केन्द्र मे आ जाने से पेड उखड जाते है और मकान नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है। यदि टॉरनैडो सागर या नदी के ऊपर से गुजरता है तो उनका पानी टोटी अथवा तुण्ड के रूप में ऊपर उठ जाता है इसे हम जल-तुण्ड (Water spout) कहते है। टॉरनैडो मे घनगर्जन एव घनघोर

वृष्टि भी होती है। ये वसन्त ऋतु मे और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ मे बहुत आते है और प्राय सदैव दोपहर को ही आते है।

### (घ) धूल का भूत (Dust Devil)

यह मरुस्थल मे आनेवाली धूल की भँवर है। यह एक स्थानीय वृत्त (Local Phenomena) है, जिसमे धूल केन्द्र के चारो ओर चक्कर खाती है और इस प्रकार वह धरातल से तीन-चार हजार फुट ऊपर उठ जाती है। इसका आकार छोटा होता है अर्थात् इसका व्यास कुछ गज ही होता है। मरुस्थल मे आतप के आधिक्य से सवाहन-प्रवाह के उत्पन्न हो जाने से इसकी सृष्टि होती है। धूल के भूत का वेग प्रति घण्टे ५ मील से लेकर १५ मील तक होता है और कभी-कभी ३० मील तक पाया गया है। आकार मे छोटा होने के कारण इससे कोई विशेष हानि नही होती। वायुयान भी इससे प्रभावित नही होते।

## ७ हरमैटन एवं विलीविली

### (क) हरमैटन (Harmattan)

यह वास्तव मे उ० पू० व्यापारिक वायु का ही रूपान्तर है, जो जाडे की शुष्क ऋतु मे सहारा मरुस्थल के ऊपर से होकर गिनी की खाडी की ओर चलती है। यह वायु असाधारण रूप से सूखी होती है और शुष्क ऋतु के प्रभाव को बहुगुणित कर देती है। इस वायु के चलने से वनस्पति सूखकर नष्ट हो जाती है, बहुधा पेडो के तने फट जाते है। इसके कारण आपेक्षिक आर्द्रता १० प्रतिशत से भी कम हो जाती है। इसमे प्राय सूक्ष्म धूलि-कणो की मात्रा अधिक होती है, जिससे यह और भी कष्टदायक हो जाती है।

### (ख) विलीविली (WillyWilly)

ये उष्ण-प्रादेशीय चक्रवात होते है, जो उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में ग्रीष्म ऋतु के अन्तिम भाग मे चला करते है। इनकी उत्पत्ति टिमौर सागर (Timor Sea) मे होती है। यहाँ से वे द० प० की ओर बढते है, जिससे पियर(Pear) मछली के उद्योग को हानि पहुँचती है। तदनन्तर ये द० पू० की ओर मुड जाते है और तट मे प्रवेश करते है। इनसे तटीय प्रदेश को बडी क्षति पहुँचती है और कभी-कभी घनघोर वृष्टि भी होती है। फिर ये ग्रेट आस्ट्रेलियन बाइट (Great Australian Bight) की ओर अग्रसर होते है। आन्तरिक भागो में विलीबिली की शक्ति क्षीण हो जाती है और लोग उसका इसलिये स्वागत करते है, कि उससे वर्षा होती है।




चित्र २७६—विलीविली का पथ

## ८. नौरवैस्टर तथा लू

### (क) नौरवैस्टर (Norwester)

(१) यह उत्तरी भारत के मैदानो मे गर्मी की ऋतु ( अप्रेल से जून ) में आनेवाला बवण्डर ( भीषण आँधी ) है। इसके साथ प्राय तडित, भयानक मेघ गर्जन, भारी वर्षा तथा हिमोपल वृष्टि होती है। बगाल, आसाम तथा ब्रह्मा मे अप्रेल से जून तक होनेवाली अधिकाश वर्षा नौरवैस्टरो के कारण ही होती है। आसाम मे चाय के उद्यानो के लिये इसकी महत्ता बहुत अधिक है।

(२) यह न्यूजीलैंड को एक उष्ण तथा शुष्क वायु है। उत्पत्ति तथा लक्षणो मे यह फौन (Fohn) के सदृश है। यह वायु न्यूजीलैंड की आल्प्स श्रेणी के ढाल के अनुरूप कैन्टरबरी के मैदान मे उतरती है।

### (ख) लू

उत्तरी भारत के आन्तरिक भागो मे गर्मी के दिनो मे (प्राय दोपहर मे और कभी-कभी दोपहर से लेकर रात तक) भयानक गरम हवाये चला करती है। इन्हे 'लू' अथवा 'लपट' कहते है। प्रतिवर्ष सैंकडो भारतीय इसी "लू' के कारण काल कवलित होते है। सूर्य का प्रखर ताप ही 'लू' की उत्पत्ति के लिये उत्तरदायी है।

## ९ बाई-यू[1] (Bai--U)

जापान मे मध्य जून से मध्य जुलाई तक की अवधि मे होने वाली वर्षा को बाई-यू कहते हैं। यह वर्षा प्राय निरन्तर होती है। इस वर्षा का कृषि के लिये बडा महत्व है, क्योकि इसी समय पौधो के प्रतिरोपण के लिये खेत तैयार किये जाते है। बाई-यू जापानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ बेर की वर्षा है। यह उस समय होती है जब बेर पकने लगते हैं। यह बेर-वर्षा सभवत निर्बल निम्नतो (Depressions) के कारण होती है, जो बाद में मानसून के प्रबल होने पर अस्पष्ट हो जाते हैं।

## १० डाक्टर (Doctor)

ससार के विभिन्न भागो मे अनेक स्वास्थ्यकारी हवाओ को यह सज्ञा दी गई है। कुछ भूभागो मे ऋतु-सम्बन्धी दशाये अतिशय कष्टप्रद एव अस्वास्थ्यकारी हैं। वहाँ इन हवाओ के कारण मौसम सम्बन्धी दशाये सम तथा रुचिकर हो जाती है। अन्य शब्दो मे, इन क्षेत्रो मे ये स्थानीय हवाये डाक्टर का कार्य करती है, अतएव इन्हे डाक्टर की सज्ञा मिलना उचित ही है। पश्चिमी अफ्रीका की हरमैटन, जिसका पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, ऐसी ही हवा है। आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट पर गर्मियो मे समुद्र से आनेवाली जल समीर इसका दूसरा उदाहरण है।

---

१ बाई-यू के विशेष विवरण के लिये कृपया लेखक की रचना जापान की भौगोलिक भूमिका देखिये।

# बयालीसवाँ परिच्छेद

# सूर्यातपन

# [ INSOLATION ]

## १ परिभाषा

Insolation शब्द Incoming Solar Radiation (आगन्तुक सौर विकिरण) का सक्षिप्त रूप है।

किसी निश्चित समय मे पृथ्वी के किसी निश्चित क्षेत्र मे सूर्य से जो ताप प्राप्त होता है, उसे हम सूर्यातपन (Insolation) कहते है।

गणित द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी को सूर्य से प्रति वर्ग सैण्टीमीटर प्रति मिनट १ ९४ कैलोरी ताप मिलता है। ताप की यह मात्रा प्राय सर्वत्र स्थिर है, अतएव इसे 'सौर्य-स्थिराक' (Solar Constant ) कहते है।

## २ ताप का उद्गम

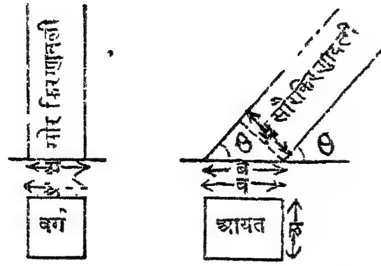
ताप का मूलस्रोत अथवा उद्गम सूर्य है। सूर्य का व्यास पृथ्वी की तुलना मे सौ गुना से भी अधिक है और सौर-पृष्ठ का तापक्रम १०,०००° फ० से भी अधिक है। इसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ताप की कितनी प्रचुर मात्रा सूर्य से विकीर्ण होती होगी। पृथ्वी सूर्य से लगभग ९ करोड ३० लाख मील दूर है, जिससे वह सौर-ताप का केवल दो अरब वॉ भाग ग्रहण कर पाती है। सौर-ताप के इस न्यून अश पर ही पृथ्वी के अधिकाश प्राकृतिक और प्राय समस्त जीव-सम्बन्धी वृत्त (Phenomena) अवलम्बित है। इसके अतिरिक्त जलवायु को जितनी बाते प्रभावित करती हैं, उनमे यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

यह आगणन किया गया है, कि पृथ्वी को सूर्य से जो ताप मिलता है, उसका ३७ प्रतिशत भाग मेघो और वायुमण्डल के धूलि-कणो से परावर्त्तित्त (Reflect) हो जाता है, ६ प्रतिशत भाग वायुमण्डल की गैसे सोख लेती है और केवल ५७ प्रतिशत भूपृष्ठ तक पहुँचता है।

## ३ सूर्यातपन (Insolation) को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

निम्नलिखित प्रतिकारक सूर्यातपन (Insolation) की मात्रा को प्रभावित करते है —

(१) **सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण**—तिरछी किरणावली (Pencil of rays) लम्बवत् किरणो की अपेक्षा अधिक क्षेत्र को प्रभावित करती है। अतएव कोई भी ऐसा स्थान जहाँ सूर्य ठीक सिर के ऊपर चमकता है, अपने उत्तर और दक्षिण के स्थानो की अपेक्षा अधिक तप्त होता है। निम्नाकित विवेचना से यह कथन स्पष्ट होगा —




चित्र २७७—सूर्यातपन की मात्रा पर सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण का प्रभाव

दशा १ मे

$$\text{प्रभावित क्षेत्र} = \text{अ} \times \text{अ}$$
$$= \text{अ}^2$$
$$= \text{अ}^2 \times 1$$
$$= \text{अ}^2 \times \frac{1}{\text{ज्या } 90^\circ}$$

(क्योकि ज्या ९०° = १)

दशा २ मे

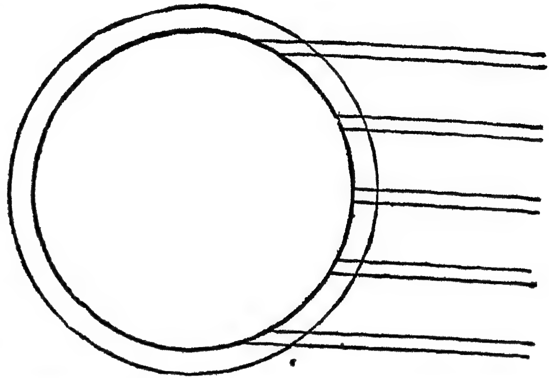
$$\text{प्रभावित क्षेत्र} = \text{अ} \times \text{ब}$$
$$= \text{अ ब}$$

$\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{ज्या}\,\theta$ (जहाँ $\theta$ = सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण

$$\text{अथवा अ} = \text{ब ज्या}\,\theta$$
$$\text{अथवा ब} = \frac{\text{अ}}{\text{ज्या}\,\theta}$$
$$\text{अ ब} = \text{अ} \frac{\text{अ}}{\text{ज्या}\,\theta}$$
$$= \frac{\text{अ}^2}{\text{ज्या}\,\theta}$$
$$= \text{अ}^2 \; \frac{1}{\text{ज्या}\,\theta}$$

उपर्युक्त दोनो दशाओ मे सूर्यातपन द्वारा प्रभावित क्षेत्र $\frac{1}{\text{ज्या}\,\theta}$ का अनुक्रमानुपाती (Directly Proportional) है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि किरणावली का ताप अपेक्षाकृत कम क्षेत्रफल मे फैलता है, तो प्रत्येक इकाई क्षेत्रफल को अधिक ताप मिलता है अथवा सूर्यातपन अधिक होता है। दूसरी ओर, यदि क्षेत्रफल अधिक होता है तो प्रति इकाई-क्षेत्रफल को कम ताप मिलता है अथवा सूर्यातपन की मात्रा कम होती है, क्योकि किरणावली के ताप की मात्रा तो उतनी ही रहती है। अन्य शब्दो मे, क्षेत्रफल और सूर्यातपन परस्पर उत्क्रमानुपाती ( Inversely Proportional ) है। अतएव, किसी स्थान पर प्राप्त होने वाला सूर्यातपन ज्या $\theta$ अथवा सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण के ज्या (Sine) के अनुरूप होता है।

(२) **वायुमण्डल की मोटाई**—जैसा कि चित्र २७८ से स्पष्ट होगा लम्बवत् किरणो की अपेक्षा तिरछी किरणो को वायूमण्डल में अधिक दूरी तय करनी पडती है। वायुमण्डल के निम्नतम स्तर अर्थात् परिवर्तमण्डल Tropos-phere) मे बहुत सी ऐसी गैसे रहती है, जो ताप का शोषण कर लेती है। इस प्रकार की गैसो मे जलवाष्प ( Water Vapour) तथा कार्बन डाइ-ऑक्साइड विशेष उल्लेखनीय है। अतएव जब सौर किरणो को परिवर्तममण्डल मे अधिक लम्बा मार्ग तय करना पडता है, तब उनके ताप का कुछ अश उपर्युक्त गैसो के कारण लुप्त हो जाता है और धरातल को लम्बवत् दिशा के क्षेत्र की अपेक्षा कम ताप मिलता है। अन्य शब्दो मे सूर्य की किरणे जितनी तिरछी होती जायँगी, सूर्या-तपन (Insolation) उतना ही कम होगा।



चित्र २७८—सूर्यातपन की मात्रा पर वायुमण्डल की मोटाई का प्रभाव

(३) **दिन और रात की अवधि**—दिन मे पृथ्वी सौर-विकिरण को ग्रहण करती है और रात मे जब वह ठण्डी होती है तब उससे ताप विकीर्ण (Radiate) होता है। अतएव उन स्थानो मे जहाँ रात की अपेक्षा दिन बडा होता है, सूर्यातपन उन स्थानो से अधिक होता है, जहाँ दिन की अपेक्षा रात बडी होती है।

(४) **जल और स्थल का वितरण**—जल और स्थल दोनो मे ताप को ग्रहण करने की क्षमता समान नही है। यदि दोनो को समान ताप पहुँचाया जाता है, तो जल की अपेक्षा स्थल अधिक गरम हो जाता है। अतएव सूर्यातपन पर महाद्वीपो और महासागरो के वितरण का प्रभाव पडता है।

जल की अपेक्षा स्थल के अधिक गरम अथवा ठण्डे होने के निम्नलिखित कारण हैं —

(१) द्रव जल का आपेक्षिक ताप ठोस पृथ्वी से कही अधिक है। एक घन फुट रेत को १° फ० गरम करने के लिये जितना ताप लगता है, उससे दुगुना ताप इसी आयतन के पानी को इतना ही गरम करने के लिये आवश्यक है।

(२) स्थल की अपेक्षा जल मे सूर्य की किरणे अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं। स्थल मे तीन फुट के नीचे तापक्रम के दैनिक परिवर्तन का अनुभव नही होता, किन्तु जल में उसे ६० फुट की गहराई तक अनुभव किया जा सकता है।

(३) जल अस्थिर है। जब उसका एक भाग गर्म हो जाता है, तब वह दूसरे स्थान को बह जाता है। इसके विपरीत स्थल स्थिर है, वह एक ही स्थान पर स्थित रहता है, अतएव उसका सीमित क्षेत्र ही सौर-ताप को ग्रहण करता है।

(४) सूर्य से जो ताप जल को मिलता है, उसका कुछ भाग भाप के बनने मे नष्ट हो जाता है। स्थल मे भाप नही बनती, अतएव स्थल को सूर्य से जितना भी ताप मिलता है, वह सब उसके तापक्रम के बढाने के काम आता है।

(५) जल-पृष्ठ पर सौर-ताप का परावर्त्तन (Reflection) स्थल की अपेक्षा अधिक होता है। अन्य शब्दो मे, स्थल की अपेक्षा जल कम ताप को ग्रहण करता है।

(६) वाष्पीकरण की क्रिया के कारण महासागरो के ऊपर बदली छायी रहती है। जलवाष्प और मेघो का यह आवरण सूर्य और पृथ्वी दोनो के विकिरण मे बाधक होता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है, कि पृथ्वी के विकिरण की तुलना मे सौर-विकिरण कही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(५) **धरातल का वर्ण**—सूर्यातपन पर धरातल के रग का भी प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए काले रग की मिट्टी और चट्टाने हल्के रग की भूमि की अपेक्षा अधिक ताप ग्रहण करती हैं।

(६) **सौर कलकों** ( Sunspots ) **की सख्या**—किन्ही अशो मे सौर-विकिरण सूर्य के धब्बो ( Sun-spots ) की सख्या पर भी निर्भर है। जब इन धब्बो की सख्या अधिक होती है, तब सौर-विकिरण अधिक होता है और जब इनकी सख्या कम होती है, तब सौर-विकिरण भी कम होता है।

(७) **पृथ्वी से सूर्य की दूरी**—सूर्यातपन की मात्रा सूर्य से पृथ्वी की दूरी पर भी अवलम्बित है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी सदा एक सी नही रहती। उसमे अन्तर होते रहते हैं। रवि-नीच[1] (Peri-helion) की अपेक्षा रवि ऊँच[2] (Aphelion) की दशा मे सूर्य से पृथ्वी की दूरी अधिक होती है। अतएव दूसरी दशा मे सूर्यातपन प्रथम दशा की अपेक्षा ६ ६ प्रतिशत अधिक होता है।




चित्र २७९—रवि-नीच और रवि-ऊँच

## ४. सूर्यातपन का वितरण

### (१) वार्षिक वितरण

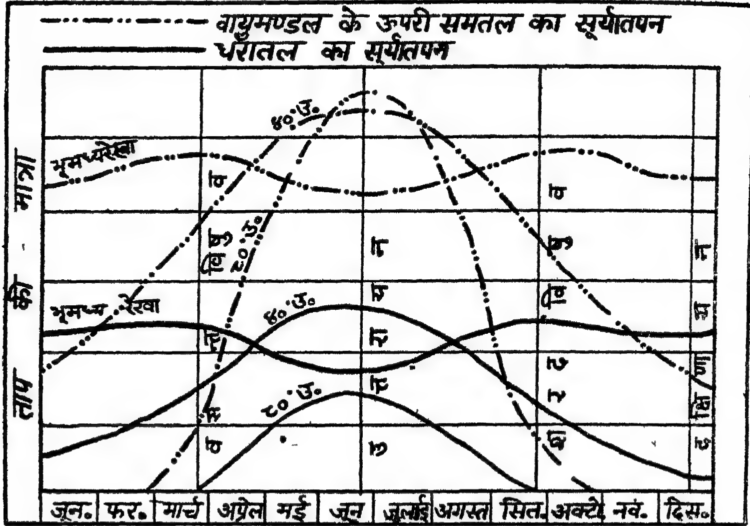
सूर्यातपन के वार्षिक वितरण की दृष्टि से ससार को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है —

---

1 Peri helion (Peri-Near, Helics-Sun) इसमे सूर्य से पृथ्वी की दूरी लगभग ९ १५ करोड मील होती है।

2 Aphelion (Apo-Away, Helios-Sun) इसमे सूर्य से पृथ्वी की दूरी लगभग ९ ४५ करोड मील होती है।

(क) **विषवत रेखा का प्रदेश**—इसका विस्तार २०° उ० से लेकर २०° द० तक है। इसमे दो महत्तम बिन्दु (Maxima) और दो लघुतम बिन्दु (Minima) होते है, अर्थात् इस क्षेत्र मे सूर्यातपन वर्ष मे दो बार उच्चतम हो जाता है और दो बार निम्नतम। इस प्रदेश मे सूर्यातपन शून्य कभी नही होता।




चित्र २८०—सौर्यातपन का वितरण

(ख) **मध्य अक्षाश का प्रदेश**—इसका विस्तार २०° से लेकर ६६½° अक्षाश तक है। इसमे एक महत्तम बिन्दु होता है और एक लघुतम बिन्दु अर्थात् इस क्षेत्र मे सूर्यातपन वर्ष मे एक बार उच्चतम हो जाता है और एक बार निम्नतम। विषुवतीय प्रदेश की भाति इसमे भी सूर्यातपन कभी शून्य नही होता।

(ग) **ध्रुवीय प्रदेश**—यह क्षेत्र आर्कटिक वृत्त के उत्तर मे तथा अण्टार्कटिक वृत्त के दक्षिण मे विद्यमान है। इसमे सूर्यातपन वर्ष मे एक बार उच्चतम हो जाता है। वर्ष के कुछ भाग मे सूर्य का प्रकाश यहाँ नही पहुँचता। अतएव उस समय इस क्षेत्र को ताप बिल्कुल नही मिलता। अन्य शब्दो मे वर्ष के भाग विशेष मे इस क्षेत्र मे सूर्यातपन शून्य पर पहुँच जाता है।

चित्र २८० मे सूर्यातपन का वार्षिक वितरण प्रदर्शित किया गया है।

**(२) देशातर के अनुरूप सूर्यातपन का वितरण**

वार्षिक औसत के विचार से तथा दो विशेष दिन—वसन्त और शरद विषुवो (Spring and autumn equi-noxes) को— सूर्यातपन विषुवत रेखा पर सबसे

---

वसंन्त विषुव ( Spring equinox ) अर्थात् २१ मार्च।
शरद विषुव (Autumn equinox) अर्थात् २३ सितम्बर
इन दोनो दिन मध्यान्ह मे विषुवत-रेखा पर सूर्य की किरणे बिल्कुल लम्बवत् पडती है।

अधिक होता है और ध्रुवो की ओर क्रमश घटता जाता है। अग्रलिखित दो प्रतिकारको के अनुसार महत्तम् सूर्यातपन की पेटी विषुवत रेखा के उत्तर और दक्षिण मे खिसकती रहती है —

(१) **सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण**—सूर्य की किरणे लम्बवत् दिशा के जितनी निकट होगी सूर्यातपन उतना ही अधिक होगा।

(२) **दिन की अवधि**—दिन जितना ही लम्बा होगा, सूर्यातपन भी उतना ही अधिक होगा।

## ५ वायुमंडल का ताप सन्तुलन
## (Heat Balance of the Atmosphere)

पृथ्वी का औसत तापक्रम सदैव एकसा रहता है, न वह बढता है और न वह घटता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि पृथ्वी सूर्य से जितना ताप ग्रहण करती है, उतना ही ताप वह विकिरण द्वारा खो देती है। यद्यपि यह सन्तुलन सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए ठीक है, तथापि इसे किसी विशेष अक्षाश पर लागू नही किया जा सकता। ३७° अक्षाश के नीचे आगन्तुक सौर विकिरण पृथ्वी द्वारा निकलने वाले ताप की अपेक्षा अधिक होता है। दूसरी ओर ३७° अक्षाश के ऊपर सूर्यातपन पृथ्वी के विकिरण से कम होता है। इस कथन के अनुसार विषुवतीय प्रदेश का तापक्रम निरन्तर बढना चाहिये और ध्रुवीय प्रदेशो का तापक्रम निरन्तर घटना चाहिये किन्तु यह वास्तविकता नही है। प्रकृति का यह सिद्धान्त है कि ताप अधिक तापक्रम से कम तापक्रम की ओर प्रवाहित होता है। यह सिद्धान्त यहाँ भी लगता है। हवाओ के चलने का कारण यही सिद्धान्त है। वास्तव मे विभिन्न अक्षाशो पर सूर्यातपन के असमान वितरण के कारण वायुमण्डल की अनेक प्रक्रियाये और ऋतु-परिवर्तन होते हैं।

## तैंतालीसवाँ परिच्छेद

# तापक्रम का क्षैतिज वितरण

## [HORIZONTAL DISTRIBUTION OF TEMPERATURE]

### १ तापक्रम क्या है ?

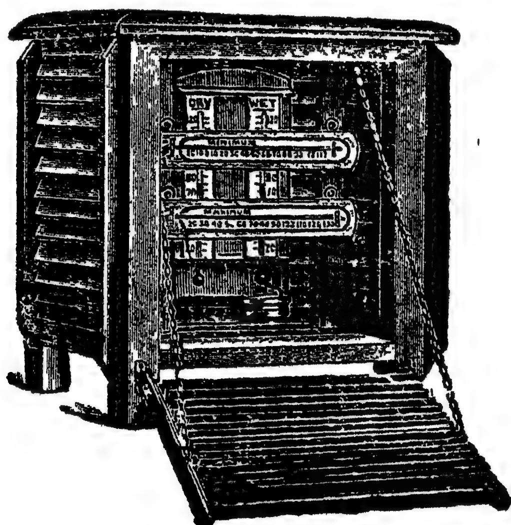
जो स्थान जितना ही उष्ण होता है, उसका तापक्रम. उतना ही अधिक होता है। इसी प्रकार जो स्थान जितना शीतल होता है, उसका तापक्रम उतना ही कम होता है। अतएव तापक्रम का अर्थ है उष्णता अथवा शीतलता की मात्रा। किसी स्थान का तापक्रम वहाँ के धरातल के निकट की वायु का तापक्रम है।

### २ तापक्रम मापन

किसी स्थान के तापक्रम को ज्ञात करने के लिये प्राय दो रीतियाँ अपनाई जाती हैं —

#### १ स्टेवेन्सन की स्क्रीन

तापक्रम का यथार्थ मूल्य ज्ञात करने के लिये स्टेवेन्सन की स्क्रीन (Stevenson's Screen) का उपयोग किया जाता है। नीचे चित्र में वह प्रदर्शित की




चित्र २८१—स्टेवेन्सन की स्क्रीन

गई है। यह लकड़ी की आयताकार सन्दूक जैसी होती है, जो तीन चार फुट ऊँचे चार पायो पर रखी रहती है। धूप के प्रभाव को बचाने के लिये इसकी छत दोहरी होती है। दोनो छतो के बीच में वायु रहती है। इसकी दीवालो मे रेल की खिंडकी की तरह तिरछी दरारें रहती है, जिनमें होकर वायु सुगमता से आ जा सकती है, किन्तु सूर्य

की किरणो से रक्षा हो जाती है। पृथ्वी के विकिरण के प्रभाव को रोकने के लिये इसका फर्श भी दोहरा होता है। थर्मामीटर को लटकाने के लिये इसके अन्दर एक लकडी का फ्रेम होता है। इसके अन्दर थर्मामीटर स्थापित करते समय यह ध्यान रखा जाता है, कि उसका बल्ब यथासभव छत, फर्श, और किनारे की दीवालो के बीचो-बीच हो।

## २ हवा मे झुलाया जानेवाला थर्मामीटर

तापक्रम-निर्धारण के लिये प्राय हवा मे झुलाया जानेवाला थर्मामीटर अथवा भ्राम्य तापमापक ( Sling Thermometer ) काम मे लाया जाता है। इसमे एक बडी सुविधा यह होती है, कि इसे सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकता है। इसके विपरीत स्टेवेन्सन की स्क्रीन बहुत भारी होती है और उसके ले जाने मे कठिनाई होती है।

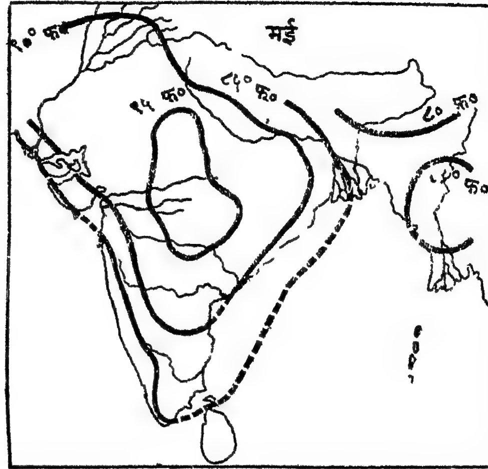
यह एक सामान्य थर्मामीटर होता है, जिसके ऊपरी सिरे पर डोरा बधा रहता है। इस डोरे की सहायता से थर्मामीटर को मन्द वेग से खुली हवा मे झुलाया जाता है। झूलते समय थर्मामीटर वायु के नवीन कणो के सस्पर्श मे आता है और उनके तापक्रम को ग्रहण कर लेता है। अतएव, धूप होते हुए भी यह थर्मामीटर वायु के तापक्रम को प्राप्त कर लेता है। यदि धूप तेज हो, तो झूलते हुए थर्मामीटर के ऊपर छाता खोल देना चाहिये।

## ३. समताप रेखायें (Isotherms)

भूपृष्ठ पर ताप के वितरण को हम समताप रेखाओ द्वारा प्रदर्शित करते है। समताप रेखा वह कल्पित रेखा है, जो उन स्थानो को मिला देने से बन जाती है जहाँ के सागर-समतल का तापक्रम समान हो। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि समताप रेखाये बनाने के पूर्व हम प्रत्येक स्थान पर सागर समतल का तापक्रम ज्ञात करते है। इसका कारण यह है कि तापक्रम ऊँचाई के अनुसार बदलता रहता है, यदि हम सागर समतल का तापक्रम न ले तो विषुवत् रेखा पर स्थित हिमाच्छादित पहाड की चोटी और आर्कटिक वृत्त से एक ही समताप रेखा गुजरेगी, जिससे बडी भ्रान्ति होगी। उसे देखकर तो यही ज्ञान होगा कि भूमध्यरेखा और आर्कटिक वृत्त का तापक्रम एकसा है। इस गलत धारणा के निवारण के लिये ऊँचाई का विचार आवश्यक है। अतएव समताप रेखा खीचने के लिये हम प्रत्येक स्थान के तापक्रम का सागर समतल पर मूल्य ज्ञात करते है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। मान लीजिये समताप रेखा बनाने के लिये हमे नैनीताल का तापक्रम लेना है। नैनीताल समतल नही है और उसके प्रत्येक स्थान की ऊँचाई भिन्न है। तब हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि हम आखिर किस स्थान का तापक्रम ले। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार स्थान चुनने लगे, तब तो बडी गडबडी मच जाय। इसे दूर करने के लिये भी तापक्रम का सागर समतल पर मूल्य ज्ञात करना आवश्यक है। नैनीताल मे कितने भी ऊँचे नीचे स्थान क्यो न हो किन्तु सागर समतल पर प्रत्येक का तापक्रम एक ही होगा।

सामान्यत धरातल से प्रत्येक ३२० फुट की ऊँचाई पर तापक्रम १° फ० घट जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी स्थान पर धरातल का तापक्रम ७०° फ० हो तो ९६० फुट की ऊँचाई पर उसका तापक्रम ६७° फ० होगा। समताप रेखाये खीचने के पूर्व हम प्रत्येक स्थान का सागर समतल का तापक्रम इसी नियम के अनुसार निर्धारित कर लेते है।

चित्र २८२ मे समताप रेखाओ द्वारा भारतवर्ष का मई का औसत तापक्रम प्रदर्शित किया गया है।




चित्र २८२—भारतवर्ष की मई की समताप रेखाये

## ४. किसी स्थान के तापक्रम को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

किसी स्थान का तापक्रम निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है —

(१) अक्षाश
(२) ऊँचाई
(३) धरातल के ढाल की दिशा
(४) प्रवाहित होनेवाली हवाये
(५) समुद्र से दूरी
(६) समुद्र की धाराये
(७) मेघ एव वर्षा

### (१) अक्षाश

साधारणत भूमध्य रेखा के निकट तापक्रम सबसे अधिक होता है और जैसे-जैसे हम ध्रुवो की ओर जाते है तापक्रम क्रमश घटता जाता है। इसका कारण यह है, कि भूमध्य रेखा के निकट सूर्य की किरणे सीधी पडती है और ध्रुवो की ओर वे अधिकाधिक तिरछी होती चली जाती है। जैसा कि चित्र २७८ से स्पष्ट होगा, लम्बवत् किरणावली की अपेक्षा तिरछी किरणावली धरातल के अधिक क्षेत्र को प्रभावित करती है, जिससे प्रति इकाई क्षेत्रफल को अपेक्षाकृत कम ताप मिलता है। इसके अतिरिक्त लम्बवत् किरणावली की अपेक्षा तिरछी किरणावली परिवर्तमण्डल ( Troposphere ) मे अधिक लम्बे पथ से गुजरती है जिससे उसके ताप की अधिक मात्रा को वहाँ की गैसे सोख लेती है।

## (२) ऊँचाई

यद्यपि ताप का मुख्य उद्गम सूर्य है, तथापि वह वायुमण्डल को सीधे ( Dıectly ) गरम नही करता। पहले वह विकिरण ( Radıatıon ) द्वारा पृथ्वी को गरम करता है। जब भूपृष्ठ गरम हो जाता है, तब वह सचालन द्वारा वायुमण्डल के निम्नतम स्तर को गरम करता है। इस प्रकार ताप क्रमश नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित होता है। यही कारण है, कि सागर समतल पर ऊँचे स्थानो की अपेक्षा तापमान अधिक होता है और ज्यो-ज्यो ऊँचाई बढती जाती है तापक्रम घटता जाता है। सामान्यत धरातल के निकट प्रत्येक ३२० फुट की ऊँचाई पर तापक्रम १° फ० कम हो जाता है। ऊँचाई के साथ तापक्रम के घटने का एक कारण यह भी है कि ऊपर के दबाव के कारण नीचे की हवा ऊपर की हवा से अधिक घनी होती है, जिससे उसमे ताप को ग्रहण करने की अधिक क्षमता होती है।

## (३) धरातल के ढाल की दिशा

तापक्रम पर धरातल के ढाल की दिशा का भी प्रभाव पडता है। यह कथन चित्र २८७ से स्पष्ट होगा। इस चित्र मे ढाल पर स्थित दो स्थान प्रदर्शित किये गये ह। एक स्थान का ढाल सूर्य के सम्मुख है ओर दूसरे स्थान का ढाल सूर्य के विमुख है। चित्र से यह बात स्पष्ट होगी कि समान किरणावली से आनेवाला ताप पहले स्थान की अपेक्षा दूसरे स्थान पर अधिक क्षेत्रफल को प्रभावित करेगा जिससे सम्मुख ढाल की अपेक्षा विमुख ढाल वाले स्थान का तापक्रम कम होगा।

ढाल का प्रभाव हवाओ पर भी पडता है और हवाये तापक्रम को प्रभावित करती है। इस प्रकार भी परोक्ष रूप से ढाल तापक्रम को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिये उत्तरी गोलार्द्ध मे दक्षिण की ओर मुखवाले ढाल उत्तर की ठण्डी हवाओ से उन्मुक्त रहते है जिससे उनका तापक्रम उतना कम नही हो पाता. जितना कि वह अन्यथा होता।

## (४) प्रवाहित होने वाली हवाये

प्रवाहित होने वाली हवाओ का प्रभाव उस स्थान के तापक्रम पर निर्भर करता है, जहाँ से हवाये आती हे। समुद्र से आनेवाली वायु तापमान को सम बनाती है अर्थात् गर्मी के तापक्रम को घटाती है और जाडो के तापक्रम को बढाती है। इसके विपरीत स्थल से आनेवाली हवा गर्मी के तापक्रम को बढाती है और जाडे के तापक्रम को घटाती है। इसके अतिरिक्त ठण्डे प्रदेशो से आनेवाली हवाये तापक्रम को घटाती हे और उष्ण प्रदेशो से आने वाली हवाये तापमान को बढाती हे।

## (५) समुद्र से दूरी

स्थल की अपेक्षा जल गरम भी देर से होता है और ठण्डा भी। गर्मी की ऋतु मे समुद्र स्थल की अपेक्षा ठण्डा रहता है अतएव समुद्र से चलनेवाली पवन स्थल के तापक्रम को घटा देती है। जाडो मे समुद्र स्थल की अपेक्षा गरम रहता है, अतएव समुद्र से चलनेवाली पवन स्थल का तापक्रम बढा देती है। अन्य शब्दो मे समुद्र से चलने वाली पवन अथवा समीर ( Sea-breeze ) तापक्रम को सम बनाती है। यह जलसमीर केवल समुद्रतट के प्रदेशो तक ही सीमित रहती है, यही कारण है, कि समुद्र

के निकट जलवायु सम होती है। इसके विपरीत समुद्र से दूर स्थित प्रदेशो मे परम ( Extreme ) जलवायु पाई जाती है।

### (६) समुद्र की धाराये

धाराये स्वय तटो के जलवायु को प्रभावित नही करती वरन् उनके ऊपर चलने-वाली हवाओ का प्रभाव तट पर पडता है। यदि वायु की दिशा समुद्र से स्थल की ओर हुई तो—गरम धारा तापक्रम को बढा देगी और ठण्डी धारा तापक्रम को घटा देगी। यदि वायु की दिशा स्थल से समुद्र की ओर हुई तो धारा का तट पर बहुत कम प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए सयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वी तट पर धाराएँ गर्मियो मे समुद्र से स्थल की ओर चलती है, अतएव गल्फ स्ट्रीम से तटीय प्रदेश का तापमान बढ जाता है किन्तु जाडो मे हवाएँ स्थल से समुद्र की ओर चलती है अतएव इस ऋतु मे गल्फ स्ट्रीम का अमरीका के पूर्वी तटपर विशेष प्रभाव नही पडता। इसी प्रकार कनाडा के पूर्वी-तट पर लैब्रेडोर की धारा का जाडो मे विशेष प्रभाव नही पडता, क्योकि उस समय हवाये स्थल से समुद्र की ओर चलती है, किन्तु गर्मियो मे यह पूर्वी कनाडा के तापक्रम को वहुत घटा देती है, क्योकि उस समय समुद्र से स्थल की ओर हवाये चलती है।

### (७) मेघ एव वर्षा

ऐसे प्रदेशो मे जिनमे वर्षा अधिक होती है और आकाश मे प्राय बादल छाये रहते है, उन स्थानो की तुलना मे जहाँ आकाश खुला रहता है, तापक्रम कम होता है क्योकि जल-वाष्प का स्तर सूर्य की किरणो के मार्ग मे बाधक होता है। यही कारण है कि विषुवतीय प्रदेश का औसत तापक्रम जहाँ वर्ष भर बादल छाये रहते है और वर्षा होती है, कर्क और अयन रेखा के प्रदेशो से कम है।

## ५ भूपृष्ठ पर तापक्रम का सामान्य वितरण

### (१) औसत वार्षिक समताप रेखायें (Mean Annual Isotherms)

औसत वार्षिक समताप रेखाएँ अक्षाश रेखाओ के प्राय समानन्तर होती है अर्थात् उनकी दिशा पूर्व-पश्चिम होती है। इसका कारण यह है कि तापक्रम सूर्यातपन ( Insolation ) पर निर्भर है और सूर्यातपन की मात्रा अक्षाश रेखाओ के अनुसार होती है।

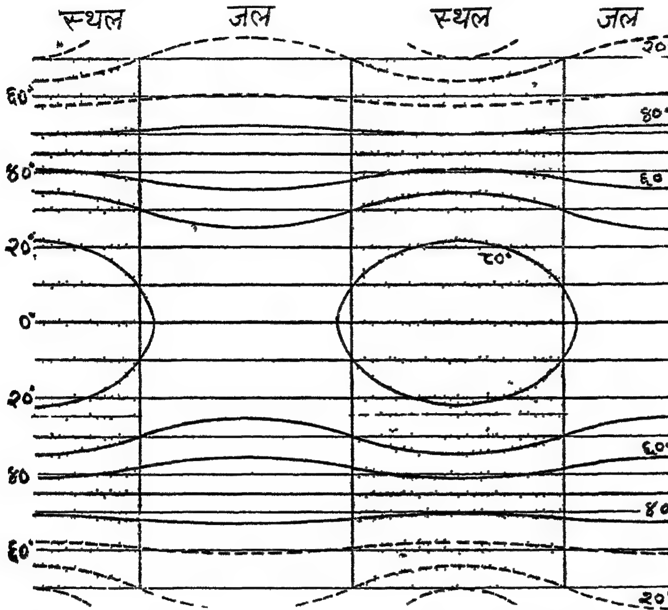
### (२) जल और स्थल के वितरण का प्रभाव

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है समान ताप से जल की अपेक्षा स्थल अधिक गरम हो जाता है। यही कारण है कि विषुवत रेखा के निकट स्थल पर समताप रेखाये ध्रुवो की ओर झुक जाती है और जल पर विषुवत रेखा की ओर। दूसरी ओर जल की अपेक्षा स्थल ठडा भी जल्दी होता है। इस कारण ध्रुवो के निकट समताप रेखाये विषुवतीय क्षेत्र के विपरीत दिशा मे झुक जाती है। अन्य शब्दो मे ध्रुवीय प्रदेश मे स्थल पर समताप रेखाये विषुवत रेखा की ओर झुक जाती हैं और जल पर ध्रुवो की ओर।

ध्रुवीय और विषुवतीय प्रदेशो के मध्य मे किसी अक्षाश पर स्थल और जल का तापक्रम प्राय एकसा होगा और वहाँ पर समताप रेखाये लगभग सीधी होगी।

## (३) हवाओ का प्रभाव

हवाये भी तापक्रम के वितरण को प्रभावित करती है। २७वें प्रकरण मे यह स्पष्ट किया गया है कि जिस तट से हवाये चलती है, उसका तापक्रम घट जाता




चित्र २८३—तापक्रम के क्षैतिज वितरण पर जल और स्थल का प्रभाव

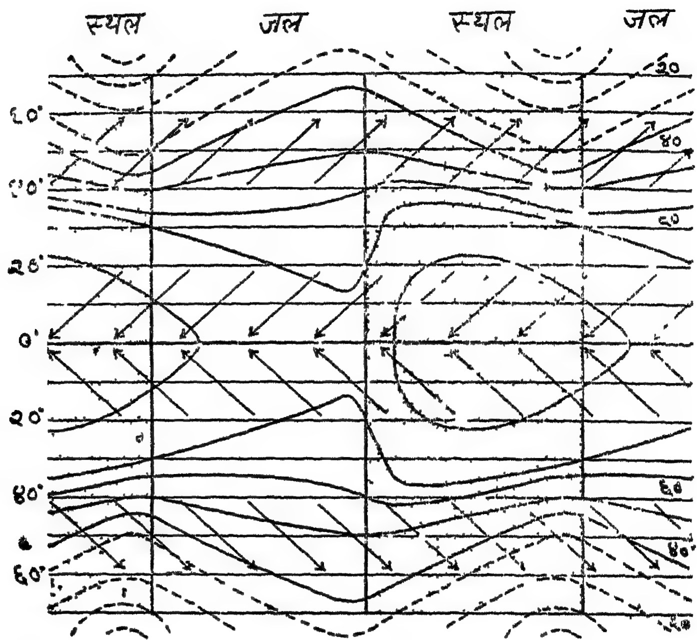
है और जिस तट की ओर वे जाती है उसका तापक्रम बढ जाता है। हवाओं का प्रभाव इसी सिद्धान्त के अनुसार होता है।

४०° उ० अक्षाश के उत्तर मे तथा ४०° द० अक्षाश के दक्षिण मे पछुवा हवाये चलती है। इनका प्रभाव यह पडता है कि महाद्वीपो के पश्चिमी तट का तापक्रम बढ जाता है और पूर्वी तट का तापक्रम घट जाता है। अतएव चित्र २८३ मे हवाओ का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए हमे चाहिए कि पछुवा हवा के क्षेत्र मे समताप रेखाओ को पूर्वीतट पर विषुवत रेखा की ओर खिसका दे और पश्चिमी तट पर ध्रुवो की ओर।

कर्क और अयन रेखाओ के बीच मे व्यापारिक हवाएँ चलती है। इनकी दिशा प्राय पूर्व से पश्चिम है अतएव इनका प्रभाव यह पडता है कि महाद्वीपो के पूर्वी किनारो का तापक्रम बढ जाता है और पश्चिमी किनारो का तापक्रम घट जाता है। अतएव चित्र २८३ मे हवाओ के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिये हमे चाहिये कि समताप रेखाओ

को पूर्वीतट पर ध्रुवो की ओर खिसका दे और पश्चिमी तट पर विषुवत रेखा की ओर।

## (४) ऋतुओ के अनुसार परिवर्तन

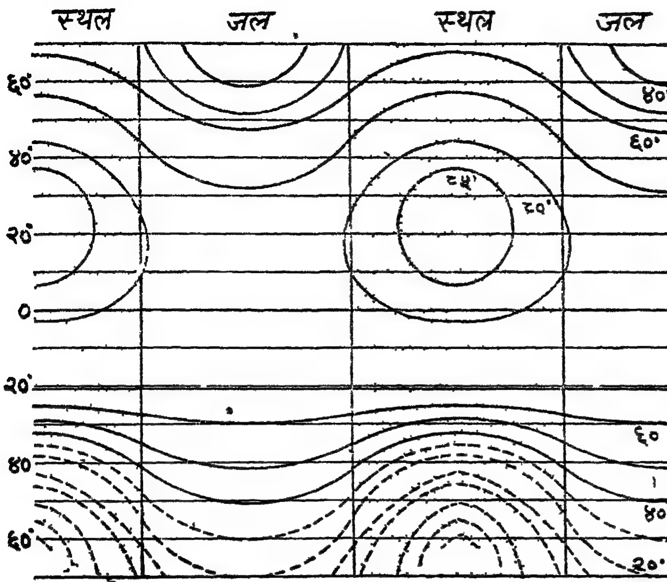



चित्र २८४—समताप रेखाओ की आकृति पर हवाओ का प्रभाव

चित्र २८४ मे समताप रेखाएँ तापक्रम का वार्षिक औसत प्रदर्शित करती हैं तापक्रम के मासिक औसत की भी समताप-रेखाएँ बनाई जा सकती है, किन्तु वे वार्षिक औसत से भिन्न होगी। उत्तरी गोलार्द्ध मे जुलाई प्राय सबसे गरम महीना होता है और जनवरी सबसे ठण्डा, अतएव जुलाई की समतापरेखाये ग्रीष्म ऋतु का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं और जनवरी की समताप रेखाये जाडो का।

## (क) जुलाई की समताप रेखाये

चित्र २८४ मे ४५° उ० अक्षाश के उत्तर मे स्थल जल की अपेक्षा ठण्डा है, किन्तु जुलाई मे यह दशा नही रहती। यह उत्तरी गोलार्द्ध का ग्रीष्मकाल होता हैं अतएव उसमे उत्तरी गोलार्द्ध के महाद्वीप सागर की अपेक्षा गरम होते हैं। अतएव ४५° उ० अक्षाश के उत्तर मे चित्र २८४ की समताप रेखाओ के मोड उलट जाते हैं अर्थात् वे समुद्र मे विषुवत् रेखा की ओर झुक जाती हैं और स्थल मे उत्तर की ओर।




चित्र २८५—जुलाई मे तापक्रम का सामान्य वितरण

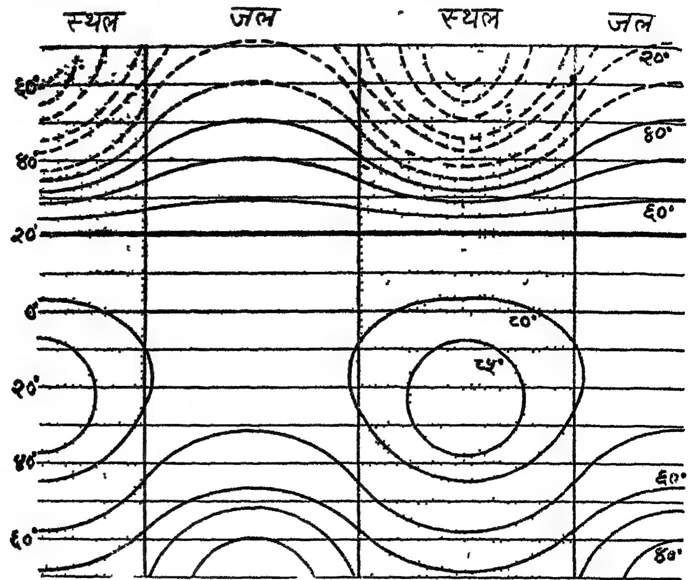
कर्क और मकर रेखा के बीच की समताप रेखाओ में थोडा ही परिवर्तन करना होगा। इस क्षेत्र मे जल की तुलना मे स्थल सदैव अधिक गरम रहता है। जुलाई मे यह अन्तर औसत की तुलना मे विषुवत रेखा के उत्तर मे थोडा बढ जायगा और दक्षिण मे थोडा घट जायगा। इसमे सबसे अधिक तापक्रम औसत तापक्रम के चित्र की तुलना मे कुछ उत्तर की ओर होगा।

दक्षिणी गोलार्द्ध मे जुलाई जाडे का महीना है। मकर रेखा के दक्षिण मे जल की अपेक्षा स्थल ठण्डा होगा। वार्षिक औसत मे भी यही बात लागू होती थी, किन्तु जाडो मे यह अन्तर अधिक बढ जाता है, अतएव इस क्षेत्र मे समताप रेखाओ के मोड पूर्ववत् दिशा मे रहते है, केवल उनकी मात्रा बढा दी जाती है।

## (ख) जनवरी की समताप रेखाये

जुलाई की समताप रेखाओ का अध्ययन कर लेने के बाद जनवरी की समताप रेखाओ की विस्तृत विवेचना अनावश्यक है।जनवरी मे उत्तरी गोलार्द्ध मे जाडे की ऋतु होती है और दक्षिणी गोलार्द्ध मे ग्रीष्म की। अतएव जनवरी की समताप रेखाये बनाने के लिये केवल इतना ध्यान रखना चाहिये कि जुलाई मे जो बात उत्तरी गोलार्द्ध के लिये लागू होती थी वह अब दक्षिणी गोलार्द्ध को लागू होगी और जो बात दक्षिणी गोलार्द्ध को लागू होती थी, वह अब दक्षिणी गोलार्द्ध को लागू होगी। सक्षेप मे दोनो गोलार्द्धो की दशाओ मे अदला-बदली हो जाती है। वास्तव मे यदि जुलाई की

समताप रेखाओ के मानचित्र के उत्तरी अथवा दक्षिणी किनारे पर एक दर्पण रख




चित्र २८६—जनवरी मे तापक्रम का सामान्य वितरण

दिया जावे तो उसमे जो प्रतिबिम्ब बनेगा वह जनवरी की समताप रेखाओ के अनुरूप होगा। चित्र २८६ से यह कथन स्पष्ट होगा।

## ६ तापान्तर (Range of temperature)

### (१) तापान्तर के विभिन्न भेद

तापान्तर शब्द अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होता है —

(१) परम तापान्तर (Absolute Range of Temperature)—
=किसी स्थान पर कभी भी (Ever) अनुभव होने वाला सबसे अधिक और सबसे कम तापक्रम का अन्तर

(२) औसत वार्षिक परम तापान्तर (Mean Annual Extreme Range)
=कई वर्षो के परम तापान्तर का औसत

(३) वार्षिक तापान्तर (Annual Range)=सबसे गरम महीने का औसत तापक्रम—सबसे ठण्डे महीने का औसत तापक्रम

(४) औसत वार्षिक तापान्तर=कई वर्षों के वार्षिक तापान्तर का औसत

तापान्तर शब्द का प्रयोग अधिकतर औसत वार्षिक तापान्तर के अर्थ मे होता है।

### (२) तापान्तर को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

निम्नलिखित प्रतिकारक तापान्तर को प्रभावित करते है —

(क) अक्षाश
(ख) ऊँचाई
(ग) समुद्र से दूरी
(घ) धरातल का ढाल
(ङ) समुद्र की धाराये तथा प्रवाहित होने वाली हवाये
(च) मेघ एव वर्षा।

(क) **अक्षाश**—सामान्यत विषुवत रेखा के निकट तापान्तर कम होता है और ध्रुवो की ओर बढता जाता है। विषुवत रेखा के निकट प्राय वर्ष भर सूर्य की किरणे सीधी पडती है और जितने ही हम उत्तर अथवा दक्षिण की ओर बढते है उतनी ही सूर्य की किरणे अधिक तिरछी होती जाती है और दिन और रात की अवधि का अन्तर बढता जाता है।

विषुवत रेखा के निकट औसत वार्षिक तापान्तर असाधारण रूप से कम होता है। वास्तव मे इस प्रदेश मे जाडे और गर्मियो की ऋतुये ही नही होती। उदाहरण के लिये सिगापुर मे मई का औसत तापक्रम ८१° फ० है और जनवरी का ७८° फ०।

शीतोष्ण कटिबन्ध मे जाडे और गर्मियो की निश्चित ऋतुये होती है। उदाहरण के लिये न्यूयार्क मे जुलाई का औसत तापक्रम ७५° फ० है और जनवरी का ३०° फ०। इस प्रकार यहाँ का तापान्तर ४५° है।

सामान्यत हम यह आशा करते है कि ध्रुवीय प्रदेश मे तापान्तर बहुत अधिक होगा क्योकि यहाँ एक ऐसी ऋतु होती है जिसमे सूर्य के कभी दर्शन नही होते और दूसरी एक ऋतु है जिसमे सूर्य कभी डूबता ही नही। इस क्षेत्र मे जाडो का तापक्रम अवश्य बहुत कम होता है, किन्तु गर्मियो मे तापक्रम अधिक नही होता क्योकि एक तो सूर्य की किरणे बहुत तिरछी पडती है दूसरे बर्फ के पिघलने मे ताप का अधिकाश भाग व्यय हो जाता है।

वरखोयस्क का जुलाई का औसत तापक्रम ५९° फ० है और जनवरी का –५८° फ० इस प्रकार यहाँ का तापान्तर ११७° फ० है।

(ख) **ऊँचाई**—सामान्य नियम यह है कि ऊँचाई जितनी बढ़ती जाती है तापक्रम उतना ही कम होता जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नीचे स्थान की अपेक्षा ऊँचे स्थान का तापक्रम जुलाई और जनवरी दोनो मे कम होगा। इससे तापान्तर पर कोई प्रभाव न पडेगा। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये सागर-समतल पर स्थित किसी स्थान का जुलाई और जनवरी का तापक्रम क्रमश ८०° और ५०° है और ऊँचे धरातल पर स्थित किसी अन्य स्थान का जुलाई और जनवरी का तापक्रम क्रमश ७०° और ४०° है। स्पष्ट है कि इन दोनो स्थानो का तापान्तर एक ही है ८०°-५०°=३०°, ७०°-४०°=३०°। इस दृष्टि से ऊँचाई का तापान्तर पर कोई भी प्रभाव नही पडता।

ऊँचाई एक अन्य रीति से भी तापक्रम को प्रभावित करती है। ऊँचे स्थान दिन मे सूर्यातपन (Insolation) अधिक मात्रा मे ग्रहण करते है और रात मे उनसे विकिरण भी अधिक होता है। इससे ऊँचे स्थानो मे दिन रात का तापान्तर (Diurnal Range) अधिक होता है, किन्तु उससे उनके औसत तापक्रम पर विशेष प्रभाव नही पडता।

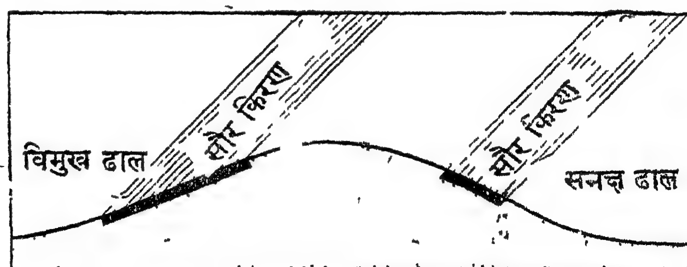
ऊँचे स्थानो की वायु नीचे स्थानो की अपेक्षा विरल (Rare) होती है, जिससे उसमे ताप को ग्रहण करने की क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है। अतएव जब धरातल पर सौर-शक्ति अधिक मात्रा मे आती है, तो नीचे स्थानो की अपेक्षा ऊँचे स्थान उसे कम ग्रहण कर पाते है, जिससे उनका तापक्रम उतना ऊँचा नही होता, जितना कि वह अन्यथा होता। इसके अतिरिक्त एक और प्रतिकारक भी विचारणीय है। नीचे स्थानो की अपेक्षा ऊँचे स्थानो मे मेघावरण की मात्रा अधिक होती है। मेघ सूर्य की किरणो के पथ मे बाधक होते है और उनके ताप के कुछ भाग को सोख लेते है। विरल वायुमण्डल और मेघावरण के कारण ऊँचे स्थानो का दिन का तापक्रम कुछ घट जाता है जिससे तापान्तर भी प्राय प्रभावित होता है अर्थात् वह थोडा सा कम हो जाता है।

ऊँचाई के प्रभाव का स्वतन्त्र अध्ययन कठिन है। वायु की दिशा, समुद्र की दूरी, धरातल की आकृति एव अन्य प्रतिकारको के साथ इसके प्रभाव का अध्ययन अधिक सुविधाजनक होता है।

(ग) **समुद्र से दूरी**—जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, समुद्र तापक्रम को सम बनाता है अर्थात् वह जाडो के तापक्रम को बढाता है और गर्मियो के तापक्रम को घटाता है, अतएव जो स्थान समुद्र के तट पर स्थित होते है, उनमे तापान्तर कम होता है। महाद्वीपो के अभ्यन्तर तक समुद्र का प्रभाव नही पहुँचता जिससे वहाँ तापान्तर की मात्रा बहुत होती है। उदाहरण—

| नगर | जुलाई तापक्रम | जनवरी तापक्रम | तापान्तर |
|---|---|---|---|
| लाहौर | ९५° | ५४° | ४१° |
| बम्बई | ८३° | ७४° | ९° |

(घ) **धरातल का ढाल**—सूर्य की ओर मुखवाले ढाल विमुख ढाल की अपेक्षा गर्मियो मे अधिक गरम होते है और जाडो मे कम ठण्डे। गर्मियो मे इनके




चित्र २८७—तापक्रम पर धरातल के ढाल का प्रभाव

अधिक गरम होने का कारण यह है कि सूर्य के सामने पडने से इनमे सूर्यातपन अधिक होता है। चित्र २८७ से यह कथन स्पष्ट होगा। जाडो मे इनके कम ठण्डे होने का कारण यह है, कि विमुख ढाल आड मे पड जाने से बहुत ठण्डे हो जाते है। यदि उपर्युक्त दोनो प्रभाव बराबर हुए तब तो तापान्तर पर कोई प्रभाव न पडेगा, किन्तु सामान्य त ऐसा नही होता, अतएव तापान्तर प्रभावित होता है।

(ङ) **समुद्र की धारायें तथा प्रवाहित होनेवाली हवायें**—इस सम्बन्ध

मे केवल दो उदाहरण दिये जा रहे है। उनसे इस प्रभाव में निहित सिद्धान्त स्पष्ट हो जायगा —

(१) सयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वी तट पर गर्मियो मे हवाये समुद्र से स्थल की ओर चलती है, अतएव इस ऋतु मे गल्फ-स्ट्रीम से तटीयप्रदेश का तापक्रम बढ जाता है। जाडो मे हवाये स्थल से जल की ओर चलती है, अतएव जाडो मे अमरीका के पूर्वी तट पर गल्फ-स्ट्रीम का कोई प्रभाव नही पडता। इस प्रकार इस दशा मे धारा और वायु के कारण तापान्तर बढ गया है'

(२) कनाडा के पूर्वी तट पर बहनेवाली लैब्रेडोर की शीतल धारा का जाडो मे विशेष प्रभाव नही पडता, क्योकि उस समय हवाये स्थल से जल की ओर चलती है किन्तु गर्मियो मे इस धारा के कारण पूर्वी कनाडा का तापक्रम बहुत घट जाता है क्योकि उस समय हवाये समुद्र से स्थल की ओर चलती है। इस प्रकार इस दशा मे धारा और वायु के कारण तापान्तर कम हो गया है।

(च) **मेघ एवं वर्षा**—जिन स्थानो मे वर्ष भर बादल छाये रहते है और घनघोर वृष्टि होती है, उनका गर्मियो का औसत तापक्रम अपेक्षाकृत कम होता है, क्योकि बादल सौर-ताप के कुछ अश को सोख लेते है और कुछ ताप वाष्पीकरण की क्रिया मे व्यय हो जाता है। दूसरी ओर, जाडे की ऋतु में बादलो का आवरण पृथ्वी के विकिरण को रोकता है अर्थात् बादलो के कारण जाडो का औसत तापक्रम अपेक्षाकृत अधिक होता है। अन्य शब्दो मे बादल और वर्षा के कारण औसत वार्षिक तापान्तर कम हो जाता है। यही कारण है कि ब्रिटिश द्वीप समूह मे तापान्तर बहुत कम होता है।

# चवालीसवाँ परिच्छेद

# तापक्रम का लम्बवत् वितरण

## (Vertical Distribution of Temperature)

## १. तापक्रम की लम्बवत् प्रवणता

### (Vertical gradient of temperature)

जब हम धरातल से वायुमण्डल मे ऊपर की ओर जाते है, तब तापक्रम क्रमश घटता जाता है। प्रत्येक ३२० फुट की ऊँचाई पर तापक्रम १° फ० कम हो जाता है। इसे हम तापक्रम की लम्बवत् प्रवणता कहते हैं।

## २. ऊँचाई के साथ तापक्रम घटने का कारण

सामान्यत हम यह आशा करते है कि अधिक ऊँचाई पर तापक्रम अधिक होगा, क्योकि वह धरातल की अपेक्षा सूर्य से निकट है, जिससे वहाँ सूर्य की किरणे अधिक प्रखर होती है। यह सत्य भी है। इसका प्रमाण यह है, कि मैदान की अपेक्षा पर्वतो पर मनुष्य का चेहरा धूप से जल्दी झुलस जाता है। यह सत्य होते हुए भी मैदान की अपेक्षा पहाडो की वायु ठण्डी होती है। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हवा के गरम होने का प्रत्यक्ष कारण सूर्य की किरणे नही है।

वायु को सूर्य के विकिरण की अपेक्षा पृथ्वी के सस्पर्श से अधिक ताप मिलता है। जब हम आग के निकट बैठते है, तब हम उसके ताप का अनुभव करते है, यद्यपि हमारे और आग के बीच की वायु ठण्डी रहती है। इसी प्रकार सूर्य की किरणे पृथ्वी को गर्म करती है, यद्यपि बीच का वायुमण्डल ठण्डा रहता है। जब धरातल गर्म होता है, तब वह सचालन द्वारा वायु के सबसे नीचे स्तर को गरम करता है। फिर ताप एक स्तर से दूसरे स्तर मे होता हुआ ऊपर की ओर फैलता जाता है। गरम होने से वायु ऊपर उठती है, जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्ति ऊपर की अपेक्षाकृत ठण्डी वायु करती है, फिर वह भी गर्म होकर ऊपर उठती है। इस प्रकार सवाहन की धारायें अस्तित्व मे आ जाती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है, कि ताप के ऊपर फैलने मे सचालन और सवाहन दोनो क्रियायें सहायक होती है।

निम्नलिखित प्रयोग द्वारा इस कथन की पुष्टि की जा सकती है कि वायु के ताप पर सूर्य की किरणो का सीधा प्रभाव नही पडता—

**प्रयोग**—किसी ऐसे दिन जब धूप निकली हो और वायुमण्डल शान्त हो एक थर्मामीटर लेकर खुली हवा मे, जहाँ धूप हो, लटका दीजये। आप देखेंगे कि थर्मामीटर का पारा तुरन्त ऊपर चढता है और तापक्रम बढ जाता है। इसके बाद आप उसी थर्मामीटर को उसी धूप और उसी हवा मे हिलाइये। आप देखेंगे कि थर्मामीटर को हवा मे हिलाते ही उसका तापक्रम गिर जाता है। इसका कारण यह है कि यद्यपि सूर्य थर्मामीटर को गरम करता है, तथापि बीच की हवा पर उसका प्रभाव नही पडता, जब हम थर्मामीटर को हिलाते है, तब वह वायु के कणो के सम्पर्क मे आता है। वायु का तापक्रम कम होता है, यही कारण है कि उसके सस्पर्श मे आने से थर्मामीटर का तापक्रम घट जाता है। दूसरी ओर, जब हम थर्मामीटर को धूप मे शान्तिपूर्वक लटकते रहने देते है, तब सूर्य की किरणे थर्मामीटर को गरम करती है और तब सचालन द्वारा थर्मामीटर अपने निकट की वायु को गरम करता है।

इस प्रकार वायुमण्डल के निचले भागो मे तापक्रम अधिक है और वह ऊपर की ओर घटता जाता है।

## ३ अभिन्न स्थायी एवं अस्थायी साम्य

### (Indifferent, Stable and Unstable equilibrium)

जब किसी वायु-प्रवाह के पथ में पहाडी आ जाती है, तब उस वायु को पहाडी पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है। जब वह ऊपर चढते हुए पहाडी की चोटी पर पहुँचती है, उस समय उसके समक्ष तीन विकल्प ( Alternatives ) होते है —

(१) या तो वह ऊपर चढती चली जाती है।

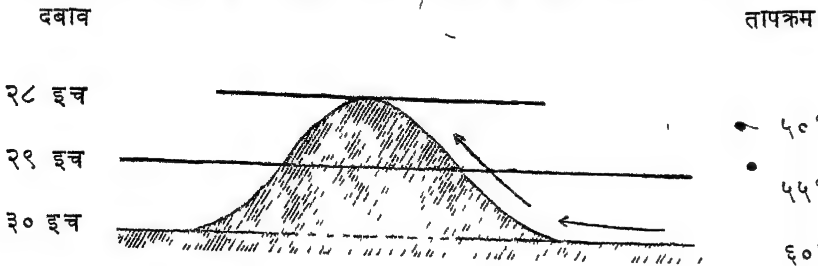
(२) या वह पहाडी के पिछले ढाल पर नीचे उतरती है।

(३) या वह वही चोटी पर स्थिर रहती है।

वायु उपर्युक्त तीन विकल्पो मे किसे अपनायेगी, यह तापक्रम की लम्बवत् प्रवणता पर निर्भर है।

मान लीजिए, हमारे पास ऐसी शुष्क वायु है, जिसका तापक्रम ३० इच के दबाव पर ६०° फ० है। यदि इस वायु का दबाव घटाकर २९ इच कर दिया जाता है, तो उसका तापक्रम ५५° फ० हो जाता है। यदि दबाव को और भी घटाकर २८ इच कर दिया जाय तो वायु का तापक्रम ५०° फ० हो जाता है।

चित्र २८८ मे एक पहाडी दिखलाई गई है और वायुमण्डल की विभिन्न ऊँचइयो पर तापक्रम और दबाव प्रदर्शित किये गये है। मान लीजिये वह सूखी हवा जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है, इस क्षेत्र मे प्रवाहित होती है। जब यह वायु पहाडी के सम्पर्क में आती है, तब उसे चित्रानुसार ढाल पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है धरातल पर इस वायु का तापक्रम ६०°फ० है, क्योकि वहाँ पर ३० इच का दबाव



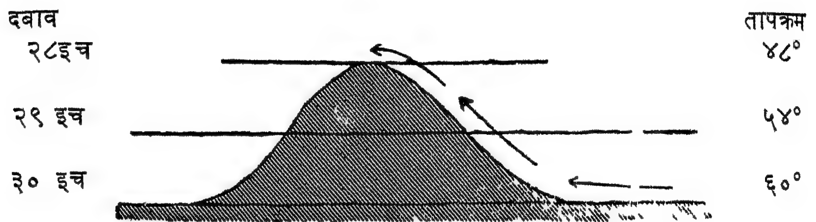

चित्र २८८—अभिन्न साम्य

है। वायुमण्डल की वायु का भी धरातल पर यही तापक्रम है। ९०० फुट की ऊँचाई पर दबाव एक इच घट जाता है अर्थात् २९ इच रह जाता है। अतएव, जब शुष्क वायु ढाल पर ९०० फुट की लम्बवत् ऊँचाई तय कर लेती है, तब उस पर २९ इच का दबाव हो जाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, २९ इंच के दबाव पर उपर्युक्त शुष्क वायु का तापक्रम ५५° फ० हो जाता है। इस ऊँचाई पर वायुमण्डल की वायु का भी यही तापक्रम है। इसी प्रकार पहाडी की चोटी पर पहुँचकर शुष्क

वायु का तापक्रम ५०° फ० रह जाता है और यही तापक्रम इस ऊँचाई पर स्थित वायुमण्डल की वायु का भी है।

अन्य शब्दो मे, इस दशा मे, बाध्य होकर ढाल पर चढने वाली वायु और उसी समतल की वायुमण्डल की वायु का तापक्रम प्रत्येक ऊँचाई पर समान है। तापक्रम समान होने से इन वायु-राशियो का घनत्व भी एक सा होगा। अतएव यदि प्रवाहित होनेवाली वायु किसी भी समय ढाल पर कही भी रुक जाती है, तब वह वही पर स्थिर रहती है, अर्थात् न वह ऊपर जाती है और न नीचे आती है। ऐसी दशा मे हम यह कहते है कि वायु अभिन्न साम्य (Indifferent equilibrium) की अवस्था मे है। इस दशा में वायुमण्डल की प्रवणता ५° फ० प्रति ९०० फुट है, जो शुष्क वायु की प्रवणता है।

यह आवश्यक नही है कि वायुमण्डल के तापक्रम की प्रवणता सदैव ५° फ० प्रति ९०० फुट ही हो। वह कम भी हो सकती है और अधिक भी। चित्र २८९ मे एक पहाडी दिखलाई गई है और वायुमण्डल की विभिन्न ऊँचाइयो पर दबाव और तापमान प्रदर्शित किये गये है। इस दशा मे वायुमण्डल की प्रवणता ६° प्रति ९०० फुट है।

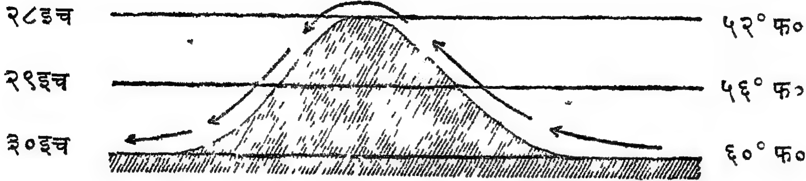



चित्र २८९—अस्थायी साम्य

यदि शुष्क वायु को इस पहाडी पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है, तो ९०० फुट की ऊँचाई पर जब उस पर २९ इच का दबाव होता है, तब उसका तापक्रम ५५° फ० हो जाता है। किन्तु उसी समतल की वायु का तापक्रम ५४° फ० है। अन्य शब्दो मे ऊपर चढनेवाली वायु वायुमण्डल की वायु से हल्की होती है। अतएव यदि वायुप्रवाह रुक भी जाय, तो भी यह वायु ऊपर चढेगी। इसी प्रकार १८०० फुट की ऊँचाई पर ऊपर चढनेवाली वायु का तापक्रम ५०° फ० होगा जब कि उसी समतल पर वायुमण्डल की वायु का तापक्रम केवल ४८° फ० है। अतएव, इस दशा मे भी प्रवाह रुक जाने पर ढाल की वायु ऊपर उठेगी। ऐसी दशा मे यह कहा जाता है कि वायु अस्थायी साम्य (Unstable Equilibrium) की अवस्था मे हे।

एक और भी अवस्था हो सकती है, जो चित्र २९० मे प्रदर्शित की गई है। इस दशा मे जब शुष्क वायु ९०० फुट की ऊँचाई पर पहुचती है, तब उसका तापक्रम ५५ फ० होता है और इसी समतल पर वायुमण्डल की वायु का तापमान ५६° है। अन्य शब्दो मे ऊपर चढनेवाली वायु वायुमण्डल की वायु की अपेक्षा भारी हो जाती है

अतएव ऐसी दशा मे, यदि ऊपर चढनेवाली वायु का प्रवाह किसी भी समय रुक जाय तो वायु ऊपर न जाकर नीचे उतरती है। इससे यह भी स्पष्ट होगा कि यदि वायु पहाडी की चोटी तक पहुँच जाती है, तो उसके बाद वह दूसरी ओर नीचे




चित्र २९०—स्थायी साम्य

उतरती है। इस साम्य को स्थायी साम्य ( Stable Equilibrium ) कहते हैं।

**सक्षेप में—**

(१) अभिन्न साम्य की दशा मे यदि किसी भी वायु राशि को ऊपर या नीचे जाने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल के तापक्रम को ग्रहण कर लेती है और जब प्रवाह-शक्ति क्षीण हो जाती है तब वह वही स्थिर रहती है जहाँ वह पहुँच चुकी है।

(२) अस्थायी साम्य की दशा मे यदि किसी वायु-राशि को ऊपर चढने के लिए बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा गरम हो जाती है, अतएव वह प्रवाह-शक्ति क्षीण हो जाने पर भी ऊपर उठती है, इसके विपरीत यदि उसे नीचे उतरने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा अधिक ठण्डी हो जाती है अतएव प्रवाह-शक्ति क्षीण हो जाने पर भी वह नीचे उतरती है। अन्य शब्दो मे इस साम्य मे प्रवाह पूर्ववत् दिशा मे जारी रहता है।

(३) स्थायी साम्य की दशा मे यदि किसी वायु राशि को ऊपर चढने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा शीतल हो जाती है अतएव प्रवाह-शक्ति के क्षीण हो जाने पर वह नीचे उतर कर अपने पूर्ववत् समतल पर आ जाती है, दूसरी ओर यदि उसे नीचे उतरने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा उष्ण हो जाती है अतएव प्रवाह-शक्ति के क्षीण होने पर वह ऊपर चढकर अपने पूर्ववत् समतल पर आ जाती है। अन्य शब्दो मे इस साम्य मे प्रवाह विपरीत दिशा मे होता है।

## ४ सामान्य प्रव - ता (Normal Gradient)

तापक्रम के अभिन्न साम्य की प्रवणता को हम सामान्य प्रवणता ( Normal Gradient ) कहते हैं। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है, कि अस्थायी साम्य की दशा मे प्रवणता सामान्य प्रवणता की अपेक्षा अधिक होती है और स्थायी साम्य मे कम।

## ५ प्रवणता पर जलवाष्प का प्रभाव

शुष्क वायु की सामान्य लम्बवत् प्रवणता आर्द्र वायु की अपेक्षा कम होती है। इसका कारण यह है कि आर्द्र वायु के द्रवीभवन से गुप्त-ताप विकसित होता है, जिससे तापक्रम अपेक्षाकृत धीरे-धीरे घटता है।

## ६ वायुमंडल के विभिन्न स्तरों की लम्बवत् प्रवणता

लम्बवत् प्रवणता के विचार से वायुमण्डल के तीन भाग किये जा सकते हैं—

(१) नीचे का स्तर—इसका विस्तार धरातल से लेकर लगभग १०,००० फुट की ऊँचाई तक है। इसकी प्रवणता शुष्क वायु की औसत प्रवणता से कम होती है, क्योकि इसमे जलवाष्प की मात्रा रहती है।

(२) मध्य का स्तर—इसका विस्तार लगभग १०,००० फुट की ऊँचाई से लेकर लगभग ३३,००० फुट तक है इसकी प्रवणता शुष्क वायु की औसत प्रवणता के लगभग समान है।

(३) ऊपर का स्तर—इसका विस्तार ३३,००० फुट के ऊपर है। इसमे प्रवणता नही है और कही-कही अत्यन्त मन्द वेग से उलटी प्रवणता पाई जाती है।

उपर्युक्त तथ्य उत्तरी पश्चिमी योरप के अवलोकनो पर आधारित है। ससार के अन्य भागो मे इन सख्याओ मे थोडा अन्तर होगा।

## ७ पर्वतों का तापक्रम

**दिन की दशा**—दिन मे सूर्य की किरणो से पहाड गरम होता है और जो वायु उसके धरातल के निकट होती है, सस्पर्श द्वारा वह भी गरम होती है। अतएव पहाड के निकट की वायु का तापक्रम अपने समतल की शेष वायु की तुलना में अधिक होता है जिससे समतापीय पृष्ठ (Isothermal Surface) पहाड के निकट नोचे की ओर मुड जाता है, जैसा कि चित्र २९१ मे प्रदर्शित किया गया है।




चित्र २९१—पर्वत के पार्श्व का दिन मे तापक्रम

पहाड के धरातल की वायु के ऊपर उठने से जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्ति के लिये मैदान की ओर से ठण्डी हवा चलती है। इस प्रकार, यद्यपि पहाड का तापक्रम मैदान की अपेक्षा अधिक होता है, तथापि उसके धरातल की वायु का तापक्रम कम होता है।

**रात्रि की दशा**—रात्रि मे दशाये बिल्कुल विपरीत हो जाती हैं। पहाड के ठण्डे होने से सस्पर्श द्वारा उसके धरातल के निकट की वायु भी ठण्डी होती है। यह




चित्र २९२—पर्वत के पार्श्व का रात्रि मे तापक्रम

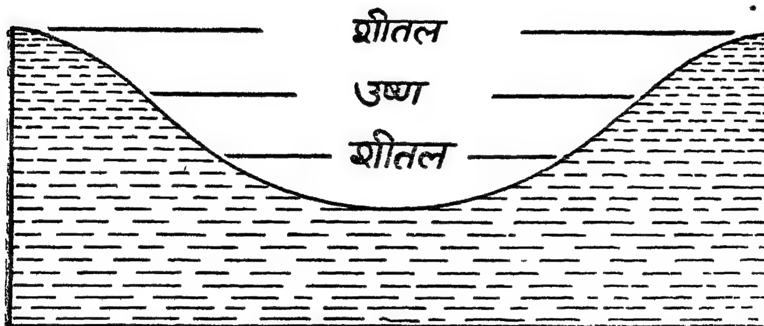
वायु अपने समतल की शेष वायु की तुलना मे अधिक ठण्डी होती है, जिससे समतापीय पृष्ठ पहाड के निकट ऊपर की ओर झुक जाता है। चित्र २९२ से यह कथन स्पष्ट होगा। इस दशा मे पहाड के धरातल की ठण्डी वायु अपने समतल की शेष वायु की अपेक्षा अधिक भारी होने के कारण ढाल के अनुरूप नीचे उतरती है।

## ८ पर्वत और घाटी की हवायें

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जब वायुमण्डल शान्त होता है, तब दिन मे वायु ढाल के अनुरूप पहाड के ऊपर चढती है और रात मे ठण्डी हवा पहाड से ढाल पर नीचे उतरती है। प्रथम वायु को एनाबेटिक (Anabatic) तथा द्वितीय को कैटाबेटिक (Katabatic) कहते हैं।

## ९ तापक्रम का उत्क्रमण (Inversion of temperature)

जाडो मे राते लम्बी होती है। यदि वायुमण्डल शान्त हुआ तो चित्र २९२ की दशा घण्टो बनी रहती है। ठण्डी वायु, जो पहाड से ढाल पर नीचे उतरती है, घाटी के तल मे क्रमश एकत्र होती रहती है। इस प्रकार घाटी के निचले भाग मे ठण्डी हवा की राशि आरूढ होती है, किन्तु उसके ऊपर की वायु अपेक्षाकृत उष्ण होती है क्योकि उसे ठण्डे धरातल के संस्पर्श मे नही आना पडा। इस उष्ण वायु के ऊपर की वायु ठण्डी होती है, क्योकि सामान्य नियम के अनुसार ऊँचाई के साथ तापक्रम घटता जाता है।




चित्र २९३ तापक्रम का उत्क्रमण

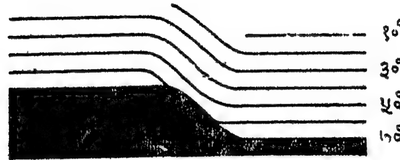
सामान्यत, ज्यो-ज्यो हम वायुमण्डल मे नीचे से ऊपर की ओर जाते हैं त्यो-त्यो तापक्रम क्रमश घटता जाता है। वायु के उष्ण स्तर के ऊपर हमे शीतल स्तर मिलता है और उसके ऊपर और भी शीतल स्तर मिलता है। अन्य शब्दो, मे, जब हम ऊपर जाते हैं, तब हमे स्तरो का क्रम इस प्रकार मिलता है—उष्ण, शीतल अधिक शीतल। इस विशेष दशा मे घाटी मे ठण्डी हवा के एकत्र हो जाने से स्तरो का क्रम इस प्रकार हो गया है—शीतल, उष्ण, शीतल। तापमान के सामान्य क्रम के इस प्रकार उलट जाने को हम 'तापक्रम का उत्क्रमण' (Inversion of temperature) कहते हैं।

आल्प्स पर्वत की घाटियो मे तापक्रम का उत्क्रमण बहुत होता है।

## १० पठार का तापक्रम

पठार और पर्वत मे यही मुख्य भेद है कि पठार पर्वत की अपेक्षा बहुत चौडा होता है। अतएव पठार का तापक्रम (चित्र २९४) पर्वत के तापक्रम (चित्र २९१) से

मिलता-जुलता है, अन्तर केवल यह होता है, कि पठार के समतल धरातल के ऊपर समतापीय पृष्ठ (Isothermal Surfaces) मैदान की भाति क्षैतिज होते हैं। चित्र २९४ से प्रकट है कि सागर समतल से समान ऊँचाई पर पठार के ऊपर की वायु मैदान के ऊपर की वायु की अपेक्षा गरम होती है। गरम होने के कारण वह हल्की होती है और ऊपर उठती है। उसके रिक्त स्थान की पूर्त्ति के लिये मैदान के ऊपर की ठण्डी हवाये आती है। अतएव, यद्यपि स्वय पठार का तापक्रम अधिक होता है, तथापि उसके धरातल पर ठण्डी हवाये प्रवाहित होती हैं।




चित्र २९४—पठार का तापक्रम

पठार जितना ही अधिक ऊँचा होगा उसके ऊपर की वायु और उसी समतल पर मैदान की वायु के तापक्रम मे उतना ही अधिक अन्तर होगा। यह अन्तर जितना ही अधिक होगा, मैदान से पठार की ओर चलने वाली वायु का वेग उतना ही अधिक होगा। एशिया मे चलनेवाली मानसून हवाओ के वेगवान होने का एक कारण मध्यवर्ती पठार का ऊँचा होना है।

# पैंतालीसवाँ परिच्छेद

# आर्द्रता (HUMIDTITY)

## १ वायु में विद्यमान जलवाष्प और उसका उद्गम

जलवाष्प (Water Vapour) वायुमण्डल के निचले स्तरो मे रहती है। इसकी मात्रा सभी स्थानो मे एकसी नही रहती—उदाहरण के लिये जलाशयो के निकट यह अधिक मात्रा मे पाई जाती है और मरुस्थलो के ऊपर न्यून होती है। इसके अतिरिक्त किसी एक स्थान पर जलवाष्प की मात्रा सदैव एक सी नही रहती। समय के अनुसार उसमे अन्तर होते रहते है। किसी भी स्थान पर वर्षा-ऋतु में जलवाष्प की मात्रा बढ जाती है और ग्रीष्म ऋतु मे कम हो जाती है।

वायुमण्डल की यह जलवाष्प नदी, तालाब, झील, सागर आदि के जल के वाष्पीकरण ( Evoporation ) से बनती है। यहाँ तक कि हिम और शीत मे भी अल्प मात्रा मे वाष्पीकरण होता है।

## २ परम आर्द्रता (Absolute Humidity) एवं आपेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity)

किसी विशेष तापक्रम पर वायु के इकाई आयतन मे विद्यमान भाप की मात्रा को हम उस वायु की परम आर्द्रता ( Absolute Humidity ) कहते है। मान लीजिये ७०° फ० तापक्रम पर एक घन फुट वायु मे ५ ग्राम भाप वर्तमान है, ऐसी दशा मे वायु की परम आर्द्रता ५ ग्राम हुई।

जब वायु मे इतनी भाप रहती है, जितनी वह अधिक से अधिक ग्रहण कर सकती हे, तब हम उस वायु को भाप से सतृप्त ( Saturated ) वायु कहते हैं। मान लीजिये ७०° फ० पर एक घन फुट वायु को भाप से सतृप्त करने पर उसमे १० ग्राम भाप आती है। अन्य शब्दो मे ७०° फ० तापक्रम पर एक घन फुट वायु अधिक से अधिक १० ग्राम भाप ग्रहण कर सकती है। ऐसी दशा मे यदि हम ५ ग्राम और १० ग्राम के अनुपात को प्रतिशत मे प्रकट करे तो उसे हम उपर्युक्त वायु की आपेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity) कहते है। अन्य शब्दो मे किसी वायु की आपेक्षिक आर्द्रता प्रतिशत मे प्रगट किया गया वह सम्बन्ध है, जो उस वायु मे विद्यमान भाप की मात्रा मे और उसी तापक्रम पर, उसी आयतन की सतृप्त वायु की भाप की मात्रा मे होता है। उपर्युक्त दशा मे वायु की परम आर्द्रता ५ ग्राम है और उसकी आपेक्षिक आर्द्रता ५० प्रतिशत है।

सक्षेप मे, वायु मे वर्तमान भाप और उसमे सम्भव अधिक से अधिक भाप का प्रतिशत मे प्रकट किया गया सम्बन्ध ही आपेक्षिक आर्द्रता है।

## ३ ओसांक (Dew Point)

वायु गरम होने पर फैलती है, जिससे उसका आयतन बढ जाता है। आयतन के बढ जाने से उसकी भाप ग्रहण करने की क्षमता भी बढ जाती है।

दूसरी ओर ठण्डी होने पर वायु सिकुडती है। आयतन के घट जाने से उसकी भाप ग्रहण करने की क्षमता भी घट जाती है।

अतएव, जब वायु को क्रमश ठण्डा किया जाता है, तो उसकी भाप को ग्रहण करने की क्षमता भी क्रमश घटती जाती है। अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वह इतनी भाप ग्रहण कर लेती, है, जितनी अधिक से अधिक उसमे आ सकती है। अन्य शब्दो मे, वायु भाप से सतृप्त ( Saturated ) हो जाती है। यदि इसके बाद भी उसे ठण्डा किया जाता है, तो भाप का द्रवीभवन (Condensation) आरम्भ हो जाता है। द्रवीभवन का अर्थ है भाप का जलकणो मे परिवर्तन। जिस तापक्रम पर द्रवीभवन आरम्भ होता है, उसे हम ओसाक (Dew point) कहते है।

सक्षेप मे, ओसाक वह तापक्रम है जिस पर वायु अधिक से अधिक भाप ग्रहण कर सकती है।

## ४. धूलि कणों का महत्व

भाप के द्रवीभूत होने के लिये वायु मे धूलिकण होना आवश्यक है। द्रवित होकर भाप धूलि-कणो पर ही गिरती है। यदि वायु मे धूलि-कण न हो, तो वह बहुत अधिक ठण्डा करने पर भी द्रवित न होगी। घनवातिकी शास्त्र ( Meteorology ) मे धूलिकणो की बडी महत्ता है। यदि धूलिकण न होते तो कुहासा, कुहरा, पाला, वर्षा मेघ कुछ भी न होता।

## ५ ओस (Dew), पाला (Frost), कुहरा (Fog) और कुहासा (Mist)

### (क) ओस (Dew)

सौर-ताप से दिन भर की तपी पृथ्वी सन्ध्या समय सूर्यास्त होते ही ठण्डी होने लगती है। पृथ्वी के ठण्डे होने से वायुमण्डल का सबसे निचला स्तर जो धरातल का सस्पर्श करता है, ठण्डा होता है। जैसे-जैसे वायु का तापमान घटता है, वैसे-वैसे उसकी जलवाष्प ग्रहण करने की क्षमता भी क्षीण होती जाती है।

कालान्तर मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वायु जलवाष्प से सतृप्त हो जाती है, अर्थात् उसमे इतनी जलवाष्प रहती है, जितनी कि वह अधिक से अधिक ग्रहण कर सकती है। ऐसी दशा मे यदि वायु तनिक भी और ठण्डी होती है तो जलवाष्प द्रवित होकर ओस के रूप मे ठण्डे पदार्थो पर गिर पडती है। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि ताप के अच्छे सचालको की अपेक्षा बुरे सचालको पर ओस अधिक पडती है। यही कारण है, कि मकानो और चट्टानो की अपेक्षा घास-पात पर ओस अधिक पाई जाती है।

### (ख) पाला, तुषार अथवा तुहिन (Frost)

यदि ओसाक (Dew point) ३२° फ० से कम हुआ तो जलवाष्प जलकणो के रूप मे द्रवित न होकर हिमकणो के रूप मे द्रवीभूत होती है। इसे ही हम तुहिन तुषार अथवा पाला कहते है।

### (ग) कुहरा (Fog)

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि ओस वही बनती है जहाँ वायु अपने से अधिक शीतल पदार्थ के सस्पर्श मे आने से ठण्डी होती है और द्रवित होकर जलकणो के रूप मे उस पर गिर पडती है। किन्तु यदि वायुमण्डल के निचले स्तर के भाग-विशेष मे शीतल न होकर सर्वत्र समान रूप से ठण्डे हो, तब समस्त वायु के अन्दर द्रवीभवन ( Condensation ) होता है। इस प्रकार वायु में

जलकणो के व्याप्त हो जाने को हम 'कुहरा' कहते है। कुहरा से हमारी दृश्यता (Visibility) घट जाती है और हमे १००० मीटर अथवा उससे अधिक दूर स्थित वस्तुये दिखलाई नही देती।

### (घ) कुहासा अथवा कूहा (Mist)

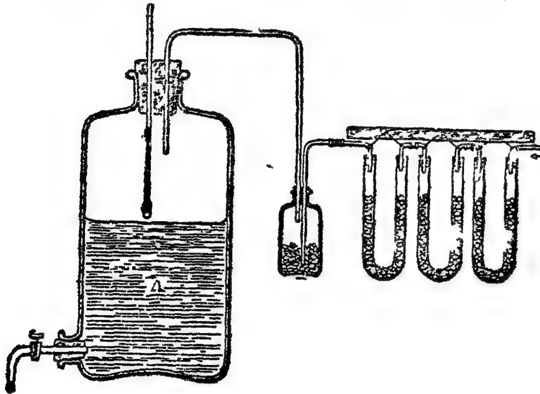
पतले कुहरे को हम कुहासा अथवा कूहा कहते है। घनवातिकी विज्ञान (Meteorology) के अनुसार हम इस वृत्त (Phenomenon) को कुहासा तब कहते है जब हम इसमे १००० मीटर से अधिक दूर तक देख सके। यदि दृश्यता १००० मीटर से घट जाती है तो हम इसे कुहासा न कहकर कुहरा कहते है।

## ६. आर्द्रतामापक

जिस यत्र से आर्द्रता नापी जाती है उसे हम आर्द्रतामापक अथवा हाइग्रोमीटर (Hygrometer) कहते है। हाइग्रोमीटर ग्रीक भाषा का शब्द है (Hygros= Wet Metron = A Measure) जिसका अर्थ है आर्द्रता नापने का यत्र। आर्द्रतामापक मुख्यत दो प्रकार के होते है —

(१) रासायनिक आर्द्रतामापक (Chemical Hygrometers)

(२) भौतिक आर्द्रतामापक (Physical Hygrometers)।




चित्र २९५—रासायनिक आर्द्रतामापक

### (१) रासायनिक आर्द्रतामापक

इस यत्र की सहायता से वायु के किसी निश्चित आयतन मे विद्यमान जलवाष्प की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। यह यत्र चित्र २९५ मे प्रदर्शित किया गया है। इसके प्रमुख अग निम्नलिखित हैं —

(१) 'क' एक टोटीदार बोतल है, जिसमे पानी भरा रहता है। टोटी को खोल देने से जब पानी बाहर निकलता है, तब रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये यह बोतल 'ख' से वायु को खीचती है। इसी आधार पर इस बोतल को वायु-चूषक (Aspirator) की सज्ञा दी गई है।

(२) 'ख' एक छोटी सी बोतल है, जो नली द्वारा वायुचूषक से सबधित है। इसमे गाढा गन्धक का तेजाब भरा रहता है। यही बडी बोतल 'क' की

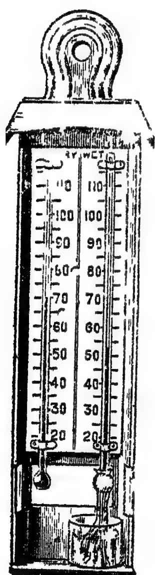
नमी को U–नलियो तक पहुँचने से रोकती है।

(३) 'ग' सकेत तीन U–नलियो का द्योतक है। इनमे शुष्क कैलशियम क्लोराइड भरा रहता है। कैलशियम क्लोराइड मे यह विशेष गुण है कि वह आर्द्रता को सोख लेता है।

सर्वप्रथम तीनो U–नलियो को शेष उपकरणो से पृथक करके तोल लेते है फिर उनको जोडकर वायुचूषक मे पानी के समतल को नोट कर लेते है। इसके बाद टोटी को खोलकर वायुचूषक से धीरे-धीरे पानी बाहर निकाला जाता है, जिसके फलस्वरूप वायु U–नलियो मे से होती हुई वायुचूषक मे प्रवेश करती है और बाहर निकले हुए पानी के रिक्त स्थान की पूर्त्ति करती है। जब वायु का पर्याप्त आयतन वायुचूषक के अन्दर आ जाता है, तब टोटी को बन्द कर देते है और तीनो U-नलियो को फिर से तौलते है। दोनो भारो का अन्तर शोषित आर्द्रता की मात्रा दर्शाता है। वायु-चूषक मे पानी के समतल की अन्तिम स्थिति नोट कर लेते है। इसके बाद वायुचूषक का फिर प्रारम्भिक तल तक भर लेते है और पूर्वोक्त प्रयोग को दुहराते है। इस बार जलवाष्प से सतृप्त वायु को खीचते है और जब पूर्वोक्त अन्तिम स्थिति आ जाती है, तब टाटी को बन्द कर देते है। इस प्रकार उसी आयतन की सतृप्त वायु मे विद्यमान जलवाष्प की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है। फिर निम्नलिखित सूत्र की सहायता से आपेक्षिक अर्द्रता निकाल लेते है —

$$\text{आपेक्षिक आर्द्रता} = \frac{\text{वायु के किसी आयतन मे विद्यमान जलवाष्प}}{\text{सतृप्त वायु के उसी आयतन मे विद्यमान जलवाष्प}} \times १००$$

## (२) भौतिक आर्द्रतामापक




चित्र २९६—आर्द्र एव शुष्क बल्ब का आर्द्रतामापक

ये अनेक प्रकार के होते है। इनमे से एक 'आर्द्र एव शुष्क बल्ब आर्द्रता-मापक' (Wet and Dry Bulb Hygrometer) है।

इस यत्र मे साधारणत पारे के दो थर्मामीटर होते है, जो चित्रानुसार स्टेण्ड पर लम्बवत् दिशा मे लटके रहते है। इनमे से एक थर्मामीटर का बल्ब सदा खुला रहता है, किन्तु दूसरे थर्मामीटर के बल्ब पर मखमल का कपडा लिपटा रहता है, जो पानी से सदा भीगा रहता है। उसे हमेशा तर बनाये रखने के लिये कपडे का निचला भाग सदैव जलपात्र मे डूबा रहता है।

इस आर्द्रतामापक मे आर्द्र बल्ब के पृष्ठ पर भाप बनती है, किन्तु शुष्क बल्ब के पृष्ठ पर नही। अतएव भाप बनने के वेग के अनुसार दोनो थर्मामीटरो के तापक्रमो मे अन्तर हो जाता है। वायु जितनी शुष्क होती है, वाष्प उतनी ही शीघ्रता से बनती है। यदि दोनो थर्मामीटरो के तापक्रमो मे कम अन्तर होता है, तो इसका यह अर्थ होता है कि आर्द्र बल्ब से बहुत धीरे-धीरे भाप बन रही है —अन्य शब्दो मे आपेक्षिक आर्द्रता अधिक है। यदि वायु जलवाष्प से सतृप्त होती है, तो भाप बिल्कुल ही नही बनती है और दोनो थर्मा-मीटर एक ही तापक्रम प्रदर्शित करते है।

आर्द्र एव शुष्क बल्बो के तापक्रम से तथा दी हुई सारिणी की सहायता से आपेक्षिक आर्द्रता और ओसाक की गणना की जाती है।

## गणना

इस यत्र द्वारा आपेक्षिक आद्रता एव ओसाक निकालने के लिये हम निम्नलिखित सूत्रो का उपयोग करते है —

$$\frac{t^\circ \text{ पर शुष्क एव आर्द्र बल्बो के तापक्रम के अन्तर पर वाष्प-दबाव}}{t^\circ \text{ पर सतृप्त वाष्प दबाव}} \times १००$$

$$= \frac{\text{ओसाक पर सतृप्त वाष्प दबाव}}{t^\circ \text{ पर सतृप्त वाष्प दबाव}}$$

एक उदाहरण से यह स्पष्ट होगा —

आपेक्षिक आर्द्रता=

उदाहरण—यदि शुष्क बल्ब का तापक्रम १८ C हो और आर्द्र बल्ब का तापक्रम १६ C हो, तो निम्नाकित सारिणी की सहायता से आपेक्षिक आर्द्रता और ओसाक निकालिये।

### सारिणी

सतृप्त वाष्प का दबाव (मिलीमीटर मे)

| शुष्क बल्ब का तापक्रम $t^\circ$ | शुष्क एव आर्द्र बल्बो के तापक्रम का अन्तर | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ०° | १° | २° | ३° | ४° | ५° | ६° |
| १० | ९२ | ८१ | ७० | ६० | ५० | ४० | ३१ |
| ११ | ९८ | ८७ | ७६ | ६५ | ५५ | ४५ | ३५ |
| १२ | १०५ | ९३ | ८२ | ७१ | ६० | ५० | ४० |
| १३ | ११२ | १०० | ८९ | ७६ | ६५ | ५५ | ४५ |
| १४ | ११९ | १०७ | ९४ | ८३ | ७१ | ६१ | ५० |
| १५ | १२७ | ११४ | १०१ | ९० | ७८ | ६६ | ५५ |
| १६ | १३५ | १२२ | १०९ | ९७ | ८४ | ७३ | ६० |
| १७ | १४४ | १३० | ११७ | १०४ | ९१ | ८० | ६७ |
| १८ | १५४ | १३९ | १२.५ | ११२ | ९९ | ८६ | ७५ |
| १९ | १६३ | १४९ | १८४ | १२० | १०७ | ९४ | ८१ |
| २० | १७४ | १५९ | १४३ | १२९ | ११५ | १०२ | ८८ |

सारिणो से १८° C पर सतृप्त वाष्प का दबाव

= १५.४ मिली मीटर

१८−१६ = २°C के अन्तर पर और १८°C पर सतृप्त वाष्प-दबाव

= १२५ मिलीमीटर

आपेक्षिक आर्द्रता $= \frac{१२५}{१५४} \times १०० = ८०$ प्रतिशत

इस दशा मे, ओसाक वह तापक्रम है, जिस पर वाष्प-दबाव १२५ मिलीमीटर है। सारिणी से विदित होता है कि १४°C पर वाष्प दबाव ११९ मि० मी० है और १५°C पर १२७ मि० मी० है। अतएव ओसाक १४°C और १५°C के बीच मे कही होगा।

(१२७ – ११९) = ८ मिलीमीटर अन्तर है १°C पर

(१२५ – ११९) = ६ „ „ $\left(\frac{६}{८}\right)$°C

= ७५°C पर

∴ ओसाक = १४ ७५°C

## ७. मेघ

### (१) परिभाषा एव उत्पत्ति

धरातल से कुछ ऊँचाई पर लटकती हुई जलवाष्प की द्रवीभूत राशि को हम 'मेघ' कहते हैं। वायुमण्डल को यह जलवाष्प धरातल पर स्थित नदियो झीलो, सागरो एव अन्य जलाशयो के वाष्पीकरण से मिलती है। मेघ और कुहरे मे इसके अतिरिक्त और कोई भी अन्तर नही है कि कुहरा धरातल के निकट होता है और मेघ धरातल से काफी ऊँचाई पर होते हैं। कुहरे के समान मेघ की उत्पत्ति भी किसी वायु-राशि के सर्वत्र एक साथ ठण्डे होने से होती है। मेघो की रचना के लिये वायु अनेक प्रकार से ठण्डी होती है, उदाहरण के लिये—

(१) वायुमण्डल के धूलिकणो से विकिरण द्वारा ताप का क्षीण होना। यह तभी सभव है, जब वायु बिल्कुल शान्त हो।

(२) शीतल और उष्ण वायु का मिलना—जब दो असमान तापक्रम की वायु-राशियाँ परस्पर मिलती है, तब द्रवीभवन (Condensation) होता है।

(३) वायु का ऊपर उठना—जब वायु ऊपर उठती है, तो दबाव के घटने से वह फैलती है, फैलने से उसका तापक्रम घटता है और जब तापक्रम ओसाक पर पहुँचता है, तब द्रवीभवन होता है।

### (२) मुख्य प्रकार

बादल मुख्यत चार प्रकार के होते है —

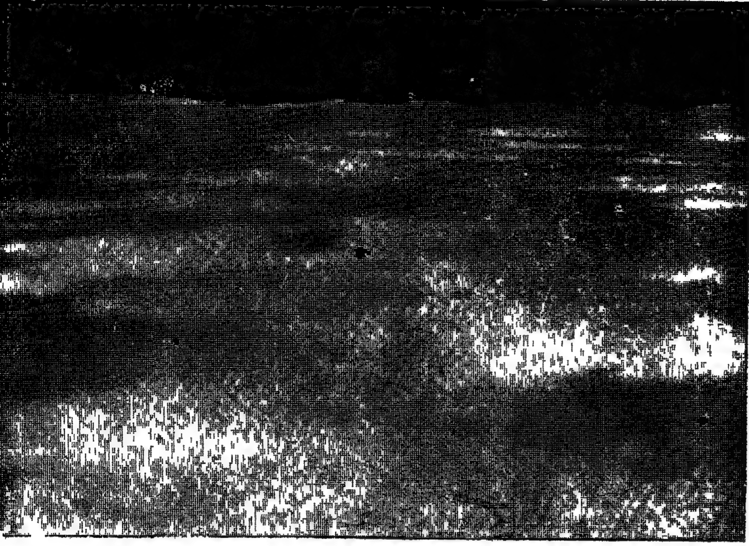
(१) स्तरित (Stratus)
(२) कुतल (Cirrus)
(३) वर्षुक (Nimbus)
(४) कुज (Cumulus)

किन्तु ऐसा शायद कभी ही होता हो कि इनमे से किसी एक प्रकार के बादल आकाश मे हो। प्राय इन प्रकारो के मिश्रण पाये जाते है। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा इन चार मुख्य प्रकारो के दस मिश्रण स्वीकार किये गये है।

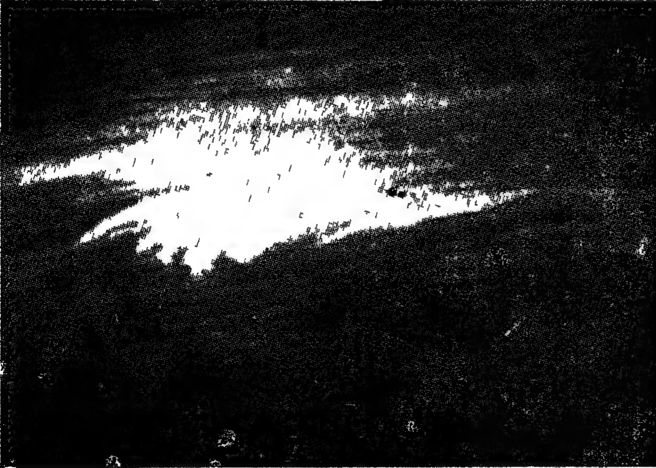
#### (१) स्तरित मेघ (Stratus Clouds)

अन्य मेघो की तुलना मे ये सबसे नीचे पाये जाते है। ये धरातल से कुछ ऊँचे से लेकर २५०० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते है। जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, ये स्तरो के रूप मे होते ह। इनकी सरचना सर्वत्र समान होती है और कुहरे से

[ पृष्ठ ३३२ से सामने



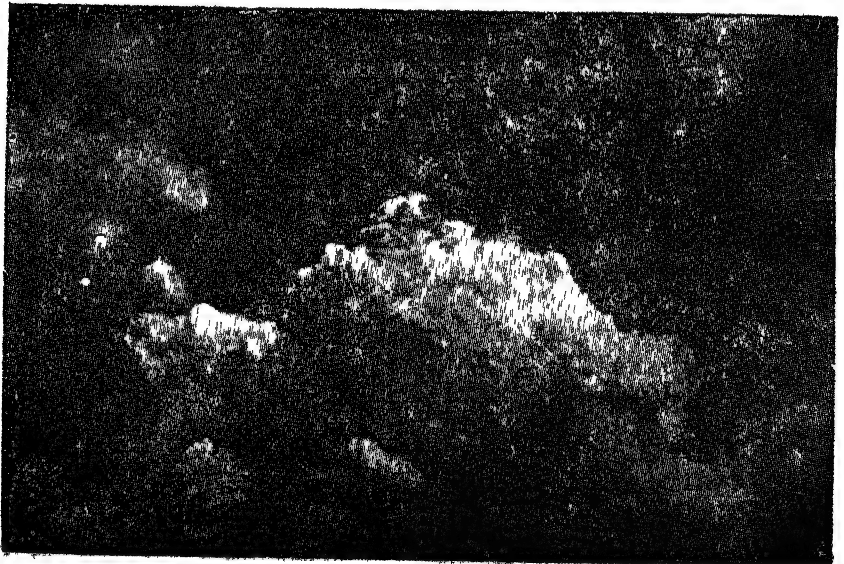
चित्र २९७—स्तरित मेघ (Sfratus Clouds)



चित्र २९८—कुतल मेघ (Cirrus Clouds)



चित्र २९९—वर्षुक मेघ (Nimbus Clouds)



चित्र ३००—कुंज मेघ (Cumulus Clouds)

मिलती जुलती है। प्राय ये अन्य मेघो के नीचे रहते है। अधिकाशत इनकी उत्पत्ति विकिरण द्वारा ताप के क्षीण होने से होती है।

ये मेघ प्राय स्थानीय होते है और इनके खण्डित होते ही नीला आकाश दृष्टिगोचर होता है।

### (२) कुतल मेघ (Cirrus Clouds)

ये बादल सबसे अधिक ऊँचाई पर बनते है। ये प्राय ५ मील से ८ मील की ऊँचाई तक पाये जाते ह। ये छोटे-छोटे हिमकणो से बनते है और इनमे जलवाष्प की मात्रा कम होती है। बहुधा इन मेघो का मध्य भाग सफेद रग का होता है जिससे रेशे जैसी रेखाये बाहर निकली हुई दिखलाई देती है। ये बादल कोमल होते है और दूर से चिडियो के पख जैसे दिखलाई देते है। दिन मे ये मेघ शुभ्र स्वेत वर्ण के दिखलाई देते है, परन्तु सूर्यास्त के समय इनमे अनेक ज्वलन्त वर्ण ( Brilliant Colours ) दिखते है।

### (३) वर्षुक मेघ (Nimbus Clouds)

जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, इनसे वर्षा बहुत होती है। ये बादल-धरातल के बहुत निकट होते है। बहुधा ये १००० फुट से लेकर ८००० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते है। ये बादल काले, घने, एक सी सरचना के और आकृति हीन होते है।

इन बादलो का नवीन नाम वर्षुक-स्तरित ( Nimbo-stratus ) मेघ है। इस श्रेणी के बहुत नीचे और खडित बादलो को 'छिन्न वर्षा मेघ' (Fracto-stratus Clouds) कहते है। नाविक इसे 'स्कड' (Scud) कहते है।

### (४) कुज मेघ (Cumulus Clouds) अथवा ऊर्ण मेघ (Wool pack Clouds)

ये बादल स्वय काफी ऊँचे होते है और धरातल से काफी ऊँचाई पर पाये जाते है। इनका निचला भाग अथवा आधार धरातल से ३००० फुट से लेकर १०,००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है और इनकी ऊँचाई आधार से ३ किलोमीटर तक होती है। इनका आधार क्षैतिज एव सपाट होता है किन्तु इनका ऊपरी भाग गुम्बद की भाति गोलाकार होता है और उसमें गोभी के फूल की तरह वर्धन होते है। बहुधा बहुत से कुज मेघ आपस मे मिलकर ऐसे दिखलाई देते है जैसे रेल के इजन से निकलती हुई भाप। ये बादल घने होते है और इन बादलो से वर्षा भी होती है। ये अधिकाशतः वायु के ऊपर उठने से बनते है। इन मेघो के विषय मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

'If woolly fleeces spread the heavenly way,
Be sure no rain disturbs the summer day'

जब कुज मेघ विदीर्ण होकर छोटे-छोटे पतले टुकडो के रूप मे प्रवाहित होने लगते है तब हम इन्हे 'छिन्न कुज' (Fracto Cumulus) कहते है।

### (३) मेघो का अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण

अन्तर्राष्ट्रीय घनवातिकीय महासभा ( International Meteorological

Congress) ने मेघो का वर्गीकरण इस प्रकार किया है —

(१) कुन्तल (Cirrus)—ये मेघ कोमल और कम घने होते हैं। इनका आकृति छितरे हुए रेशो जैसी होती है। ये बादल आपस मे गुथे नही रहते, वरन् एक दूसरे से पृथक रहते है। ये प्राय छायाहीन सफेद वर्ण के होते हैं। दूर से ये चिडियो के पख जैसे लगते है। ये ३० हजार से ४० हजार फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते है।

(२) कुन्तल-स्तरित (Cirro-stratus)—ये पतले स्तर के सफेद बादल होते है। कभी-कभी ये समस्त आकाश को पूर्ण रूप से ढक लेते हैं, जिससे वह दूधिया (Milky) हो जाता है। ऐसी दशा मे हम इन्हे कुन्तल-नीहारिका (Cirro-Nebula) कहते हैं। कभी-कभी ये उलझे हुए जाले (Web) जैसे प्रतीत होते हं। इन बादलो से सूर्य अथवा चन्द्रमा की रूपरेखा अस्पष्ट नही होती, परन्तु उनके प्रभामण्डल (Haloes) बन जाते हैं। ये मेघ २३,००० फुट से लेकर ३३,००० फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(३) कुन्तल-कुज (Cirro-cumulus)—ये मेघ प्राय दो रूपो में पाये जाते है —(१) छोटी-छोटी गोलाकार राशियो मे तथा (२) छोटी-छोटी सफेद छायाहीन अथवा अल्प छायामय पट्टियो मे। दोनो ही दशाओ मे ये पक्तियो या समूह मे पाये जाते है। सूर्य के प्रकाश मे ये चमक उठते है। ये मेघ २३,००० फुट से लेकर ३३,००० फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(४) उच्च-स्तरित (Alto-stratus),—ये मेघ भूरे अथवा नीले वर्ण के मोटे स्तरो मे होते हैं। इनमे सूर्य अथवा चद्रमा वैसे ही दिखलाई देते हैं जैसे धुँधले काच मे, किन्तु उनके प्रभामण्डल (Haloes) नही दिखलाई देते। ये १०,००० फुट के लेकर २०,००० फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(५) उच्च-कुज (Alto-cumulus)—ये सफेद अथवा भूरे रग के अशत छायादार विशालकाय पुज हैं। बहुधा ये परस्पर गुथे रहते हैं, जिससे इनके किनारे स्पष्ट नही दिखलाई देते। कभी-कभी ये पतले स्तरो मे भी पाये जाते हैं। ये मेघ १३ हजार फुट से लेकर २० हजार फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(६) स्तरित कुज (Strato-cumulus)—ये बादल काले रग की विशाल गोलाकार राशियो से बने होते हैं। बहुधा ये सम्पूर्ण आसमान को ढक लेते हैं। जाडो मे ऐसा बहुत होता है। ये ३ हजार फुट से लेकर १३ हजार फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(७) वर्षक मेघ (Nimbus)—ये काले रग के आकृतिहीन मोटे स्तर होते हैं। इनके किनारे कटे-फटे (Ragged) होते हैं। प्राय इनसे जल एव हिम की वृष्टि होती है। ये ६०० फुट की ऊँचाई से लेकर १० हजार फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(८) कुज मेघ (Cumulus)—ये बादल काफी घने होते है। इनका ऊपरी भाग गुम्बद के समान गोलाकार होता है और उसमे गोभी के फूल की भाति वर्धन होता है। इनका निचला भाग अथवा आधार क्षैतिज एव सपाट होता है। इनके आधार और शीर्ष का अन्तर ३ किलोमीटर तक पाया गया है। इससे इनके लम्बवत् विकास के महत्त्व पर प्रकाश पडता है। इनका आधार धरातल से

३ हजार फुट से लेकर १० हजार फुट तक की ऊँचाइ पर पाया जाता है। इनके विषय मे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

'If woolly fleeces spread the heavenly way,
Be sure no rain disturbs the summer day,

(यदि आकाश मे ऊनी गुच्छे फैल जाते है तो निश्चित जानिये ग्रीष्म दिवस को वर्षा बाधा नही पहुँचायेगी।)

(९) कुज-वर्षुक मेघ ( Cumulo-nimbus )—इन्हे गर्जन मेघ ( Thunder clouds ) भी कहते है। ये काफी भारी होते है। इनकी आकृति पहाडो जैसी होती है। इनके आधार और शीर्ष का अन्तर ७ किलोमीटर तक पाया जाता है, जिससे प्रकट है कि इनमे लम्बवत विकास बहुत होता है। इनके ऊपरी भाग पर रेशेदार पर्त बन जाते है जिन्हे हम 'मिथ्या कुतल' ( False Cirrus ) कह सकते है। इन बादलो के नीचे वर्षुक मेघ से मिलते जुलते बादल पाये जाते है।

(१०) स्तरित मेघ ( Stratus )—जैसा कि इनके नाम से प्रकट है ये मेघ स्तरवत् होते है। इनकी सरचना सर्वत्र एक सी होती है। ये कुहरे से मिलते जुलते है। इनमे और कुहरे मे केवल यह अन्तर है कि कुहरा पृथ्वी का स्पर्श करता है और ये पृथ्वी से उठे रहते है। ये मेघ प्राय स्थानीय होते है और इनके खण्डित होते ही नीला आकाश दृष्टिगोचर होता है। ये धरातल से लेकर ढाई हजार फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते है।

## (४) भारतीय घनवातिकीय विभाग का वर्गीकरण

भारतीय घनवातिकीय विभाग ( Indian Meteorological Department) ने बादलो का वर्गीकरण कुलो और जातियो मे किया है, जो इस प्रकार है —

### कुल क—उच्च मेघ

औसत ऊपरी समतल ( Mean upper level ) १२ किलोमीटर
औसत निचला समतल ( Mean lower level ) ७ किलोमीटर
(१) जाति—कुन्तल मेघ (Cirrus)
(२) जाति—कुन्तल-स्तरित मेघ (Cirro–stratus)
(३) जाति—कुन्तल कुज मेघ (Cirro-cumulus)

### कुल ख—मध्य मेघ

औसत ऊपरी समतल ७ किलोमीटर
औसत निचला समतल ३ किलोमीटर
(४) जाति—उच्च कुज मेघ (Alto-cumulus)
(५) जाति—उच्च-स्तरित मेघ (Alto-Stratus)

### कुल ग—निम्न मेघ

औसत ऊपरी समतल ४ किलोमीटर
औसत निचला समतल धरातल के निकट
(६) जाति—स्तरित-कुज मेघ (Strato-cumulus)

(७) जाति—स्तरित मेघ (Stratus)
(८) जाति—वर्षुक-स्तरित मेघ (Nimbo-stratus)

## कुल घ-- लम्बवत विकास के बादल (Clouds with vertical development)

औसत ऊपरी समतल-परिवर्तनशील, कुजवर्षुक (Cumulo-nimbus) मेघ में इसकी ऊँचाई १०-१२ किलोमीटर हो सकती है।

औसत निचला समतल-० ५ किलोमीटर
(९) जाति—कुज मेघ (Cumulus)
(१०) जाति—कुज-वर्षुक मेघ (Cumulo-nimbus)

मेघो की उपर्युक्त सभी जातियो का सक्षिप्त वर्णन अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण के अन्तर्गत हो चुका है। भारतीय वर्गीकरण मे एक नवीन शब्द 'वर्षुक-स्तरित' (Nimbo stratus) आया है। वास्तव मे वह वर्षुक ( Nimbus ) मेघ का ही नवीन नाम है। वर्षुक मेघ की व्याख्या अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण मे की जा चुकी है।

## छयालीसवाँ परिच्छेद

# वृष्टि

## (PRECIPITATION)

किसी क्षेत्र पर वायुमण्डल से गिरनेवाली समस्त जल की राशि को हम 'वृष्टि' कहते है। इसके तीन रूप है—(१) जलवृष्टि (२) हिमवृष्टि तथा (३) हिमोपल वृष्टि अथवा ओले गिरना।

### १ जलवृष्टि

#### (१) जलवृष्टि के प्रकार

जलवृष्टि तीन प्रकार की होती है —

(क) पर्वतीय वर्षा (Relief Rainfall)

(ख) सवाहन की वर्षा (Convectional Rainfall)

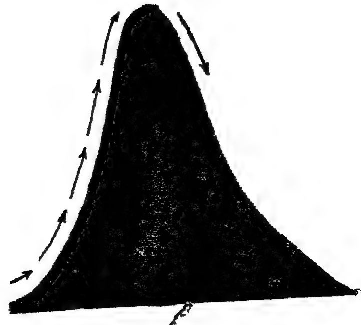
(ग) चक्रवातीय वर्षा (Cyclonic Rainfall)

#### (क) पर्वतीय वर्षा

जब किसी वायु-प्रवाह के पथ मे पर्वत आ जाता है, तब उसे उस पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है। ज्यो ज्यो यह वायु ऊपर जाती है, त्यो त्यो उसके ऊपर का दबाव घटता जाता है। दबाव के घटने से वायु फैलती है और ठण्डी होती है। ठण्डे होने से उसकी आपेक्षिक आर्द्रता बढ जाती है। आपेक्षिक आर्द्रता क्रमश बढती है और कालान्तर मे ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वायु जलवाष्प से सतृप्त (Saturated) हो जाती है। इसके पश्चात् वाष्प का द्रवीभवन (Condensation) होता है, जिससे मेघ बनते है। और ऊपर जाने पर मेघ द्रवीभूत होकर बरस पडते है।

पर्वत पर चढने वाली वायु की ये विभिन्न अवस्थाये चित्र ३०१ मे अकित की गई है।

वर्षा
मेघो की रचना
द्रवीभवन
सतृप्ति
आपेक्षिक आर्द्रता बढना
वायु का ठण्डा होना
वायु का फैलना
दबाव घटना
पर्वत के कारण वायु का ऊपर उठना
समुद्र से आनेवाली आर्द्र वायु



चित्र २९७—पर्वतीय वर्षा की विभिन्न अवस्थाये

## (ख) सवाहन की वर्षा

विषुवत रेखा के निकट सूर्य की किरणे लगभग वर्ष भर सीधी पडती हैं, जिससे वहाँ का धरातल उष्ण हो जाता है और वह सचालन (Conduction) द्वारा वायुमण्डल के सबसे नीचे स्तर को गरम करता है। यह वायु गरम होकर फैलती है। फैलने से उसका घनत्व कम हो जाता है। घनत्व के कम हो जाने से वह ऊपर उठती है।

इस वायु के ऊपर उठ जाने से जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्ति के लिये उत्तर और दक्षिण से हवाये चलती है, किन्तु उनकी भी वही दशा होती है और वे भी ऊपर उठती है।

ऊपर उठने वाली वायु प्राय उन्ही क्रमिक अवस्थाओ से गुजरती है, जिनसे पर्वत पर चढने वाली वायु गुजरती है। इन अवस्थाओ का उल्लेख पर्वतीय वर्षा के अतर्गत ऊपर हो चुका है। चित्र ३०२ मे ये अवस्थाये अकित की गई है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि पर्वतीय वर्षा और सवाहन की वर्षा मे कुछ अन्य अन्तर है, जैसे—

(१) पर्वतीय वर्षा नियमित (Steady) होती है, किन्तु सवाहन की वर्षा प्राय बौछार के रूप मे होती है और उसके साथ बिजली की कडक वाली आँधी (तडित झझा) आती है। पर्वतीय वर्षा मे वायु ढाल के ऊपर चढती है, जिससे वह धीरे धीरे ठण्डी होती है किन्तु सवाहन की दशा मे वायु लम्बवत् दिशा मे ऊपर चढती है जिससे वह शीघ्रता से ठण्डी होती है। अतएव द्वितीय दशा मे वर्षा का तेज बौछार के रूप मे होना स्वाभाविक ही है।



चित्र २९८—सवाहन की वर्षा की विभिन्न अवस्थाये

(२) दोपहर मे धरातल सबसे अधिक गरम होता है अतएव सवाहन की वर्षा प्राय दोपहर के बाद ही होती है। पर्वतीय वर्षा किसी भी समय हो सकती है।

तडित्झझा अथवा बिजली की कडक वाली आँधी (Thunderstorm)

जब ताप के आधिक्य के कारण सवाहन वेग से होता है, तभी बिजली की

कडक वाली आँधियाँ बहुत आती हैं। ऐसी दशा मे मेघ विद्युन्मय (Electrically charged) हो जाते हैं, जिसे वे या तो अन्य बादलो को विसर्जित (Discharge) करते हैं, या पृथ्वी को। विद्युत-प्रभार (Electric charge) की उत्पत्ति बूदो के टूटने (Breaking) से होती है। यह ज्ञात हुआ है कि वर्षा-जल की बूदो का व्यास चौथाई इच से अधिक होना सभव नही है। यदि बूद मे इससे बडा आकार ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है, तो वह टूट जाती है। जिस समय बूदे टूटती है, उसी समय मेघ विद्युन्मय (Electically charged) हो जाते हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि बूदो के गिरने का वेग २४ फुट प्रति सेकण्ड से अधिक नही हो सकता। अतएव, जब बूद गिरती है, यदि उस समय वायु २४ फुट प्रति सेकण्ड अथवा इससे अधिक वेग से ऊपर उठ रही हो, तो बूद धरातल तक नही पहुँच पाती। प्राय ऐसा होता है कि बूद कुछ दूर तक वायुमण्डल मे नीचे आती है, फिर वह ऊपर उठने वाले वायु प्रवाह मे फस जाती है और उसके साथ फिर ऊपर उठ जाती है। इस प्रकार वह अनेक बार नीचे आती है और फिर ऊपर जाती है, तब कही काफी समय के बाद धरातल पर पहुँचती है।

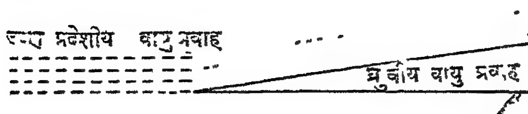
## (ग) चक्रवातीय वर्षा

चक्रवात वृत्ताकार अथवा दीर्घ वृत्ताकार समभार रेखाओ की ऐसी व्यवस्था है, जिसमे बीच मे दबाव कम होता है और चारो ओर क्रमश बढता जाता है। हवाये सदैव अधिक भार से कम भार की ओर प्रवाहित होती है, अतएव चक्रवात मे चारो ओर से हवाये मध्य की ओर प्रवाहित होती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्ध मे अपने दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्ध मे अपने बाँयी ओर मुड जाती है। इस प्रकार चक्रवात मे हवाओ का भवर बन जाता है। चक्रवात स्थिर नही रहते। वे सदा चलते रहते है।

चक्रवात की रचना के लिये दो असमान तापक्रम की वायु-राशियाँ आवश्यक होती है। समशीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात ध्रुवीय ( Polar ) वायु-प्रवाह और उष्णप्रदेशीय ( Tropical ) वायु-प्रवाह के परस्पर सपर्क मे आने से बनते है। ध्रुवीय वायु-प्रवाह शीतल ध्रुवीय क्षेत्रो की दिशा से आता है और उष्णप्रदेशीय वायु-प्रवाह उष्ण कटिबन्ध की ओर से।

चक्रवात के निर्माण की विवेचना ५८ वे परिच्छेद मे की गई है।

उष्ण कटिबन्ध की वायु स्वभावत उष्ण होती है, अतएव उसका घनत्व कम होता है। दूसरी ओर ध्रुवीय वायु ठण्डी होती है, जिससे उसका घनत्व अपेक्षाकृत अधिक होता है। जब ये दोनो वायुराशियाँ परस्पर मिलती है, तो ध्रुवीय




चित्र २९९—चक्रवात की उत्पत्ति

वायु भारी होने के कारण धरातल के निकट रहती है और उष्णप्रदेशीय वायु उसके ऊपर चढ जाती है। दोनो वायु राशियो के विभाजन का समतल ढाल की भांति तिरछा होता है जैसा कि चित्र ३०३ मे प्रदर्शित किया गया है। जिस प्रकार पर्वतीय वर्षा में वायु ढाल पर ऊपर चढती है, ठीक उसी भाति उष्णप्रदेशीय वायु भी ऊपर, चढती है और उन्ही उत्तरोत्तर अवस्थाओ से गजरती है अर्थात् वह फैलती है, ठण्डी होती है, उसकी आपेक्षिक आर्द्रता क्रमश बढती है, वह सतृप्त होती है उसमे द्रवीभवन होता है और अन्त मे वर्षा होती है।

यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि चक्रवातीय वर्षा चक्रवातीय क्रियाशीलता ( Cyclonic activity ) पर निर्भर है, उसका धरातल की आकृति और तापक्रम की दशा से कोई सबध नही है। उन क्षेत्रो मे भी चक्रवातीय वर्षा सभव है, जहाँ पर्वतीय वर्षा बिल्कुल नही होती।

## २ जलवष्टि के बितरण को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

(१) **ऊँचाई**—मैदान की अपेक्षा पर्वतो पर वर्षा अधिक होती है क्योकि वहाँ तक पहुँचने के लिये वायु को ऊपर चढना पडता है, जिससे उसकी आर्द्रता क्रमश. बढ़ती जाती है और वह कालान्तर मे वर्षा का कारण होती है। इस सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना पूर्व मे हो चुकी है। इस सबध मे यह उल्लेखनीय है, कि वर्षा की मात्रा पर्वतो की ऊँचाई और दिशा दोनो पर निर्भर है। यदि पर्वत अधिक ऊँचा होता है, तो उसके उन पार्श्व पर जो हवाओ के सम्मुख पडता है वाष्प का अधिकाश भाग द्रवीभूत हो जाता है और विमुख पार्श्व पर अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है। पश्चिमी घाट के पश्चिम मे अधिक वर्षा होने का यही कारण है। दूसरी ओर, यदि पर्वत नीचा होता है, तो उसके दोनो ढालो पर समान रूप से वर्षा होती है। पर्वत की दिशा यदि वायु की दिशा के समानान्तर होती है तो उससे वर्षा नही होती है। अरावली की पर्वत श्रेणियाँ द० प० मानसून वायु की दिशा के समानान्तर है, अतएव उनसे वृष्टि नही होती है। राजस्थान के मरुस्थल होने मे इन पर्वत श्रेणियो की दिशा भी बहुत कुछ उत्तरदायी है। यदि ये समकोण दिशा मे होती, तो द० प० हवाये इनसे टकराकर वर्षा करती।

(२) **समुद्र से दूरी**—जो स्थान समुद्र के निकट होते है, उनमे उन स्थानो की अपेक्षा जो समुद्र से दूर होते है, वर्षा अधिक होती है। आर्द्र वायु स्थल मे जितने अन्दर प्रवेश करती है, उतनी ही वह शुष्क होती जाती है।

(३) **प्रवाहित होनेवाली हवाये**—जो हवाये समुद्र से आती है, वे आर्द्र होती है, अतएव उनसे वर्षा होती है। इसके विपरीत स्थल से आने वाली हवाये सूखी होती है।

(४) **महासागर की धारायें**—गरम धारा के ऊपर प्रवाहित होने वाली वायु आर्द्र होती है और उससे वर्षा होती है। ठण्डी धारा के ऊपर प्रवाहित होने वाली हवाये प्राय सूखी होती है।

(५) **चक्रवातो की क्रियाशीलता** ( Cyclonic Activity )—चक्रवातो से कभी कभी पर्वतो के समुद्र-विमुख ढाल पर भी वर्षा हो जाती है जैसे इग्लैण्ड मे पैनाइन पर्वत ( Pennines ) के पूर्वी भागो मे। इसके अतिरिक्त चक्रवातो से कभी कभी उन क्षेत्रो मे भी वर्षा हो जाती है जहाँ शुष्क हवाये चलती है। उदाहरण के लिये पजाब

में कभी कभी चक्रवात द्वारा जाडो मे वर्षा हो जाती है। इस ऋतु मे, अन्यथा, स्थल से आने वाली शुष्क मानसून वायु चलती है।

(६) **अक्षांश**—विषुवत रेखा के निकट सूर्य की किरणे प्राय वर्ष भर सीधी पडती है, जिससे वहाँ वाष्पीकरण बहुत होता है। अतएव विषुवत रेखा के क्षेत्र मे अन्य क्षेत्रो की तुलना मे औसत जलवर्षा अधिक होती है। विषुवत रेखा के उत्तर और दक्षिण मे सूर्य की किरणे तिरछी होती चली जाती है, जिससे वाष्पीकरण की मात्रा घटती जाती है और वर्षा भी कम होती चली जाती है।

## (३) जल वर्षा का सामान्य बितरण

यह उल्लेख तो पूर्व मे हो ही चुका है कि वायु के ठण्डे होने से वर्षा होती है। ज्यो २ वायु ठण्डी होती है, त्यो २ उसकी आपेक्षिक आर्द्रता बढती जाती है। कालान्तर मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वायु जलवाष्प से सतृप्त हो जाती है। इसके अनन्तर वर्षा होती है।

वायु के शीतल होने की तीन रीतिया है —

(१) जब वायु अपेक्षाकृत उष्ण प्रदेश से शीतल प्रदेश की ओर प्रवाहित होती है।

(२) जब वायु सवाहन के कारण अथवा पहाड आदि के मार्ग मे आ जाने से ऊपर उठती है।

(३) जब उष्ण वायु, जिसमे जलवाष्प की मात्रा काफी होती है, शीतल वायु के सम्पर्क मे आती है।

दूसरी ओर, वायु ज्यो २ गर्म होती है त्यो २ उसकी आपेक्षिक-आर्द्रता घटती जाती है। अतएव ऐसे प्रदेश जहाँ की प्रवाहित होने वाली वायु क्रमश उष्ण होती रहती है, वर्षा रहित अथवा सूखी होती है। वायु के उष्ण होने की दो मुख्य रीतियाँ है —

(१) जब वायु अपेक्षाकृत शीतल प्रदेश से उष्ण प्रदेश की ओर प्रवाहित होती है।

(२) जब वायु वायुमण्डल मे नीचे उतरती है।

ससार मे जलवर्षा का सामान्य वितरण उपर्युक्त सिद्धान्तो पर आधारित है, जैसा कि निम्नलिखित तथ्यो से स्पष्ट है —

(१) विषुवत रेखा के क्षेत्र मे सवाहन के कारण वायु सदा ऊपर उठती रहती है, अतएव इस कटिबन्ध मे वर्षा बहुत होती है।

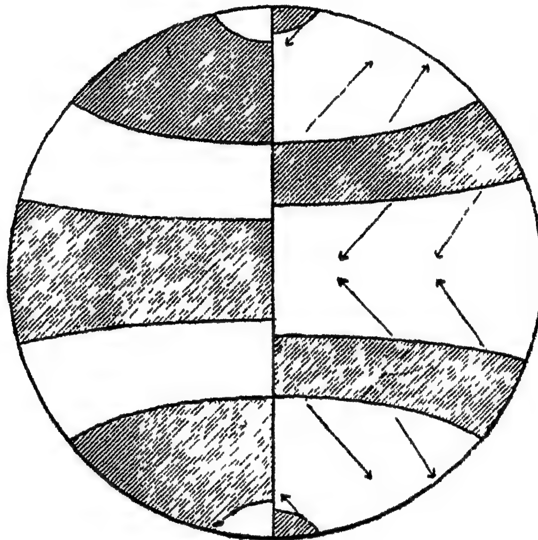
(२) ३०° अक्षाश के निकट वायुमण्डल मे हवाये ऊपर से नीचे उतरती हैं, अतएव ये क्षेत्र शुष्क अथवा वर्षा रहित कटिबन्ध है।

(३) शीतोष्ण कटिबन्ध मे ध्रुवो की शीतल वायु-राशि उष्णप्रदेशीय (Tropical) उष्ण वायु-राशि के सम्पर्क मे आती है, जिससे यहाँ चक्रवातीय वर्षा (Cyclonic Rain) होती है।

(४) ध्रुवीय प्रदेश मे तापक्रम इतना नीचा होता है कि वहाँ जलवर्षा का प्रश्न ही नही उठता, हिमवर्षा अवश्य बहुत होती है।

सबसे अधिक वर्षा विषुवतीय कटिबन्ध मे होती है, क्योकि वहाँ प्राय वर्ष भर सूर्य की किरणे लम्बवत् पडती है, जिससे सवाहन बहुत होता है।

वर्षा के प्रदेश वायुभार के प्रदेश



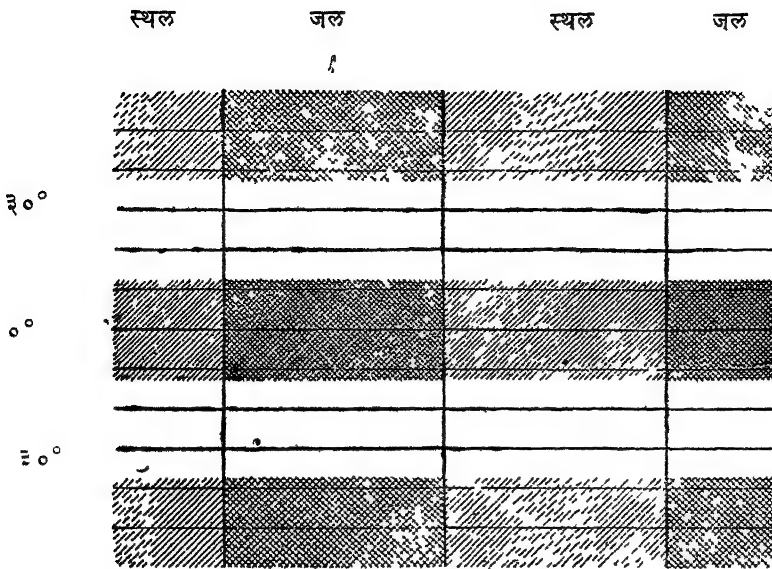
चित्र ३००—वर्षा और वायुभार का सम्बन्ध

चित्र ३०० मे दबाव और वर्षा की पेटियो का परस्पर सबध प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र के अध्ययन से यह विदित होगा कि ३०° अक्षाश वाली शुष्क पेटी अधिक दबाव के कटिबन्ध की अपेक्षा विषुवत रेखा की ओर कुछ बढी हुई है। इसका कारण यह है कि उत्तरी गोलार्ध मे इसके दक्षिणी किनारे पर और दक्षिणी गोलार्ध मे इसके उत्तरी किनारे पर, हवाये विषुवत् रेखा की ओर प्रवाहित होती है, अतएव सूखी होती है। इसी प्रकार वर्षा का ध्रुवीय कटिबन्ध भी दबाव की पेटी की तुलना मे विषुवत रेखा की ओर कुछ बढा हुआ है। इसका भी वही कारण है अर्थात् उत्तरी गोलार्ध मे ध्रुवीय पेटी के दक्षिण मे और दक्षिणी गोलार्ध मे ध्रुवीय पेटी के उत्तर मे हवाये ठण्डे प्रदेश से गर्म प्रदेश की ओर चलती है, जिससे वे सूखी होती है।

## जल और स्थल के वितरण का प्रभाव

इस सबध मे निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय है —

(१) वाष्पीकरण की अधिकाँश क्रिया महासागरो मे होती है, अतएव स्थल की अपेक्षा महासागरों पर वर्षा भी अधिक होती है।




चित्र ३०१—वर्षा पर जल और स्थल के वितरण का प्रभाव

(२) शीतोष्ण कटिबन्ध मे वर्षा मुख्यत चक्रवातो से होती है और वह महाद्वीपो के आन्तरिक भागो की अपेक्षा तट पर अधिक होती है।

(३) विषुवत रेखा के कटिबन्ध मे वर्षा वायु के ऊपर उठने से होती है और महाद्वीपो पर उसका वितरण सर्वत्र समान होता है।

उपर्युक्त सभी प्रभाव चित्र ३०५ में प्रदर्शित किये गए हैं।

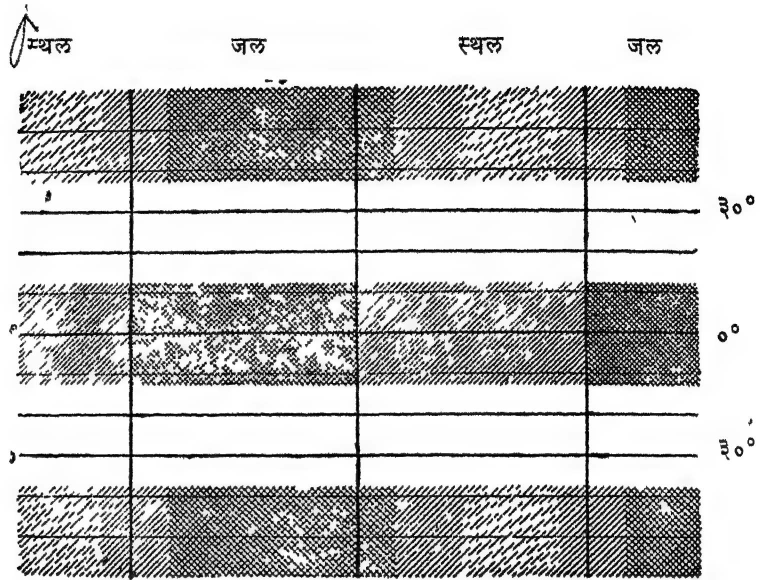
इसके अतिरिक्त वर्षा की सभी पेटियो मे उत्तरी और दक्षिणी किनारो की ओर वर्षा की मात्रा क्रमश घटती जाती है। ये गुण चित्र मे प्रदर्शित नही किया गया है।

## वायु का प्रभाव

शीतोष्ण कटिबन्ध मे पछुवा हवाये चलती है। उनके कारण सागर की आर्द्रता महाद्वीपो के पश्चिमी तट मे तथा स्थल की शुष्कता महासागरो के पश्चिमी तट मे प्रवेश कर जाती है। चित्र ३०६ से यह कथन स्पष्ट होगा। वास्तव मे पछुवा हवाओ के कारण शीतोष्ण कटिबन्ध के सूखे और वर्षा वाले भाग पूर्व की ओर खिसक जाते है। चित्र ३०५ और चित्र ३०६ की तुलना से यह कथन स्पष्ट होगा।

उष्ण कटिबन्ध मे व्यापारिक हवाये चलती है। ये हवाये अपेक्षाकृत शीतल प्रदेश से उष्ण प्रदेश की ओर प्रवाहित होती है, अतएव सामान्यत इनसे वर्षा नही

होती। केवल विशेष परिस्थितियो में इनसे वर्षा होती है, उदाहरण के लिये पथ में




चित्र ३०२—वर्षा पर वायु का प्रभाव

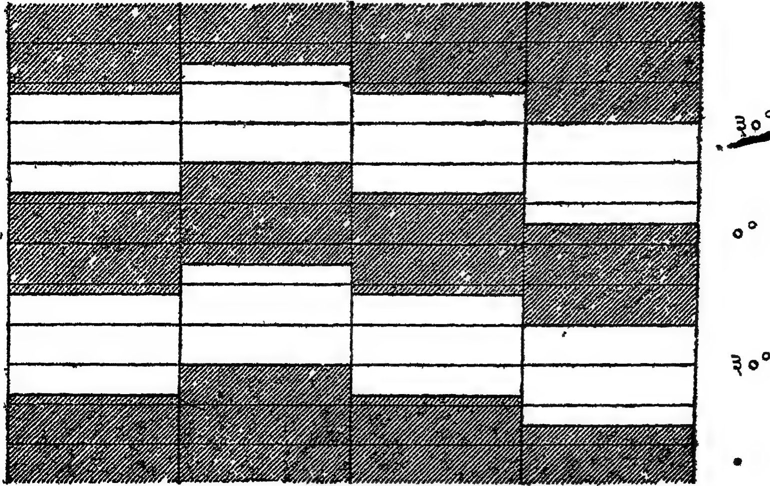
पहाडी आ जाने से जब इन्हे ऊपर चढना पडता है। अनुकूल परिस्थितियो मे इनसे महाद्वीपो के पूर्वी तट पर पश्चिमी तट की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

## ऋतु परिवर्तन के कारण वर्षा की पेटियों का खिसकना

ऋतुओ के साथ वर्षा की पेटियाँ भी खिसकती रहती है। जहाँ तक स्थानान्तरण की मात्रा का सबध है, प्रत्येक पेटी अधिक से अधिक लगभग ८° उत्तर या दक्षिण खिसक जाती है। अन्य शब्दो मे उत्तरी गोलार्ध की गर्मी की ऋतु मे विषुवतीय वर्षा-कटिबन्ध का मध्य भाग ८° उत्तर पर पहुँच जाता है और जाडो की ऋतु मे ८° दक्षिण अक्षाश पर पहुँच जाता है।

चित्र ३०२ में विभिन्न ऋतुओ मे वर्षा की पेटियो की स्थिति प्रदर्शित की गई है। इस चित्र के अध्ययन से ससार के विभिन्न भागो के वर्षा सबधी अनेक तथ्य स्पष्ट हो जाते है। उदाहरण के लिये इस चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूमध्य सागरीय जलवायु के प्रदेश मे (३०° और ४०° अक्षाश के बीच मे) वर्षा जाडो मे क्यो होती है और गर्मियो मे क्यो नही होती।

वसन्त विषुव→ग्रीष्म अयनान्त→शरद विषुव→शिशिर अयनान्त→




चित्र ३०७—जल वृष्टि की पेटियो का विवर्तन

इस चित्र से यह भी पता चलता है कि ५° और २०° आक्षाश के बीच मे जाडे सूखे होते है और गर्मियो मे वर्षा होती है।

इसके अध्ययन से वर्षा सबधी और भी तथ्यो का ज्ञान होता है—

(१) सभी पेटियो के मध्य भाग मे ऋतु-सबधी परिवर्तन सबसे कम होता है।

(२) विषुवत् रेखा पर वर्ष भर वर्षा होती है।

(३) शीतोष्ण कटिबन्ध के अधिकाँश भाग मे सभी ऋतुओ में वर्षा होती है।

(४) शुष्क कटिबन्धो का मध्य-भाग प्राय वर्ष भर सूखा रहता है। . . आदि

## समवर्षा रेखाये (Isohyets)

कभी २ मानचित्रो में वर्षा का वितरण समवर्षा रेखाओ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। समवर्षा रेखा वह कल्पित रेखा है, जो उन स्थानो के मिला देने से बन जाती है, जहाँ वर्षा की मात्रा समान हो।

## ससार में सबसे अधिक जलवर्षा का स्थान

चिरापूजी (आसाम) मे वार्षिक जलवर्षा लगभग ४६० इच होती है, जो ससार मे सबसे अधिक है।

## २ हिमवृष्टि (Snowfall)

### (१) सिद्धान्त एव प्रकार

जब जलवाष्प के द्रवीभवन का तापक्रम ३२° फ० से कम होता है, तब वह पानी मे परिणत न होकर हिम मे परिणत होती है। आरम्भ में हिम सूक्ष्म मणिभों

(Crystals) के रूप मे होती है। धीरे २ अनेक हिम-मणिभ परस्पर चिपक कर एक हो जाते है। इस प्रकार अपेक्षाकृत बडे आकार के शल्कल (Flakes) अस्तित्व में मे आ जाते हैं।

हिमवृष्टि दोनो ही रूप मे होती है—(१) हिम के पृथक मणिभो के रूप मे तथा (२) हिम शल्कलो (Snow flakes) के रूप मे। वायुमण्डल मे नीचे उतरते समय प्राय हिम पिघल जाती है, जिससे धरातल पर वह जल-वर्षा के रूप मे ,गिरती है। अतएव, कभी २ ऐसा होता है, कि जब धरातल पर जलवर्षा होती है उसी समय निकटवर्ती पर्वतो पर हिमवृष्टि होती है।

सामान्यत हिम का एक फुट जलवर्षा के एक इच के बराबर माना जाता है, किन्तु यह सबध हिम की प्रकृति और सरचना पर निर्भर है।

## (२) हिमवृष्टि का सामान्य वितरण

ध्रुवीय प्रदेशो मे वर्ष के अधिकाँश भाग मे वृष्टि हिम के रूप मे होती है। जैसे २ हम ध्रुवो से विषुवत रेखा की ओर बढते हैं, वैसे २ हिमवृष्टि का काल और मात्रा दोनो ही घटते जाते है, यहाँ तक कि लगभग ४०° अक्षाश के अनन्तर सागर समतल पर हिमवृष्टि नही होती। हाँ, ऊँचे स्थानो की बात दूसरी है। ऊँचे भागो मे तो विषुवत रेखा पर भी हिमवृष्टि होती है।

## (३) हिमरेखा (Snow Line)

पर्वतो पर स्थायी हिम की निचली सीमा को हिमरेखा (Snow Line) कहते हैं।

किसी स्थल पर हिम रेखा की ऊँचाई निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है —

(१) **तापक्रम**—किसी स्थान पर सागर-समतल का तापक्रम जितना ही अधिक होगा, हिमरेखा वहाँ उतनी ही ऊँची होगी। यही कारण है कि विषुवत् रेखा की ओर हिमरेखा की ऊँचाई बढती जाती है। आर्कटिक वृत्त के निकट हिमरेखा सागर-समतल पर होती है, विषुवत-रेखा की दिशा मे वह ऊँची होती चली जाती हैं। ऋतुओ के अनुसार तापक्रम मे विभेदन होते रहते है, अतएव हिमरेखा की ऊँचाई भी ऋतुओ के साथ बदलती रहती है। किसी भी स्थान पर शीत ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म-ऋतु मे हिमरेखा की ऊँचाई अधिक होगी।

(२) **धरातल का आकृति**—पर्वतो के प्रपाती प्रवण (Steep Slope) पर हिम का अधिकाँश भाग हिमाघाव (Avalanche) के रूप मे नीचे खिसक जाता है। दूसरी ओर, पर्वतो के मन्द प्रवण (Gentle Slope) पर हिम उस समय तक अपने स्थान पर स्थिर रहती है, जब तक वह पिघलती नही है। अतएव प्रपाती प्रवण की अपेक्षा मन्द प्रवण पर हिम रेखा की ऊँचाई कम होती है।

(३) **हिमवृष्टि को मात्रा**—यदि अन्य प्रतिकारको का विचार न किया जाय तो आर्द्र क्षेत्रो की अपेक्षा शुष्क क्षेत्रो मे हिमरेखा ऊँची होती है। उदाहरण के लिये हिमालय पर्वत के उत्तरी ढाल पर हिमरेखा दक्षिणी ढाल की अपेक्षा दो हजार फुट ऊपर रहती है, यद्यपि उत्तरी ढाल की अपेक्षा दक्षिणी ढाल का तापक्रम अधिक है। इससे

स्पष्ट है कि यहाँ पर हिमवृष्टि की मात्रा का अन्तर तापक्रम के अन्तर से अधिक महत्वपूर्ण है। द० प० मानसून वायु की जलवाष्प का अधिकाश भाग हिमालय के दक्षिणी भाग मे द्रवीभूत हो जाता है।

## ससार के विभिन्न भागो मे हिमरेखा की ऊँचाई

विषुवत रेखा के निकट हिमरेखा सागर-समतल से १८००० फुट से लेकर २०,००० फुट की ऊँचाई पर पाई जाती है। हिमालय पर्वत के दक्षिणी ढाल पर इसकी ऊँचाई १६००० फुट है और उत्तरी ढाल पर १८००० फुट। आल्प्स और पिरेनीज में इसकी ऊँचाई ८००० फुट से १०,०००फुट तक है, उत्तरी स्कैण्डिनेविया मे इसकी ऊँचाई ४००० फुट के लगभग है और ध्रुवो के निकट यह सागर-समतल पर पाई जाती है।

## हिमालय की हिमरेखा

हिमालय पर्वत मे अनेक श्रेणियाँ है। यह कथन कि हिमालय के दक्षिणी ढाल की अपेक्षा उत्तरी ढाल पर हिमरेखा अधिक ऊँचाई पर पाई जाती है, समस्त श्रेणियो के समूह के लिये है, किसी एक पृथक श्रेणी के लिये नही। यदि हम किसी एक श्रेणी का विचार करते है, तो विपरीत दशा पाते है अर्थात् किसी एक श्रेणी के दक्षिणी ढाल पर हिमरेखा की ऊँचाई उत्तरी ढाल से अधिक है। चित्र ३०८ से यह कथन स्पष्ट होगा।

उत्तर दक्षिण



चित्र ३०८—हिमालय पर्वत की हिमरेखा

प्रत्येक श्रेणी के दोनो ढालो पर वृष्टि की मात्रा प्राय समान है किन्तु उत्तरी ढाल की अपेक्षा दक्षिणी ढाल पर ताप अधिक होता है, अतएव हिमरेखा प्रत्येक श्रेणी मे उत्तरी ढाल पर नीची है और दक्षिणी ढाल पर ऊँची। सबसे दक्षिण वाली श्रेणी में बीच की श्रेणी की अपेक्षा हिम-वृष्टि अधिक होती है, अतएव उसकी हिमरेखा मध्य श्रेणी की हिमरेखा से नीची है। इसी प्रकार मध्य-श्रेणी की हिम-रेखा उत्तरी श्रेणी से नीची है। अतएव, यद्यपि प्रत्येक श्रेणी का ढाल दक्षिण की ओर है, तथापि जब हम समस्त पर्वत श्रेणियो को एक समूह की दृष्टि से देखते है, तब हमे ज्ञात होता है कि हिम रेखा उत्तर मे दक्षिण की अपेक्षा अधिक ऊँची है।

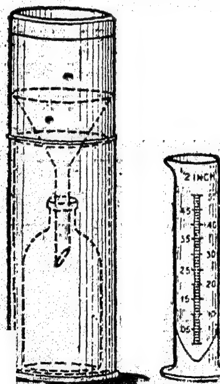
## ३ हिमोपल वृष्टि अथवा ओलो की वर्षा (Hail)

हिमोपल वृष्टि मे कुज-वर्षुक ( Cumulo-nimbus ) मेघो से हिम के कठोर पिण्ड धरातल पर गिरते है। इस प्रकार की वृष्टि के साथ बिजली की कडक वाली आँधियाँ अथवा तडित्-झझाये (Thunder-storrms) बहुधा आया करती है। हिमोपल अथवा ओलें अनेक आकृतियो के होते है और कभी कभी इनका आकार भी काफी बड़ा होता

है। चार इंच तक के व्यास के ओले पाये गए हैं, जिनका भार दो पौण्ड से भी अधिक होता है। ओलों के बनने की क्रिया अब भी विवादास्पद है। ओलों में एकान्तर पर ( Alternately ) पारदर्शक एवं अपारदर्शक कर्पर (Shells) होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि जब जमे हुए पानी की बूंद बादलों में से होकर नीचे आती है, तब उसके ऊपर पानी की तह इकट्ठी हो जाती है। जैसे जैसे बूंद नीचे आती है, वैसे वैसे इस तह का पानी जमता जाता है। संवाहन के प्रवाह के कारण जब बूंद फिर ऊपर जाती है तब उस पर पानी की दूसरी तह जम जाती है। इस तह का पानी बहुत शीघ्रता से जमता है क्योंकि ऊपर तापक्रम घटता जाता है और बूंद बड़े वेग से ऊपर जाती है। ओले के धरातल तक पहुँचने के पूर्व यह क्रिया अनेक बार होती है अर्थात् बूंद अनेक बार ऊपर जाती है और नीचे आती है। ओले की अपारदर्शक तहें पानी के जल्दी जमने की द्योतक हैं। यह तभी होता है जब बूंद ऊपर जाती है। दूसरी ओर पारदर्शक तहें पानी के धीरे धीरे जमने की सूचक हैं। यह तब होता है जब बूंद नीचे आती है।

## वृष्टि मापन

यह उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है, कि वृष्टि के अन्तर्गत जलवृष्टि, हिम-वृष्टि तथा हिमोपल-वृष्टि तीनों आते हैं। जिस यंत्र से वृष्टि नापी जाती है, उसे वर्षा-मापक (Rain Gauge) कहते हैं। चित्र ३०९ में वर्षा-मापक प्रदर्शित किया गया है। इस यंत्र में एक बेलनाकार बर्तन के अन्दर बोतल रहती है। इस बोतल में एक कीप (Funnel) लगी रहती है। बोतल में एकत्र हुए पानी को नापने के लिए एक मापक जार होता है। इस मापक-जार के अंक कीप के क्षेत्रफल के अनुसार होते हैं। यह कथन उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये कीप के मुख का क्षेत्रफल १५ वर्ग इंच है। ऐसी दशा में उसे एक इंच भरने के लिये १५ घन इंच जल की आवश्यकता होगी। अतएव किसी जार में १५ घन इंच पानी भर कर १ इंच का चिन्ह लगा देते हैं। इसी प्रकार ३० घन इंच पानी भर कर दो इंच का चिन्ह लगा दिया जाता है। अन्य शब्दों में मापक जार के चिन्ह घन इंच प्रदर्शित नहीं करते वरन् कीप के मुख के बराबर के क्षेत्र की गहराई दर्शाते हैं।




सही वृष्टि-मापन के लिये अनेक पूर्वोपाय अपेक्षित हैं :—

(१) यदि वर्षामापक यंत्र को धरातल पर रखा जाय तो कीप के बाहर उठे हुए छींटे उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। अतएव बोतल में जल की मात्रा वास्तविक वृष्टि जल से अधिक हो जाती है। यही कारण है कि इंग्लैंड में वर्षा मापक को धरातल से एक फुट की ऊँचाई पर रखा जाता है।

चित्र ३०९—वृष्टि मापक

(२) कीप में गिरने वाले जल का कुछ भाग छिटककर बाहर गिर जाता है। इसे रोकने के लिये कीप का किनारा दो तीन इंच तक लम्बवत् होना चाहिये।

(३) जब वृष्टि हिम के रूप मे होती है, तब कभी कभी वृष्टि समाप्त होने के पूर्व कीप का मुह हिम से भर जाता है और वायुरोध के कारण वह बोतल मे नही गिरती। ऐसी दशा मे कीप मे नापकर गरम पानी डाल देना चाहिये, जिससे हिम पिघलकर बोतल में चली जाय। बाद मे मापित वृष्टि से गरम पानी के आयतन को घटा देना चाहिये।

भारतवर्ष और अग्रेजी भाषा वाले देशो मे वर्षा इचो मे नापी जाती है।[1] इस कथन का कि किसी स्थान मे ३ इच वर्षा हुई यह अर्थ होता है कि यदि वर्षा जल वही स्थिर रहता, जहाँ गिरा था, न उसका प्रवाह होता, न भूमि द्वारा शोषण और न ही वाष्पीकरण, तो धरातल पर उसका ३ इच मोटा स्तर बन जाता।

---

१ भारतवर्ष में अब मैट्रिक प्रणाली अपनाई जा रही है। उसके फलस्वरूप अब वर्षा इचो के स्थान पर सैण्टीमीटरो और मिलीमीटरो मे नापी जायगी।

# सैंतालीसवाँ परिच्छेद
# वायु-राशियाँ तथा अग्र
# (AIR MASSES AND FRONTS)

## १ वायुराशि की परिभाषा

'वायुराशि वायु के ऐसे विशाल पुञ्ज को कहते हैं, जिसके प्राकृतिक लक्षण विशेषकर तापक्रम एव जलवाष्प समान ऊँचाई पर एक से होते है।'[1]

## २ वायुराशियों के वर्गीकरण का आधार

वायुराशि के लक्षण जो उससे सम्बन्धित मौसम को निर्धारित करते हैं, मुख्यत उसके स्रोत-प्रदेश ( Source Region ) पर निर्भर है। पथ के प्रभाव भी उसमे थोडी मात्रा मे सपरिवर्तन करते है, यद्यपि वे उतने महत्वपूर्ण नही होते जितना स्रोत-प्रदेश। वायुराशियो के किसी भी उपयोगी वर्गीकरण मे उनसे सम्बन्धित मौसम की दशाओ का परिलक्षित होना आवश्यक है। अतएव ऐसा वर्गीकरण स्रोत-प्रदेश तथा पथ के सपरिवर्तनो पर आधारित होगा।

वायुराशियो के प्रमुख स्रोत-प्रदेश या तो उच्च-अक्षाशीय अर्थात् ध्रुवीय (P) हैं अथवा वे निम्न-अक्षाशीय अर्थात् उष्ण-प्रदेशीय (T) है। केवल उच्च एवं निम्न अक्षाश विस्तृत वायुराशियो के वास्तविक स्रोत हैं। मध्य अक्षाश अर्थात् शीतोष्ण प्रदेश ध्रुवीय तथा उष्णप्रदेशीय वायुराशियो की तीव्र मिथ क्रिया ( Interaction ) के क्षेत्र हैं। उनमे वायुराशि के उद्भव के लिये आवश्यक एकरूप दशाये नही पाई जाती। मध्य अक्षाशो में पाई जाने वाली वायुराशियों की उत्पत्ति की खोज करने पर हमे विदित होता है कि उनका उद्भव या तो ध्रुवीय प्रदेशो मे हुआ है अथवा उष्ण-प्रदेशो मे।

वायुराशियो का प्राथमिक वर्गीकरण, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया, स्रोत-प्रदेश पर आधारित होगा। इस दृष्टि से वायुराशियो के दो वर्ग किये जा सकते हैं—(१) ध्रुवीय वायुराशियाँ तथा (२) उष्ण प्रदेशीय वायुराशियाँ। वर्गीकरण को सहज सुगम बनाने के लिये आर्कटिक वायु का हम ध्रुवीय वायु-राशि के अन्तर्गत तथा विषुवतीय वायु का उष्णप्रदेशीय वायुराशि के अन्तर्गत विचार करेंगे क्योकि वे इनकी ही सपरिवर्तित रूप हैं।

ध्रुवीय तथा उष्णप्रदेशीय वायुराशियो को इस आधार पर कि उनकी उत्पत्ति महाद्वीप मे हुई है अथवा महासागर में, पुन दो-दो उप-वर्गों मे बाँटा जा सकता है —

---

1. An Air-mass may be defined as a large body of air of almost uniform properties—specially as regards temperature and water-vapour at the same elevation'—Thomas A. Blair (Climatology)

ध्रुवीय वायुराशि (P) [ (१) महाद्वीपीय (cP)
(२) महासागरीय (mP)

उष्ण प्रदेशीय वायुराशि (T) [ (१) महाद्वीपीय (cT)
(२) महासागरीय (mT)

वायुराशियो के पथ के सपरिवर्तन दो प्रकार के होते हैं—( १ ) तापगत्यात्मक ( Thermodynamic ) तथा (२) याँत्रिक ( Mechanical )

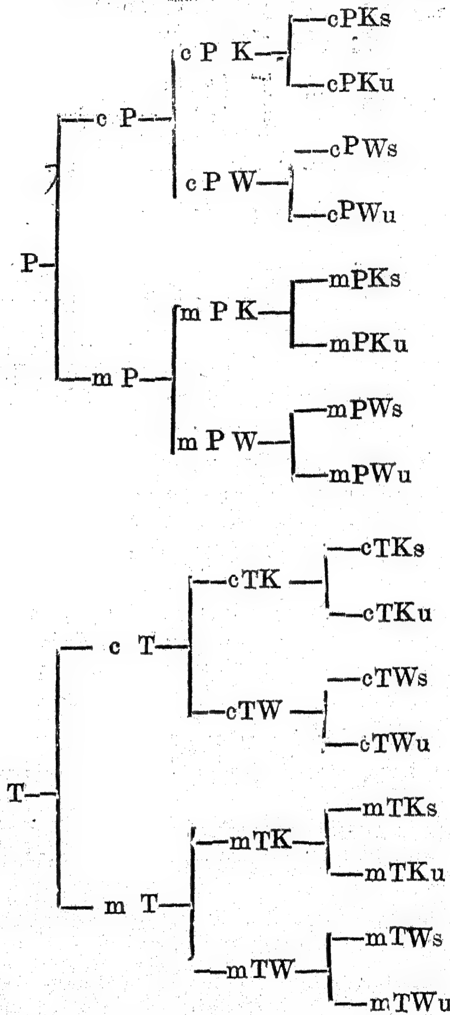
**तापगत्यात्मक सपरिवतन** (Thermodynamic modifications)—इनका कारण वायुराशि के नितल मे तथा उस पृष्ठ मे जिसके ऊपर वायुराशि की गति होती है, ताप का स्थानान्तरण है। सपरिवर्तन की मात्रा नीचे के पृष्ठ की प्रकृति पर निर्भर होती हे। यदि वायु-राशि नीचे के पृष्ठ की अपेक्षा उष्ण होती है तो उसे हम W से अकित करते हैं। इसके विपरीत, यदि वायुराशि नीचे के पृष्ठ की अपेक्षा शीतल होती है, तो उसे हम K से अकित करते हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि W अथवा K यह सूचित नही करते कि वायुराशि उष्ण अथवा शीतल है, ये अक्षर केवल यह प्रदर्शित करते हैं कि वायुराशि का नितल अपने नीचे के पृष्ठ की तुलना मे उष्ण है अथवा शीतल। तापत्यात्मक सपरिवर्तन नीचे के पृष्ठ के वाष्पीकरण तथा ऊपर से गिरने वाले जल की बूदो से भी प्रभावित होता है।

**यांत्रिक सपरिवर्तन** ( Mechanical modifications )—वायुराशि की स्थिरता ( Stability ) को प्रभावित करते हैं। ऐसी वायुराशियो को जिनका ऊपरी भाग स्थिर ( Stable ) होता है, हम s से अकित कर देते हैं। दूसरी ओर ऐसी वायुराशियो को, जिनका ऊपरी भाग अस्थिर (Unstable) होता है, हम u से अकित कर देते हैं। अधिकाश दशाओ मे s सकेत प्रतिचक्रवातीय परिवहन प्रदर्शित करता है तथा u सकेत चक्रवातीय परिवहन दर्शाता है।

उपर्युक्त विवेचना के अनुसार वायुराशियो को १६ वर्गो मे बाँटा जा सकता है। इस वर्गीकरण मे प्रयुक्त होने वाले सकेतो का स्पष्टीकरण नीचे दिया जा रहा है —

P = Polar = ध्रुवीय
T = Tropical = उष्ण प्रदेशीय
m = Maritime = महासागरीय
c = Continental = महाद्वीपीय
W = Cooled from below = नीचे से ठण्डी होने वाली
K = Heated from below = नीचे से गर्म होने वाली
s = Stable aloft = ऊपरी भाग स्थिर
u = Unstable aloft = ऊपरी भाग अस्थिर

## ३ वायुराशियों का वर्गीकरण
## (Classification of Air Masses)




इन वायुराशियों का संक्षिप्त वर्णन हम इन्हें प्रदर्शित करने वाले संकेतों की सहायता से कर सकते हैं। उदाहरण के लिये—

cPWs—यह महाद्वीप में उत्पन्न होने वाली ध्रुवीय वायुराशि है। अतएव यह शीतल तथा शुष्क वायुराशि है। यह वायुराशि नीचे के पृष्ठ की अपेक्षा उष्ण है। अतएव इसके निचले स्तर नीचे से ठंडे होते हैं। इसके ऊपरी स्तर स्थिर (Stable) हैं। संभवतः इसका सम्बन्ध किसी प्रतिचक्रवात से है।

## ४. भारतीय वायु-राशियाँ

श्री सुजान बान्धव चटर्जी ने अपनी कृति Indian Climatology' में भारतीय वायु-राशियों का यह वर्गीकरण किया है:—

# भारतीय वायुराशियों का वर्गीकरण

| क्रम अख्या | वायुराशि | उद्गम | भारतीय प्रदेश मे प्रवेश | लक्षण | भारतीय प्रदेश मे प्रमुखता का काल |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | बाह्य उष्ण प्रदेशीय (Extra-Tropical)<br>(क) पश्चिमी हिमालय की<br>(ख) पूर्वी हिमालयकी<br>(ग) शुष्क अन्तर्वर्ती | (क) मध्य एशिया और योरप<br>(ख) मध्य एशिया, तिब्बत तथा चीन (कभी-कभी निकट वर्ती सागरो मे भी)<br>(ग) उत्तरी अरब सागर भारतीय मरुस्थल (स्थानीय रचना) | (क) सीमा पार तथा पश्चिमी हिमालय<br>(ख) तिब्बत, आसाम तथा ब्रह्मा के पार (निमज्जन द्वारा)<br>(ग) पश्चिमी तट | (क) ध्रुवीय महाद्वीपीय<br>(ख) ध्रुवीय महाद्वीपीय (कभी कभी ध्रुवीय महासागरीय)<br>(ग) उष्ण महाद्वीपीय | (क) जाड़े की ऋतु<br>(ख) फर्वरी तथा जून के मध्य में नियत कालिक रूप मे तथा मानसून ऋतु मे<br>(ग) ग्रीष्म ऋतु मे तथा मानसून के उपरान्त |
| २ | उष्ण प्रदेशीय (Tropical)<br>(क) पश्चिमी प्रवाह<br>(ख) आर्द्र अन्तर्वर्ती | (क) उ० अफ्रीका, अरब तथा ईरान<br>(ख) संभवत विषुवत रेखा के उत्तर मे ही सीमित | (क) सीमा तथा गुजरात के पार, सिन्ध एव पश्चिमी तट के अनुरूप<br>(ख) दक्षिणी अरबसागर | (क) उष्ण महाद्वीपीय<br>(ख) महाद्वीपीय समुद्रीय | (क) ग्रीष्म ऋतु तथा मानसून के उपरान्त (नियत कालिक रूप में)<br>(ख) ग्रीष्म तथा मानसून ऋतुओ में नियतकालिक रूप मे |
| ३ | विषुवतीय (Equatorial)<br>(क) दक्षिणी पुरवैया<br>(ख) द० प० मानसून | (क) विषुवतीय कटिबन्ध<br>(ख) दक्षिणी गोलार्ध | (क) ब्रह्मा तथा टैना सरिम के पार<br>(ख) द० हिन्द महासागर के पार | (क) महाद्वीपीय समुद्रीय<br>(ख) ध्रुवीय समुद्रीय | (क) द० प० मानसून की पश्चगति का काल, जाड़े तथा गर्मियाँ<br>(ख) मानसूनी ऋतु |

## (ख) अग्र (Fronts)

**अग्र की परिभाषा**—पृथ्वी के धरातल पर उष्ण तथा शीतल वायुराशियो को पृथक करने वाली रेखा को अग्र (Front) कहते है।

**अग्रों का वर्गीकरण**—अग्रो का वर्गीकरण दो आधारो पर किया जा सकता है—(१) **भौगोलिक स्थिति** के अनुसार तथा (२) वायुराशियो की गति के सन्दर्भ मे

**(१) भौगोलिक स्थिति के अनुसार वर्गीकरण**—भौगोलिक स्थिति के अनुसार अग्रो को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है—

(क) अन्तर उष्ण प्रदेशीय अथवा विषुवतीय अग्र (Inter-Tropical or Equatorial Fronts)—ये विषुवतीय ससृति (Equatorial convergence) के क्षेत्र मे, जहाँ उत्तरी और दक्षिणी गोलार्धो की व्यापारिक (Trade) हवाये मिलती है, बनते है। इनके लक्षण विवादास्पद है। अधिकाश दशाओं में ससृत (Converging) वायुराशियो मे ताप और घनत्व के अन्तर अधिक नही होते, जिससे प्रबल चक्रवात विकसित नही होते, यद्यपि अनेको निर्बल चक्रवात अस्तित्व मे आ जाते है।

(ख) ध्रुवीय अग्र (Polar Fronts)—ध्रुवीय और उष्णप्रदेशीय वायुराशियो को पृथक करने वाली ससृतियो (Convergences) के अनेक असम्बद्ध अथवा खडित कटिबन्धो के अनुरूप पाये जाते है। इनकी औसत स्थिति वायुभार की द्रोणी के अनुरूप होती है। इनके अनुरूप वायु राशियो के तापक्रम के अन्तर बहुत अधिक होते है, अतएव प्रबल और बहुल चक्रवात विकसित होते है।

(ग) आर्कटिक तथा अण्टार्कटिक अग्र (Arctic and Antarctic Fronts)—उच्च अक्षाशो के अनुरूप जहाँ ध्रुवीय वायुराशियाँ ससृत होती है, पाये जाते है। इनके अनुरूप कही २ पर ध्रुवीय महाद्वीपीय वायुराशि ध्रुवीय महासागरीय वायुराशि के सम्पर्क मे आती है। कही विषम प्रकृति की ध्रुवीय महासागरीय वायुराशियाँ मिलती है। सामान्यत इन अग्रो मे ध्रुवीय अग्रों की तुलना मे तापक्रम के अन्तर कम होते है जिससे निर्बल चक्रवात ही बनते है। इन अग्रों मे एक यह विशेषता पाई जाती है कि वे ऋतुओ के अनुसार सूर्यातपन की अभिवृद्धि और ह्रास के साथ स्थानान्तरित होते रहते है। गर्मियो मे ये ध्रुवो की ओर खिसक जाते है।

**(२) वायुराशियो की गति के सन्दर्भ में वर्गीकरण**—इस आधार पर अग्रो को चार कोटियो मे बाँटा जा सकता है—

(१) शीतल अग्र (Cold front)—वह अग्र है, जिसके अनुरूप शीतल वायुराशि उष्ण वायुराशि का प्रतिस्थापन करती है।

(२) उष्ण अग्र (Warm front)—वह अग्र है, जिसके अनुरूप उष्ण वायुराशि शीतल वायुराशि का प्रतिस्थापन करती है।

(३) स्थिर अग्र (Stationary front)—वह अग्र है, जिसके अनुरूप एक वायुराशि दूसरी वायुराशि को प्रतिस्थापित नही करती।

(४) अधिधारित अग्र (Occluded Front[1])—वह अग्र है, जो उस समय अस्तित्व मे आ जाता है, जब शीतल अग्र उष्ण अग्र तक जा पहुँचता है।

---

1. 'An occluded front is a front resulting when a cold front overtakes a warm front' (S. Petterssen in his 'Introduction to Meteorology')

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

# जलवायुयों का वर्गीकरण

## (CLASSIFICATION OF CLIMATES)

ससार की जलवायुयो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है जैसे—

(१) जलवायु को नियन्त्रित करने वाले प्रतिकारको के आधार पर
(२) तापक्रम के आधार पर
(३) वर्षा के आधार पर
(४) वनस्पति के आधार पर
(५) दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रभावो के आधार पर
(६) अणु-जलवायुकी (Micro-Climatology) के आधार पर
(७) कौपैन के अनुसार
(८) थौर्न्थवेट के अनुसार
(९) वृहद प्राकृतिक प्रदेशो के आधार पर . आदि।

## (१) जलवायु को नियन्त्रित करने बाले प्रतिकारों के आधार पर वर्गीकरण

### (क) अक्षाँश के अनुसार

**वर्गीकरण की रूपरेखा**—इस आधार पर पृथ्वी को ५ कटिबन्धो मे बाँटा गया है —

(१) उष्ण कटिबन्ध (Torrid Zone) इसका विस्तार कर्क और मकर रेखाओ के मध्य मे है।

(२-३) शीतोष्ण कटिबन्ध ( Temperate Zones )—उत्तरी गोलार्ध में यह कटिबन्ध कर्क-रेखा और आर्कटिक वृत्त के मध्य मे है। दक्षिणी गोलार्ध मे यह कटिबन्ध मकर रेखा और अण्टार्कटिक वृत्त के मध्य में है।

(४-५) शीत कटिबन्ध ( Frigid Zoner )—उत्तरी गोलार्ध में यह कटिबन्ध आर्कटिक वृत्त के उत्तर मे स्थित है। दक्षिणो गोलार्ध मे यह कटिबन्ध अण्टार्कटिक वृत्तो के दक्षिण मे स्थित है।

**समीक्षा**—यह वर्गीकरण स्थूल एव यथार्थ है। कर्क और मकर रेखाओ के मध्य के सभी क्षेत्र उष्ण ( Torrid ) नही होते। इसी प्रकार कर्क रेखा और आर्कटिक वृत्त के मध्य मे स्थित अथवा मकर रेखा और अण्टार्कटिक वृत्त के मध्य में स्थित अनेक स्थान शीतोष्ण नही है।

## (ख) जल तथा स्थल के वितरण के अनुसार

**वर्गीकरण की रूपरेखा**—इस आधार पर जलवायु के दो प्रमुख विभाग किये गये हैं—(१) महाद्वीपीय जलवायु तथा (२) महासागरीय जलवायु। महाद्वीपीय जलवायु विषम जलवायु प्रदर्शित करती है। महासागरीय जलवायु सम (Moderate) जलवायु दर्शाती है।

**समीक्षा**—यह वर्गीकरण सर्वांगपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिये महाद्वीपों के आन्तरिक भाग उष्ण हो सकते हैं, शीतल हो सकते हैं, आर्द्र हो सकते हैं, शुष्क हो सकते हैं आदि आदि, जिससे महाद्वीपीय जलवायु के ही अनेक उपविभाग किये जा सकते हैं।

## ग) ऊँचाई के अनुसार

**वर्गीकरण की रूपरेखा**—ऊँचाई के विचार से जलवायु के अनेक भेद किये जा सकते हैं, जैसे पर्वतीय जलवायु, पठारी जलवायु, निम्न क्षेत्रों की जलवायु आदि।

**समीक्षा**—वर्गीकरण का यह आधार भी आदर्श नहीं है क्योंकि निचले क्षेत्रों ही में अनेक प्रकार के जलवायु पाये जाते हैं।

## (घ) वायु व्यवस्था के अनुसार

**वर्गीकरण की रूपरेखा**—इस आधार पर ऐसे जलवायु विभाग किये जा सकते हैं—डोलड्रम, ट्रेड हवाओं की जलवायु, मानसूनी जलवायु, पछुवा हवाओं की जलवायु आदि।

**समीक्षा**—यह आधार भी पूर्ण तथा वैज्ञानिक नहीं है।

# (१) तापक्रम के आधार पर वर्गीकरण

तापक्रम जलवायु के दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। तापक्रम पेड़-पौधों तथा जीव-जन्तुओं के विकास एवं वितरण को निर्धारित करता है। अतएव, तापक्रम के अनुसार पृथ्वी के विभाग करना नितान्त स्वाभाविक एवं तर्कसंगत है। वास्तव में जलवायु के सभी आधुनिक वर्गीकरणों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से तापक्रम को एक आधार अवश्य माना जाता है। सूपान ने तापक्रम के अनुसार पृथ्वी को तीन कटिबन्धों में बाँटकर जलवायु का एक आरंभिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया था :—

(१) उष्ण कटिबन्ध—स्थूल रूप से यह कटिबन्ध कर्क रेखा और मकर रेखा के मध्य में स्थित है। इसका औसत वार्षिक तापक्रम २०° सैं० (६८°फ०) है।

(२) शीत कटिबन्ध—उत्तरी गोलार्ध में आर्कटिक वृत्त के उत्तर में तथा दक्षिणी गोलार्ध में अण्टार्कटिक वृत्त के दक्षिण में स्थित है। इस कटिबन्ध के उष्णतम महीने का तापक्रम १०° सैं० (५०° फ०) से कम होता है।

(३) शीतोष्ण कटिबन्ध—यह कटिबन्ध उष्ण तथा शीत कटिबन्धो के मध्य में स्थित है।

अभिनवकाल मे श्री रबनेंर ( Mr Rubner ) ने उष्ण दिवसो की सख्या के अनुसार योरप को ५ विभागो में बाँटा है। उष्ण दिवस से तात्पर्य है—ऐसा दिन जिसका औसत तापक्रम १०° सैं० (५०° फ०) से अधिक हो।

रबनेर के अनुसार योरप के जलवायु कटिबन्ध—

| जलवायु कटिबन्ध | उष्ण दिवसो की सख्या |
|---|---|
| १ उप-आर्कटिक (Sub Arctic) | १—६० |
| २ शीतल (Cool) | ६१—१२० |
| ३ शीतोष्ण (Temperate) | १२१—१८० |
| ४ ओष्ण शीतोष्ण (Warm Temperate) | १८१—२४० |
| ५ ओष्ण ( Warm ) | २४१—३०० |

तापक्रम के आधार पर इसी प्रकार अनेक अन्य वर्गीकरण प्रस्तुत किये गये है, जिनकी विवेचना यहाँ सभव नही है।

## (३) वर्षा के आधार पर वर्गीकरण

### वर्गीकरण की रूपरेखा

वर्षा के आधार पर ग्लोब को पाँच जलवायु-विभागो मे बाँटा जा सकता है —

| जलवायु विभाग | वर्षा विभाग | वार्षिक वर्षा (इचो मे) |
|---|---|---|
| १. मरुस्थलीय | कम वर्षा | ०—१० |
| २. अर्ध मरुस्थलीय | हल्की वर्षा | १०—२० |
| ३. उपार्द्र | साधारण वर्षा | २०—४० |
| ४. आर्द्र | भारी वर्षा | ४०—८० |
| ५ अति आर्द्र | अत्यन्त भारी वर्षा | ८० से अधिक |

**समीक्षा**—यह वर्गीकरण वनस्पति के अध्ययन के लिये अत्यन्त अनुकूल नही है क्योकि वनस्पति के विकास के लिये वार्षिक वर्षा का मूल्य इतना महत्वपूर्ण नही है जितने अनेक अन्य प्रतिकारक जैसे मौसम के अनुसार वर्षा का वितरण, वाष्पीकरण की मात्रा, भूमि की आर्द्रता ग्रहण करने की क्षमता आदि।

## (४) वनस्पति के आधार पर वर्गीकरण

### वर्गीकरण की रूपरेखा

वनस्पति के आधार पर पृथ्वी को ६ जलवायु-विभागो मे बाँटा जा सकता है। सुविधा के लिये इस वर्गीकरण के साथ औसत वार्षिक तापक्रम भी दिये जा रहे है —

| क्रम स० | जलवायु विभाग | वनस्पति | औसत वार्षिक तापक्रम (फ० मे) |
|---|---|---|---|
| १ | उष्ण प्रदेशीय (Tropical) | ताड, केले | ७८-८२ |
| २ | उपोष्णप्रदेशीय (Sub tropical) | अजीर, वासमूर्त | ६८-७८ |
| ३ | ओष्ण (Warm) | चौडी पत्ती की सदाबहार | ६०-६८ |
| ४ | साधारण (Moderate) | पर्णपाती वृक्ष | ४८-६० |
| ५ | शीतल (Cold) | कोणधारी वृक्ष | ४०-४८ |
| ६ | ध्रुवीय (Polar) | छोटी क्षुप, हरिता, अवाप्य | ४० से कम |

पवारी ने योरप के वनो को वनस्पति के अनुसार ५ जलवायु कटिबन्धो मे बाँटा है —

| कटिबन्ध | तापक्रम (°फ०) | |
|---|---|---|
| | औसत वार्षिक | शीतलतम मास |
| १ लॉरैल (Laurel) | ५४—७३ | ३७ से अधिक |
| २ चैस्टनट (Chestnut) | ५०—५९ | ३० से अधिक |
| ३ बीच (Beech) | ४५—५४ | २५ से अधिक |
| ४ स्प्रूस (Spruce) | ३७—४३ | |
| ५ अल्पाइन जाति के वृक्ष (Alpine Species) | ३६ से कम | ४ से कम |

### समीक्षा

विशेष जलवायु मे पाये जाने वाले विशेष वृक्षो के आधार पर वृहद जलवायु विभाग अवश्य किये जा सकते है, किन्तु यह वर्गीकरण न तो पूर्ण ही है और न ही सन्तोषजनक।

## (५) दैनिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रभावों (Physiological and Psychological Effects) के आधार पर वर्गीकरण

मनुष्य के प्राकृतिक और मानसिक लक्षणो पर जलवायु का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इन प्रभावो के आधार पर जलवायु के अनेक भेद किये जा सकते है —जैसे

ऊर्जाप्रद ( Energing) उत्तेजनाप्रद ( Stimulating ) शक्तिप्रद (Bracing) स्वास्थ्यप्रद (Healthful), निरुत्साह प्रद (Depressing) अशक्तिप्रद (Enervating), शैथिल्यप्रद (Relaxing), अविभिन्न (Monotonous), अस्वास्थ्यप्रद (Unhealthful) आदि।

**समीक्षा**—इन प्रभावो को स्थूल रूप से तो अनुभव किया जा सकता है, किन्तु इनका यथार्थ मूल्याकन सभव नही है। इसके अतिरिक्त समान जलवायु सब व्यक्तियो को समान रूप से प्रभावित नही करती। यही नही, एक ही व्यक्ति पर भिन्न परिस्थितियो मे उसका भिन्न प्रभाव पडता है। अतएव जलवायु के वैज्ञानिक तथा यथार्थ वर्गीकरण के लिये ये प्रभाव निश्चित मापदण्ड प्रदान करने मे असमर्थ है।

## (६) अणु जलवायुकी (Micro-climatology के अनुसार वर्गीकरण

विस्तृत क्षेत्रो मे तापक्रम और वर्षा के महान विभेदन पाये जाते है। अतएव नापक्रम अथवा वर्षा के अनुसार किया गया जलवायु का वर्गीकरण बहुत अधिद यथाथ हो है। दो निकटवर्ती खेतो तक के जलवायु मे, ढाल के विपरीत दिशाओ म हाने के कारण, अन्तर होता है। जलवायु सम्बन्धी इन सूक्ष्म विभेदनो का विचार अणु-जलवायुकी (Micro-climatology) मे किया जाता है। कभी २ इन स्थानीय विभेदनो की व्यवाहरिक महत्ता बहुत अधिक होती है—उदाहरण के लिये घाटियो के नितल में तुषारपात होना और निकटवर्ती ढालो का उससे उन्मुक्त होना। अणुजलवायुकी मे यह भी अध्ययन किया जाता है कि वायुमण्डल के तापक्रम कुहरा, धूप तथा धूलिकण नगरो मे किस प्रकार प्रभावित होते है। छोटी जलराशियो और वनो का स्थानीय प्रभाव भी इस विज्ञान के अन्तर्गत है।

सयुक्त राज्य अमरीका मे श्री सी० डब्ल्यू० थौर्न्थवेट के पर्यवेक्षण मे ओहियो प्रदेश मे स्थित मस्किगम घाटी का अणु-जलवायुकीय अध्ययन किया गया है। यहाँ ८००० वर्गमील के क्षेत्रफल के जल विभाजक ( Watershed) मे लगभग चार-चार मील की दूरी पर ५०० स्टेशन स्थापित किये गये है। इन स्टेशनो मे जलवायु के तत्वों के मापन के सभी यत्र है। आधे घण्टे के मध्यान्तर पर प्रत्येक स्टेशन पर जलवायु-तत्वो को एक साथ आलेखित किया जाता है।

## (६) कोपैन का वर्गीकरण (Koppen's Classification)

जलवायु का सबसे प्रसिद्ध लोकप्रिय तथा सबसे अधिक उपयोग मे आने वाला वर्गीकरण कौपैन का है। कौपैन ने ससार के स्थलीय भाग को ५ वृहद जलवायु-विभागो मे बॉटा है। ये विभाग डि कैण्डौल ( de Candolle ) के पौधो के वर्गीकरण के अनुरूप है —

| डि कैण्डौल का पौधो का वर्गीकरण | कौपैन के जलवायु-विभाग | कौपैन के जलवायु-विभागो के लक्षण |
|---|---|---|
| १ महातापोय (Meg atherms)-वे उष्णप्रदेशीय पौधे जिन्हे निरन्तर उच्च तापक्रम तथा प्रचुर आर्द्रता आवश्यक है। | A—उष्णप्रदेशीय वर्षा के जलवायु | इनमे शीत ऋतु नही होती। शीतलतम महीने का औसत तापक्रम १८° सै (६४ ४° फा०) से अधिक होता है। |
| २ शुष्करोहा (Xerophytes) वे मरुस्थलीय पौधे जो कम वर्षा मे विकसित होते हैं। | B—शुष्क जलवायु | इनके अन्तर्गत मरुस्थलीय तथा अर्ध-मरुस्थलीय जलवायु आते है। इन जलवायुयो मे वृष्टि की तुलना में वाष्पीकरण अधिक होता है। |
| ३ मध्यतापीय (Mesotherms)—वे उष्ण शीतोष्ण कटिबन्धीय पौधे जिन्हे अधिक मात्रा मे ताप आवश्यक हैं, किन्तु जो सूक्ष्म अवधि के जाडे और एक शुष्क ऋतु को सह सकते हैं। | C—आर्द्र मध्यतापीय अथवा मृदुल जाडोवाले वर्षा के जलवायु | इनमे शीतलतम महीने का तापक्रम १८° सैं० (६४.४°फ०) से कम किन्तु –३° सैं० (२६ ६° फ०) से अधिक होता है। उष्णतम महीने का तापक्रम १०° सैं० (५०° फ०) से अधिक होता है। जाडे छोटे होते है। भूमि एक महीने अथवा उससे अधिक हिमावृत हो सकती है। |
| ४ अणुतापीय (Microtherms)—शीत शीतोष्ण कटिबन्ध के पादप जैसे कोण धारी वृक्ष जो (१) अल्प अवधि की गर्मियो तथा (२) दीर्घ अवधि के जाडो में—यदि औसत वार्षिक तापक्रम हिमाक के ऊपर हो—विकसित हो सकते हैं। | D—आर्द्र लघुतापीय अथवा कठोर जाडो सहित वर्षा के जलवायु | इनमे उष्णतम महीने का तापक्रम १०° सैं० (५०° फ०) से अधिक होता है, शीतलतम महीने का तापक्रम—३° सैं० (२६ ६° फ०) से कम होता है, जाडे लम्बे होते हैं, भूमि कई महीने हिमाच्छादित रहती है तथा जाडो की अधिकाश वृष्टि हिम के रूप मे होती है। |
| ५. न्यूनतापीय (Hekistotherms)—ऐसे ध्रुवीय प्रदेशों के, जिनका औसत तापक्रम हिमांक के नीचे होता है, निम्नवर्ती पौधे | E—ध्रुवीय जलवायु | इनमें कोई उष्ण ऋतु नही होती। उष्णतम महीने का औसत तापक्रम १०° सैं० (५०° फ०) के नीचे रहता है। |

खण्ड ४

# भूसैद्धान्तिकी

(Theories Of Geography And Geology)

# भूमिका

इस विशाल राष्ट्र की सर्वस्वीकृत एव सर्वमान्य भाषा हो जाने के पश्चात् हिन्दी का क्षेत्र व्यापक होगया है और वह द्रुतगति से विश्वविद्यालयो मे शिक्षा का माध्यम बनती जा रही है। सम्प्रति इस भाषा की सबसे बडी आवश्यकता यह है कि ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयो पर उच्च-स्तरीय एव प्रामाणिक पुस्तको का प्रणयन हो। आचार्य जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव की प्रस्तुत पुस्तक इस दिशा मे एक स्तुत्य प्रयास है

'भूसैद्धान्तिकी' लेखक के 'प्रकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि' नामक ग्रन्थ का चतुर्थ खण्ड मात्र है। 'अवनि', 'उदधि' तथा 'अन्तरिक्ष' इसके क्रमश प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भाग हैं। ये सभी खण्ड अपने आप मे पूर्ण एव स्वतन्त्र है तथा सम्मिलित रूप से प्राकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि पर पर्याप्त प्रकाश डालते है।

मैने प्रस्तुत खण्ड को आद्योपान्त पढा है। इसमे भूगोल एव भूगर्भ-शास्त्र के प्रायः सभी सिद्धान्तो पर स्पष्टता के साथ विचार किया गया है। इन सिद्धान्तो का प्रतिपादन अत्यन्त व्यवस्थित, विद्वतापूर्ण, सक्षिप्त एव रुचिकर रीति से किया गया है। विषय प्रतिपादन की प्रणाली एक विशेषज्ञ विद्वान के योग्य होने के साथ साथ सुबोध भी है।

श्रीवास्तवजी ऐसी पुस्तक के लिखने के सर्वथा अधिकारी है। उन्होने भूगोल एव भूगर्भ शास्त्रो का विस्तृत अध्ययन किया है तथा वे अनेक वर्षो से स्नातकीय कक्षाओ मे अध्यापन का कार्य कर रहे है हिन्दी भाषा और साहित्य के भी वे पूर्ण विद्वान है। उनके इस हिन्दी ज्ञान ने 'सोने मे सुगन्ध' का सा काम किया है। पुस्तक के प्रस्तुतीकरण मे एक मधुर मौलिकता है। विभिन्न सिद्धान्तो की आधार-भूत सामग्री को इतनी सुन्दरता के साथ रखा गया है कि पाठक के हृदय में अमिट छाप पड ही जाती है। रेखाचित्रो के बाहुल्य ने विषय-प्रतिपादन को सरल, सुगम और सुबोध बना दिया है। नवीनतम सिद्धान्तो एव निष्कर्षों का समावेश करके पुस्तक को आद्यतन बनाने का प्रयास किया गया है। प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द उपयुक्त एव यथार्थ अर्थ के द्योतक है। मुझे इसमे सन्देह नही कि भूगोल एव भूगर्भ शास्त्र केछात्रो के लिए यह पुस्तक अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

अन्तर्वस्तु के अल्प अध्ययन मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना दीर्घकालीन परिश्रम के उपरान्त हुई है। हिन्दी-जगत के लिये यह एक अत्यन्त मूल्यवान उपहार है।इस ग्रथ ने उसके एक बडे अभाव की पूर्ति कर दी है। पुस्तक इस योग्य है कि उच्च-परीक्षायो की पाठ्य-विधि एवं सहायक-ग्रन्थो मे रखी जावे। ऐसी उत्तम एव उपयोगी पुस्तक लिखने के लिये श्रीवास्तवजी हमारे बधाई के पात्र है। मुझे विश्वास है कि भारतीय विश्वविद्यालय एव शिक्षा-परिषदे इस ग्रन्थ का स्वागत करेंगी और विद्यार्थीगण इससे अधिकाधिक लाभ उठावेगे।

मेरी हार्दिक शुभकामना है कि लेखक अपनी साधना मे सफल हो।

**विद्यासागर दुबे**

आचार्य, भूगर्भ-विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

स्वातन्त्रता-दिवस

सन् १९६१ ई०

परम आदरणीय

डा० राजनाथजी पी-एच० डी० (लन्दन)

अध्यक्ष भूगर्भ एवं भूभौतिकी विभाग

तथा

प्रिन्सिपल विज्ञान महाविद्यालय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

के

कर कमलों में

सादर समर्पित



एक गिरे-हुए उल्का का खण्ड

लेखक की ओर से—

# निवेदन

राष्ट्रभाषा हिन्दी में भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र में ही नही, प्रायः प्रत्येक वैज्ञानिक विषय में उच्चतम् कक्षाओ के योग्य ग्रन्थो का नितान्त अभाव है। इसी रिक्ति की पूर्त्ति के उद्देश्य से मैंने भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र के प्रमुख सिद्धान्तों की रूप-रेखायें प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रश्न किया जा सकता है कि लिखने की ही जिज्ञासा थी तो अपेक्षाकृत नीची कक्षाओ के निमित्त कुछ लिखा होता, एकदम उच्चतम् कक्षाओं के नाम पर यह दुस्साहस करने की कौन सी आवश्यकता थी और क्या अधिकार था।

इसका उत्तर यह है—

सन् १९४५ ई० मे श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने ये उद्‌गार प्रकट किये थे—'हिन्दो को मैं राष्ट्रभाषा इसलिये नही मानता कि इसे बीस करोड़ व्यक्ति बोलते और समझते हैं, इसलिये भो नही कि भारतीय सस्कृति की गगा इसमे अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है, इस लिये भी नही कि यह प्रगतिशील सरस और वैज्ञानिक है, मैं इसे राष्ट्रभाषा केवल इसलिये मानता हूँ कि इसी मे हमारी दासता की प्रतोक अग्रेजो को निकाल भगाने की क्षमता है।' टण्डन जी की सुवाणी सुफल हुई और हिन्दो स्वतत्र भारत की राष्ट्रभाषा के आसन पर अभिषिक्त हुई। फिर भी कुछ लोगो को उपर्युक्त उद्धरण के अतिम बारह-चौदह शब्दो की सार्थकता मे सन्देह है। मेरा यह तुच्छ प्रयास इसी सन्देह के उन्मूलन के लिये है। हिन्दी आज इतनी उन्नत नही जितनो अग्रेजी तो इसका कारण यह नही है कि उसमें अग्रेजी के समान विकसित होकर समृद्धशाली बनने के अकुर विद्यमान नही है, वरन् केवल इसलिये कि उसे पनपने का अवसर ही नही दिया गया। यदि हिन्दी मे भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र जैसे वैज्ञानिक विषयो के उच्चतम् कक्षाओ के योग्य ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, तब साधारण पुस्तकें तो लिखी ही जा सकती हैं, यह निर्विवाद है। यही मेरा कहना है और यही मेरे दुस्साहस का कारण भी। जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है, मुझे महाकवि हरिऔध के निम्नलिखित शब्दो से बड़ा प्रोत्साहन मिला है—'बने या न बने, सेवा-प्रणाली सुखद या हृदयग्राहिणी हो या न हो, मातृभाषा की सेवा करने का अधिकार सभी को है।' अपेक्षाकृत नीची कक्षाओ के प्रति भी मैं उदासीन नही हूँ। 'आरम्भिक सर्वेक्षण' (Elementary Survey) व्यावहारिक एव प्रायोगिक भूगोल (Practical And Experimental Geography) आदि मेरी रचनायें—इसी दिशा के प्रयास के परिणाम है।

सन् १९४९ ई० में मैंने 'प्राकृतिक भूगोल की भूमिका' लिखना आरम्भ किया था। यह ग्रन्थ चार भागो में विभक्त है—(१) अवनि (२) उदधि (३) अन्तरिक्ष तथा (४) भू सैद्धान्तिकी। स्पष्ट है, कि यह कृति मेरे अभीष्ट ग्रन्थ का चतुर्थ खण्ड मात्र है। सन् १९५० ई० मे इस ग्रन्थ का लेखन कार्य समाप्त हो गया होता, किन्तु कुछ मानवजन्य परिस्थितियो के कारण मुझे इसे स्थगित कर देना पडा। सन् १९५१ ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय की भूगोल की एम० ए० कक्षा का अध्यापन-कार्य करते समय मैंने यह अधूरा काम फिर से हाथ में ले लिया और इसकी कुछ प्रगति भी हुई। इसी समय भारतीय शिक्षा-जगत में उच्च कक्षाओ में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न उठा। अनेक विद्वानो ने हिन्दी की क्षमता पर सन्देह प्रकट किया। मैंने सोचा कि हिन्दी के पक्ष की पुष्टि के लिये किसी वैज्ञानिक विषय का कम से कम एक ऐसा ग्रन्थ भी तो हो जो उच्चतम् कक्षाओ के काम आ सके। अतएव मैंने उपर्युक्त चौथे खण्ड का इसी दृष्टि से परिमार्जन और सवर्धन किया कि वह भूगोल ही नहो, वरन् भूगर्भ-शास्त्र की भी सर्वोच्च कक्षाओ के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके। इसी विचार से मैंने इसमे भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र के एम० ए०—एम० एस-सी० के पाठ्क्रम मे निर्धारित प्राय. समस्त सिद्धान्तों का समावेश कर दिया है तथा अन्त में परीक्षाओ में पूछे गए प्रश्न भी दे दिये हैं।

जहाँ तक प्रयुक्त भाषा का सबध है, मैंने सस्कृतमयी हिन्दी को अपनाया है। इस विषय में दो मत नही हो सकते। तो भी मैंने व्यवहार मे आने वाले अन्य भाषाओं के शब्दो का बहिष्कार नही किया है।

इन सिद्धान्तों की रूप-रेखा खाचते समय मेरे मस्तिष्क मे तीन प्रमुख ध्येय रहे हैं—(१) यथासभव सक्षेप (२) सरलता और (३) स्पष्टता। फिर भी सभव हैं, मेरी भाषा कुछ पाठको को क्लिष्ट लगे। यथार्थता (Exactness) और परिशुद्धता (Accuracy) का बलिदान किये बिना यह पुस्तिका और सरल न हो सकती थी ? यह मुझे स्वीकार न था। सुविज्ञ पाठक भी इसमे सहमत होगे।

मेरा केवल इतना ही तात्पर्य है कि छात्रगण इन सिद्धान्तो की रूप-रेखाओ को पढकर उनकी वास्तविक पृष्ठभूमि से अवगत हो जावे तदनन्तर अग्रेजी के प्रामाणिक ग्रन्थो के अध्ययन द्वारा अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करे। मैंने इस ग्रन्थ मे नवीन से नवीनतम विचारो का भी समावेश कर दिया है। उदाहरण के लिये पृथ्वी की उत्पत्ति के सबध में होयल एव लिटिलटन का सिद्धान्त। यथासभव भारतीय उदाहरण देने का भी मैंने प्रयास किया है, जैसे भूसन्तोल के सबध में।

विषय-विन्यास की दृष्टि से हिन्दी मे अपने ढंग का यह प्रथम ग्रन्थ हो सकता है, किन्तु मौलिकता का मिथ्या अभिमान मै नही करना चाहता। वस्तुत इस प्रकार का कोई ग्रन्थ सर्वांग मौलिक हो भी नही सकता। जिन लेखकों की कृतियो से

सहायता ली गई है उनमे स्टियर्स ऊलरिज-मॉरगन, डुटॉयट, वौरसैस्टर, ब्राडिया, होम्स और लेक का मै विशेष आभारी हूँ।

इस तुच्छ कृति को गुरुवर श्रद्धेय डा० राजनाथ जी पी-एच०, डी० (लन्दन) के कर कमलो मे समर्पित करते हुए मुझे सकोच हो रहा है। 'जयद्रथ-बध' के आरम्भ में कविवर श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने आचार्य द्विवेदी जी के प्रति जो विनय की है, उसकी पुनरावृत्ति ही मेरे लिए यहाँ पर उचित होगी—

'आर्य !
पाई तुम्ही से वस्तु जो, कैसे तुम्हे अर्पण करूँ ?
पर क्या परीक्षा रूप मे पुस्तक न यह आगे धरूँ ?
अतएव मेरी धृष्टता यह ध्यान मे मत लीजिये।
कृपया इसे स्वीकार कर कृत-कृत्य मुझको कीजिये।।'

आदरणीय डा० विद्यासागरजी दुबे ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखकर मुझे अनुगृहीत ही नही गौरवान्वित भी किया है। सरस्वती-विहार नागपुर के सचिव डा० लोकेशचन्द्र डी० लिट० ने व्याकारण सबधी सशोधन किये हैं, एतदर्थ मै उनका हार्दिक आभारी हूँ।

अन्त मे मै अपने सुविज्ञ पाठको और सहृदय आलोचको का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा कि मेरी यह कृति हिंदी मे अपने प्रकार का प्रथम प्रयास है, अतएव इसमे दोष तो होगे ही। मै उन्हे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि रचनात्मक समालोचना का मै सदैव स्वागत करूँगा और उचित सशोधन सुझाने के लिये मै उनका कृतज्ञ होऊँगा। इसके समस्त दोषो का परिहार दूसरे सस्करण मे अवश्य हो जायगा। इस समय सहृदय पाठक क्षीर-नीर विवेक से काम ले और त्रुटियो के लिये मुझे क्षमा करे।

मेरी इस साधना द्वारा विद्यार्थी-समाज का यदि कुछ भी लाभ हो सका, तो मै अपने श्रम को सफल समझगा।

—जनार्दनप्रसाद श्रीवास्तव

यह सिद्धान्त द्विआगिक व्यवस्था के वियोजन का सन्तोषप्रद हल प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार बन्दूक से गोली चलाने पर उसमे पीछे की ओर धक्का लगता है, उसी प्रकार जब विस्फोट द्वारा 'क' से क ख दिशा मे पदार्थ प्रक्षिप्त होता है, तब नोवा मे विपरीत दिशा मे प्रत्याधक्कन (Recoil) लगता है। 'क' मे प्रत्याधक्कन का वेग प्रति सैकण्ड कुछ विशक मील ही होता है, जो द्विआगिक व्यवस्था के वियोजन के लिये पर्याप्त है।

यद्यपि होयल का सिद्धान्त कोणीय आवेग (Angular Momentum) के मापदण्ड पर खरा उतरता है तथापि उसमे गृहमण्डल की उत्पत्ति अब भी कल्पना का विषय है। इस सिद्धान्त से अनेक बातो का—जैसे गृहो मे परिभ्रमण कैसे होने लगा, उपगृह कैसे बने आदि—स्पष्टीकरण नही हो सका है।

# पचासवाँ परिच्छेद

# पृथ्वी की आयु

# (AGE OF THE EARTH)

ससार भर के विचारक बहुत प्राचीन काल से पृथ्वी की आयु जानने के लिये प्रयास करते आ रहे है। इस विषय मे भिन्न-भिन्न देशो में भिन्न-भिन्न धारणाये प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, फारस के विद्वानो का विश्वास है कि पृथ्वी १२,००० वर्ष पुरानी है। बाइबिल के अनुसार सृष्टि की रचना ईसा से ४००० वर्ष पहले हुई। भारतीय पण्डित-वर्ग सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी की आयु लगभग दो अरब वर्ष है। भाग्यवश, आधुनिकतम वैज्ञानिक रीतियो से भी यही सख्या आती है।

पृथ्वी की आयु निर्धारित करने के लिये अनेक रीतियाँ हैं। इनमे से कुछ प्रमुख नीचे दी जा रही हैं —

## १ सागर की लवणता पर आधारित रीति

सागरजल खारा अथवा लवण- मय होता है। यह खारापन अथवा लवणता उन लवणो के कारण होती है, जो नदियाँ अपने जल के साथ सागर को समर्पित करती है। अतएव लवणता क्रमश बढती जाती है। किसी भी सागर के जल का आयतन निर्धारित किया जा सकता है और उसकी औसत लवणता भी निश्चित की जा सकती है। इन दोनो सख्याओ की सहायता से समस्त सागर मे वर्तमान लवण की मात्रा का आगणन (Estimate) किया जा सकता है। यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि एक वर्ष मे लवणता कितनी बढती है। उपर्युक्त सख्याओ की सहायता से पृथ्वी की आयु ज्ञात की जा सकती है। यदि इसे पृथ्वी की यथार्थ आयु न भी माना जाय, तो कम से कम इससे सागर बनने के बाद की पृथ्वी की आयु तो आ ही जाती है। सागर मे वर्तमान सोडियम (Sodium) और कैलशियम (Calcium) के लवणो के अध्ययन से पृथ्वी की आयु लगभग १२ करोड वर्ष ठहरती है।

आपत्तियाँ—(१) इस सिद्धान्त मे यह मान लिया जाता है कि आरम्भ में सागर खारे नही थे, वरन् उनका पानी मीठा था। इसका खण्डन कैम्ब्रियन युग के घोघे और अन्य जीवो के अवशेष करते है। इन जीवो का जीवन ही लवणो पर निर्भर है।

(२) अपक्षरण (Erosion) की मात्रा सदैव एक सी नही रही है। कभी अपक्षरण अधिक हुआ है तो कभी कम। उसी के अनुसार लवणता मे भी अन्तर हुए है। अतएव, यह कल्पना कि सागर में प्रत्येक वर्ष नमक की एक निश्चित मात्रा मिलती रही है, युक्तिसगत नही है।

(३) आग्नेयक्रिया (Igneous Activity) अथवा लावा के सवाहन (Convectional currents in the magma) द्वारा भी बहुत से लवण पृथ्वी के गर्भ से पृष्ठ पर आ गये हैं।

## २ अवसादन (Sedimentation) पर आधारित रीति

पृथ्वी की पर्पटी (Crust) बन जाने के बाद हिम, वायु, जल आदि अभिकर्ताओ ने उसके धरातल को घिसना आरम्भ कर दिया। अपक्षरित पदार्थ सागर मे एकत्र होने लगा। तब से लेकर आज तक लगभग ५ लाख फुट मोटा स्तर बन गया है। यदि हमे किसी प्रकार यह ज्ञात हो जाय कि प्रतिवर्ष कितना मोटा स्तर बनता रहा है, तो हम सरलता से पृथ्वी की आयु निर्धारित कर सकते है। अनुसन्धान से ज्ञात होता है कि जलज शिलाओ की अधिक से अधिक मोटाई ५,१४,००० फुट है। यह भी निश्चित किया गया है, कि प्रति ८८० वर्ष मे १ फुट मोटा स्तर बनता है। इस प्रकार पृथ्वी की आयु लगभग ४० करोड वर्ष आती है।

**आपत्तियाँ**—(१) अवसादन सदा एक सा नही होता अतएव किसी वर्ष स्तर अधिक मोटा बना होगा, और किसी वर्ष अपेक्षाकृत कम मोटा।

(२) फिर इन स्तरो मे भी अपक्षरण हुआ होगा। उसका विचार भी तो आवश्यक है।

(३) डा० सैमुअल हटन का कथन है कि सागर मे नमक घुला होने के कारण अवसाद अधिक नीचे धँस गये होगे।

## ३ जीव विकास पर आधारित रीति

जब पृथ्वी ठण्डी हुई और उसका तापमान इतना क्षीण हो गया कि उस पर प्राणी रह सके, तब ब्रह्मा ने जीवो की उत्पत्ति की। भूपृष्ठ पर आनेवाले जीव एक ही कोशा (Cell) वाले थे। बहुकोशावान ( Multi Cellular) जीव बाद मे आये। आरम्भ के जीवो मे रीढ की हड्डी नही थी। यही कारण है कि उनके अवशेष नही मिलते। बाद के जीवो मे कठोर अग होने लगे, जिसके कारण उनके अवशेष मिल जाते है। जीव विकास की सबसे महत्वपूर्ण घटना मानव की सृष्टि है। मानव की विशेषता उसका मस्तिष्क है। एक कोशावाले जीवो से लेकर मानव की सृष्टि तक—जीव-विकास की जो विभिन्न अवस्थाये हुई है—उनका विचार करके पृथ्वी की आयु निर्धारित की जा सकती है। प्राणिकीविदो (Biologists ) ने इस रीति से पृथ्वी की आयु लगभग १०० करोड वर्ष निर्धारित की है।

## ४ ज्योतिष की रीतियाँ

पृथ्वी की आयु ज्योतिष की अनेक रीतियो से निश्चित की जा सकती है। इन रीतियो की विस्तृत विवेचना न सरल है और न यहाँ सम्भव ही। इनमे से दो रीतियो का सकेतमात्र नीचे किया जा रहा है —

(१) पृथ्वी की धुरी की ऊनेन्द्रता (Ellipticity) स्थिर नही है। उसमे अन्तर होते रहते है। प्रसिद्ध फ्रासीसी ज्योतिषी लाप्लास ने इसका गभीर अध्ययन किया है और वे उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि पृथ्वी की आयु लगभग २ करोड १० लाख वर्ष है।

(२) हैरोल्ड जैफ्रे ने ज्वार-भाटे के सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की आयु २.५×१०९ वर्ष निर्धारित की है।

## ५. भौतिक शास्त्र की रीतियाँ

भौतिक शास्त्र की सहायता से भी पृथ्वी की आयु निर्धारित की जा सकती है। ये रीतियाँ भौतिक गुणो पर आधारित हैं। उदाहरण के लिये शिलाओ की सचालकता (Conductivity of rocks) के अध्ययन से उनकी आयु निकाली जा सकती है। यहाँ पर प्रत्येक रीति का उल्लेख सम्भव नही है। केवल एक भौतिक रीति सक्षेप मे नीचे दी जा रही है —

पृथ्वी का अभ्यन्तर अत्यन्त उष्ण है। अतएव भूपृष्ठ से ताप का विकिरण (Radiation) होता रहता है। ताप के निकल जाने से पृथ्वी ठण्डी होती रहती है। यदि पृथ्वी के शीतल होने का वेग निश्चित कर लिया जाय, तो पृथ्वी की आयु ज्ञात की जा सकती है। लॉर्ड कैल्विन ने इस रीति से पृथ्वी की आयु लगभग ४ करोड वर्ष निर्धारित की है।

**आपत्तियाँ**—(१) पृथ्वी के अन्दर तेजोद्गर (Radio-active) पदार्थ है। उनके वियोजन (Disintegration) से अपरिमित ताप विकसित होता है। इस रीति मे इसका विचार नही किया गया है।

(२) सौर-विकिरण (Solar Radiation) सदैव एक सा नही होता। वह घटता बढता रहता है।

## (६) तेजोद्गरण (Radio activity) पर आधारित रीति

पृथ्वी की आयु निश्चित करने की यह नवीनतम और आधुनिकतम रीति है।

पृथ्वी की पर्पटी मे अनेक तेजोद्गर (Radio-active) पदार्थ विद्यमान है। इन पदार्थो मे यह विशेषता होती है, कि उनके परिमाणुओ (Atoms) का वियोजन (Disintegration) होता रहता है। वियोजन के फलस्वरूप एक तत्व दूसरे तत्व मे परिणत हो जाता है। जब यह क्रिया होती है तब ताप की वृहद मात्रा उद्विकसित होती है। इस प्रकार एक तत्व से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा, चौथे से पाँचवा तत्व बनता जाता है। इस प्रकार की शृखला के अन्त मे एक विशेष प्रकार का सीसा (Lead) शेष रह जाता है। इस सीसे के अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आरम्भ मे वह क्या था, उसमे कितने परिवर्तन हुए है, उससे कितना ताप विकसित हुआ है और आरभिक तत्व से उस तत्व तक परिवर्तन होने मे कितना समय लगा है। इस प्रकार किसी शिला की, जिसमे इस प्रकार का सीसा विद्यमान हो, आयु निकाली जा सकती है। इस रीति से हम भू-पर्पटी की विभिन्न शिलाओ की आयु निर्धारित कर सकते है और सबसे पुरानी शिला की आयु से भूपर्पटी की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।

सीसे के समान हीलियम भी तेजोद्गरण की क्रिया से उत्पन्न होती है और उसकी मात्रा से भी शिलाओ की आयु निर्धारित की जा सकती है। उदाहरण के लिये, शिलाओ की आयु निकालने के दो सूत्र नीचे दिये जा रहे है —

शिला की आयु $= \frac{Pb}{Ur} \times 6600$ Million Years (होम्स के अनुसार)

$= \frac{He}{Ur} \times 9\,6$ Million Years (रूथरफोर्ड के अनुसार)

तेजोद्गर तत्वो की सख्या लगभग ४० है। इनमे से मुख्य रेडियम, यूरेनियम और थोरियम है। सन् १८९५ ई० मे हैनरी बैक्वेरल ने यूरेनियम के इस गुण का पता लगाया। तदुपरान्त सन् १८९८ ई० में मैडम क्यूरी ने ज्ञात किया कि थोरियम के लवणो मे भी यह विशेषता पाई जाती है। सन् १९०२ मे श्री एव श्रीमती क्यूरी ने रेडियम का अन्वेषण किया, जो यूरेनियम की तुलना मे १० लाख गुना अधिक तेजोद्गर है। इन तत्वो के इसी गुण का उपयोग अथवा दुरुपयोग 'परिमाणु बम' (Atom Bomb) है।

जौन जौली ने खनिजो की आयु निकालने की एक अन्य रीति की खोज की है। यह भी तेजोद्गरण पर आधारित है। उसने अभ्रक मे बहुत से एक केन्द्रीय वृत्त देखे जिन्हे उसने नैकवर्ण प्रभामण्डल (Pleochroic haloes) की सज्ञा दी। यदि हमे इन वृत्तो का व्यास और वियोजन का वेग ज्ञात हो, तो हम खनिज की आयु ज्ञात कर सकते है।

## निष्कर्ष

पृथ्वी की आयु के सम्बन्ध मे आरभ मे जो गणनाये की गई, उनसे इसका मूल्य अपेक्षाकृत बहुत कम आता था। तेजोद्गर पदार्थों की खोज के उपरान्त यह मूल्य लगभग २,००,००,००,००० वर्ष आया। आधुनिकतम रीतियो से यह सख्या और भी अधिक आती है। गणनाओ के ये विभेदन अन्वेषक को उलझन मे डाल देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय मनीषियों ने पृथ्वी की आयु का सही मूल्य निकाल लिया था, किन्तु दुर्भाग्य से उनकी गणनाये अब सुलभ नही है। या तो वे कही छिपी पडी हैं या आक्रमणकारियो ने उन्हे नष्ट कर दिया है।

इक्यावनवाँ परिच्छेद

# पृथ्वी की आन्तरिक रचना

## (THE INTERIOR OF THE EARTH)

हमारे पास ऐसे कोई भी साधन नही है, जिनकी सहायता से हम प्रत्यक्षत देख सके कि पृथ्वी के अन्दर क्या है। कुँओ और खानो की गहराई तो बडी ही नगण्य होती है। अभी तक जितने सछिद्र (Bore holes) किये गये है, उनमे सबसे गहरा लगभग तीन मील का है। जब हम इस तीन मील की गहराई को पृथ्वी के अर्धव्यास के समक्ष रखते है, जो लगभग ४००० मील है, तब हम अनुभव करते है कि पृथ्वी के अन्तर के अध्ययन के लिये सछिद्र नितान्त उपेक्षणीय है। अतएव हमे परोक्ष रीतियो ( Indirect methods) की शरण लेना पडती है।

### (१) पृथ्वी का अभ्यन्तर

गरम सोते तथा ज्वालामुखी आदि यह प्रमाणित करते है कि पृथ्वी का अभ्यन्तर उष्ण है। पृथ्वी के अन्दर तापमान गहराई के साथ बढता जाता है। यह निश्चित किया गया है कि प्रत्येक ६४ फुट की गहराई के बाद तापक्रम १° फ बढ जाता है। इस हिसाब से पृथ्वी के धरातल से ६० मील नीचे तापक्रम इतना अधिक होगा कि वहाँ पर कोई भी शिला ठोस अवस्था मे नही रह सकती। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि पृथ्वी की पर्पटी लगभग ६० मील मोटी है। अन्य शब्दो मे यदि पृथ्वी को सेब (Apple) मान लिया जाय तो पर्पटी छिलका होगी। आधुनिक खोजो मे ज्ञात होता है कि भूपर्पटी मे आन्तरिक भागो की अपेक्षा तेजोद्गर पदार्थ (Radio-active Elements) अधिक मात्रा मे वर्तमान है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सभव है अधिक नीचे तापक्रम इतने अधिक वेग से न घटता हो।

पृथ्वी की अभ्यन्तर के विषय मे तीन विचार-धारायें है। कुछ विद्वानों का विचार है कि पृथ्वी का केवल ऊपरी पृष्ठ ठोस है, अन्दर सर्वत्र तरल है। अपने कथन की पुष्टि के लिये ये ज्वालामुखी के उद्गारो का उदाहरण देते है। यदि यह कथन सत्य होता तो यह तरल पदार्थ सूर्य और चन्द्रमा के आकर्षण से प्रभावित अवश्य होता और इस प्रकार पृथ्वी के धरातल पर ज्वार ( Tide) होते। किन्तु वास्तव मे ऐसा नही होता। अतएव यह विचारधारा अमान्य सिद्ध होती है। दूसरी विचारधारा यह है कि पृथ्वी का अभ्यन्तर गैसीय है। यह भी असत्य है, क्योकि यदि पृथ्वी के अन्दर केवल गैसे होती तो सम्पूर्ण पृथ्वी का औसत-घनत्व इतना अधिक न होता जितना कि वह है। तीसरी विचारधारा यह है कि पृथ्वी मे एक ठोस आन्तरक (Solid Core) है। यह तथ्य कि दबाव बढ जाने से प्रत्येक पदार्थ का द्रवणाक (Melting Point) बढ जाता है—इसका समर्थन करता है। एक अन्य विचारधारा यह है कि आन्तरक (Core) और पर्पटी (Crust) तो ठोस है, किन्तु मध्य का भाग तरल है।

सम्पूर्ण पृथ्वी का औसत घनत्व ५ ५ है और पर्पटी की उपरिष्ट शिलाओ में से अधिकाश का घनत्व ३ से भी कम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि केन्द्रीय

आन्तरक (Central Core) का घनत्व बहुत ही अधिक है अर्थात् उसका मूल्य लगभग ७ या ८ अवश्य होगा। पहले यह समझा गया कि ऊपर के शिलास्तरो के बृहद भार के कारण घनत्व इतना अधिक है किन्तु प्रयोग (Experiments) इसका खण्डन करते ह। प्रयोगो से यह ज्ञात होता है, कि दबाव बढ जाने से घनत्व बढता तो अवश्य है, किन्तु केवल एक निश्चित सीमा तक, उसके आगे नही। पृथ्वी के अभ्यन्तर का घनत्व इतना अधिक होना इस प्रकार समझ मे नही आता। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, कि पृथ्वी का आन्तरक बहुत भारी पदार्थो से बना है। अनेक प्रमाण इस कथन की पुष्टि करते है, कि वह लोहा और निकैल (Nickel) के मिश्रण से बना है —

(१) पृथ्वी के गोले की परिदृढता (Rigidity) जो इस्पात (Steel) से कुछ ही कम है।

(२) पृथ्वी का चुम्बकत्व—यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी का यह गुण आन्तरक (Core) मे विद्यमान लोहे आर निकैल के कारण ही है। लोहा और निकैल दोनो ही बडे शक्तिशाली चुम्बकीय पदार्थ हे।

(३) उल्काओ (Meteorites) के अध्ययन से विदित होता है कि उनकी रचना मे लोहे और निकैल के यौगिको (Compounds) का महत्वपूर्ण अश रहता है। वे भी तो इसी सौर परिवार के सदस्य ह, अतएव पृथ्वी की रचना उनसे मिलती-जुलती हो सकती है।

आन्तरक (Core) के ठीक ऊपर शिला पदार्थों का एक स्तर है जिसका कम से कम ऊपरी भाग तो अवश्य ही मणिभीय (Crystalline) है। यह स्तर आन्तरक से उसी प्रकार अलग हुआ होगा, जिस प्रकार लोहे के गलाने पर धातु-मैल ( Slag ) ऊपर आ जाता है। इस प्रकार इससे पृथ्वी की तरल अवस्था का भी समर्थन हो जाता है।

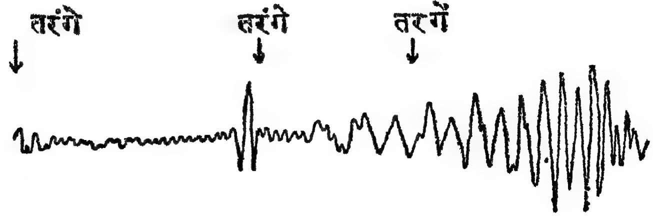
स्वेस (Suess) की उपकल्पना है कि स्थलखडो की जलजशिलाओ के आवरण ( Sedimentary cover ) के नीचे कणाश्म (Granite)से मिलते-जुलते पदार्थ का स्तर है। इसे उसने सियाल (Sial) कहा है, क्योकि इसमे सिलिकन और एल्यूमीनियम का प्राचुर्य है (Silicon + Aluminium i e Si + Al = Sial)। इसके नीचे अधिक घनत्ववाले पदार्थो का अपेक्षाकृत मोटा स्तर है—जिसे उसने सिमा (Sima) कहा है (Silicon + Magnesium i.e Si + Ma = Sima)

## ७ भूकम्प शास्त्र के प्रमाण
## (Evidences of Seismology)

जब भूकम्प होता है, तब उसके उद्गम से तरगे सभी दिशाओ मे अग्रसर होती है। चित्र ३४२ से यह कथन स्पष्ट होगा। इसमे उ विन्दु भूकम्प का उद्गम है। यह पृथ्वी के धरातल से प्राय पचास-साठ मील नीचे होता है। भूकम्प की तरगे तीन प्रकार की होती है —

(१) प्राथमिक तरगे (Primary Waves)—इन्हे अँगरेजी मे (P-waves) भी कहते है। ये ध्वनि-तरगो के समान होती है। इनमे पदार्थ के कण गति की दिशा मे ही प्रदोलित (oscillate) होते है।

(२) गौण तरगे (Secondary waves)—इन्हे अँगरेजी में (S-waves) भी कहते है। ये प्रकाश तरगो से मिलती जुलती है। इनमे कणो का प्रदोलन (Oscillatian) गति की दिशा के प्रति समकोण वनाता है।




चित्र ३४३—भूकम्प की तरगे

(३) पृष्ठ तरगे (Surface waves)—इन्हे अँगरेजी मे S—waves भी कहते है। जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, ये पृथ्वी के धरातल तक ही सीमित रहती हैं और अभ्यन्तर मे नही जाती। इनका आवृत्तिकाल (Period) अपेक्षाकृत लम्बा होता है।

चित्र ३४३ मे भूकम्प की तरगो के प्रकार प्रदर्शित किये गये है। भूकम्प के उद्‌गम आरम्भ होकर ये लहरे सभी दिशाओ मे धरातल की ओर अग्रसर होती ह। यदि पृथ्वी की रचना सर्वत्र एक सी होती तो ये लहरे सीधी रेखाओ मे आगे बढती, किन्तु वास्तव मे पृथ्वी की रचना सब जगह एक सी नही है। उसमे भिन्न-भिन्न घनत्व के अनेक स्तर हे। जहाँ भी दो भिन्न घनत्व के स्तर मिलते है, वही पर इन तरगो मे वर्त्तन (Refraction) और परावर्त्तन (Reflection) होता है। ऐसे समतलो को जो दो भिन्न घनत्व के स्तरो को पृथक करता है 'विचालिता तल' (Anamoly Plane) अथवा 'विरततातल' (Discontinuity Plane) कहते हैं। पृथ्वी के अभ्यन्तर मे घनत्व के बार-बार बदलने से तरग का मार्ग टेढा हो जाता है।

हाल ही मे नवीन तरगो के दो वर्गो की खोज हुई है —

(१) Pg—Sg तरगे—ये P—S तरगो के समान है, किन्तु इनकी गति का वेग अपेक्षाकृत कम है।

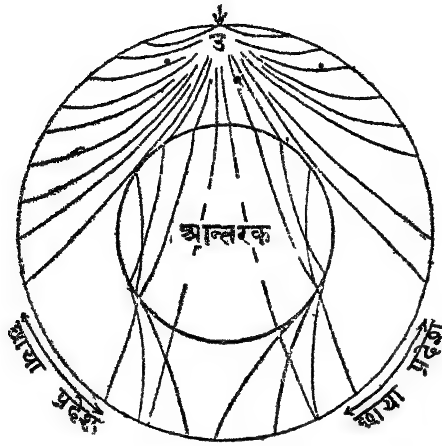
(२) P*—S*तरगे—ये भी P—S तरगो से मिलती-जुलती है, किन्तु इनका गति-वेग P—S वर्ग और Pg—Sg वर्ग की तरगो के बीच का है।

तरगो के मुड जाने से भूपृष्ठ के कुछ प्रदेश भूकम्प से बिल्कुल भी प्रभावित नही होते। ऐसे प्रदेशो को 'छाया-प्रदेश' (Shadow Zone) की सज्ञा दी गई है। चित्र ३४४ मे उन्हे प्रदर्शित किया गया है।

इन तीन वर्गों की तरगो के अनुसधान से यह निष्कर्ष निकलना है कि पृथ्वी मे तीन प्रकार के स्तर है —

(१) सबसे कम वेगवान तरगे अर्थात् Pg—Sg तरगे हल्के पदार्थों से बने सबसे ऊपर के स्तर मे प्रवाहित होती हैं।

(२) सबसे अधिक वेगवान तरगे अर्थात् P—S तरगे भारी पदार्थो से बने सबसे नीचे वाले स्तर मे प्रवाहित होती है।




चित्र ३४४—पृथ्वी मे भूकम्प की तरगो के पथ

(३) मध्यवर्ती (Intermediate) वेग की तरगे अर्थात् P*—S तरगे बीच के स्तर मे प्रवाहित होती है।

इस प्रकार तरगो का अध्ययन इस कथन की पुष्टि करता है कि पृथ्वी मे तीन स्तर है, जिनका घनत्व गहराई के साथ बढता जाता है।

किसी भी तरग के गति-वेग से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह जिस स्तर मे से होकर आई है, उसका घनत्व, सपीड्यता ( Compressibility ) और अन्य भौतिक गुणो का मूल्य क्या है। यह कथन निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए किसी लडके को यह आदेश दिया जाय कि वह मैदान, मरुस्थल और कीचड प्रत्येक मे एक एक मील दौडे। स्पष्ट है कि वह मैदान की दूरी सबसे शीघ्र पूरी कर लेगा, मरुस्थल में एक मील दौडने मे उसे अधिक समय लगेगा और कीचड मे पैर फँसने से उसे सबसे अधिक समय लगेगा। अतएव यदि हमे यह ज्ञात हो कि लडके के दौडने का वेग क्या है, तो हम तुरन्त ही यह बतला सकते है कि वह मैदान मे दौडा है या मरुस्थल मे अथवा कीचड मे। ठीक यही दशा भूकम्प की तरगो की भी है। उनके वेग से हम पृथ्वी की आन्तरिक रचना का अनुमान कर सकते है।

भूकम्प की तरगो के अध्ययन से भूपर्पटी की रचना के सम्बन्ध मे ये निष्कर्ष निकलते है —

(१) ऊपरी स्तर के गुण बहुत कुछ ग्रेनाइट ( Granite ) से मिलते-जुलते है।

(२) मध्यवर्ती स्तर के गुण बेसाल्ट (Basalt ) से मिलते है। डैली और जैफ्रे के अनुसार इस स्तर मे बेसाल्ट ग्लास ( Basalt Glass ) का प्राधान्य है और होम्स तथा वैजेनर के अनुसार उसमे एम्फिबोलाइट ( Amphibolite ) का प्राचुर्य है।

(३) नीचे के स्तर के पदार्थ बेसाल्ट से भारी है और उनमें ओलीवीन (Olivine) की मात्रा बहुत है। इसे डयूनाइट (Dunite) या पैरिडोटाइट (Peridotite) का स्तर कहा गया है।

जहाँ तक मोटाई का सम्बन्ध है, जैफ्रे का विचार है कि ऊपरी स्तर (योरप के नीचे) १०, १२ किलोमीटर मोटा है और मध्यवर्ती स्तर २०-२५ किलोमीटर। जर्मनी और जापान के भूकम्पवेत्ता इन स्तरो को और भी मोटा मानते है। नीचे के स्तर की मोटाई के विषय मे निश्चित सख्याये नही दी गई है—तो भी इतना तो निर्विवाद है कि—वह ऊपर के दोनो स्तरो से अधिक मोटा है।

यह ज्ञात हुआ है कि L तरगो का वेग स्थल की अपेक्षा सागरनितल मे (विशेषकर प्रशान्त नितल मे) अधिक है। इससे यह विदित होता है कि ग्रेनाइट (Granite), जिससे स्थल-खण्ड बने है, सागर नितल मे कम है। L तरगो का वेग अटलाण्टिक की अपेक्षा प्रशान्त नितल मे अधिक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अटलाण्टिक नितल मे अब भी ग्रेनाइट (Granite) काफी मात्रा मे वर्त्तमान है।

L तरगे पृष्ठ तक ही सीमित है अतएव उनसे पृथ्वी के अन्तर का कुछ भी ज्ञान नही होता। पृथ्वी के अभ्यन्तर के जानने के लिये P—S तरगो का अध्ययन आवश्यक है। गहराई के साथ इन तरगो का गति-वेग बढता जाता है। यह वृद्धि प्राय पृथ्वी की त्रिज्या के ३/१० भाग की गहराई तक पाई जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इतनी गहराई तक पृथ्वी स्थिति-स्थापक (Elastic) ठोस पदार्थ से बनी है। ओल्डैम (Oldham) ने सन् १९०६ ई० मे यह ज्ञात किया कि अभिकेन्द्र (Epicentre) से १२०° या अधिक के अन्तर पर तरगे लुप्त हो जाती है। ये तरगे तरल पदार्थों मे प्रवाहित नही होती अतएव इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि पृथ्वी का आन्तरक (Core) आधी त्रिज्या तक फैला हुआ है और वह तरल है। आधुनिकतम खोजो से कुछ और बातो का पता चला है किन्तु उनसे मुख्य निष्कर्ष मे कोई अन्तर नही पडता।

## (३) पृथ्वी के अभ्यन्तर के स्तर
## (The Zones of the Earth's Interior)

पृथ्वी की आन्तरिक रचना के विषय मे विद्वानो के भिन्न-भिन्न मत है। चित्र ३४५ मे एक बहुजनमान्य मत प्रदर्शित किया गया है। इसके अनुसार पृथ्वी मे निम्नलिखित स्तर है —

(१) आन्तरक (Core)—आयतन मे यह पृथ्वी का छटवॉ भाग है। पृथ्वी के चुम्बकत्व (Magnetism) और परिदृढत्व (Rigidity) से भी इसका समर्थन होता है। यह लोहे और निकैल के मिश्रण से बना है। इसका घनत्व ११ ६ है।

(२) लोहे और मिश्रित सिलिकेट का स्तर—इसकी मोटाई लगभग १७०० किलोमीटर है। आयतन मे यह पृथ्वी का चौथाई भाग है। इसके ऊपरी भाग मे

मुख्यत सिलिकेट है और निचलेभाग मे मुख्य यत लोहा है।

(३) सिलिकेट का भीतरी स्तर—इसकी मोटाई लगभग ११४० किलोमीटर है। इसका घनत्व ३ १ से ४ ७५ तक है।




चित्र ३४५—पृथ्वी की आन्तरिक रचना

(४) सिलिकेट का ऊपरी स्तर अथवा बाह्य पृष्ठ—इसकी मोटाई लगभग ६० किलोमीटर है। इसका घनत्व २ ७ से २ ९ तक है।

इस प्रकार की सरचना का समर्थन निम्नलिखित विज्ञान भी करते है —

(१) विश्वोत्पत्ति शास्त्र (Cosmogeny)

(२) भौतिक शास्त्र विशेषकर शिलाओ की सपीड्यता का प्रायोगिक अध्ययन (Expeiimental studies in the compressibility of rocks)

(३) उल्का-विज्ञान (The Science of Meteoiites)

## बावनवाँ परिच्छेद

# "महाद्वीपों और महासागर-नितलों की उत्पत्ति तथा स्थायित्व"

# [ THE ORIGIN AND PERMANENCY OF CONTINENTS AND OCEAN-BASINS ]

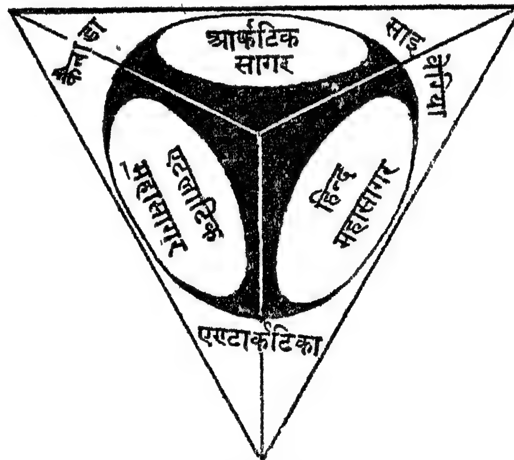
## (क) उत्पत्ति विषयक प्रमुख उपकल्पनायें

महाद्वीपो और महासागरो की उत्पत्ति के सबध मे अनेक उपकल्पनाये की गई है। इनमे से कुछ प्रमुख अत्यन्त सक्षेप मे नीचे दी जा रही है —

(१) **लार्ड कैल्विन**—सभव है, पृथ्वी की गैसीय प्रावस्था (Gaseous Phase) समाप्त होने के पूर्व महाद्वीप न्यष्टि-आतच (Nuclear Clots) रहे हो अर्थात् अपनी आरम्भिक अवस्था मे जब पृथ्वी गैस का पुज थी—उस समय महाद्वीप ऐसे आकर्षण के केन्द्र थे, जहाँ आद्य पदार्थ विशेष रूप से एकत्र हुए हैं।

(२) **सौलेस**—पृथ्वी के धरातल के वर्धन (Bulges) और निम्नन (Depressions) वायुमण्डल के दबाव (Atmospheric Pressure) की विभिन्नता के द्योतक हैं। अन्य शब्दो मे जहाँ पर वायु का भार अधिक था, वहाँ महासागर बन गए और जहाँ वायु का भार कम था वहाँ महाद्वीप बन गए।

(३) **ग्रहाणु ( Planetesimal ) सम्बन्धी उपकल्पना**—इसके अनुसार पृथ्वी के प्राकृतिक विभाग ग्रहाणुओ के असम पात के कारण बने है अर्थात् जहाँ पर ग्रहाणुओ का पात अधिक हुआ है, वहाँ महाद्वीप बन गए है और जहाँ इनका पात कम हुआ है, वहाँ महासागर बन गए।




चित्र ३४६—लोथियन ग्रीन की उपकल्पना

(४) **लोथियन ग्रीन**—इन्होने यह उपकल्पना की है कि आरम्भ मे पृथ्वी चतुर्नीक ( Tetrahedron) के रूप मे थी (चित्र )। इस चतुरनीक के चारो फलको पर महासागर थे और क्षैतिज-तटो पर महाद्वीप थे। आर्कटिक महासागर ऊपरी फलक पर था और अण्टार्कटिका महाद्वीप निम्नतम विन्दु पर स्थित था।

(५) **जे० डबल्यू० ग्रेगरी**

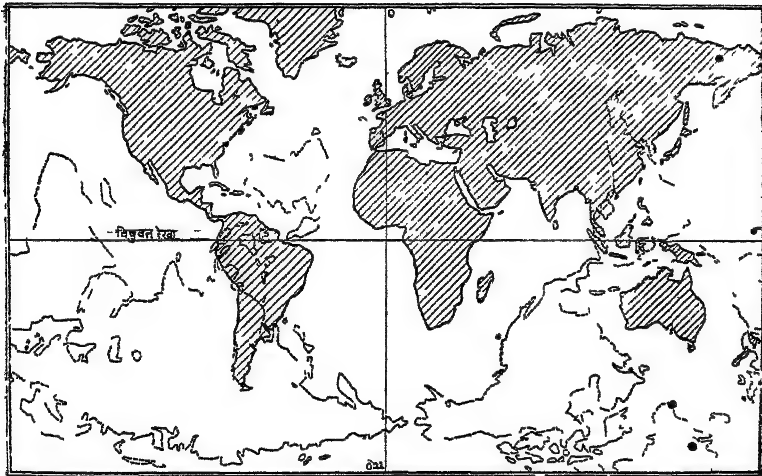
इन्होने लोथियन ग्रीन की उपर्युक्त उपकल्पना का और भी अधिक विकास किया है। अपने पक्ष के समर्थन के लिये इन्होने अनेक भौगोलिक तथ्य उपस्थित किये है –

(१) उत्तरी गोलार्ध मे स्थल का आधिक्य।

(२) महान भौगोलिक इकाइयो—अर्थात् महाद्वीप और महासागरो की तिकोनी आकृति।

(३) स्थलखडो का ध्रुवो के प्रति त्रिविकरक (Tri-radial) विन्यास

(४) स्थलखण्डो और महासागरो का पारस्परिक प्रतिध्रुवीय (Antipodal) होना।




चित्र ३४७—स्थलखडो और महासागरो का प्रतिध्रुवीय वितरण

इतने अनुकूल प्रमाण होते हुए भी, दुर्भाग्य से, गणित का एक ही तथ्य इस उपकल्पना को असफल सिद्ध कर देता है —

'चतुरनीकीय विरूपण ( Tetrahedral Deformation) समतोल की आकृति ( Figure of equilibrium ) के अनुरूप नही है।'[1]

---

1 A tetrahedral deformation does not correspond with a figure of equilibrium

### (६) प्रो० लैपवर्थ

इनके अनुसार महाद्वीप और महासागर विस्तृत भजो ( Broad Folds ) के प्रतिनिधि है। महाद्वीप शीर्ष (Crest) के द्योतक है और महासागर पाद (Trough) के।

### सिद्धान्त की समीक्षा

प्रथम तो ऐसे कोई भी प्रमाण नही है, जिनसे यह सिद्ध होता हो कि महाद्वीप और महासागर भज है, फिर यदि उन्हे भज मान भी लिया जावे, तो उनके बनने की क्रिया स्पष्ट नही होती।

अतएव, लैपवर्थ की उपर्युक्त उपकल्पना अस्वीकृत कर दी गयी।

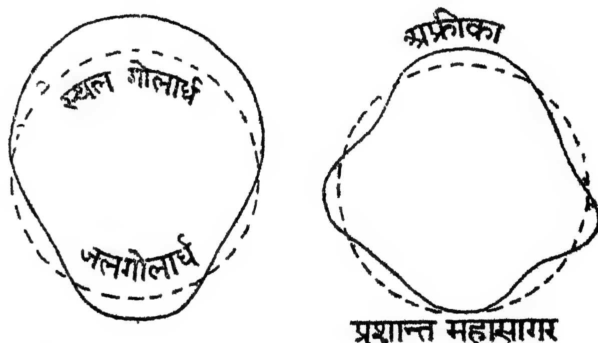
### (७) लव

जैसा की ऊपर उल्लेख हो चुका है, लैपवर्थ की उपकल्पना अस्वीकृत कर दी गई थी, किन्तु लव ने इसे पुन जीवन प्रदान कर दिया। इन्होने गणितीय विश्लेषण (Mathematical Analysis) से यह सिद्ध किया है कि यदि किसी भौम-पदार्थ का गुरुत्वाकृष्टि-केन्द्र ( Centre of Gravity ) और आकृति-केन्द्र (Centre of Form) एक ही विन्दु पर नही होता है, तो उसमे विरूपण होता है अर्थात् उसका कुछ भाग ऊपर उठ जाता है और कुछ अश नीचे धस जाता है। इस धारणा के अनुसार जैसा विन्यास ( Configuration ) होना चाहिये, महाद्वीपो की आकृति बहुत कुछ वसी ही है।

समीक्षा—नवीन भूभौतिकीय अवधारणाये (Geo-Physical Conceptions) इस उपकल्पना के अनुकूल नही है।

### (८) जीन्स

इनके अनुसार चन्द्रमा को जन्म देने के पश्चात् तथा एक अन्य उपग्रह को जन्म देने के पूर्व जब पृथ्वी रुचिफल (Pear) के आकृति की थी, तभी उसमे घनीभवन हुआ।




चित्र ३४८—जीन्स तथा सौलैस के अनुसार पृथ्वी का विरूपण

स्पष्ट है, कि ऐसी पृथ्वी में निम्नलिखित अवयव अवश्य होगे—(१) एक स्थल-गोलार्ध (२) रुचिफल की ग्रीवा के अनरूप महासागर की वलयाकार मेखला

और (३) स्थल गोलार्ध के प्रतिध्रुव (Antipodal) एक छोटा द्वीप। चित्र इस ३४८ कथन की पुष्टि करता है यदि जीन्स के अनुसार पृथ्वी की आरभिक रचना को सही मान लिया जावे तो उसके शीतल होने के समय दोनो गोलार्धों मे पारस्परिक आकर्षण होगा, जिसके फलस्वरूप विषुवतीय कटिबन्ध मे वर्धन (Bulges) उत्पन्न हो जायँगे।

सौलेस ने यह प्रदर्शित किया है कि पृथ्वी के स्थल और जल का वर्तमान वितरण बहुत कुछ उपर्युक्त उपकल्पना के अनुरूप है।

जीन्स तथा सौलेस की उपर्युक्त उपकल्पना के सन्दर्भ मे औसमण्ड फिशर (Osmond Fisher) के उस सुझाव की ओर सकेत कर देना उचित होगा, जिसके अनुसार प्रशान्त-महासागर स्थलमण्डल से चन्द्रमा के पृथक हो जाने के फलस्वरूप उत्पन्न चकता का द्योतक है।

(९) **जौली का तेजोद्गरण** (Radio-Activity) **का सिद्धान्त**—सक्षेप मे, यह सिद्धान्त इस प्रकार है —

(१) महाद्वीपो के नीचे के स्तर मे सिलिकन (Silicon) और मैगनेशियम (Magnesium) नामक खनिजो का बाहुल्य है। यही कारण है कि भूपर्पटी के इस स्तर को Si+Ma=Sima (सिमा) कहते है। सिमा मे तेजोद्गर (Radio-active) पदार्थ बहुत पाये जाते है। इन तेजोद्गर पदार्थों का वियोजन (Disintegration) होता रहता है, जिससे बडी अधिक मात्रा मे ताप उद्विकसित होता है।

(२) सिमा के ऊपर महाद्वीपो का स्तर है। इसमे सिलिकन (Silicon) और एल्यूमीनियम (Aluminium) नामक खनिज प्रचुरता से पाये जाते है। इसीलिये इसे Si+Al=Sial (सियाल) की सज्ञा भी दी गई है। सियाल मे सिमा से भी अधिक मात्रा मे तेजोद्गर पदार्थ विद्यमान है। इस स्तर का कुछ ताप विकिरण (Radiation) द्वारा निकल जाता है किन्तु इसके तेजोद्गर पदार्थो से इतना अधिक ताप निकलता है कि उससे विकिरण द्वारा खोये हुए ताप की पूर्ति सरलता से हो जाती है।

(३) परिणाम यह होता है कि सिमा मे जो ताप एकत्र होता रहता है वह बाहर नही निकलने पाता। इस प्रकार ताप के लगातार एकत्र होते रहने से सिमा का ताप बढ जाता है और फलस्वरूप उसका ऊपरी भाग पिघल जाता है।

(४) सिमा के द्रवित होने से उसका घनत्व घट जाता है, जिससे उसमे तैरने वाले महाद्वीप कुछ नीचे धस जाते है। कालान्तर मे जब सिमा ठण्डा होकर पुन जमना शुरू होता है तब उसके ऊपर का सियाल का स्तर आकार मे बडा पडता है, जिससे उसमे स्वभावत सिकुडन पड जाती है। इसी सिकुडन या भजन ( Folding ) के फलस्वरूप महाद्वीप और महासागर अस्तित्व मे आये है।

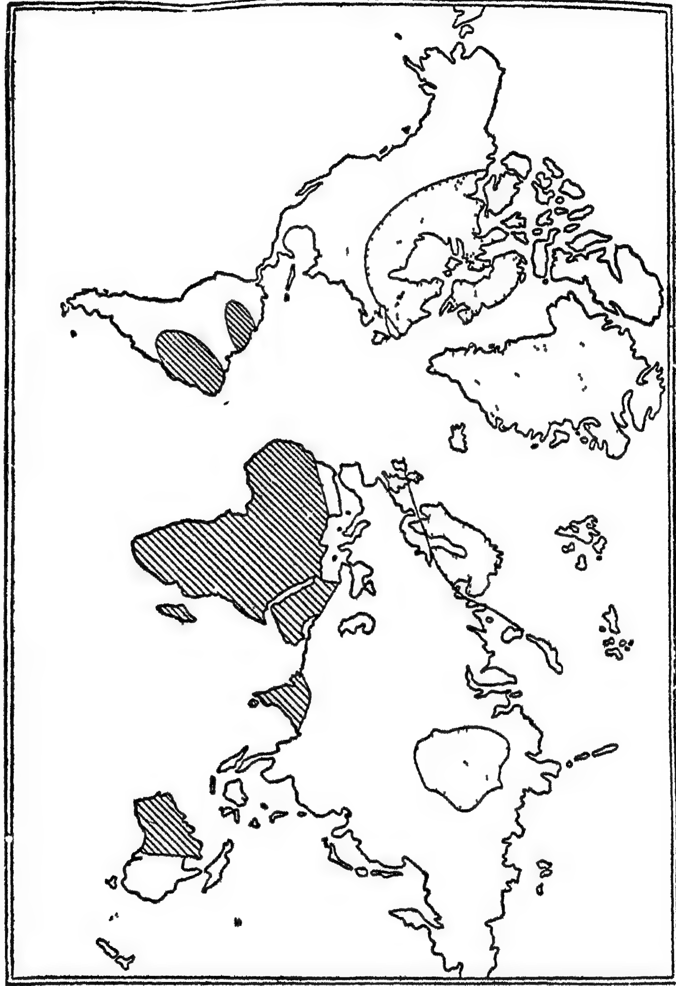
## १० स्वैस (Suess) का सिद्धान्त

स्वैस के अनुसार भूपर्पटी को दो विभागो मे बॉटा जा सकता है :—

(१) अवरोधी भाग (Resistant Parts)

(२) अनवरोधी भाग (Non-resistant Parts)

(१)अवरोधी भाग—ये इतने अधिक कठोर है, कि इनपर भजन की क्रिया (Folding) का कोई भी प्रभाव नही पडता। इनके अतर्गत कैनाडा (जिसे लॉरैन्शियन



चित्र ३४९—भूपर्पटी के अवरोधी एवं अनवरोधी भाग (द्रष्टव्य—इस चित्र मे लॉरेशिया के अवरोधी भाग बिन्दुओ द्वारा तथा गोण्डवानालैंड के अवरोधी भाग तिरछी रेखाओ द्वारा प्रदर्शित किये गये है)

शील्ड भी कहते है), पूर्वी साइबेरिया (अगारालैण्ड) आदि आते है। चित्र ३४९ मे इन्हे बिन्दुओ और तिरछी रेखाओ द्वारा दर्शाया गया है।

(२)अनवरोधी भाग—इनकी पर्पटी अपेक्षाकृत निर्बल और कोमल है, अतएव भजन की क्रिया (Folding) से ये तुरन्त प्रभावित होते है।

महाद्वीप अवरोधी पर्पटी पर स्थित है अथवा अनवरोधी पर्पटी के उन भागो पर है जो भजन (Folding) के फलस्वरूप ऊपर उठ गए है। भजन की यह

क्रिया महाद्वीपो से ही आरम्भ होती है। दूसरी ओर, महासागर भूपर्पटी के अनवरोधी भाग पर स्थित है अथवा अवरोधी भाग के उन अशो मे विद्यमान है जो विभगन (Fault ing) द्वारा नीचे धस गए है।

## (ख) स्थायित्व (Permanency)

**भूमिका**—भूमण्डल मे विद्यमान जल और स्थल के छोटे मोटे रूपधेय, जैसे झील, तालाब, पहाडो आदि अपक्षरण (Erosion) या उन्मज्जन-निमज्जन (Elevation and subsidence ) की क्रियाओ से बन सकते है, किन्तु महाद्वीप और महासागर जैसे महान प्राकृतिक विभाग इस प्रकार कदापि नही बने है। इस प्रकार की कल्पना भी बुद्धि को ग्राह्य नही है। भूपृष्ठ की ये महान इकाइयाँ और उनका विन्यास पूर्वकालीन युगो मे कहाँ तक स्थायी रहा है—यह प्रश्न भौमिको जगत मे पिछली एक शताब्दी से विवाद का विषय रहा है।

इस विषय मे दो मत है—एक स्थायित्व का पोषक है, तो दूसरा अस्थायित्व का।

**१—अस्थायित्व को विचारधारा**—निम्नलिखित भौमिकीय प्रमाणो से सिद्ध होता है कि महाद्वीप और महासागर-नितल स्थायी नही है :—

(१) तट-रेखाओ मे विवर्तन (Shifting) होता रहता है।

(२) अनेक स्थलखण्डो मे महासागरीय निक्षेप ( Marine Deposits ) उपलब्ध हुए है। इससे स्पष्ट है कि कभी न कभी वहाँ पर महासागर अवश्य था।

अस्थायित्व की विचारधारा के अनुयायी भूगर्भवेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे है—'महासागर-नितल अपेक्षाकृत उथली द्रोणियाँ है। इनमे बालू और पक के निक्षेप स्तरश स्थापित होते रहे है। नितल के ऊपर उठ जाने से महासागर महाद्वीपो मे परिणत हो गए है और महासागरो के जल की बाढ से महाद्वीपो ने महासागरो का रूप ले लिया है

**२—स्थायित्व की विचारधारा**—नवीन अनुसधानो से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त विचारधारा सही नही है और महाद्वीप तथा महासागर-नितल स्थायी है।

सर्वप्रथम सन् १८४६ ई० मे डाना (Dana) ने महाद्वीप एव महासागर-नितल के स्थायित्व का प्रतिपादन किया था। उन्होने कहा कि महाद्वीपो और महासागरो मे स्थानान्तरण कभी भी नही हुआ है और पृथ्वी के इन महान विभागो का विन्यास सदैव स्थायी रहा है।

जिन प्रमाणो से महासागर-नितल के स्थायित्व का समर्थन होता है, उनमे मुख्य ये है —

(१) सागर नितल की आकृति स्वय अपने स्थायित्व की द्योतक है। उन्नीसवी शताब्दी मे सपन्न ध्वनीकरण ('Sounding) से विदित होता है कि महासागर-नितल का प्रच्छेद (Cross-Section) आकृति मे वाष्पीकरण के पात्र ( Evoporation Basin)की अपेक्षा रस-तत्तिका (Soup Plate) से अधिक मिलता जुलता है। इसके अतिरिक्त एतिहासिक काल मे अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain) के उन्मज्जन से महाद्वीप कभी नही बने। जब कभी भी नवीन द्वीप अस्तित्व मे आये है, तो उथले महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf) मे ही।

(२) महाद्वीपो मे पाये जाने वाले निक्षेप महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf) तथा महाद्वीपीय प्रवण (Continental Slope) मे पाये जाने वाले निक्षेपो से मिलते जुलते है और अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain) के निक्षेप से सर्वत: भिन्न है। अथाह सागर के निक्षेप केवल कुछ महासागरीय द्वीपो (Oceanic Islands) मे पाये जाते है।

## स्थल सेतुओ (Land Bridges) की अवधारणा

यद्यपि उपर्युक्त प्रमाण अत्यन्त स्पष्ट है, तथापि जीवशास्त्र (Zoology) की कुछ अवधारणाये इसके विरुद्ध है। स्थल के कुछ जीवो का वितरण बडा ही आश्चर्य-जनक है। उदाहरण के लिये अन्धे साँप और कुछ विशेष जाति की तितलियाँ केवल दक्षिणी महाद्वीपो मे पाई जाती है। इनके वितरण के स्पष्टीकरण के लिये जैविकीविद् यह कल्पना करते है कि अत्यन्त प्राचीन काल मे ये महाद्वीप सहस्त्रो मील लम्बे स्थल-सेतुओ से मिले हुए थे। कालान्तर मे ये सेतु नष्ट होकर डूब गये। यह कल्पना असम्भव सी लगती है, क्योकि ये सेतु ऐसे हल्के पदार्थो से बने होगे, जिनके डूबने का प्रश्न ही नही उठता। फिर इनसे इतने दूर स्थित देशो का एक साथ हिमनदियो द्वारा प्रभावित होना भी तो स्पष्ट नही होता।

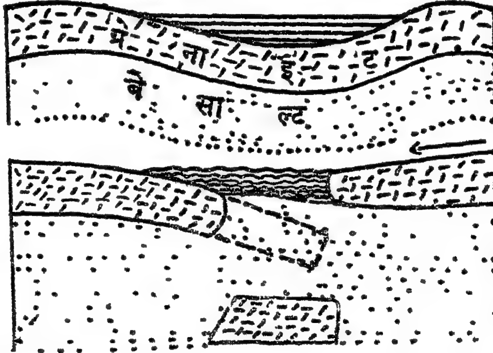
## आपत्तियाँ

महाद्वीपीय प्रवाह के विपक्ष मे दिये गये प्रमाणो मे सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि अभी तक उन बलो का जिनके कारण महाद्वीप प्रवाहित हुए है—स्पष्टीकरण नही हो सका है। उदाहरण के लिये वैजेनर का कथन है कि अमरीका का पश्चिमी दिशा मे प्रवाह वेला-बल (Tidal Force) के कारण हुआ है। ज्योतिषवेत्ताओ ने गणित द्वारा यह निश्चित किया है कि अमरीका को पश्चिम की ओर प्रवाहित करने के लिये, जिस बल की आवश्यकता होगी वह वर्तमान वेला-बल का दस अरब गुना होगा। प्रथम तो यह सभव ही नही, फिर यदि इसे सभव भी मान लिया जावे, तो उससे पृथ्वी का परिभ्रमण रुक जायगा। भौतिक शास्त्र के विद्वानो का कहना है कि सिमा (Sima) के आलगत्व (Viscosity) के कारण महाद्वीप प्रवाहित नही हो सकते।

## ३ डैली (Daly) की उपकल्पना

इस सिद्धान्त की सक्षिप्त रूप-रेखा यह है—

**रूप रेखा**—जब भूद्रोणी ( Geosyncline ) मे एकत्र अवसाद (Sediments) का भार बहुत अधिक हो जाता है, तब वह नीचे धँसती है और उसकी ओर स्थलखण्डो का अधसर्पण (Downsliding) होता है। इससे उसका नितल फट जाता है और उसके टुकडे नीचे बेसाल्ट मे चले जाते है (चित्र ३६०) नीचे ताप का मात्रा बहुत अधिक होती है, जिससे ये टुकडे गरम होकर फैलते है। इसके अतिरिक्त नितल के विदीर्ण हो जाने से भूद्रोणी के अवसाद पृथ्वी के आन्तरिक ताप से गरम होकर फैलते है। उनकी इस क्रिया से जलज शिलाओ के ऊपरी स्तर मे ऊर्ध्व-गति (Uplift) होती है।




चित्र ३६०—डैली के अनुसार पर्वतो का बनना

**आपत्ति**—यदि इस कल्पना को सही मान लिया जाय तो इससे उन्मज्जन अथवा ऊर्ध्व-गति तो समझ मे आ जाती है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि भजन के लिये आवश्यक क्षैतिज-बल कहाँ से आये?

## ४ भूसन्तोल के पुनर्व्यवस्थापन का सिद्धान्त

## (Theory of Isostatic Re-adjustments)

**रूपरेखा**—भूसन्तोल की विस्तृत विवेचना प्रकरण मे की गई है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी ज्यामितिवेत्ताओ ( Geodesists ) ने किया है। इसके अनुसार भूपर्पटी के ऊपरी स्तर को समान आधार (Base) और समान ऊँचाई के एक से स्तम्भो मे बाँटा जा सकता है। साधारणत इन स्तम्भो मे सन्तुलन रहता है। चित्र

मे प्रदर्शित एक स्तम्भ 'पर्वत' का द्योतक है और दूसरा 'सागर' का। नदियाँ पर्वतो का अपक्षरण (Erosion) करती रहती है, जिससे उनका भार घटता रहता है। दूसरी ओर अपक्षरित पदार्थ महासागरो मे एकत्र होता रहता है, जिससे उनका भार बढता जाता है।

जब पर्वत-स्तम्भ का भार काफी घट जाता है और सागर-स्तम्भ का भार काफी बढ जाता है तब सन्तुलन की दशा नही रह पाती। पर्वत स्तम्भ हल्का होने से ऊपर उठता है और सागर-स्तम्भ भारी होने से नीचे धँसता है। इस सिद्धान्त के अनुसार स्तम्भो का ऊपर उठना और नीचे धँसना गिरि-निर्माण का आवश्यक अग है।

**आपत्तियाँ**—(१) पर्वतो की उत्पत्ति के लिये क्षैतिज बल (Horizontal forces) आवश्यक है—इस सिद्धान्त मे उनका कोई उल्लेख नही है। उदग्र गतियो (Vertical movements) से क्षेतिज-बल उत्पन्न नही हो सकते।

(२) सभव है, भूसन्तोल से पर्वतो की उत्पत्ति पर प्रभाव पडता हो, किन्तु उससे पर्वत नही उत्पन्न होते। पर्वतो की उत्पत्ति का कारण तो कुछ और ही है। जब इन कारणो से पहाड बनने की क्रिया आरम्भ हो जाती है—तब भूसन्तोल का सिद्धान्त कार्य करता है।

## ५ भद्रोणी बिषयक उपकल्पना

## ( The Geosynclinal Theory )

### भूद्रोणी (Geosyncline)

भूपृष्ठ के उन लम्बे, सकरे, निचले और क्रमश धँसनेवाले क्षेत्रो को जिनमे नदियो द्वारा लाये गये अवसाद (Sediments) के एकत्र होने से पर्वत बन जाते है—हम भूद्रोणी कहते है।

### गिरि-निर्माण की प्रावस्थाये

भजित पर्वत श्रेणियो (Folded Mountain Ranges) के जीवन के इतिहास को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है —

(१) **गिरि-निर्माण का पूर्वकाल** (Pre-Orogenic Period)—यह पर्वतो के जीवन का आरम्भिक काल है। इसमे पर्वतो की सृष्टि के लिये उपयुक्त स्थान तैयार होता हे, जिसे भूद्रोणी कहते है। इसमे नदियाँ अपने अवसाद (Sediments) डालती रहती है। अवसाद के वृहद् भार से भूद्रोणी क्रमश धँसती रहती है।

(२) **गिरि-निर्माण काल** (Orogenic Period)—इस काल मे क्षैतिज दिशा से आनेवाले दबाव के कारण भूद्रोणी के स्तरो मे भजन (Folding) तथा विभगन (Faulting) होता है।

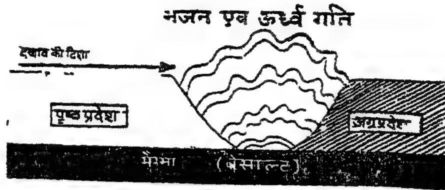
(३) **गिरि-निर्माण का उत्तर-काल** (Post Orogenic Period)—पर्वत श्रेणी बन जाने के बाद वायु, हिम, वर्षा आदि अभिकर्त्ता उसका अपक्षरण शुरू कर देते है, जिससे उसकी ऊँचाई क्रमश घटने लगती है।

## पृष्ठ प्रदेश और अग्रप्रदेश

## (Hinterland and Foreland)

**पृष्ठ प्रदेश**—भजित श्रेणियाँ बनते समय जिस दिशा से मुख्य बल आता है, उस दिशा के प्रदेश को पृष्ठ-प्रदेश (Hinterland or backland) कहते है—जैसे हिमालय पर्वत बनने के लिए तिब्बत की ओर से दबाव पडा, अतएव इस दशा मे तिब्बत पृष्ठ-प्रदेश हुआ। इसके विपरीत आल्प्स की रचना मे मुख्य दबाव दक्षिण की ओर से आया, अतएव वहाँ पर उत्तरी अफ्रीका पृष्ठ-प्रदेश है।

**अग्र प्रदेश** (Foreland)—भजन का मुख्य बल जिस दिशा की ओर लगता है। उसे अग्र-प्रदेश कहते है—उदाहरण के लिये हिमालय पर्वत के बनने मे दक्षिणी पठार (Deccan Plateau) अग्र प्रदेश था, क्योकि इसने तिब्बत की ओर से आनेवाले दबाव को रोका। इसी प्रकार आल्प्स की रचना मे दक्षिणी योरप अग्र-प्रदेश था।




चित्र ३६१—भजित पर्वत (Folded Mountain) का निर्माण

## गिरि निर्माण का इतिहास

अब हम गिरि-निर्माण का थोडा विस्तृत अध्ययन करेगे। यह तो पहले कहा जा चुका है, कि गिरि-निर्माण की क्रिया आरम्भ होने के लिये यह आवश्यक है कि कही पर एक निचला क्षेत्र हो, जिसके निकटवर्ती ऊँचे स्थलो से अवसाद एकत्र होते हो। ऐसा क्षेत्र प्राय सागर होता है, यद्यपि यह आवश्यक नही है। एकत्र हुए अवसाद के दबने से स्तर बनते रहते है इन स्तरो की मोटाई बहुत अधिक होती है। पर्वतो की रचना के लिये यह आवश्यक भी है। प्राय स्तरो की ऊँचाई लगभग २५,००० फुट तक होती है।

एकत्र हुए अवसाद के वृहद् भार के कारण भूद्रोणी नीचे की ओर धँसती है। इसे अवसादन को अधोगति ( Sedimentation subsidence ) कहते हैं इसकी एक सीमा होती है और भूद्रोणी की समस्त अधोगति इस प्रकार नही हुई है। जब दो विरोधी दिशाओ से दबाव पडता है, तब भूद्रोणी के स्तर मुड जाते है और उसके दोनो छोर एक दूसरे के निकट आ जाते है। इन छोरो के निकट आने से भूद्रोणी की गहराई बढ जाती है। इसे सपीडन की अधोगति ( Compression subsidence ) कहते है। भूद्रोणी के क्रमश सकरे और गहरे होने की क्रिया चलती रहती है और साथ ही उसमे अवसाद भी एकत्र होते रहते है। किसी नियत काल मे भूद्रोणी की जितनी गहराई बढती है, अवसाद उससे कही अधिक पूर्ति कर देते है। फल यह होता

है कि भूद्रोणी क्रमश भरती रहती है। कालान्तर मे भूद्रोणी अवसादो से बिल्कुल भर जाती है।

इसके बाद गिरि-निर्माण ( Orogenesis ) की प्र वस्था आती है। जब दो विरोधी दिशाओ से दबाव पडता है, तब भूद्रोणी मे एकत्र हुआ अवसाद भजित हो जाता है। जब दबाव की मात्रा अधिक होती है, तो कभी-कभी विभग (Faults) भी बन जाते है। विभगन के कारण प्राय एक स्तर दूसरे स्तर के ऊपर चढ जाता है जिससे भूद्रोणी पर भार की मात्रा और भी बढ जाती है और वह नीचे धँसती है। इस प्रकार की अधोगति को भजन या विभगन की अधोगति (Folding or Faulting Subsidence ) कहते है। जब दबाव की मात्रा घटती है, तब भूद्रोणी के स्तर ऊपर उठते है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि स्तरो के नीचे धँसने से उनकी जडे अधिक तापमान के क्षेत्र मे चली जाती है। वहाँ वे गरम होकर फैलती है। यह भी ऊर्ध्वगति ( Uplift ) का एक कारण है। इस प्रकार क्षैतिज सपीडन ( Horizontal Compression ) के बाद ऊर्ध्वगति होती है।

इसके बाद गिरि-निर्माण की उत्तरकालीन (Post Orogenic) प्रावस्था आती है। पर्वत-श्रेणियो के बन जाने के बाद अपक्षरण के विभिन्न अभिकर्त्ता जैसे हिम, वायु, वर्षा, पाला आदि अपना कार्य आरम्भ कर देते है। अपक्षरण से पर्वत घिसते रहते है और उनकी उँचाई क्रमश कम होती जाती है। इसकी महत्ता इस तथ्य से समझी जा सकती है कि पश्चिमी आल्प्स मे अपक्षरण से आठ नौ मील मोटा स्तर घिसकर नष्ट हो चुका है

## ६ जौली का तापीय चक्र का सिद्धान्त

## (The Thermal Cycle Theory of Joly)

सक्षेप मे यह सिद्धान्त इस प्रकार है —

(१) महाद्वीपो के नीचे सिमा (Sima) के स्तर मे तेजोद्गर ( Radioactive) पदार्थ बहुत पाये जाते है। इनका वियोजन ( Disintegration ) होता रहता है, जिससे बहुत अधिक मात्रा मे ताप विकसित होता है।

(२) सिमा (Sima) के ऊपर सियाल ( Sial ) का स्तर, है, जिससे महाद्वीप बने है। सियाल (Sial) मे सिमा (Sima) से भी अधिक मात्रा मे तेजोद्गर ( Radio-active ) पदार्थ पाये जाते है। इस स्तर का कुछ ताप विकिरण द्वारा अवश्य निकल जाता है किन्तु इसके तेजोद्गर पदार्थों से इतना अधिक ताप निकलता है, कि उससे विकिरण द्वारा खोये हुए ताप की पूर्ति सरलता से हो जाती है।

(३) परिणाम यह होता है कि सिमा मे जो ताप एकत्र होता रहता है, वह बाहर नही निकलने पाता। इस प्रकार ताप के लगातार एकत्र होते रहने से सिमा ( Sima) का तापमान बढ जाता है और उसका ऊपरी भाग पिघल जाता है।

(४) सिमा के द्रवित होने से उसका घनत्व घट जाता है, जिससे उसमें तैरनेवाले महाद्वीप कुछ नीचे धँस जाते है और उनके निचले प्रदेश जलमग्न हो जाते है।

(५) जब अनुपर्पटी (Subcrust ) द्रवित अवस्था मे होती है, उस समय पर्पटी जो ठोस है, तनाव की अवस्था मे रहती है। किन्तु ज्यो-ज्यो अनुपर्पटी का घनीभवन ( Solidification ) होता जाता है, त्यो-त्यो वह सिकुडती जाती है। अनुपर्पटी

मे सिकुडन होने से महाद्वीप के किनारे पर पर्वत बन जाते हैं और सागर नितल मे भी हल्के उभार और गड्ढे हो जाते है।

**समीक्षा**—(१) आलोचक इस सिद्धान्त से सन्तुष्ट नही है। उनका कहना है कि इस सिद्धान्त के अनुसार जो दबाव होगा, वह इतना समर्थ न होगा कि उससे पवत बन सकें।

(२) इस सिद्धान्त से परिप्रशान्त श्रेणियो ( Circum-Pacific Chains ) की रचना तो समझ मे आ जाती है, किन्तु यह स्पष्ट नही होता कि अटलाण्टिक के तट पर इस प्रकार की श्रेणियाँ क्यो नही है। मध्य एशिया के पर्वतो के अस्तित्व का भी इससे स्पष्टीकरण नही होता।

(३) इस सिद्धान्त मे एक गुण अवश्य है। इसमे क्षैतिज दबाव से होने वाले भजन ओर उन्मज्जन की क्रियाओ का अन्तर स्पष्टत व्यक्त है।

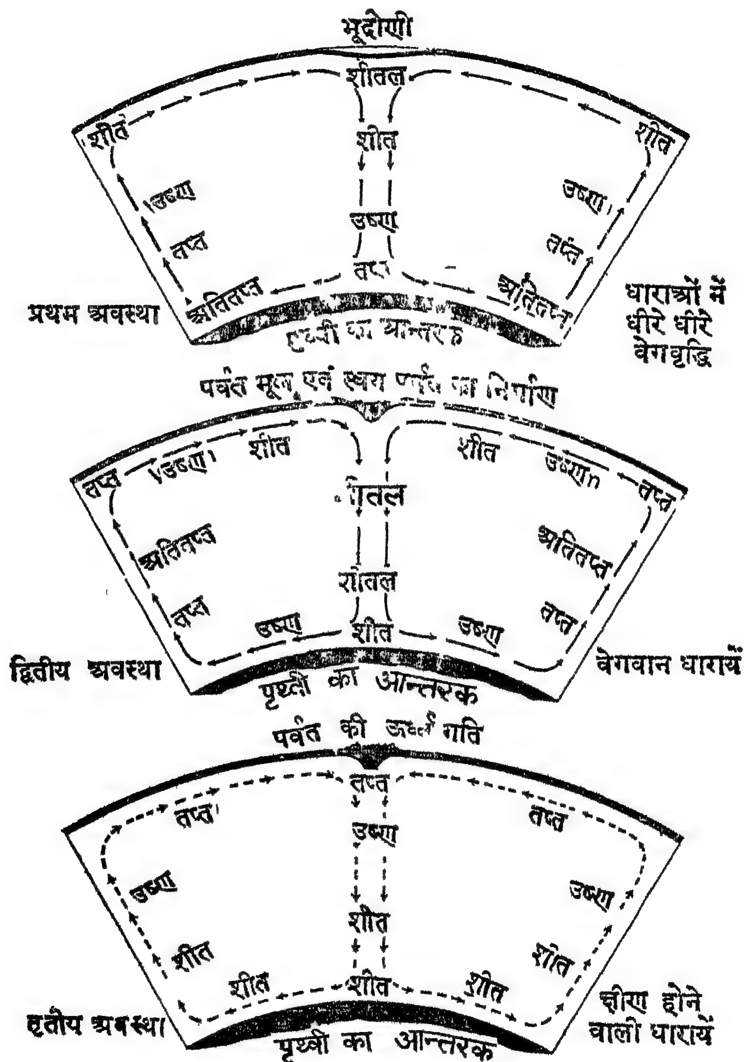
## ७ होम्स का संबाहन की धाराओं का सिद्धान्त
## (Holmes Theory of Convectional Currents)

गिरि-निर्माण की क्रिया अब भी अनुमान और कल्पना का विषय है। पृथ्वी का स्थायित्व और सन्तुलन भ्वाकृष्टि (Gravity ) के कारण है। इस सतुलन मे यदि व्यतिक्रम (Disturbance) होता है, तो ताप के कारण। तापक्रम के बढ जाने से प्रस्तार एव द्रवीभवन होता है। इसके विपरीत, ताप के क्षीण होने से घनीभवन तथा सकोचन होता है। अतएव, जब हम गिरि-निर्माण के विषय मे विचार करते है, तब इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इस क्रिया का सम्बन्ध ताप सम्बन्धी परिवर्तनो से अवश्य होगा।

पृथ्वी अपनी आरभिक अवस्था मे तरल थी। उस समय जब उसके शीतल होने की क्रिया आरम्भ हुई होगी, तब उसकी अनुपर्पटी (Substratum) मे सवाहन की धाराये (Convection Currents) अवश्य अस्तित्व मे आ गई होगी। फलस्वरूप कुछ स्थानो मे अपेक्षाकृत उष्ण एव हल्का पदार्थ ऊपर उठकर भूपर्पटी के नीचे तक पहुँच गया होगा।यही नही, उसका कुछ भाग सचालन द्वारा बाहर भी निकल गया होगा। प्रत्येक सवाहन की धारा ऊपर पहुँच कर चारो दिशाओ मे फैलती है। ऊपर प्रवाहित होनेवाली जब दो धाराये परस्पर टकराती है, तब वे नीचे की ओर प्रवाहित होती है। चित्र ३६२ से यह कथन स्पष्ट होगा। नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली सवाहन की धाराओ मे अपेक्षाकृत ठण्डा और भारी पदार्थ होता है। मध्यवर्ती और किनारो के स्तम्भो के घनत्व में अन्तर होता है। घनत्व का यह विभेदन प्रवाह की क्रिया के लिये आवश्यक बल प्रदान करता है। इस प्रकार का प्रवाह-क्रम उस समय तक चलता रहता है, जब तक पदार्थ का द्रवणाक (Freezing Point) नही पहुँच जाता।

जब तक तेजोद्गर पदार्थो की खोज नही हुई थी, तब तक यह अनुमान किया जाता था कि सवाहन द्वारा पृथ्वी के ठण्डे होने की क्रिया अधिक समय तक न चली होगी। यदि पृथ्वी के अभ्यन्तर को किसी प्रकार कुछ ताप सतत रूप से उपलब्ध हो सके, जो सचालन (Conduction) विकिरण (Radiation) और आग्नेय क्रिया (Igneous Activity) द्वारा खोये गये ताप की पूर्ति कर सके—तो सवाहन की धाराओ का क्रम जारी रह सकता है। पृथ्वी के अभ्यन्तर मे विद्यमान तेजोद्गर पदार्थ

(Radio-active substances) इस आवश्यक ताप को सतत रूप मे प्रदान करते है। तेजोद्गर पदार्थों का उल्लेख पूर्व मे हो चुका है। इन पदार्थों मे यह विशेषता होती है कि उनके परिमाणुओ (Atoms) का वियोजन (Disintegration) होता रहता है। वियोजन के फलस्वरूप एक तत्व दूसरे तत्व मे परिणत हो जाता है। जब यह



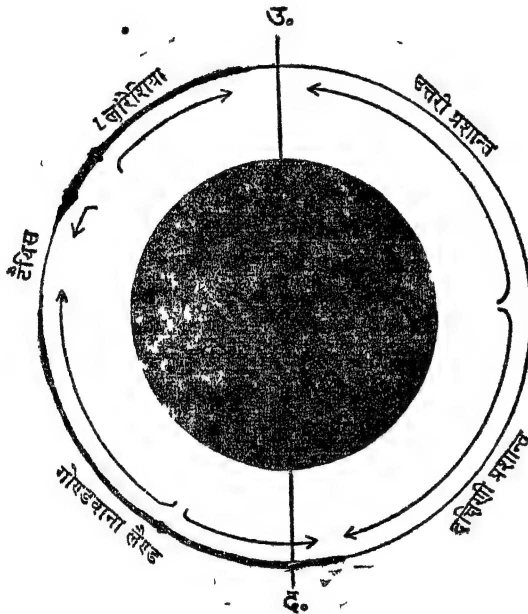

चित्र ३६२—पृथ्वी के अन्दर सवाहन की धाराओं की विभिन्न प्र.वस्थायें

क्रिया सम्पन्न होती है, तब ताप की बहुत बडी मात्रा उद्विकसित होती है। तैजोद्गर

पदार्थो के सामान्य उदाहरण यूरेनियम, रेडियम, थोरियिम आदि है। इनकी खोज ने सवाहन प्रवाह के सिद्धान्त को आधार प्रदान किया है।

भूपर्पटी पर उसके ठीक नीचे क्षैतिज दिशा मे प्रवाहित होनेवाली सवाहन की धाराओ का प्रभाव पडता है। जहाँ ये अपसृत (Diverge) होती है अथवा फैलती है, वहाँ भूपर्पटी मे खिचाव अथवा आतति (Tension) उत्पन्न हो जाती

इसके विपरीत जहाँ ये धाराये ससृत (Converge) होती है अथवा मिलती है, वहाँ भूपर्पटी मे दबाव उत्पन्न हो जाता है। अतएव पर्वतीकरण (Orogenesis) उन स्थानो मे होता है जहाँ दो विपरीत दिशाओ से धाराये मिलती है और फिर नीचे की ओर चली जाती है। इस प्रकार भूपृष्ठ के विशेष भागो मे ही पर्वतो का बनना स्पष्ट हो जाता है। चित्र ३६३ से टेथिस सागर मे तथा प्रशान्त के तटो पर पहाडो का बनना स्पष्ट हो जाता है।



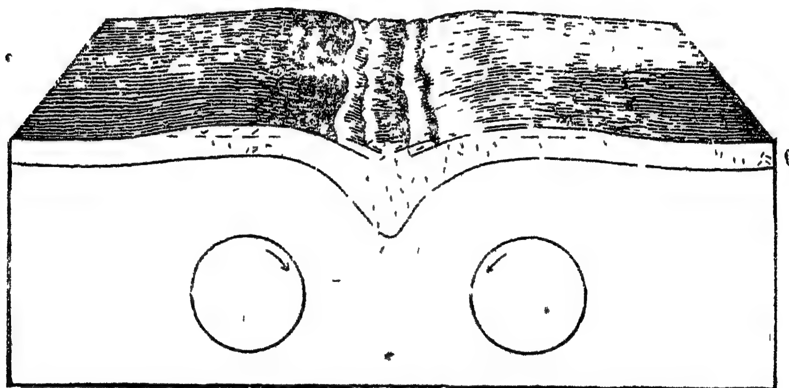

चित्र ३६३—सवाहन की धाराओ से आल्प्स हिमालय तथा प्रशान्त के तटीय पर्वत बनना

सवाहन के प्रवाह का वेग सदैव एक सा नही रहता। उसमे वृद्धि और पतन हुआ करता है। जब किसी प्रवाह-व्यवस्था का पतन हो जाता है तब नवीन प्रवाह-व्यवस्था नवीन भाग मे स्थापित होती है।

आगे अकित तालिका मे सवाहन-चक्र (Convection cycle) और पर्वतीकरण-चक्र (Orogenic cycle) की विभिन्न अवस्थाओ का पारस्परिक सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है —

| सवाहन चक्र | पर्वतीकरण चक्र |
|---|---|
| प्रथम अवस्था—सवाहन की धाराओ मे धीरे-धीरे वेग-वृद्धि का दीर्घ-युग। | नीचे की ओर प्रवाहित होनेवाली धाराओ के ठीक ऊपर भूद्रोणी के धँसने का लम्बा काल। |
| द्वितीय अवस्था—अपेक्षाकृत वेगवान धाराओ का लघु-युग। | पर्वतमूलो के बनने और क्षैतिज दबाव से स्वय पर्वतो के बनाने का लघु काल। |
| तृतीय अवस्था—चक्रान्त के लिये उत्तरदायी क्रमश क्षीण होने वाली धाराओ का युग। | क्रमिक ऊर्ध्वगति का काल। |

ग्रिग्स (Griggs) ने प्रयोगो द्वारा इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। उन्होने पृथ्वी की एक छोटी प्रतिकृति (Model) तयार की। इसकी रचना उन्होने ऐसे पदार्थो से की जो पृथ्वी से मिलते जुलते थे। सवाहन की धाराओ के स्थापन के लिये इन्होने दो घूमनेवाले अथवा परिभ्रामी ढोलो (Rotating Drums) की व्यवस्था की। जब इन ढोलो को चित्र ३६४ मे अकित तीरो की दिशा मे घुमाया जाता है



चित्र ३६४—होम्स के सिद्धान्त की प्रायोगिक पुष्टि

तब उनके ऊपर की पर्पटी बीच मे नीचे धँसती है। जैसे-जैसे परिभ्रमण का वेग घटाया जाता है, वैसे वैसे नीचे धँसी हुई पर्पटी पुन ऊपर उठती है। पर्वतीकरण की क्रिया इसी प्रकार होती है।

छप्पनवाँ परिच्छेद

# पूर्वकालीन हिमयुगों के कारण

## (CAUSES OF THE PAST ICE AGES)

## भूमिका

पृथ्वी के इतिहास मे अनेक बार हिमयुग हुए है। हिमयुग से तात्पर्य है— तापमान के घट जाने से किसी भूखण्ड का हिम से ढक जाना। भूगर्भ-शास्त्र के प्रमाण यह सिद्ध करते है, कि एलगोनकियन युग मे उत्तरी अमरीका, निम्न कैम्ब्रियन युग मे नौरवे, चीन और सम्भवत आस्ट्रेलिया एव द० अफ्रीका भी, डिवोनियन युग मे द० अफ्रीका, परमियन युग मे द० अमेरिका, द० अफ्रीका, भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया और सम्भवत योरप तथा उ० अमरीका भी तथा प्लीस्टोसीन युग मे अनेक बार ससार के विभिन्न भागो मे हिमयुग हुए है। इन पूर्वकालीन हिमयुगो के स्पष्टीकरण के लिये अनेक सिद्धान्त और वाद प्रस्तुत किए गए है। उन सबका विस्तृत विवेचन यहाँ पर सभव नही है। केवल कुछ प्रमुख सिद्धान्तो की रूप-रेखाये नीचे दी जा रही है।

## १ सौर विकिरण की विभिन्नता

**सिद्धान्त**—सूर्य-कलक के चक्रो ( Cycles of sun-spots ) के अध्ययन से यह विदित हुआ है कि सौर-विकिरण की मात्रा सदैव एक सी नही रहती। इससे विद्वानो ने यह निष्कर्ष निकाला है, कि सभव है, दीर्घ कालान्तर मे सौर-विकिरण की मात्रा मे बडे अन्तर हो जाते हो। इस सिद्धान्त के अनुसार, जब सौर-विकिरण अत्यन्त क्षीण हो जाता है, तभी पृथ्वी पर हिमयुग होते है।

**समीक्षा**—इस सिद्धान्त के विषय मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि हमारे पास वे साधन ही नही है, जिनसे इसकी सफलता अथवा असफलता कुछ भी प्रमाणित की जा सके। अतएव यदि यह सिद्धान्त सही भी हो, तो भी इस समय यह एक मधुर कल्पना ही है।

## २ सूर्य का शीतल क्षेत्र में प्रवेश

**सिद्धान्त**—हिमयुगो के सम्बन्ध मे ज्योतिष की यह दूसरी अवधारणा है। सके अनुसार कभी कभी सूर्य ऐसे ग्रहो के क्षेत्र मे प्रवेश करता है, जहाँ उसे पर्याप्त ताप नही मिलता।

**समीक्षा**—ज्योतिष का आधुनिक अध्ययन इस अवधारणा को सही नही मानता।

## ३ कैपलर का नियम

**सिद्धान्त**—पृथ्वी की धुरी की उत्केन्द्रता (Eccentricity)[1] स्थिर नही है। उसमे अन्तर होते रहते है। इस सिद्धान्त के अनुसार ये परिवर्तन पूर्वकाल मे तापमान के क्षीण होने मे सहायक हुए है।

**समीक्षा**—वास्तव मे पृथ्वी की धुरी की उत्केन्द्रता के परिवर्तन आवर्तीय

---

1 Eccentricity is the distance of the centre of a planet's orbit from the centre of the sun

(Periodical) हैं, अतएव यदि यह सिद्धान्त सही होता तो पृथ्वी में अब तक आवर्तीय रीति से सैकड़ों हिमयुग हुए होते, जिनका कोई प्रमाण नहीं है।

## ४, महाद्वीपीय प्रवाह

**सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार वे सभी प्रदेश जो समकालीन हिम-नदियों से प्रभावित हुए हैं, पूर्वकाल में एक दूसरे से जुड़े हुए थे। उदाहरण के लिये अफ्रीका, प्रायद्वीपीय भारत तथा आस्ट्रेलिया में परमो-कारबोनिफैरस युग (Permo-Carboniferous-Period) की हिमनदियों के चिन्ह मिले हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार इस युग में ये सभी महाद्वीप एक दूसरे से जुड़े हुए थे (चित्र) और गौण्डवानालैण्ड नामक महान् स्थलखण्ड का निर्माण करते थे। कालान्तर में वे एक दूसरे से पृथक हो गए।

**समीक्षा**—(१) महाद्वीपों के प्रवाह के लिये, जो बल आवश्यक हैं, उनका स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो सका है।

(२) यह सिद्धान्त सागर-नितल के स्थायित्व (Permanency of ocean basins) की अवधारणा के प्रतिकूल है।

(३) इस सिद्धान्त से कुछ हिमयुगों का स्पष्टीकरण तो अवश्य हो जाता है, पर सबका नहीं।

## ५ घनवातिकीय (Meteorological) सिद्धान्त

**सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार घनवातिकीय दशाओं में अन्तर होने से हिमयुग होते हैं।

**समीक्षा**—इस विज्ञान में अभी तक इतना अनुसन्धान नहीं हो सका है, जिससे पूर्वकालीन हिमयुगों का सन्तोषप्रद स्पष्टीकरण हो सके।

## ६ ध्रुवों की विचलन

**सिद्धान्त**—बहुत से विद्वानों की यह धारणा है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की स्थिति में परिवर्तन होने से हिमयुग हुए हैं।

**समीक्षा**—(१) ध्रुवों के विचलन के लिये आवश्यक बल कहाँ से आये?

(२) पृथ्वी इस्पात के समान कठोर है। पूर्वकाल में ध्रुवों की स्थिति में यदि कोई महान् अन्तर हुआ होता, तो उसका पृथ्वी की संरचना पर कोई न कोई प्रभाव अवश्य पड़ता, किन्तु इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते।

(३) ज्योतिष-वेत्ताओं के अनुसार ध्रुव अपनी केन्द्रीय स्थिति से किसी भी दिशा में अधिक से अधिक २१ मिनट अर्थात् लगभग २३ मील ही विचलित हो सकते हैं, अधिक नहीं।

## ७ ज्वालामुखीय धूलि का सिद्धान्त

**सिद्धान्त**—ज्वालामुखियों के उद्गार से लावा आदि पदार्थों के अतिरिक्त धूलि भी प्रचुर परिमाण में निकलती है। यह धूलि भूपृष्ठ पर आवरण के रूप में छा जाती है और सूर्य की किरणों के मार्ग में बाधक होती है। यह उनके ताप का शोषण कर लेती है, जिससे भूपृष्ठ का तापमान घट जाता है। इस सम्बन्ध में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि परमियन और प्लीस्टोसीन काल के हिमयुगों के पहले ज्वालामुखियों के उद्गार असाधारण रूप से हुए हैं।

**समीक्षा**—(१) जब हम प्लीस्टोसीन युग की आग्नेय क्रिया (Igneous Activity) और उस युग की हिमनदियो की अग्र और पश्च गतियो मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते है, तो हमे सफलता नही मिलती।

(२) इसके अतिरिक्त परिमाणात्मक आपत्तियाँ भी है। अन्य शब्दो मे ज्वालामुखीय धूलि तापमान के घटाने मे आशिक रूप से सहायक भले ही हो, किन्तु केवल उसके कारण हिमयुग होना सम्भव नही है।

## ८ पृथ्वी का कार्बन डाइ ऑक्साइड से ढक जाना

**सिद्धान्त**—वायुमण्डल मे कार्बन-डाइ-ऑक्साइड विद्यमान है। यह पृथ्वी के आन्तरिक ताप के विकिरण को रोकती है। चैम्बरलिन ने यह प्रदर्शित किया है कि यदि वायुमण्डल मे कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ जावे तो पृथ्वी का तापक्रम भी बढ जाता है। इसके विपरीत यदि इसकी मात्रा घट जावे, तो तापक्रम भी घट जाता है। ऋतुक्षरण (Weathering) की प्रक्रिया मे कार्बन-डाइ-ऑक्साइड उपभुक्त होता है। स्थलखण्डों के अचानक ऊपर उठ जाने से ऋतुक्षरण बढ जाता है। इस प्रकार कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के घट जाने से शीतल जलवायु का आविर्भाव होता है और कभी कभी विशेष दशाओ मे हिमयुग भी हो जाते है। ऋतुक्षरण की प्रक्रिया से वायुमण्डल के वाष्प की मात्रा भी घट जाती है, जिससे पृथ्वी का तापमान और भी कम हो जाता है। कालान्तर मे जब वायुमण्डल को कार्बन-डाइ-ऑक्साइड पुन प्राप्त होती है, तब हिमयुग समाप्त हो जाता है। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड अनेक स्रोतो से मिलती है, जैसे (१) प्रत्यक्ष रूप से—महासागरो द्वारा (बहुत से सागरीय जीवो के शरीर से चूना निकलता है। इस चूने से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड बनती है)। (२) परोक्ष रूप से हिमावरण द्वारा जो शिलाओ का ऋतुक्षरण रोकता है।

**समीक्षा**—इस सिद्धान्त के प्रणेता हम्फ्रे ने स्वय स्वीकार किया है कि कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की वर्तमान राशि मे १०० प्रतिशत वृद्धि अथवा ५० प्रतिशत न्यूनता पृथ्वी के तापमान पर कोई भी महत्वपूर्ण प्रभाव न डाल सकेगी। फिर भी सभव है कि यदि इसकी मात्रा मे बहुत अधिक कमी हो जाय, तो हिमयुग का आविर्भाव हो सके।

## ९ अन्य भौगोलिक एवं भौमिकीय सिद्धान्त

**सिद्धान्त**—इन सिद्धान्तो के अनुसार पूर्वकालीन हिमयुग निम्नलिखित कारणो से हुए है —

(१) जल तथा स्थलखण्डो के वितरण और विन्यास मे परिवर्तन।
(२) स्थलखण्डो की ऊँचाई मे परिवर्तन।
(३) हवाओ और जलधाराओ की दिशाओ मे परिवर्तन।

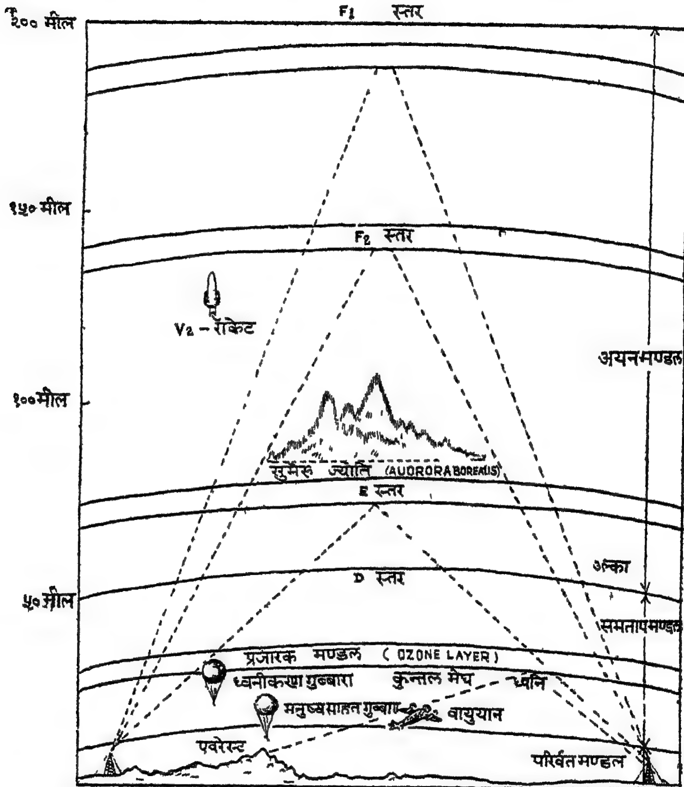
**समीक्षा**—(१) यह सत्य है कि प्रोटरोजोयक, परमियन तथा प्लीस्टोसीन हिमयुगो के पहले स्थलखण्डो मे ऊपर उठने और नीचे धँसने की गतियाँ बहुत हुई है, किन्तु इनमे और हिमयुगो मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने मे सफलता नही मिलती।

(२) प्लीस्टोसीन हिमयुग तो हाल ही की बात है। तब से लेकर आज तक हवाओ और जलधाराओ की दिशा मे तथा स्थलखण्डो के वितरण और विन्यास मे ऐसे कौन से महान् परिवर्तन हुए है ?

अतएव यह सिद्धान्त आशिक रूप से भले ही हिमयुगो का कारण हो, किन्तु केवल इसी से हिमयुग सम्भव नही है।

## १० आधुनिक धारणाये

**सिद्धान्त**––हिमयुगो के विषय मे आधुनिक धारणाये रूसी वैज्ञानिको की है। इन्होने यह ज्ञात किया है कि पिछले सौ वर्षो मे हिम ध्रुवो की ओर और खिसक गई है। इनका कथन है कि समस्त पृथ्वी का औसत तापक्रम पिछले तीस वर्षो मे बढा है। रूसी वैज्ञानिको ने यह भी ज्ञात किया है कि वायुमण्डल मे ३० किलोमीटर की ऊँचाई के बाद ओजोन (Ozone) का एक पृथक् स्तर है (चित्र ३६५)। प्रयोगो द्वारा यह




चित्र ३६५––नवीन अवधारणा के अनुसार वायुमण्डल के स्तर

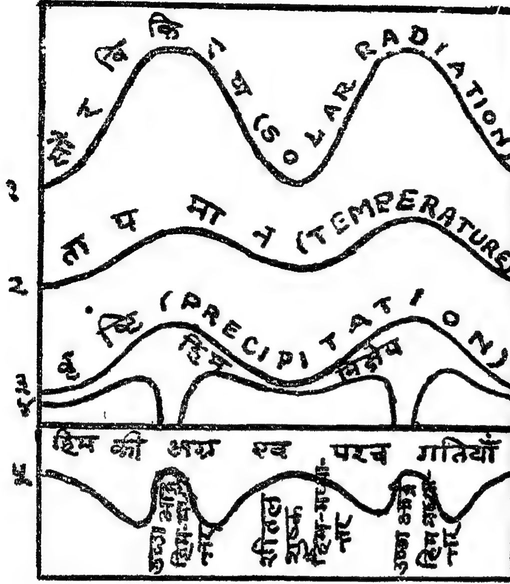
ज्ञात हुआ है कि ओजोन का स्तर सामान्यत सौर-विकिरण का पाँचवाँ भाग शोषण कर लेता है। वायुमण्डल के ओजोन की मात्रा स्थिर नही है। वह घटती बढती रहती है। तदनुसार पृथ्वी का तापमान भी बढता घटता रहता है। जब इस प्रकार पृथ्वी का तापक्रम अत्यन्त क्षीण हो जाता है, तभी हिमयुगो का प्रादुर्भाव होता है।

**समीक्षा**––कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के सिद्धान्त के समान सम्भव है यह सिद्धान्त भी आशिक रूप से तापमान नीचा करने मे सहायक होता हो किन्तु केवल ओजोन की न्यूनता से हिमयुग होना सम्भव नही प्रतीत होता।

## निष्कर्ष

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तो पर विचार करने के उपरान्त भी हम हिमयुगो के

सम्बन्ध मे कोई निश्चित मत स्थिर करने मे अपने को असमर्थ पाते है। कोई भी एक सिद्धान्त सभी हिमयुगो का सन्तोषप्रद स्पष्टीकरण करने मे असमर्थ है—उदाहरण के लिये सौर-विकिरण के विभेदन वाले सिद्धान्त से जहाँ प्लीस्टोसीन युग की हिम




(सिम्पसन के अनुसार)

चित्र ३६६—प्लीस्टोसीन हिमनदियो की अग्र और पश्च गतियो का सौरविकिरण के विभेदन से सम्बन्ध

उपर्युक्त चित्र मे—

वक्र १—सौर-विकिरण के दो पूर्ण चक्र प्रदर्शित करता है।
वक्र २—इन चक्रो के समय ससार का औसत तापक्रम प्रदर्शित करता है।
वक्र ३—वृष्टि का वक्र है। यह सौर-विकिरण के वक्र के अनुरूप है।
वक्र ४—उच्च-अक्षाशो मे हिम-निक्षेप का द्योतक है।
वक्र ५—आल्प्स के चार हिमानी और तीन अन्तर्हिमानी काल प्रदर्शित करता है।

नदियो की अग्र और पश्च गतियाँ तक स्पष्ट हो जाती है (चित्र ३६६) वहाँ यही सिद्धान्त परमियन और प्लीस्टोसीन हिमयुगो के मध्य का दीर्घ कालान्तर समझाने मे असमर्थ है। सम्भव है, उपर्युक्त सिद्धान्तो मे निहित बहुत-सी दशाएँ मिलकर हिम-युगो का कारण हो। ज्योतिष और घनवातिकी (Meteorology) के वर्तमान अध्ययन द्वारा हम किसी भी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने मे असमर्थ है। जब तक ये दोनो विज्ञान इस विषय मे पर्याप्त उन्नतिशील नही हो जाते, तब तक हिमयुग के सम्बन्ध मे निश्चित परिणाम पर पहुँचना असम्भव नही तो महाकठिन अवश्य है।

# सत्तावनवाँ परिच्छेद

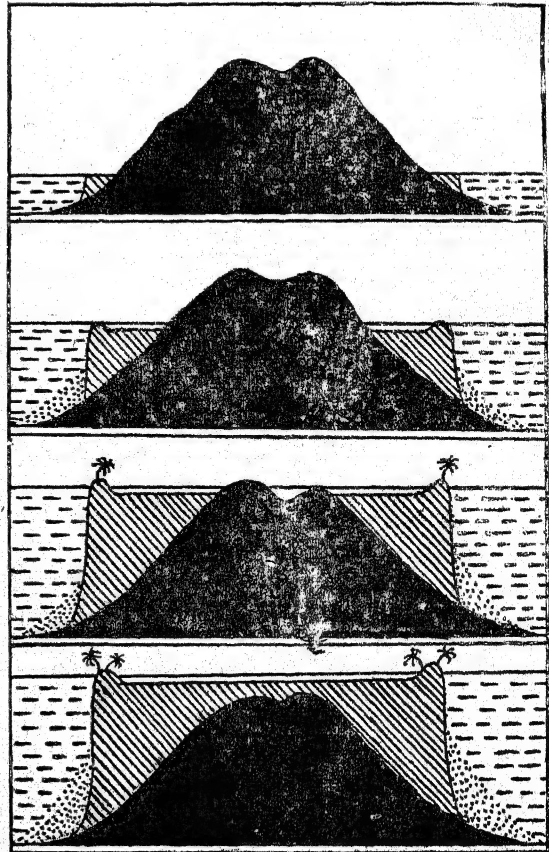
# अटोलों की संरचना

## (STRUCTURE OF ATOLLS)

अटोल (Atolls) किस प्रकार बने ?'—यह प्रश्न बड़े महत्व का है। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक मत प्रकट किये हैं। इनमें से तीन प्रमुख विचारधारायें नीचे दी जा रही हैं :—

## १ डारविन (Darwin) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार, सबसे पहले मूंगे का कीड़ा अथवा प्रवाली पूर्वांगक (Coral Polyp) किसी द्वीप के चारों ओर अनुतट-प्रवाली (Fritnging reef) बनाना आरम्भ करता है। सागर पृष्ठ से तीस या चालीस फुट नीचे यह क्रिया आरम्भ होती। जब तक स्थल और जल के आपेक्षिक समतलों में अन्तर नहीं होता, अनुतट-प्रवाली विकसित होती रहती है। किन्तु यदि किन्हीं कारणों से द्वीप नीचे धँसता है, तो प्रवाली भी जल में उतने नीचे और डूब जाती है। इसके बाद प्रवाली फिर ऊपर की ओर विकसित होने लगती है। प्रवाली का विकास बाहर की ओर सबसे अधिक होता है क्योंकि वहाँ उसे भोजन की सबसे अधिक सुविधा होती है। भोजन से कैलशियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate) का तात्पर्य है। प्रवाल का



चित्र ३६७—डारविन के अनुसार अटोल की रचना

जीवन इसी पर निर्भर है। प्रवाल इसे सागर जल से खीचता है। बाहर की ओर प्रवाली का विकास अधिक होने का एक कारण यह भी है कि वहाँ पर उसे अवसादो ( Sediments ) से ढक जाने का डर नही रहता। अतएव, जब द्वीप नीचे धँसता है, तो प्रवाली का बाहरी भाग ऊपर उठा रहता है और मध्य का शेष भाग डूब कर उपहृद (Lagoon) मे परिणत हो जाता है। नीचे धँसने की क्रिया की वृद्धि के साथ ही साथ उपहृद की गहराई और विस्तार भी बढते जाते है। कालान्तर मे समस्त द्वीप जलमग्न हो जाता है और यदि प्रवाली द्वीप के चारो ओर हुई तो अन्त मे उसका वलय (Ring) शेष रह जाता है जिसके मध्य मे जलमय उपहृद रहता है। इस प्रकार अटाल (Atoll) अस्तित्व मे आ जाता है।

**सिद्धान्त के पक्ष मे प्रमाण**—इस सिद्धान्त के अनुसार अटोल केवल उन क्षेत्रो मे पाये जाना चाहिये, जहाँ सागर-नितल की अधोगति हुई हो। ऐसे अनेक सबल प्रमाण मिलते है, जिनसे इस कथन की पुष्टि होती है। उदाहरण के लिये वृहद्-परातट-प्रवाली (Great Barrier Reef) के अन्तर्गत क्वीसलैण्ड के तट पर ऐसी अनेक समुद्रान्तर घाटियाँ पाई जाती है, जो स्वय निमज्जन (Subsidence.) की द्योतक है। बहुत सी वलयाकार प्रवाली-रचनाओ के बीच मे स्थित द्वीपो के किनारे भी इसी प्रकार कटे हुए है और थोडी ही अधोगति उन्हे अटोल मे परिणत करने मे समर्थ होगी।

**विपक्ष मे प्रमाण**—प्रशान्त महासागर मे बहुत से अटाल ऐसे क्षेत्रो मे पाये जाते है, जहाँ न केवल निमज्जन के कोई चिह्न नही है, प्रत्युत उन्मज्जन (Elevation) के निश्चित प्रमाण विद्यमान है। पैल्यू आदि द्वीप समूह मे स्थल का उन्मज्जन निश्चित रूप से हुआ है। अनेक प्रमाणो से इसकी पुष्टि होती है। सोलोमन द्वीप के अटाल ऐसी लाल रग की चिकनी मिट्टी पर स्थित है, जो केवल अथाह महासागर मे पायी जाती है। उन्मज्जन का इससे अधिक ज्वलन्त और यथार्थ प्रमाण अन्य क्या हो सकता है? केवल निक्षेप से इतनी अधिक मात्रा मे उन्मज्जन कदापि सभव नही है।

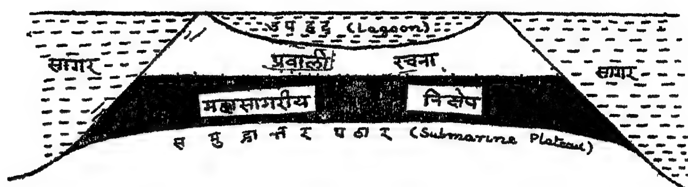
## २ मरे (Murray) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार अटोल का विकास ऐसे समुद्रान्तर पठारो (Submarine Plateaus) पर होता है, जिनका ऊपरी धरातल सागर-पृष्ठ से १२० फुट से कम गहराई पर होता है। प्रवाली रचना का आन्तरिक भाग अपेक्षाकृत नीचे रहता है और बाहरी भाग पूर्वलिखित कारणो से अत्यन्त वेग से विकसित होता है और कालान्तर मे सागर-समतल से भी ऊँचा उठ जाता है। इस प्रकार प्रवाली-रचना एक ऐसे घेरे का रूप धारण कर लेती है जिसके बीच मे उपहृद (Lagoon) रहता है। ऐसी अवस्था मे जीवित प्रवाल सागर की ओर रहते है और आन्तरिक भाग मे मृतक प्रवालो का बाहुल्य होता है। कारण स्पष्ट है। मृत प्रवाली के घुलने से उपहृद और भी अधिक गहरा और विस्तृत होता जाता है। दूसरी ओर प्रवाली का

---

१—मूगे का कीडा प्रवाली श्रृखला का निर्माण १२० फुट से अधिक गहराई मे नही करता, क्योकि इससे नीचे की परिस्थितियाँ प्रवाली के विकास के लिये अनुकूल नही है।

बाहरी भाग ऊपर की ओर विकसित होता रहता है। इस प्रकार प्रवाली का वलय क्रमश आकार मे बढता जाता है। अतएव अटोल की आयु-निर्धारण मे आकार का भी महत्त्व है।




चित्र ३६८—मरे के अनुसार अटोल की रचना

पक्ष मे प्रमाण—(१) बहुत से उथले सागरो मे समुद्रान्तर पठारो पर अटोल पाये गये है।

(२) यह तो डारविन तक ने स्वीकार किया है कि उथले सागर मे प्रवाली रचनाओ का स्वाभाविक वाह्य-विकास, उन्हे अटोल का रूप देने मे समर्थ होगा। डारविन के अनुसार पश्चिमी हिन्द-महासागर के अटोल धाराओ द्वारा एकत्र किये गये अवसाद ( Sediments ) के तटो पर, इसी प्रकार बने है।

(३) अनेक अटालो के परीक्षण से ज्ञात होता है, कि उनके प्रवाली-निक्षेप २०० फुट से अधिक गहरे नही है। सोलोमन द्वीप समूह का सैण्ट अन्ना तथा जावा के दक्षिण मे स्थित क्रिश्चियन द्वीप इसके उदाहरण है।

(४) यह उल्लेख तो पहले ही हो चुका है कि पैल्यू, सोलोमन आदि द्वीप समूहो मे उन्मज्जन के निश्चित प्रमाण मिले है।

**विपक्ष में प्रमाण**—(१) मरे के अनुसार अटोलो का केवल ऊपरी २०० फुट के लगभग भाग प्रवाल से बना होगा, शेष नही। परीक्षा से ज्ञात होता है कि अनेक दशाओ मे यह सत्य नहीं है।

(२) अधिकतर अटोलो के बाहरी तट बडे प्रपाती (Steep) होते है। मरे की उपकल्पना इनका स्पष्टीकरण नही करती।

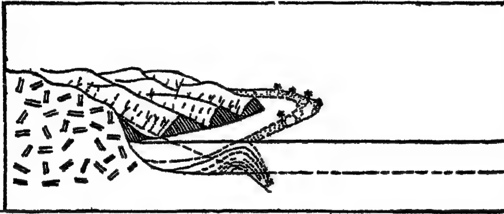
(३) इस सिद्धान्त के अनुसार प्रवाली श्रृखला का विकास ऐसे समुद्रान्तर पठारो पर हुआ जिनका ऊपरी धरातल या तो अपक्षरण (Erosion) द्वारा नीचा होकर अथवा निक्षेपण (Deposition) द्वारा ऊपर उठकर सागर-समतल से लगभग ३० फैदम गहरा हो गया। अतएव अटालो की गहराई ३० फैदम ही होना चाहिये, किन्तु प्राय वह ४० फैदम से भी अधिक होती है।

## ३ डैली का हिमनियत्रण का सिद्धान्त

## (Daly's Theory of Glacial Control)

सन् १९०९ ई० मे हवाई द्वीपो की प्रवाली-रचनाओ का निरीक्षण करते समय डैली का ध्यान उनकी सकर्णता की ओर आकर्षित हुआ। इसके अतिरिक्त मौना-की (Ma'una Kea) मे उसने अभिनवकालीन हिमनदियो के चिह्न भी देखे। इससे

उसने अनुमान किया कि प्रवाली-विकास और तापक्रम में सम्बन्ध अवश्य है। आजकल जाडे के दिनो मे इन सागरो का तापमान प्रवाली-विकास के लिये आवश्यक तापमान से थोडा ही अधिक रहता है। इससे उसने यह अनुमान किया कि हिमयुग मे यहाँ का तापमान प्रवाली विकास के लिए आवश्यक तापमान की अपेक्षा बहुत कम होगा, अतएव उस काल मे इनका विकास न हो सका होगा। इस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि हवाई-द्वीपो की प्रवाली-रचनाये हिमयुग के बाद की रचनाये है। अब तो सभी लोग यह मानते है कि प्रातिनूतन हिमयुग (Pleistocene Ice Age) मे सागर-समतल मे उच्चावचन (Fluctuations) हुए है—अर्थात् कभी वह ऊपर उठा है तो कभी नीचे चला गया है। सागर समतल के नीचे जाने से उसका तापमान भी घट गया होगा, जिसका प्रभाव ससार भर पर पडा होगा। डैली के अनुसार प्रातिनूतन हिमयुग मे सागर समतल लगभग २०० फुट नीचे चला गया था। जब सागर पृष्ट अधिक से अधिक नीचा होगा, उस समय समुद्र की तरगो ने हिमयुग से पहले की ऊपर निकली हुई प्रवाली रचनाओ का अपक्षरण किया होगा, जिससे वे समुद्रान्तर फलकियो (Submarine Benches) मे परिणत हो गई होगी। इसके बाद जब तापक्रम बढा होगा और हिम-टोपियाँ (Ice-caps) पिघली होगी और उनका पानी समुद्र मे प्रवाहित हुआ होगा, तब सागर-समतल फिर ऊपर उठा होगा और



चित्र ३६९—डैली के अनुसार अटोल की रचना

पानी का तापमान भी बढ गया होगा। अत्यन्त तीव्र हिमयुग मे भी जो प्रवाल जीवित रह जाते है, वे निम्नसमतल के अपघर्षण (Low Level Abrasion) से बनी समुद्रातर फलकियो पर नवीन रचनाओ की सृष्टि करते है। पूर्वलिखित कारणो से प्रवाली बाहर की ओर अधिक विकसित होती है और कालान्तर मे अटोल की आकृति ग्रहण कर लेती है।

**अनुकूल प्रमाण**—(१) अटोल के ऊपरी धरातल का चपटापन इस सिद्धान्त के अनुकूल है। इस सिद्धान्त मे निम्न समतल के अपघर्षण (Low Level Abrasion) की जो कल्पना की गई है, उसके फलस्वरूप चपटा धरातल ही अस्तित्व मे आयेगा।

(२) हिमयुग मे महाद्वीपीय हिमखण्डो के विकसित होने और पिघलने से महासागर के जलपृष्ठ का ऊपर उठना और नीचे चला जाना सर्वमान्य तथ्य है।

**प्रतिकूल प्रमाण**—(१) अटोल के उपहृदो की गहराई के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वे प्रातिनूतन युग मे सभव अधिक से अधिक गहराई से भी अधिक गहरे है।

(२) अपक्षरण द्वारा अधिकाश जलमग्न तटो का इतना अधिक नीचा होना शक्य नही प्रतीत होता, जितना कि अपेक्षाकृत कम विस्तार वाले तट हुए है।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार उच्छ्रगो (Cliffs) की सृष्टि अत्यन्त अनिवार्य है। यदि यह भी मान लिया जाय कि कुछ उच्छ्रग सागर-समतल के ऊपर उठने से डूब गये होगे ,तो भी कुछ तो शेष बचना चाहिये। सत्य तो यह है कि प्रवाली सागरो मे उच्छ्रग पूर्णत अनुपस्थित है।

## निष्कर्ष

उपलब्ध प्रमाणो की विरोधी प्रवृत्ति के कारण निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि अटोल अनेक प्रकार से अस्तित्व मे आये—कुछ निमज्जन के क्षेत्रो मे विकसित हुए और कुछ ऐसे भागो मे जहाँ निमज्जन नही हुआ।

इस समस्या के हल के लिये दक्षिणी प्रशान्त मे फ्यूनाफूटी नामक टापू के एक अटोल के वलय मे लगभग १११४ फुट गहरा सछिद्रण (Bore) किया गया। सछिद्रण से निकले पदार्थों के परीक्षण से यह विदित हुआ कि उसका प्राय समस्त भाग प्रवाल द्वारा रचित है। स्पष्ट है कि यह प्रयोग डारविन की उपकल्पना के अनुकूल है। किन्तु यह तो केवल परोक्ष (Indirect ) प्रमाण हुआ। इसे हम निश्चयात्मक प्रमाण तो नही कह सकते।

दूसरी ओर इस बात के भी निश्चित प्रमाण मिलते है कि अटोल ऐसे क्षेत्रो मे भी पाये जाते है, जहाँ सागर-नितल का निमज्जन नही हुआ है। यही नही ऐसे क्षेत्रो मे भी अटोल पाये गये है, जहाँ नितल मे निश्चित उन्मज्जन हुआ है।

कोई भी एक सिद्धान्त सभी अटोलो के लिये घटित नही होता। कुछ विशेष अटौलो मे सछिद्रण अपेक्षित है। कुछ अटालो का विस्तृत अध्ययन भी आवश्यक है। अनुसन्धान के लिये इस दिशा मे काफी क्षेत्र पड़ा है, फिर भी इतना सकेत कर देना उचित होगा कि अभी तक डारविन को ही सबसे अधिक समर्थन प्राप्त है।

डैविस अपने 'प्रवाली शृखला की समस्या' नामक ग्रन्थ मे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है —

'डारविन का निमज्जन का सिद्धान्त तथा डैली का हिम-नियन्त्रण का सिद्धान्त—दोनो मिलकर प्राय सभी प्रकार के प्रवाली-शृखलाओ के स्पष्टीकरण के लिये सबसे अधिक समर्थ है।'१

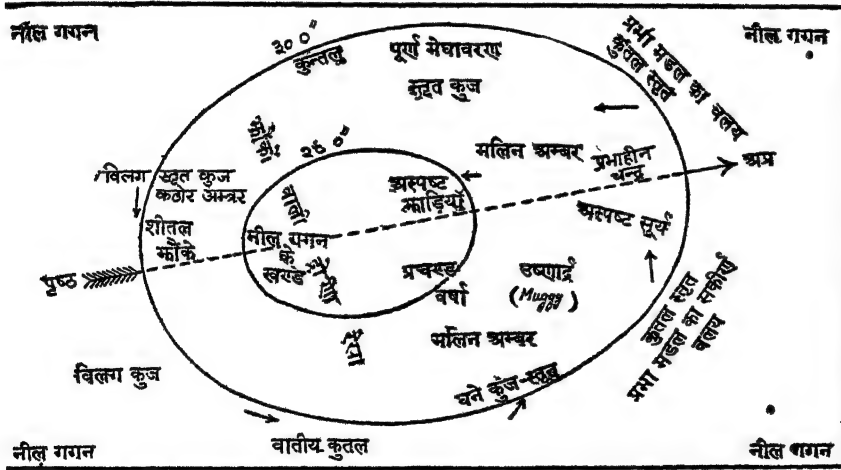
1 'The subsidence theory supplemented by the changes in sea level and the sea temperatures in the glacial period, best fits the known facts regarding all types of reefs' Davis (The coral reef Problem)

# अट्ठावनवाँ परिच्छेद

# चक्रवातों की उत्पत्ति

## (ORIGIN OF CYCLONES)

**भूमिका**—चक्रवात (Cyclone) समभार रेखाओ (Isobars) की एक विशेष व्यवस्था है, जिसमे समभार रेखाये प्राय वृत्ताकार (Circular) अथवा दीर्घ-वृत्ताकार (Elliptical) होती है, इसके मध्य मे वायु का दबाव सबसे कम होता है और वह चारो दिशाओ मे क्रमश बढता जाता है। चक्रवात प्राय. कभी भी स्थिर नही रहते। सामान्यत वे प्रचलित वायु की दिशा मे गतिशील होते है। चित्र मे उत्तरी गोलार्ध का एक चक्रवात प्रदर्शित किया गया है। उससे स्पष्ट



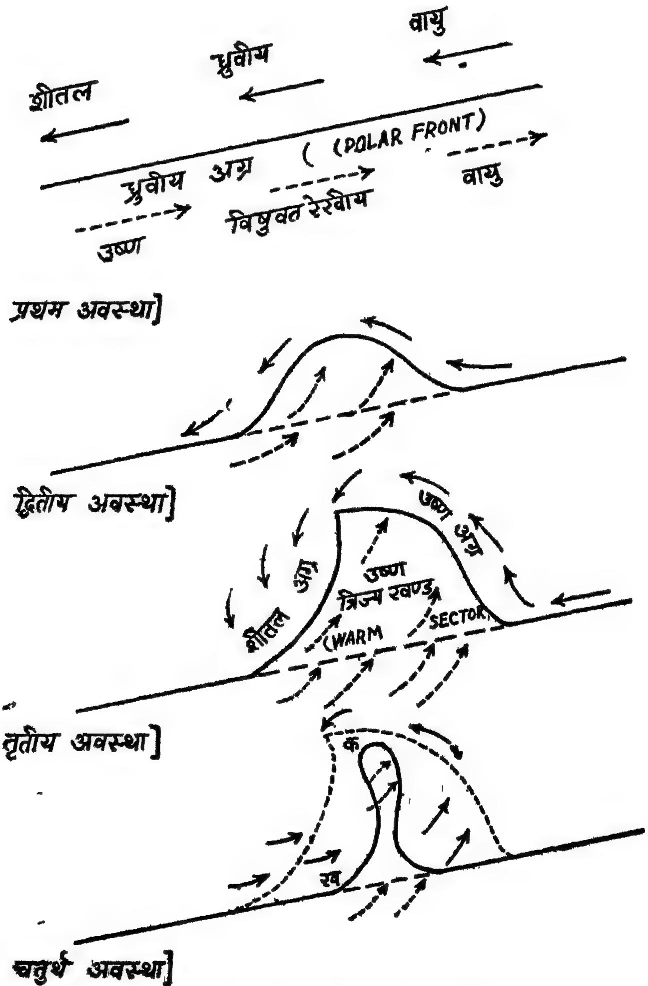

चित्र ३७०—उत्तरी गोलार्ध का एक चक्रवात

होगा कि न्यूनतम भार चक्रवात के बिल्कुल बीचो बीच नही होता है, वरन् कुछ पीछे हटा हुआ होता है। केन्द्र से गुजरने वाली और गति की दिशा के प्रति समकोण बनाने वाली रेखा को द्रोणी (Trough) कहते हैं। द्रोणी के आगे का भाग अग्र (Front) कहलाता है और पीछे का भाग पृष्ठ (Back) कहलाता है। वायु सदैव अधिक दबाव से कम दबाव की ओर प्रवाहित होती है। चक्रवात के मध्य मे वायु का दबाव सबसे कम होता है, अतएव उसकी ओर चारो दिशाओ से वायु प्रवाहित होती है। फैरल के नियम के अनुसार ये हवाये उत्तरी गोलार्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्ध मे अपनी बायी ओर मुड़ जाती है चित्र ३७० से स्पष्ट होगा कि उत्तरी गोलार्ध के चक्रवात

के अग्र (Front) मे हवाये अधिकतर दक्षिण से प्रवाहित होती है और पृष्ठ (Back) मे अधिकतर उत्तर से। वायु का तापमान भी दिशा के अनुसार ही होता है अर्थात् दक्षिण से आनेवाली वायु उष्ण होती है और उत्तर से आनेवाली वायु अपेक्षाकृत शीतल। अग्र की अपेक्षा पृष्ठ की हवाये अधिक शक्तिशाली होती है।

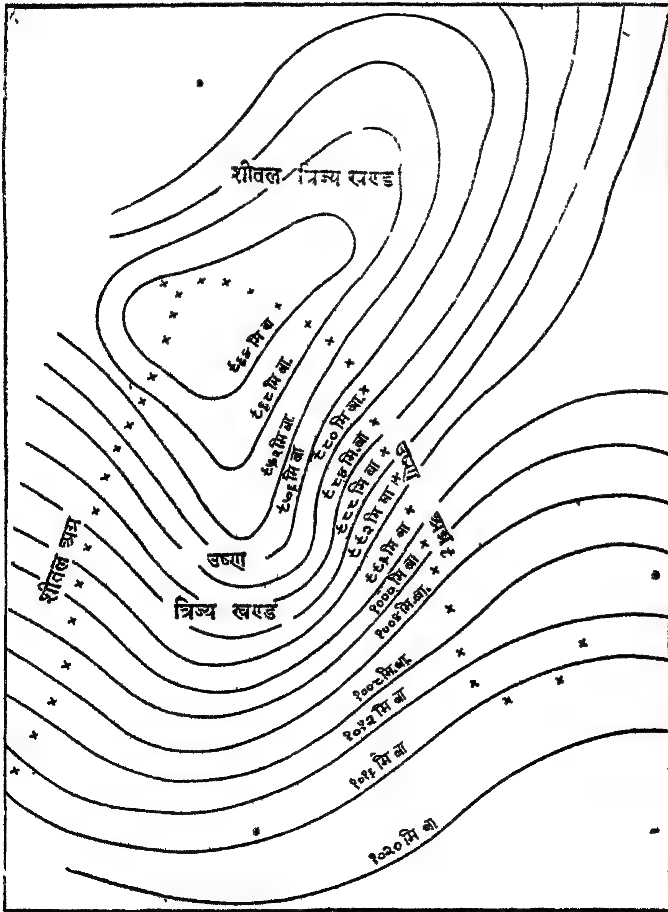
## शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात (Temperate Cyclones)

इनकी उत्पत्ति के स्पष्टीकरण के लिये अनेक सिद्धान्त उपस्थित किये गये है। इनमे ध्रुवीय अग्र का सिद्धान्त (Polar Front Theory) सबसे अधिक महत्व-पूर्ण है।




चित्र ३७१—चक्रवात के विकास की विभिन्न उत्तरोत्तर अवस्थाये

इस सिद्धान्त के अनुसार वायु की दो राशियाँ—एक उष्ण और दूसरी अपेक्षाकृत शीतल सस्पर्श मे आती है। इन राशियो को उद्‌गम के अनुसार क्रमश विषुवत्-रेखीय और ध्रुवीय वायु कहते है यह तो स्पष्ट ही है कि विषुवत्-रेखीय वायु उष्ण और आर्द्र होगी और ध्रुवीय वायु शीतल और शुष्क।वायु की ये दो भिन्न राशियाँ समानान्तर किन्तु विरुद्ध दिशाओ मे प्रवाहित होती है। ( चित्र ) विषुवत-रेखीय वायु दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर चलती है और ध्रुवीय वायु उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर। इन दोनो हवाओ को पृथक करनेवाली रेखा को ध्रुवीय अग्र (Polar Front) कहते है। इसी शब्द के आधार पर इस सिद्धान्त का नामकरण भी हुआ है। उष्ण और शीतल वायु के मिलने की दूसरी अवस्था भी चित्र मे दर्शायी गई है।




चित्र ३७२—ध्रुवीय अग्र का सिद्धान्त (Polar Front Theory)

उस क्षेत्र को जहाँ पर उष्ण वायु शीतल वायु से टकराती है, उष्ण अग्र (Warm Front) कहते हैं। इसी प्रकार उस क्षेत्र को जहाँ शीतल वायु उष्ण वायु के नीचे प्रविष्ट हो कर टक (Wedge) बनाती है, शीतल अग्र (Cold Front) कहते है। जब उष्ण वायु पृथ्वी के धरातल पर ध्रुवीय अग्र से मिलती है तब वह शीतल वायु के ऊपर चढ जाती है। ऊपर जाने से वह ठण्डी होती है और उसकी भाप जल मे परिणत होकर वर्षा का रूप ग्रहण कर लेती है। जब समस्त उष्ण वायु ऊपर उठ जाती है तब यह कहा जाता है कि चक्रवात अधिधारित (Occluded) हो गया। उस रेखा को जिसके अनुसार उष्ण वायु पृथ्वी का परित्याग करती है, अधिधारण की रेखा (Line of Occlusion) कहते है। उष्ण और शीतल हवाओ को पथक करने-वाला तल ध्रुवीय-अग्र (Polar Front) पर बिल्कुल उदग्र (Vertical) नही रहता। वह उत्तर की ओर झुका रहता है। अन्य शब्दो मे ध्रुवीय अग्र के उत्तर मे भी कुछ दूर तक उष्ण विषुवत-रेखीय वायु पायी जाती है। शीतल वायु के ऊपरी भाग मे उष्ण वायु के प्रविष्ट हो जाने से एक उभार सा बनजाना है जैसा कि चित्र ३७१ (द्वितीय अवस्था) से स्पष्ट है। इस चित्र मे ध्रुवीय अग्र (Polar Front) की पहले की स्थिति विन्दुओ से दिखलाई गई है और पहले के शीतल और उष्ण अग्र टूटो रेखाओ से दिखलाये गये है। उष्ण वायु शीतल वायु की अपेक्षा हल्क होती है अतएव वह उसके ऊपर चढती जाती है विशेषकर उत्तर की ओर झुके हुए पार्श्वक्यतल (Surface of Separation) पर। उष्ण अग्र (Warm Front) पर उष्ण वायु शीतल वायु से टकराकर ऊपर उठती है। दूसरी ओर शीतल अग्र पर ध्रुवीय वायु (अपेक्षाकृत भारी होने के कारण) उष्ण-वायु के नीचे धँसकर टक (Wedge) बनाती है, जिससे वहाँ की उष्ण-वायु ऊपर जाने को विवश होती है। इस प्रकार उष्ण त्रिज्यखण्ड (Warm Sector) का आकार क्रमश घटता रहता है और अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब समस्त उष्ण-वायु के ऊपर उठजाने से वह बिल्कुल लुप्त हो जाता है (चित्र ३७१ चतुर्थ अवस्था) यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि उस रेखा को जिसके अनुसार उष्ण-वायु पृथ्वी के धरातल का परित्याग करती है अधिधारण की रेखा (Line of Occlussion) कहते है। चित्र ३७१ (चतुर्थ अवस्था) मे क ख ऐसी ही रेखा है।

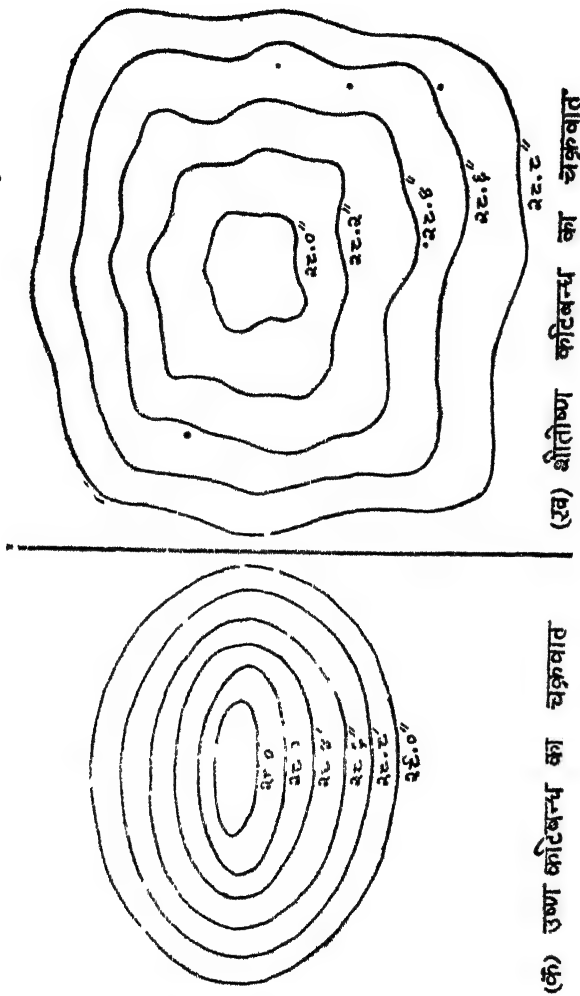
## उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात (Tropical Cyclones)

### (हरीकेन, टाइफून इत्यादि)

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो मे निम्नलिखित विशेषतायें होती है, जिनकी सहायता से हम इनमे और शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो (Temperate Cyclones) में भेद कर सकते है और प्रत्येक को पहचान सकते है —

(१) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात का व्यास शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात के व्यास से कम होता है।

(२) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात की समभार रेखायें (Isobars) अपेक्षाकृत अधिक समित (Symmetrical) और वृत्ताकार (Circular) होती है।




चित्र ३७३—उष्ण तथा शीतोष्ण चक्रवातो का अन्तर

(३) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात मे समभार रेखाये अधिक पास-पास होती है, अतएव उनमे वायु का वेग अधिक होता है। असली हरीकेन मे वायु वेग ७५ मील प्रति घण्टे से भी अधिक होता है।

(४) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात मे तापमान का वितरण केन्द्र के चारो ओर सर्वत्र एक सा होता है। शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात के अग्र (Front) और पृष्ठ (Back) मे तापमान का काफी अन्तर होता है।

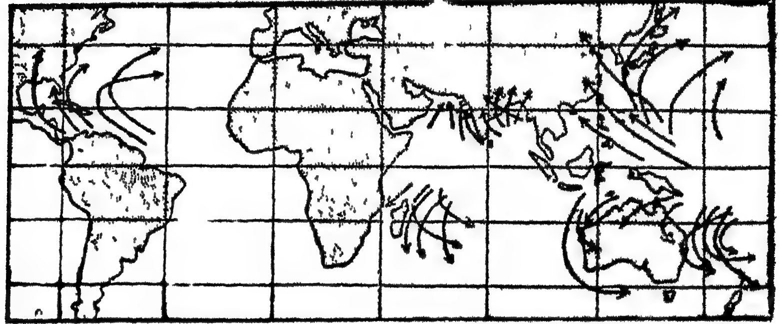
(५) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात मे वर्षा अपेक्षाकृत अधिक मूसलाधार (Torrential) होती है और वह केन्द्र के चारो ओर समान रूप से वितरित होती है [यद्यपि दूसरा गुण गतिशील आँधी (Moving Storms) की अपेक्षा स्थिर आँधी (Stationary Storms) मे अधिक पाया जाता है ]

(६) इनमे वायु के अकस्मात परिवर्तन नहीं होते है।

(७) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात जाडो की अपेक्षा गर्मियों मे अधिक आते है

(८) हरीकेन का केन्द्र अपेक्षाकृत शान्त और वर्षा रहित होता है। इसका व्यास सामान्यत ५ मील से लेकर ३० मील तक होता है। इसे आंधी की आंख (Eye of TheStorm) भी कहते है।

(९) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात के साथ प्रतिचक्रवात नही रहते।



चित्र ३७४—उष्ण चक्रवातो के पथ

(१०) शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात सामान्यत पूर्व दिशा की ओर अग्रसर होते है। उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात का पथ ऐसा परवलय (Parabola) है, जिसकी अक्ष (Axis) भूमध्यरेखा के समानान्तर रहती है और नतोतर पार्श्व (Concave Side) पूर्व की ओर रहता है (चित्र ३७४)।

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो का अभी तक बहुत कम अध्ययन हुआ है। इनकी उत्पत्ति के विषय मे ऋतु विशेषज्ञो मे बडा मतभेद है। प्रचलित धारणाओ मे निम्न लिखित विचार को अधिक महत्व मिला है —

## उष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो की उत्पत्ति

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात महासागर मे उत्पन्न होते है। इसका कारण यह है कि वहाँ पर दो बातो की सुविधा है। एक तो वहाँ आर्द्रता बहुत रहती है और दूसरे वहाँ वायु का सघर्षज प्रतिरोध (Frictional Resistance) कम होता है। अधिकतर इनका विस्तार उत्तरी गोलार्द्ध मे डोलड्रम की उत्तरी सीमा और दक्षिणी गोलार्व मे डोलड्रम की दक्षिणी सीमा तक ही होता है। इसमे सन्देह नही कि इनकी उत्पत्ति मे डोलड्रम प्रदेश का स्थानीय ताप और नमी सहायक होती है, किन्तु अन्य कारण भी महत्त्वपूर्ण है। डोलड्रम के शान्त कटिबन्ध मे चक्रवात तभी पाये जाते है, जब वह विषुवत रेखा से दूर खिसक जाता है। जिस समय वह विषुवत रेखा के निकट आ जाता है, उस समय इसमे चक्रवात नही होते। सभवत इसका कारण यह है कि विषुवतरेखा के निकट पृथ्वी के परिभ्रमण (Rotation) का वेग इतना कम है कि वह वायु मे उतना घुमाव या भँवर (Whirl) पैदा करने मे

असमर्थ है, जो चक्रवात की रचना के लिये आवश्यक है इस प्रकार इस तथ्य का स्पष्टीकदण हो जाता है कि 'उष्ण कटिबन्ध' के चक्रवात डोलड्रम की ध्रुवीय सीमाओ (Polar Margins) मे ही और वह भी केवल गर्मी और पतझड ऋतु मे (जब यह कटिबन्ध भूमध्य-रेखा से सबसे अधिक दूरी पर होता है) पाये जाते है। ट्रेड वायु के प्रभाव मे आ जाने से ये चक्रवात पहले पश्चिम की ओर जाते है और उसके बाद ध्रुवो की ओर मुड जाते है। जैसे ही ये मध्य-देशान्तरो ( Middle latitudes ) मे अथवा स्थलखण्डो के ऊपर प्रवेश करते है वैसे ही इनकी तीव्रता (Intensity) कम हो जाती है और ये फैलकर बाह्य उष्ण प्रदेशीय ( Extra Tropical) चक्रवात के लक्षण ग्रहण कर लेते हैं। यद्यपि उष्ण कटिबन्ध के हरीकेन मे धरातल के अग्र (Surface Fronts) नही देखे गये है, तथापि ऋतुविशेषज्ञ इस विषय मे एकमत है कि इनकी उत्पत्ति अग्र से ही होती है। हरीकेन की वायु के ऊपरी स्तरो के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि वहाँ पर विपरीत गुणो की वायु राशियाँ (Contrasting Air Masses) पायो जाती है और धरातल के बहुत ऊपर अग्र भी मिलते है।

## उनसठवाँ परिच्छेद

# ज्वारभाटा विषयक सिद्धान्त

## (THEORIES ABOUT TIDES)

ज्वारा-भाटा के स्पष्टीकरण के लिये जो विचारधारायें प्रस्तुत की गई हैं उनमे दो अधिक महत्वपूर्ण है —

(क) प्रगामी तरग का सिद्धान्त (Progressive Wave Theory)
(ख) स्थावर तरग का सिद्धान्त (Stationary Wave Theory)

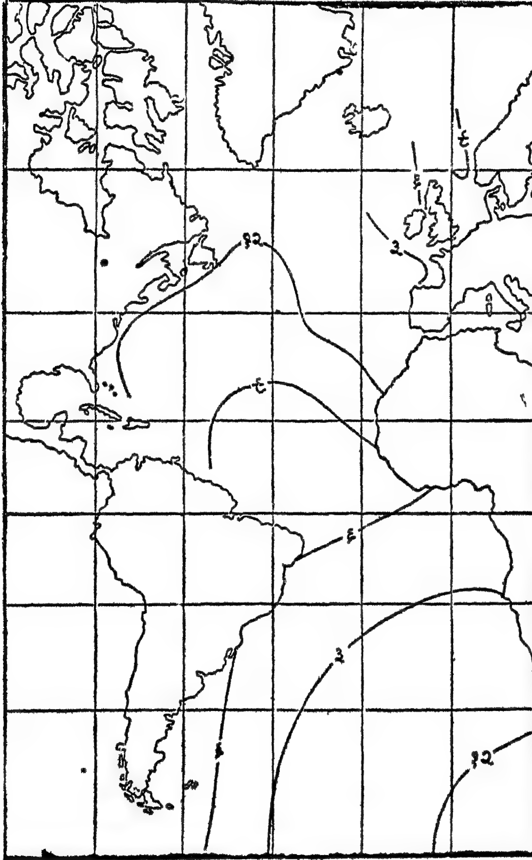
### (क) प्रगामी तरग का सिद्धान्त
### (Progressive Wave Theory)

यदि पृथ्वी के गोले पर जल का आवरण सर्वत्र समान होता तो चन्द्रमा की गति के अनुसार ज्वार की भी पूर्व से पश्चिम की ओर प्रगति होती, किन्तु महाद्वीप तथा अन्य स्थल-खण्ड इसमे बाधक होते है दक्षिणी अण्टार्कटिक महासागर में, स्थल-खण्डी का अभाव होने के कारण ज्वार की प्रगति ठीक चन्द्रमा की गति के अनुसार होती हैं। इसमें १८०° देशान्तर के अन्तर पर दो लहरे बन जाती है, जो पूर्व से पश्चिम की ओट बढती हैं। जैसे ही ये तरगे उत्तम आशा अन्तरीप (Cape of Good hope) के निकट अटलाण्टिक महासागर मे प्रवेश करती है वैसे ही उनमेसे एक शाखा निकलकर उत्तर की ओर बढ़ती है। प्रशान्त और हिन्दमहासागर में भी इस प्रकार की शाखायें बन जाती हैं। प्रधान लहर (Primary Wave) की ये शाखाये गौण लहरे (Secondary Waves) कहलाती हैं। इनसे ही अन्ध महासागर के तट पर ज्वार निर्धारित होते हैं। गौण लहरे स्वतन्त्र रूप से आगे बढती है—हाँ गहराई का इनकी गति पर प्रभाव अवश्य पडता है। इन्हे जन्म देने वाली प्रधान लहर की गति चन्द्रमा के अनुसार होती है। गामी लहर ( Progressive Wave ) के सिद्धान्त के अनुसार अन्ध महासागर की ज्वार-तरगे चित्र मे समज्वार रेखाओ (Cotidal Lines) द्वारा दर्शायी गई है। समज्वार रेखायें वे कल्पित रेखाये है जो सागर के उन स्थानो के मिलाने से बन जाती हैं, जहाँ दीर्घज्वार (Spring Tide) एक ही समय पर आ जाता है। रेखाओ के ऊपर जो अँक दिये गये हैं, वे पूर्णमासी के दिन दीर्घज्वार का (ग्रीनविच के अनुसार) समय दर्शाती हैं। इन मानचित्र से ओर उपर्युक्त सिद्धान्त से स्पष्ट है कि अन्ध महासागर की ज्वार-तरंगे किनारे के उथले भागो की अपेक्षा बीच के गहरे भागो मे अधिक वेगवती है।

## (ख) स्थावर तरग का सिद्धान्त

## (Stationary Wave Theory)

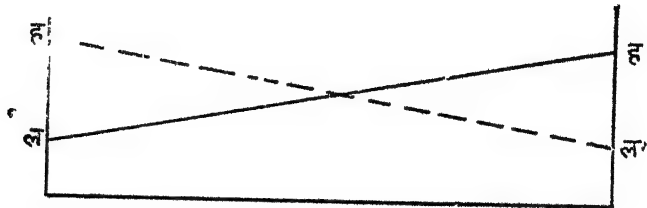
आधुनिक खोज से यह ज्ञात होता है कि संसार भर के ज्वार-भाटे के अध्ययन




चित्र ३७५—प्रगामी-तरग के सिद्धान्त के अनसार अन्ध महासागर की समज्वार रेखाओं के लिये हमे पृथक-पृथक सागरो का स्वतत्र अध्ययन करना चाहिए। इस सिद्धान्त मे यह कल्पना की जाती है कि प्रत्येक सागर में एक स्थावर तरग होती है। यह कथन नीचे लिखे प्रयोग से स्पष्ट हो जायगा —

**प्रयोग**—किसी आयताकार पात्र मे थोडा पानी ले लीजिए, फिर उसके एक किनारे को शीघ्रता से ऊपर उठाकर नीचा कर दीजिए। ऐसी अवस्था में जब पानी दहिनी ओर ऊपर उठ जाता है, तब बायी ओर वह नीचे दब जाता है और इसी प्रकार जब वह बायी ओर ऊपर उठ जाता है, तब वह दाहिनी ओर नीचे दब जाता है। यही क्रम चलता रहता है। ऐसी मध्यवर्ती रेखा को जिसके सन्दर्भ मे पानी ऊपर उठता और

नीचे जाता है हम पात-रेखा ( Nodal Line ) कहते हैं और इस प्रकार अस्तित्वमे आई हुई तरग को स्थावर तरग (Stationary Wave) कहते है।

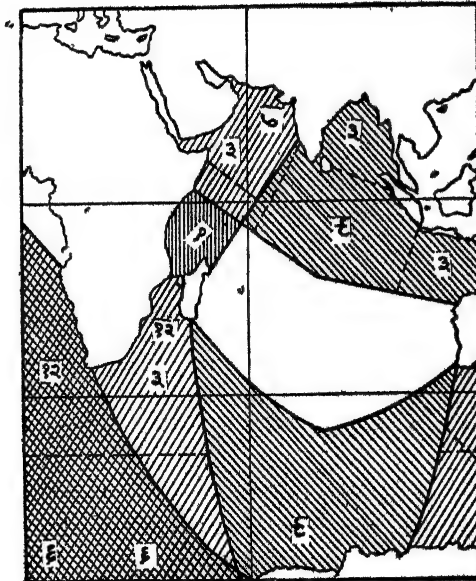



चित्र ३७६—स्थावर तरग (Stationary Wave) की उत्पत्ति

स्थावर तरग के प्रदोलन का आवर्तकाल (Period of oscillation) निम्नलिखित सूत्र से निर्धारित होता है —

$$अ = \sqrt{\frac{२ ल}{भ ग}}$$ जहाँ

- अ=प्रदोलन का आवर्तकाल (Period of Oscillation)
- ल=जलपात्र की लम्बाई
- भ=भ्वाकृष्टि त्वरण (Acceleration due to gravity)
- ग=जल की गहराई



चित्र ३७७—हिन्द महासागर की प्रदोलन-व्यवस्था

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक जलाशय का अपना एक निश्चित प्रदोलन का आवर्तकाल होता है, जो उसकी लम्बाई और पानी की गहराई पर निर्भर है।

इस शताब्दी के आरम्भ मे हैरिस नामक विद्वान ने ज्वार के स्पष्टीकरण के लिये स्थावर तरग के उपर्युक्त सूत्र को अपना आधार बनाया। इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न सागरो की स्थावर तरगो के फलस्वरूप ही विवृत महासागर (Open Ocean) मे ज्वार आता है। इन पृथक सागरो को मिलाकर सयुक्त रूप से प्रदोल प्रणाली (Oscillation

System ) कहते है। इनमे से प्रत्येक का अपना एक निश्चित प्रदोलन का आवर्तकाल ( Period of oscillation ) होता है, जो गणित की सहायता से निश्चित किया जा सकता है चित्र ३७७ मे हिन्द महासागर की प्रदोल-प्रणालियाँ दर्शायी गई है।

इस चित्र मे अकित अक उच्च-जल (High Water) का समय दर्शाते है। यह समय चन्द्रमा के ग्रीनविच की देशान्तर को पार करने के बाद व्यतीत हुए चान्द्र-घण्टो (Lunar Hours) मे दिया गया है। पात-रेखाये (Nodal Lines) बिन्दुओ से दिखलाई गई है। उन क्षेत्रो को खाली छोड दिया गया है जहाँ ज्वार की मात्रा अत्यन्त नगण्य है।

इस सिद्धान्त के अनुसार महासागरो मे कुछ ऐसे अश अवश्य होने चाहिए, जहाँ ज्वार बिल्कुल नही होता। इन बिन्दुओ से समज्वार रेखाये चारो दिशाओ मे प्रसृत होती है। हैरिस ने इन्हे अज्वार बिन्दु (Amphidromic Points) कहा है।

उत्तरी अन्ध महासागर मे एक स्थावर तरग है, जिसकी दिशा उत्तर-दक्षिण है। गणित द्वारा यह ज्ञात होता है कि अन्ध महासागर मे आनेवाले ज्वार इस तरग के प्रदोलन के अनुसार होते है।

# सातवाँ परिच्छेद

## भूद्रोणियाँ (GEOSYNCLINES)

**परिभाषा तथा वर्गीकरण**——भूपृष्ठ के उन लम्बे, सकरे और निचले क्षेत्रों को—

(१) जिनमे नदियो द्वारा लाये गये अवसाद (Sediments) एकत्र होते रहते हैं।

(२) जो अवसाद के वृहद भार से दबकर क्रमश धँसते रहते है।

और (३) जिनमे कालान्तर मे पर्वत-श्रेणिया बन जाती है, भूद्रोणी (Geosyncline) कहते है। सक्षेप मे हम भूद्रोणी को पर्वतो का पलना (Cradle of Mountains) कह सकते है।

भूद्रोणी को अवधारण का श्रेय हॉल (Hall) तथा डाना (Dana) नामक विद्वानो को है, किन्तु इस सिद्धान्त का विकास, वास्तव मे, हाग (Haug) ने ही किया है। इन्होने प्राचीन युकेव पुराभौगोलिक मानचित्र (Palaeogeographic maps) बनाये हे, जिनमे उन युगो की भूद्रोणियाँ दर्शायी गई हे। कालान्तर मे इन्ही भूद्रोणियो के स्थानपर पर्वत खडे हो गए है। इन भूद्रोणियो मे अवसाद एक विशेष ढग से एकत्र होता है। भूद्रोणियो के किनारे उथले होते है, अतएव वहाँ पर पतला वेलाप्रदेशीय निक्षेप (Littoral Deposits) एकत्र होता है। ये निक्षेप महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf) के अनुरूप होते हैं। इनकी रचना अनेक बाता पर निर्भर है जैसे——अपक्षरित शिलाओ की सरचना, सागर के जलपृष्ठ के उच्चावचन (Fluctuations) लहरे धाराये आदि। उदाहरण के लिये आल्प्स भूद्रोणी के उत्तरी निक्षेप के अध्ययन सेयह विदित होता है कि वे एकान्तर क्रम से आगे बढे और पीछे हटे है।

भूद्रोणियो के बीच का भाग गहरा होता है और वहाँ निक्षेप भी नियमित रूप से एकत्र होते हैं। यदि किसी भूद्रोणी मे दो विरुद्ध दिशाओ से दबाव पडता है, तो उसका मध्यवर्ती भाग उभार के रूप मे ऊपर उठ जाता है। इसे हम भू-चाप (Geo-anticline) कहते है। भू-चाप मे न केवल भूद्रोणी के अवसाद ही, वरन् उसका नितल भी ऊपर उठ आता है। यदि भू-चाप की ऊँचाई इतनी अधिक हुई कि वह हवा और लहरो के प्रभाव-क्षेत्र मे आ जाय, तब निक्षेपण की क्रिया मे बाधा पडना स्वाभाविक है। अतएव ऐसी दशा मे अपेक्षाकृत स्थूल अवसाद एकत्र होते हैं। पहाडो की विगुप्त शिलाओ (Exposed Rocks) के अध्ययन से भूद्रोणियो के अवसादो का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

हॉल ने सर्वप्रथम भूद्रोणियो और पर्वतश्रेणियों के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। उन्होने ज्ञात किया कि यदि किसी पर्वत श्रेणी का विश्लेषण किया जाय और उसकी शिलाओ को मौलिक प्रक्रम के अनुसार रखा जाय, तो वे सागर को केवल पाट ही न देगी, वरन् कुछ ऊपर भी उठ जायँगी। इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे——

'अवसादन के साथ-साथ सागर-नितल भी नीचे धँसता जाता है'

भूद्रोणियो के विकास का विचार करते समय हॉग ने दो बातो पर बडा जोर दिया है —

(१) भूद्रोणियाँ गहरे जल की क्षेत्र थी।

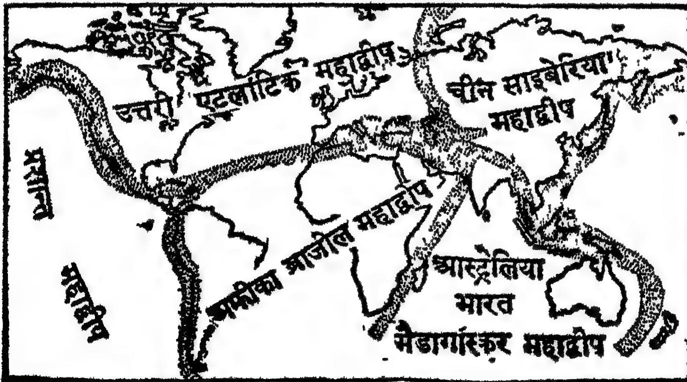
(२) चौडाई की अपेक्षा इनकी लम्बाई बहुत अधिक थी।

हाग (Haug) के अनुसार भूद्रोणियाँ सागर के वे लम्बे सकरे क्षेत्र है, जिनमे अवसाद नियमित रूप से एकत्र होते रहते है, किन्तु वास्तव मे भूद्रोणी का विकास इतना सीधा-सरल नही है। सागर नितल मे विशेषकर किनारो की ओर कभी-कभी क्षैतिज अथवा उदग्र गतियाँ भी होती रहती है ओर उनकी उपेक्षा नही की जा सकती।

यद्यपि भूद्रोणी शब्द का व्यवहार बहुत होता है तथापि उसकी वैज्ञानिक परिभाषा के विषय मे मतभेद है। जे० डबल्यू० इवेन्स (J W E vans) ने तो यहाँ तक कह डाला है कि यह शब्द इतने भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होता है कि इस की कोई एक वैज्ञानिक परिभाषा करना असभव है। हॉग के अनुसार भूद्रोणियाँ लम्बे और सकरे सागर हे, जैसा कि इनके बनाये हुए पुराभौगोलिक मानचित्रों (Palaeogeographic maps) से स्पष्ट है। बहुत से विद्वान् इसी मत के अनुयायी हे किन्तु कुछ ऐसे भी है, जो इसे नही मानते। उदाहरण के लिये शुशर्ट (Schuchert) ने तीन प्रकार की भूद्रोणियाँ मानी हैं —

(१) एक-भूद्रोणी (Mono-Geosyncline)—ये महाद्वीपो के अन्दर अथवा किनारो पर लम्बे ओर सकरे सागर हे। इनमे काफी निमज्जन (Subsidence) हुआ है। इसका प्रमाण अपेलेशियन के पदार्थो की वृहद मोटाई है। भूद्रोणिया के विषय मे हॉल ओर डाना की भी यही धारणा है।

(२) बहु-भूद्रोणी (Poly-Geosyncline) यह एक-भूद्रोणी (Mono-Geosyncline) की अपेक्षा अधिक चौडी होती है और इसका इतिहास भी अपेक्षाकृत जटिल होता है। इसकी स्थिति एक-भूद्रोणी के समान ही होती हे किन्तु इसमे प्राय एक अथवा अधिक भू-चाप (Ge-anticlines) मिलते है। इसका उदाहरण रॉकी पर्वत की भूद्रोणी है।




चित्र ३७८—मैसोजोयक काल की भूद्रोणियाँ (इस चित्र मे छायादार भाग भूद्रोणियो का द्योतक है)

(३) मध्य-भूद्रोणी ( Meso-geosynclıne )—ये भी लम्बे और सकरे सागर होते है जो प्राय दो महाद्वीपो के मध्य मे स्थित होते है—जैसे भूमध्यसागर। इनकी गहराई बहुत अधिक होती है और इनका इतिहास भी लम्बा और जटिल होता है।

हॉग की अवधारणा वास्तव मे मध्य भूद्रोणियो की अवधारणा है। इन के अनुसार मध्य कल्प ( Mesozoıcera) की भूद्रोणियाँ चित्र ३७८ मे दर्शायी गई है।

**आलोचना**—चित्र ३७८ से स्पष्ट होता है कि मध्यकल्प मे आजकल की अपेक्षा सागर-जल की मात्रा कम थी। ऐसा क्यो था ? शेष जल कहाँ चला गया था ? हॉग ने इस प्रश्न का कोई भी सतोषजनक उत्तर नही दिया है।

## जे० डबल्यू० इवेन्स (J W Evans) के विचार

यह तो कहा ही जा चुका है कि भूद्रोणी की परिभाषा के विषय मे बडा मतभेद है। जे० डबल्यू० इवेन्स इसे 'अवसादन की अधोगति' (Sedımentatıon-Subsıdence) कहना अधिक उचित समझते है। इनके अनुसार भूद्रोणी की आकृति मे अन्तर हो सकते है—कभी वह द्रोणी के समान धनुषाकार होती है, कभी उसका ऊँचे-नीचे अनियमित गड्ढे का रूप होता है और कभी अपेक्षाकृत चपटा नितल भी हो सकता है। इनकी स्थिति भी अनेक प्रकार की हो सकती है। ये—

(ı) किसी बडी नदी के मुहाने के सामने
(ıı) दो महाद्वीपो के बीच मे
(ııı) किसी चौडे महासागर के पहाडी तट के निकट, अथवा
(ıv) किसी पर्वत अथवा पठार के निकट मैदान मे,
कही भी स्थित हो सकती है।

जहाँ भी इतनी अधिक मात्रा मे अवसाद एकत्र होते हैं, वहाँ ही उनके वृहद् भार के कारण क्षेत्र का निमज्जन अथवा अधोगति ( Subsidence ) अवश्य होती है और फिर कालान्तर मे एक ऐसा समय आता है जब अवसाद पर दो विरुद्ध दिशाओ से दबाव पडता है और उसमे भजन ( Foldıng ) हो जाता है। इवेन्स का विचार है कि यह क्रिया उन क्षेत्रो मे अधिक सुविधा और सरलता से होती होगी, जिनमे भार के कारण भूपर्पटी अधिक नीचे धँस जाती है। नीचे के स्तरो का ऊँचा तापमान भी इसमे सहायक होता है। यह निमज्जन चाहे अवसाद के वृहद् भार के कारण हो अथवा क्षैतिज दबाव के कारण—इसका यह प्रभाव तो पडता ही है कि नीचे का सिमा (Sima) हट जाना है जिससे भूसन्तोल की अवस्था मे व्यतिक्रम हो जाता है। भंजित अवसाद सिमा की अपेक्षा हल्के होते हैं अतएव वे नीचे धँसने की अपेक्षा ऊपर उठ जाते है और इस प्रकार पर्वत-श्रेणियाँ अस्तित्व मे आ जाती है।

इस प्रकार हम भूद्रोणी के इतिहास को तीन भागो में बाँट सकते है ,—

(१) अवसादन और अधोगति के फलस्वरूप हुआ विकास।

(२) नियमित विकास मे व्यतिक्रम होना जैसे किसी भाग का ऊपर उठ जाना अथवा नीचे धँस जाना, भू-चाप ( Ge-antıclne ) का बनना आदि।

(३) भूद्रोणी का पतन।

## (ग) होम्स का दृष्टिकोण

होम्स के अनुसार भूपर्पटी में निम्नलिखित स्तर विद्यमान है —

(१) सबसे ऊपर १०-१२ किलोमीटर मोटा ग्रेनो-डायोराइट ( Grano Diorite ) का स्तर है।

(२) उसके नीचे २०-२५ किलोमीटर मोटा एम्फिबोलाइट (Amphibolite) का स्तर है।

और (३) सबसे नीचे एकलोजाइट (Eclogite) का स्तर है।

होम्स के अनुसार भूद्रोणियाँ तीन प्रकार की हैं —

(१) कुछ भूद्रोणियाँ इस प्रकार बन गई हैं कि उनके नीचे के एम्फिबोलाइट के स्तर से द्रव-पदार्थ अन्य दिशाओ मे खिसक गया है और इस प्रकार उनमे निमज्जन हुआ है। आधुनिक काल के रॉस (Ross) और टसमान ( Tasman ) सागर तथा भूतकाल मे प० कार्डिलेरा की भूद्रोणी इसी प्रकार के अन्तर्गत है।

(२) दूसरी प्रकार की भूद्रोणियो के बनने का मुख्य कारण सियाल ( Sial) के स्तर का खिचकर पतला पड जाना है। इस खिचाव के दो प्रमुख कारण है —

(क) किसी स्थल खण्ड का फैलना। यूरल पर्वत की भूद्रोणी इसी प्रकार बनी है।

अथवा (ख) अनुपर्पटी (Substratum) मे अपसृत धाराओ ( Diverging Currents) के कारण ऐसे दो खण्डो का पृथक हो जाना। उदाहरण-टैथिस सागर।

(३) तीसरे प्रकार की भूद्रोणियाँ वे हैं, जिनके निर्माण का मुख्य कारण नीचे के पदार्थ मे रूपान्तरण ( Metamorphism ) के कारण घनत्व का बढ जाना है। इसी से निमज्जन अथवा अधोगति होती है। किसी पर्वत-प्रणाली के दो निकट आनेवाली अग्र-प्रदेशो (Forelands ) के मध्य का क्षेत्र इस प्रकार के अन्तर्गत है। उदाहरण—पश्चिमी भूमध्यसागर, बण्डासागर ( Banda sea ) आदि।

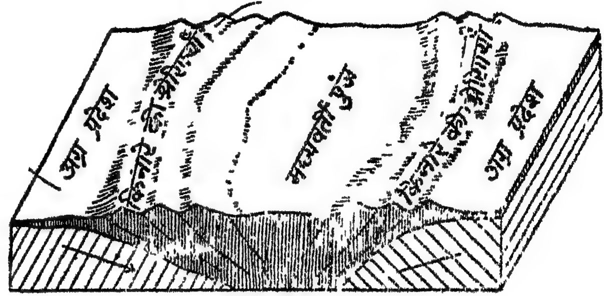
भूद्रोणियो का एक विभाग और किया जा सकता है। ये भूद्रोणियाँ पर्वत श्रृंखला के अग्रप्रदेश ( Foreland) की दिशा मे होती है। इनके बनने का मुख्य कारण गिरि निर्माण के लिये उत्तरदायी भजन की क्रिया (Folding ) है। इस प्रकार की भूद्रोणियो के उदाहरण फारस की खाडी और सिन्ध-गगा का मैदान हैं।

## कोबर का भूद्रोणीय गिरि निर्माण का सिद्धान्त

## (The Geo Synclinal Orogen Theory of Kober)

हॉग (Haug) और कोबर (Kober) की भूद्रोणी विषयक धाराणाओ मे अन्तर है। हॉग के अनुसार भूद्रोणी सकरे और लम्बे क्षेत्र थे। कोबर का कथन है कि ये काफी चौडे प्रदेश थे। इनके अनुसार अवसादो के भजन का मुख्य कारण यह था कि दो स्थलखण्डो के अग्रप्रदेश एक दूसरे के निकट आये। इनमें से एक का गति-वेग दूसरे से अधिक था इनके निकट आने से बीच की भूपर्पटी सिकुडी और इस प्रकार इन अग्रप्रदेशो के किनारो पर श्रेणियाँ बन गईं इन्हे-किनारे की श्रेणियाँ ( Border Ranges ) अथवा

Randketten) कहते हैं। यदि सिकुडन की मात्रा बहुत अधिक हुई तो दोनों अग्रप्रदेश एक दूसरे के बिल्कुल निकट और कभी-कभी सस्पर्श ( Contact) में आ जाते हैं। ऐसी दशा में दोनो ओर की किनारे की श्रेणियाँ एक रेखा पर मिलकर और ऊपर उठ जाती हैं। इस रेखा को Narbe कहते हैं। स्विटजरलैण्ड की आल्प्स श्रेणी इसका उदाहरण है। दूसरी ओर जब एक दिशा का दबाव दूसरे की अपेक्षा कम होता है, तब किनारे की श्रेणियो के




चित्र ३७८—कोबर के अनुसार पर्वतो की उत्पत्ति

बीच मे जो प्रदेश सिकुडन की क्रिया से प्रभावित नही होता और पहले जैसा ही बना रहता है, मध्यवर्ती पुज (Median Mass) कहलाता है। कार्पेथियन और डिनारिक आल्प्स के मध्य मे हगरी का मैदान ऐसा ही मध्यवर्ती पुज (Median Mass) है।

कोबर और स्वैस की कल्पनाओ मे मौलिक भेद है। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, दो विरोधी दिशाओं मे दबाव पडता है। स्वैस के अनुसार पर्वत श्रेणियो का निर्माण केवल एक ही दिशा के दबाव से होता है। इनके अनुसार पृष्ठ-प्रदेश (Hinter land) की ओर से दबाव आता है और अग्रप्रदेश (Foreland) उसे रोकता है। उदाहरण के लिये हिमालय पहाड के निर्माण के लिये तिब्बत पृष्ठ प्रदेश था और दक्षिणी पठार अग्रप्रदेश। तिब्बत की ओर से दबाव आया और दक्षिणी पठार ने उसे रोका, जिससे वे भज (Folds) बन गय जिन्हे हिमालय श्रेणियाँ कहते है।

## परिशिष्ट १

# कुछ सामान्य शिलाओं का संक्षिप्त परिचय

### (क) आग्नेय शिलायें (Igneous Rocks)

(१) ग्रेनाइट (Granite)—यह एक अत्यन्त सामान्य सपुंजित (Massive) आग्नेय शिला है। यह शिला पूर्णतः मणिभीय होती है। इसके कण सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक होते हैं। जहाँ तक इसकी खनिज-रचना का सम्बन्ध है, इसमें स्फटिक (Quartz), फैल्स्पार (Felspars) तथा उपखनिज (Accessory Minerals) पाये जाते हैं। स्फटिक १५ से ४० प्रतिशत तक होता है। फैलस्पारों में क्षार फैलस्पारो (Alkali felspars) का अनुपात सोडा-लाइम फैलस्पारो (Soda-lime Felspars) से अधिक होता है। उपखनिजो मे बायोटाइट (Biotite) तथा हौर्नब्लैण्ड (Hornblende) अधिक सामान्य हैं। ग्रेनाइट शिलायें अधिकतर भूरे अथवा लाल रग की होती हैं। इनका रग खनिज-रचना पर निर्भर है। इनका औसत घनत्व लगभग २ ७ है।

(२) साइनाइट (Syenite)—यह स्थूल कणो वाली सपूजित अधोघनित शिला है। जहाँ तक इसकी खनिज-रचना का सम्बन्ध है, इसमे क्षारीय फैल्स्यपारो (Alkali Falspars) की प्रमुखता रहती है तथा स्फटिक (Quarty) अनुपस्थित होती है। देखने मे यह ग्रेनाइट से मिलती जुलती है। इसका वर्णन सफेद से लेकर Dark Grey तक होता है, अनेक साइनाइट शिलाये Pink वर्ण की हैं। इसका आपेक्षिक घनत्व २ ६ से लेकर २ ८ तक होता है।

(३) डायोराइट (Diorite)—यह स्थूल कणो वाली अधोघनित, शिला है। जहाँ तक इसकी खनिज-रचना का सम्बन्ध है, इसमे सोडा-लाइम प्लैगियोक्लेज फैलस्पारो (Soda-lime Plagioclase Felspars) की बहुलता रहती है। यह पूर्णत मणिभीय शिला है। इसका रग हरे से लेकर काले तक होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २.८५ से लेकर ३ ०० तक होता है।

(४) ग्रैबो (Grabbro)—यह स्थूल कणो वाली सपुजित अधोघनित शिला है। जहाँ तक इसकी खनिज-रचना का सम्बन्ध है, यह मुख्यतः लाइम-सोडा प्लैगियोक्लेज फैलस्पारो (Lime-Soda Plagioclase Felspars) से निर्मित होती है। इसका आपेक्षिक घनत्व डायोराइट से थोड़ा अधिक होता है अर्थात् २ ९० से लेकर ३ २० तक।

---

१. क्षारीय फैलस्पारो के अन्तर्गत।
२ सोडा-लाइम प्लैगियोक्लेज फैल्स्पारो के अन्तर्गत।
३. लाइम-सोडा प्लैगियोक्लेज फैल्स्पारो के अन्तर्गत।

(५) डोलराइट (Dolerite)—यह सूक्ष्म कणो से निर्मित गहरे वर्ण की उपाधोघनित शिला है। यह प्राय रालपट्टो (Sills) और गलभित्तियो (Dykes) का निर्माण करती है। जहाँ तक इसकी खनिज-रचना का सम्बन्ध है, इसमे सोडा-लाइम प्लेगियोक्लेज फैल्स्पारो (Soda-lime Plagioclase Felspars) की प्रमुखता रहती है। इसका आपेक्षिक घनत्व प्राय २ ६४ से लेकर ३ १२ तक होता है।

यह ग्रैबो की उपाधोघनित समकक्षक (Hypabysal Equivalant) है।

(६) बेसाल्ट (Basalt)—यह अत्यन्त सामान्य ज्वालामुखीय शिला है। यह क्षारीय लावा के घनीभूत होने से बनती है। इसका रग (Grey Black) से लेकर काला तक होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व २ ९० से लेकर ३ ९० तक होता है। यह ग्रैब्रो की ज्वालामुखीय समकक्षक है।

तलिका—कुछ सामान्य आग्नेय शिलाओ का खनिजात्मक वर्गीकरण

| | अतिसतृप्त (Over saturated) | | सतृप्त (Saturated) | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | (स्फटिक Quartz) फैल्स्पायर (Falspars) | | फैल्स्पार (Felspars) | | |
| | प्रमुखत औथोक्लेज | प्रमुखत प्लैगयोकलेज | प्रमुखत क्षारीय फैलस्पार | प्रमुखत सोडा-लाइम प्लैगियोकलेज | प्रमुखत लाइम-सोडा प्लैगियोक्लेज |
| अधोघनित (Plutonic) | ग्रेनाइट | | साइनाइट | डायोराइट | गेब्रो |
| उपाधोघनित (Hypabyssal) | | | | | डोलराइट |
| ज्वालामुखीय (Volcanic) | | | | | बेसाल्द |
| सिलिका का औसत प्रतिशत | ७२ | ६६ | ५९ | ५७ | ४८ |

(टिरैल की पैट्रोलोजी के अनुसार)

## (ख) जलज शिलायें

## (Sedimentary Rocks)

(१) बालुकाश्म (Sandstone)—ये शिला मुख्यत बालू के कणो से निर्मित होती है, जो प्राय. सिलिका, लोहे के ऑक्साइड अथवा चूने से परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। इसका रग कणो को आबद्ध करने वाले पदार्थ के अनुसार (Grey) सफेद, (Butt) भूरा अथवा (Brown) होता है।

(२) शेल ( Shale )—यह सूक्ष्म स्तरो वाली शिला है, जो घनीभूत पक (Mud), मृत्तिका (Clay) अथवा साद (Silt) से निर्मित होती है। कभी-कभी इसके स्तर इतने पतले होते हैं, जैसे कागज। यह एक कोमल शिला है। इसका रग सफेद, भूरा, (Buff), पाला, लाल, बैंगनी, हरा अथवा काला होता है।

(३) चूने का पत्थर (Limestone)—यह शिला मुख्यत कैलशियम कार्बोनेट से बनी होती है। इसके कण सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक होते हैं। जब इसमे अशुद्धियाँ नही होता, तब यह सफेद होती है। जब इसमे अशुद्धियाँ होती है, तब इसका रग भूरे से लेकर काला तक होता है। इसका घनत्व २ ५ से लेकर २ ८ तक होता हैं। इसे चाकू द्वारा सरलता से खुरचा जा सकता है। इसको पहचान यह है कि इस पर हाइड्रोक्लारिक एसिड डालने पर इसमे बुदबुदाहट ( Effervescence ) होती है। भूपृष्ठ पर जहाँ यह शिला विस्तृत रूप से पाई जाती है, वहाँ एक विशेष प्रकार का भूदृश्य विकसित होता है, जिसे कार्स्ट भूदृश्य (Karst Topography) कहते हैं।

(४) ब्रेशिया (Breccia)—इस शिला मे सकोण (नोकदार) पत्थर टुकडे परस्पर चिपके रहते हैं। ये टुकडे किसी भी प्रकार की शिला के हो सकते हैं। इस शिला मे स्तर नही पाये जाते। इसका रग अवयवो के अनुसार होताहै।

(५) कौगलोमरेट (Conglomerate)—यह शिला पूर्णत. जलीय उदभव ( Aqueous origin ) की है। इसमे नदी की क्रिया से घिसकर गोल किये गये अष्टीला (Pebbles) परस्पर चिपके रहते हैं। इन अष्टीलाओ के आकार मे बड़े विभेदन पाये जाते हैं। ये अष्टीना एक अनेक अनेक शिलाओ के खण्ड हो सकते है।

(६) चाक (Chalk)—यह कोमल अवचूर्ण्य (Friable) शिला है। जहाँ तक इसकी खनिज रचना का सम्बन्ध है, यह कैलशियम कार्बोनेट से निर्मित होती है। इसका रग सफेद से लेकर गुलाबी तक होता है। इसमे और चूने के पत्थर मे यही प्रमुख अन्तर है कि चूने का पत्थर कठोर निबिड तथा मणिभीय होता है तथा चाक कामल एव रन्ध्री होता है। जहाँ पर यह शिला विस्तार रूप से पाई जाती है, वहाँ एक विशेष प्रकार का भूदृश्य विकसित हो जाता है, जिसे चाक भूदृश्य (Chalp Topography) कहते हैं।

## (ग) रूपान्तरित शिलायें

## (Metamorphosed Rocks)

(१) स्फटिकाश्म (Quartzite)—यह शिला बालुकाश्म (Sandstone) के रूपान्तरण (Metamorphism) से बनती है। यह कठोर तथा निबिड शिला है। इसके कण सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक होते है। इसका रग सफेद, भूरा, पीला अथवा लाल होता है।

(२) स्लेट (Slate)—यह शिला शेल ( Shale ) के रूपान्तरण से बनती है। यह अत्यन्त पतले स्तरो मे भाजनशील (Clearable) है। सामान्यत इसका रग (Grey) से लेकर काला तक होता है, किन्तु कभी-कभी लाल, बैगनी अथवा हरा भी होता है इसका आपेक्षिक घनत्व लगभग २ ७५ है।

(३) सगमरमर ( Marble )—यह एक सपूजित शिला (Massive Rock) है। यह शिला चूने के पत्थर ( Limestone ) के रूपान्तरण से बनती है। यह रूपान्तरण मुख्यतः ताप के कारण होता है। यदि मूल चने का पत्थर शुद्ध होता है, तो उसके रूपान्तरण से बना सगमरमर सफेद रग का होता है। यदि मूल चूने के पत्थर मे अशुद्धियाँ होती है, तो सगमरमर का रग भी तदनसार होता है। उदाहरण के लिये लोहे के यौगिको की उपस्थिति के कारण लाल, भूरे अथवा पीले सगमरमर बनते है। बिटुमिनस चूने के पत्थर के रूपान्तरण से जो संगमरमर बनता है, वह काले रग का होता है।

(४) नाइस ( Gneiss )—यह एक निबिड मणिभीय स्थूलपर्णित (Coarsely foliated) शिला है। इसका रग सफेद, भूरा, लाल, हरा अथवा काला होता है। इसका नामकरण दो आधारों पर होता है—(१) मूल शिला के अनुसार जैसे ग्रेनाइट-नाइस, साइनाइट-नाइस आदि। (२) इसमें विद्यमान फैरो-मैग्नेशियन खनिजो ( Fero-magnesian Minerals ) के अनुसार जैसे बायोटाइट-नाइस ( Biotite Gneiss ), होर्नब्लैण्ड नाइस (Hornblende Greiss) आदि। इसमें पाई जानेवाली गहरे रग की पटि्टयाँ (Dark) फैरोमैग्नेशियन खनिजों को प्रदर्शित करती है तथा हल्के रग की पट्टियाँ स्फटिक तथा फैल्स्पार के मिश्रण को।

(५) शिस्ट (Schist)—यह शिला शेल के रूपान्तरण मे बनती है। यह रूपान्तरण मुख्यतः दबाव के कारण होता है। इसकी प्रमख विशेषता इसमें पाये जानेवाले पर्ण (Foliations) है, जिनके अनरूप इसका विदारण होता है। यह पूर्णत मणिभीय ( Crystalline ) शिला है। इसका रंग इसमें विद्यमान फैरो-मैग्नेशियन खनिज के अनुसार होता है—उदाहरण के लिये क्लोराइट—शिस्ट (Chlorite-Schist) हरी होती है, माइका शिस्ट (Mica Schist) सफेद से लेकर भूरे रंग तक की होती है तथा होर्नब्लैण्ड-शिस्ट (Hornblande-Schist) हरे से लेकर काले रग तक की होती है।

(६) फाइलाइट ( Phyllite )—यह शिला माइका-शिस्ट (Mica-Schist) के निर्माण की अन्तर्वर्ती प्रावस्था (Intermediate Stage ) का प्रदर्शन करती है। अतएव, इसकी विशेषता अभ्रक (Mica) की उपस्थिति के कारण इसका रजतमय स्वरूप (Silvery appearance ) है। यह स्लेट की भाँति भाजनशील ( Clearable) होती है।

परिशिष्टावली २·

# वालुकाश्म भूदृश्य

## (१) बालुकाश्म का संक्षिप्त परिचय

## (Sandstone Topography)

बालुकाश्म (Sandstone) एक जलज शिला है। यह मुख्यत बालुका के कणो से निर्मित होती है। ये कण प्राय सिलिका, लोहे के ऑक्साइड अथवा चूने से परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। बालू के कण आकार मे स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक होते हैं। बालुकाश्मो मे पाये जाने वाले उपखनिजो (Accessory Minerals) मे फैलस्पार, अभ्रक, मैगनेटाइट, गारनेट आदि उल्लेखनीय हैं। बालुकाश्म का रग आबद्ध करने वाले पदार्थ के अनुसार होता है। अधिकाश बालुकाश्म सफेद, भूरे अथवा लाल होते हैं।

## (२) बालुकाश्मों के वियोजन को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

बालुकाश्म का वियोजन निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है—

(क) कणो को आबद्ध करनेवाले पदार्थों की प्रकृति पर

(ख) कणो के आकार पर

(ग) सन्धियो की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पर

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया, कणो को आबद्ध करनेवाला पदार्थ प्राय· चूना, लोहे का ऑक्साइड अथवा सिलिका होता है। चूना लोहे के ऑक्साइड की तुलना में रासायनिक ऋतुक्षरण से अधिक शीघ्र प्रभावित होता है। जिन बालुकाश्मो के कण सिलिका से चिपके रहते हैं वे अधिक टिकाऊ होते हैं।

स्थूल कणो वाले बालुकाश्म तापक्रम के परिवर्तनो से शीघ्र प्रभावित होते हैं और वे सूक्ष्म कणो वाले बालुकाश्म की तुलना मे जल्दी टूट-फूट जाते हैं।

सन्धियाँ भी वियोजन को प्रभावित करती हैं। सन्धियाँ जितनी अधिक होती हैं, वियोजन अथवा अपक्षरण उतनी ही शीघ्रता से होता है। सन्धियो के अनुरूप वियोजन होने से उच्छृ ग अस्तित्व मे आ जाते हैं।)

## (३) बालुकाश्म भूदृश्य के लक्षण तथा उदाहरण

जब बालुकाश्म के स्तर भजित नही होते हैं, तब वे पठार, पर्वतश्रेणी अथवा टीले का निर्माण करते हैं। बालुकाश्म रन्ध्री शिला है, अतएव उसकी रचनाओ मे पृष्ठ

प्रवाह नही होता। फलस्वरूप उसमे लम्बवत् अथवा खडे ढाल (उच्छृ ग) पाये जाते हैं, लूने के पत्थर की भाँति नतोदर ढाल नही। ऐसे क्षेत्रो मे जिनमे अपक्षरण अधिक



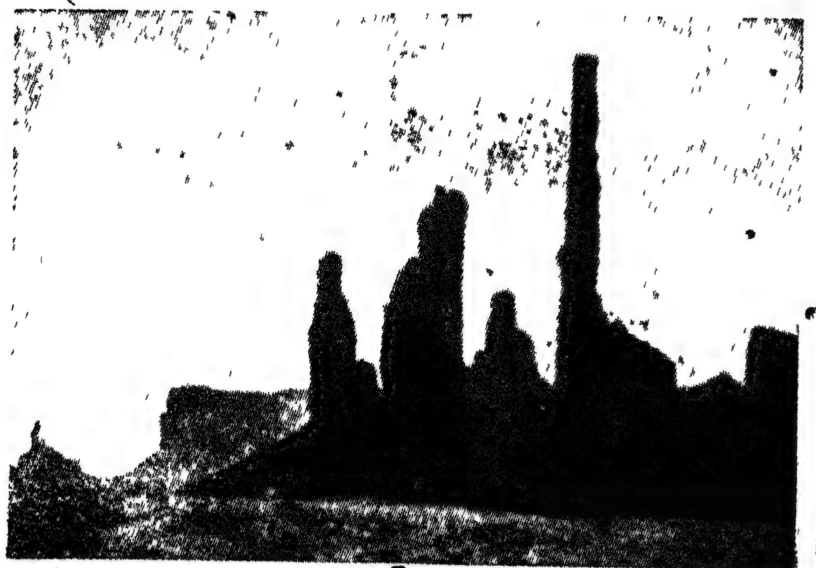
चित्र १५—बालुकाश्म के अवशिष्ट टीले

होता है, नोकदार टीले, जिनकी तुलना कार्स्ट प्रदेश के लैपीज से की जा सकती है, पाये जाते है। सन्धियो के कारण नदी-घाटियो के पार्श्व प्रपाती होते हैं।

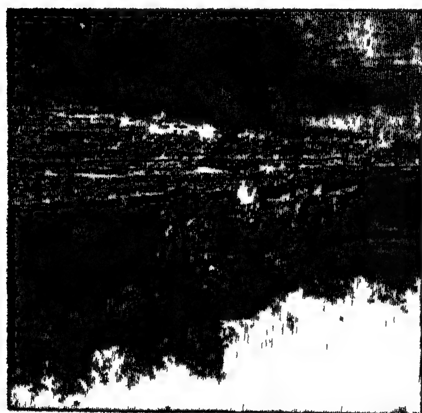
मरुस्थलीय प्रदेशो मे लम्बवत सन्धियो के अनुरूप सिकता-अभिधमन (Sand blasting) होने से, अवशिष्ट स्तभ बन जाते हैं।

बालुकाश्म (Sandstone) के रूपान्तरण से जो शिला बनती है, उसे स्फटिकाश्म (Quartzite) कहते है। स्फटिकाश्म बहुत अवरोधी शिला है। जहाँ यह शिला पाई जाती है, वहाँ सन्धियो के अनुरूप वियोजन होने से उच्छृ ग पाये जाते हैं इसके टूटने से आयताकार शिलाखण्ड नीचे तलहटी पर एकत्र होते रहते हैं। इसके ढाल उन्नतोदर होते हैं।

मध्यप्रदेश के विस्तृत क्षेत्र जैसे भूतपूर्व विन्ध्यप्रदेश तथा पूर्वी राजस्थान विन्ध्य युग के बालुकाश्मो से निर्मित है। इनमे श्रेणियाँ, पठार तथा उच्छृ ग सामान्य हैं। इलाहाबाद से रीवा जाते समय चाकघाट के निकट ऐसा एक उच्छृ ग (Escarpment) स्पष्ट दीखता है। द० पू० उत्तर प्रदेश (जैसे मिर्जापुर) दक्षिणी बिहार (जैसे राजगिर) तथा आन्ध्र (जैसे नल्लामलाइ श्रेणी) मे भी बालुकाश्म का भूदृश्य पाया जाता है। जहाँ बालुकाश्मो के स्तरो के बीच मे शेल पायी जाता है, वहाँ उत्तल पाये जाते हैं। शेल मे मन्द प्रवक्ष तथा बालकाश्म मे उदग्र प्रवण पाया जाना स्वाभाविक ही है। जहाँ क्षैतिज स्तर पाये जाते हैं और शेल के ऊपर बालुकाश्म पाया जाता है वहाँ शेल के ऊपर बालकाश्म की टोपी स्तूपगिरि (Butte) के रूप मे पायी जाती है।



चित्र ३८० —बालुकाश्म के स्तम्भ



चित्र ३८१ बालुकाश्म के उच्छृंग

# परिशिष्टावली ३

## तड़ितझंझायें (THUNDER-STORMS)

**परिभाषा**—तडित-झझा स्थानीय तूफान है, जिसमे बिजली की चमक और कडक होती है।

**तडित-झझा को उत्पत्ति के लिये अनुकूल दशायें**—तडित-झझा की उत्पत्ति के लिये निम्नलिखित दशाओ को पूर्ति होना आवश्यक है —

(१) ओष्ण, आर्द्र अस्थिर वायु (Warm moist, unstable air)—वायुराशि को आर्द्रता ७५ प्रतिशत से अधिक होनी चाहिये। इसके अतिरक्त १४° फ० की समताप-रेखा अथवा उससे ऊपर तक ताप परिवर्तन की गति (Lapse Rate) अस्थिर होना चाहिये। यह अस्थिरता जितनी अधिक होगी, तडितझझा उतनी ही अधिक तीव्र होगी।

(२) द्रवीभवन के समतल (मेघ के आधार) और हिमकरण के समतल (Icing Level) के मध्य मे मेघो की मोटाई काफी होनी चाहिये। सामान्यत यह मोटाई १०,००० फुट से अधिक होनी चाहिये। यह मोटाई जितनी अधिक होगी, सवाहन को क्रिया उतनी ही तीव्र होगी।

(३) किसी समतल पर वायु को अस्थिर बनाने के लिये कोई अभिकर्ता।

**वृष्टि**—तडितझझा मे चक्रवात की अपेक्षा वर्षा अधिक प्रबल (Vigorous) होती है, किन्तु उसकी अवधि अपेक्षाकृत कम होती है। यही कारण है, कि लोग तडितझझा से सम्बन्धित वर्षा को तडित-बौछार ( Thundershower ) कहते हैं, तडित-वृष्टि ( Thunder Rain ) नहीं। कभी २ तडित-झझाओ में ओलो की वर्षा होती है।

**बिजली की चमक तथा कडक** ( Lightning and Thunder )—बिजली की चमक तथा कडक तडित-झझा के अनिवार्य अग हैं। बिजली की चमक बडी बूंदो के टूटने से उत्पन्न होती है। जब झझा की बूंदे बढते-बढते ४ मिलीमीटर की हो जाती हैं, तब उनके सलाग (cohesion) की चरम सीमा आ जाती है और वे टूटने लगती हैं। टूटने के पहले बूंदो मे धन तथा ऋण विद्युत प्रभार (Positive and Negative charges of Electricity) समान मात्रा में होते हैं। बूंदो के टूटने के उपरान्त उनके धन तथा ऋण प्रभार मेघ-राशि के विशेष भागो मे सकेन्द्रित हो जाते हैं। इस प्रकार मेघ तथा पृथ्वी के मध्य मे तथा मेघ के ही भिन्न भागो में विद्युत विभव ( Electric Potential) के अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं। जब इस अन्तर की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है, तब विद्युत विसर्जन (Electric Discharge ) होता है। जब विद्युत विसर्जन होता है, तभी बिजली की चमक होती है। विद्युत विसर्जन मेघ के विभिन्न भागों के बीच में अधिक (६५% से अधिक) होता है) मेघ और पृथ्वी के बीच मे कम। तडित द्वारा उत्पन्न ताप की विशाल राशि से वायु अकस्मात् प्रचण्ड रूप से ( Violently) फैलती है और उसमे प्रस्फोट होता है, जिससे कडक (Thunder) होती है।

**तड़ित-झझाओ का वर्गीकरण**—तडित झझाओ के दो प्रमुख वर्ग किये जा सकते है —

(१) वायुराशि की तडित झझाये—वायुराशि की तडित झझाये उन्हे कहते है जो अपेक्षाकृत समाग (Homogenous) वायुराशियो मे पाई जाती है और जिनका सम्बन्ध अग्रो (Fronts) की क्रिया से नही होता।

वायुराशि की तडितझझाओ के पुन तीन भेद किये जा सकते है—(क) स्थानीय अथवा तापज तडितझझाये (ख) पर्वतीय तडित-झझाये तथा (ग) अभिवहन (Advection) की तडित-झझाये।

(क) स्थानीय अथवा तापज तडित-झझाये—सौर-विकिरण द्वारा धरातल के गर्म होने से उत्पन्न होती है। अतएव, ये पृथ्वी के उष्ण भागो मे, वर्ष की उष्ण ऋतुओ मे तथा दिन के उष्ण भाग मे सबसे अधिक आती है। डोलड्रम की तडित झझाये इसी कोटि की है।

(ख) पर्वतीय तडित-झझाये—पर्वतो के कारण अस्थिर वायुराशि के ऊपर उठने से आती है। अतएव, ये पर्वतीय क्षेत्र मे अधिक आती है।

(ग) अभिवहन की तडित-झझाये—निचले समतल पर उष्ण वायु के अभिवहन (Advection) से अथवा ऊँचे समतल पर शीतल वायु के अभिवहन मे उत्पन्न होती है। दोनो ही दशाओ में (Lapse Rate) बढ जाता है, जिनसे प्रबल सवाहन अस्तित्व मे आ जाता है। सयुक्त राज्य अमरीका के बडे मैदान (Great Plains) मे रात मे आनेवाली तडित-झझाये, ३००० और ६००० फुट के समतलो के मध्य मे उष्ण वायु के अभिवहन के कारण आती है।

(२) **अग्रों (Fronts) की तडित झझायें**—अग्रो की तडित-झझाये, जैसा कि इनके नाम से विदित होता है, वे तडित-झझाये है, जिनका सम्बन्ध वायुराशियो के मध्य मे स्थित सीमावर्ती पृष्ठो (Boundary surfaces) से होता है।

अग्रो की तडित-झझाओं के पुनः दो भेद किये जा सकते हैं—(क) शीतल अग्र की तडित-झझाये तथा (ख) उष्ण अग्र की तडित-झझाये।

(क) शीतल अग्र की तडित-झझाये—उन तडित झझाओ को कहते है जो शीतल अग्र से सम्बन्धित क्रिया का प्रत्यक्ष फल होती है।

शीतल अग्र से दो-तीन सौ मील आगे विकसित होनेवाली तडित-झझाओ को हम पूर्वाग्र तडित झझा (Pre-Frontal Thunderstorm) कहते है।

(ख) उष्ण अग्र की तडित-झझायें—उन तडित झंझाओ को कहते है जो उष्ण अग्र से सम्बन्धित होती है। ये तडित-झझाये उतनी सामान्य नही होती, जितनी शीतल अग्र की तडित-झझायें।

**तड़ित झझाओ का वितरण**—विषुवतीय प्रदेशों में तडित-झझाओ के दिवसों की संख्या (अधिकतर ७५ से १५०, २०० से अधिक बहुत कम) सबसे अधिक है। ध्रुवों की ओर यह सख्या घटती जाती है। यह स्वाभाविक ही है, क्योकि प्रबल सवाहन के प्रादुर्भाव के लिये उच्च तापमान आवश्यक है। विषुवत रेखा से ध्रुवों की दिशा में तड़ित-झझाओ के दिवसों की सख्या का ह्रास क्रमिक नही है—उसमे अनेक विभेदन है। उदाहरण के लिये उपोष्ण प्रदेशो में जहाँ मरुस्थल सकेन्द्रित है यह संख्या ५ से भी कम है। ६०° अथवा ७०° अक्षाश के ऊपर तडित-झझायें नगण्य है।

# परिशिष्ट-प्रश्नावली

## (क) 'अवनि' खण्ड

१ शिला की परिभाषा कीजिये। शिलाओ का विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिये। शिलाओ के आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिये।

२ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये--(१) सन्धि (२) तल्प-तल (३) उपाधोघनित शिला (४) अतिक्षारीय आग्नेय शिला (५) मृण्मय जलज शिला (६) सपिण्ड (७) रूपान्तरण (८) परि-जलज शिला।

३ भूपर्पटी का वर्गीकरण कीजिये तथा प्रत्येक की व्याख्या कीजिये।

४ भूपर्पटी की गतियो से अस्तित्व मे आये हुए भूरूपो का सोदाहरण वर्णन कीजिये।

५ यह सिद्ध करने के लिये कि भूतकाल मे भूपर्पटी की गतियाँ हुई है, आप कौन से प्रमाण प्रस्तुत कर सकते है ?

६ निम्नलिखित सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये--(१) शायी भजन, (२) प्रच्छद, (३) दरार घाटी, (४) समतल का दोलन, (५) समुद्वर्तन।

७ भूकम्प क्या है? भूकम्प क्यो आते है ?

८ भूकम्प के वितरण तथा प्रभाव का वर्णन कीजिये। दक्षिणी भारत की तुलना मे उत्तरी भारत मे भूकम्प अधिक क्यो आते है ?

९ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये--(१) भूकम्प की लहरे, (२) अभिकेन्द्र, (३) भूकम्प रेखाये, (४) भूकम्प का छाया-प्रदेश, (५) भूकम्प से रक्षा के हेतु पूर्वोपाय, (६) समाघात अभिनवकालीन महत्वपूर्ण भारतीय भूकम्प।

१०. निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत 'ज्वालामुखी की क्रिया' पर एक निबन्ध लिखिये--(१) कारण, (२) सम्बन्धित रूपधेय, (३) वितरण, (४) मानवीय महत्व।

११ ज्वालामुखी भूदृश्य (Volcanic Topography) का वर्णन कीजिये।

१२ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये--(१) ज्वालामुखीय शकु, (२) गेसर, (३) पंक ज्वालामुखी, (४) बैथीलिथ (५) फैकोलाइट।

१३ ऋतुक्षरण क्या है? उसकी मात्रा किन प्रतिकारको पर निर्भर है? रितुक्षरण की क्रिया का सुव्यवस्थित विवरण प्रस्तुत कीजिये।

१४ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये--(१) भूस्तम्भ, (२) संपात, (३) अपपर्णन, (४) विसैकतीकरण।

१५. नदी के जीवन की तीनो अवस्थाओ का वर्णन कीजिये।

१६. नदी की क्रिया से सम्बन्धित भूरूपों की विवेचना कीजिये।

१७ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) नदी पथ का अनुक्रमण, (२) नदी अपहरण, (३) कैनियन, (४) पूर-तट, (५) प्रवर्धित, प्रवाह मोड (६) कछारी व्यजन, (७) नदी के उत्तल, (८) जल प्रपात, (९) डेल्टा, (१०) एस्चुअरी।

१८ प्रमुख प्रवाह-व्यवस्थाओ का सचित्र वर्णन कीजिये।

१९ हिमनदी क्या है? उसकी उत्पत्ति तथा सरचना के विषय मे आप क्या जानते है?

२० हिमनदियो का वर्गीकरण कीजिये तथा प्रत्येक की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।

२१ निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत हिमनदियो के भौगोलिक कार्य पर एक निबन्ध लिखिये—(१) अपक्षरण, (२) परिवाहन, (३) निक्षेपण।

२२ हिमानीकृत भूदृश्य का सचित्र वर्णन कीजिये।

२३ हिमानी-निक्षेप तथा नदी-हिम्य निक्षेप मे क्या अन्तर है? नदी-हिम्य निक्षेपो का सक्षिप्त वर्णन कीजिये।

२४ भारतवर्ष के पूर्वकालीन हिमयुगो पर प्रकाश डालिये।

२५. निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) हिमधाव, (२) हिमविवर तथा हिमपात, (३) सर्क, (४) शीर्षविवर, (५) गोशे माउटोनीज (६) हिमोढ (७) ड्रमलिन, (८) एस्कर (९) उत्क्षालित स्थली (१०) हिम नदी के अपक्षरण कानियम।

२६. पवन के भौगोलिक कार्य पर एक निबन्ध लिखिये।

२७. पवन की क्रिया से अस्तित्व मे आये हुए भूदृश्य का सचित्र वर्णन कीजिये।

२८ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) उच्छैल (२) उठान, अपघर्षण तथा साघन नाश, (३) बरखन, (४) लौयस, (५) इनसैलबर्ग।

२९ अपक्षरण, परिवाहन तथा निक्षेपण शीर्षको के अन्तर्गत भूमिगत जल के भौगोलिक कार्य को स्पष्ट कीजिये।

३० निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) जल पटल, (२) पातालतोड़ कुँआ, (३) निर्झर, (४) अश्मीभूत काष्ठ, (५) निश्चुताश्म, (६) मृदा-प्रवाह।

३१ 'अपक्षरण-चक्र' से आप क्या समझते है? भौम्याकारिकी मे उसका क्या महत्व है? अपक्षरण-चक्र की बाधाओ को स्पष्ट कीजिये।

३२. डैविस की इस उक्ति की विवेचना कीजिये—'भूदृश्य सरचना, प्रक्रिया एव प्रावस्था का सयुक्त फल है।'

३३ सामान्य अपक्षरण-चक्र के विकास का विस्तृत वर्णन कीजिये।

३४ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) समतलप्राय (२) नदी का कायाकल्प, (३) मौनैडनोक।

३५. भूरूप के विकास मे जलवायु के प्रभाव को स्पष्ट कीजिये।

३६. कार्स्ट भूदृश्य क्योकर विकसित होता है? उसके प्रमुख लक्षणो का सचित्र तथा सोदाहरण वर्णन कीजिये।

३७ व्याख्या कीजिये—'चूने के पत्थर के क्षेत्रो की सरचना और वहाँ के जलविज्ञान मे घनिष्ट सम्बन्ध है।'

३८ कार्स्ट प्रदेश मे अपक्षरण-चक्र के विकास का वर्णन कीजिये।

३९ ग्रेनाइट क्या है? भारतीय उदाहरण देते हुए ग्रेनाइट भूदृश्य का वर्णन कीजिये।

४० बालुकाश्म के सन्दर्भ मे इस कथन की विवेचना कीजिये कि शिलाये भूदृश्य को प्रभावित एव निर्धारित करती है।

४१ निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत 'मैदान', 'पठार' अथवा 'पर्वत' पर एक निबन्ध लिखिये—(१) परिभाषा, (२) उत्पत्ति, (३) वर्गीकरण, (४) मानवीय महत्व।

४२. निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) नील नदी की देन, (२) अन्तर्पर्वतीय पठार, (३) गिरिप्रस्थ, (४) अवशिष्ट पर्वत, (५) कौर्डिलैरा।

४३ द्वीपो की उत्पत्ति तथा प्रकारो का सोदाहरण वर्णन कीजिये।

४४ झीले कैसे बनती है? झीले कितने प्रकार की होती है? झीलो के मानवीय महत्व को स्पष्ट कीजिये।

४५ निम्नलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) वृषभ धनु झील, (२) दरारी झील, (३) क्रेटर झील, (४) प्लाया, (५) भारतीय झीले।

४६ मिट्टियो का वर्गीकरण किन-किन आधारो पर किया जा सकता है? ससार की मिट्टियो का वर्गीकरण कीजिये।

४७ भारतवर्ष पर विशेष ध्यान देते हुए 'भूमि के अपक्षरण की समस्या' पर एक निबन्ध लिखिये।

४८ भारतवर्ष को भौम्याकारिक इकाइयो मे बाँटिये। प्रत्येक का सक्षिप्त वर्णन कीजिये। हिमालय पर्वत की सरचना पर विशेष प्रकाश डालिये।

## (ख) उदधि खण्ड

४९ महासागरो के अन्वेषण का सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कीजिये।

५० महासागरीय अन्वेषण सम्बन्धी विधियो एव यत्रो का सक्षिप्त वर्णन कीजिये।

५१ महासागर-जल के निम्नलिखित लक्षणो पर प्रकाश डालिये—(१) क्षेत्रफल (२) गहराई, (३) पृष्ठ की प्रकृति, (४) सरचना, (५) वर्ण, (६) भासा, (७) आलगत्व।

५२ अन्ध, हिन्द अथवा प्रशान्त महासागर के नितल का विस्तृत वर्णन कीजिये।

५३ सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) उच्चतामितीय वक्र (२) महाद्वीपीय निधाय (३) महासागरीय अथाह।

५४ निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत महासागरो के तापक्रम पर एक निबन्ध लिखिये—(१) तापक्रम का क्षैतिज वितरण, (२) तापक्रम का लम्बवत वितरण, (३) तापक्रम के वितरण को प्रभावित करनेवाले प्रतिकारक।

९१ पृथ्वी की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न विचारधाराओ की रूपरेखाये प्रस्तुत कीजिये। प्रत्येक के गुण-दोष भी इगित कीजिये।

९२ पृथ्वी की आयु निर्धारित करने की विभिन्न विधियो को स्पष्ट कीजिये। प्रत्येक प्रणाली के गुण-दोष भी बतलाइये।

९३ पृथ्वी की आन्तरिक रचना पर एक निबन्ध लिखिये। भूकम्प की लहरें पृथ्वी की आन्तरिक रचना पर क्या प्रकाश डालती है ?

९४ महाद्वीपो और महासागरो की उत्पत्ति सम्बन्धी उपकल्पनाओ का सक्षिप्त परिचय दीजिये।

९५ क्या महाद्वीप और महासागर स्थायी हैं ? अपने उत्तर के समर्थन मे प्रमाण प्रस्तुत कीजिये।

९६ निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत महाद्वीपीय प्रवाह पर एक निबन्ध लिखिये—(१) सिद्धान्त के विकास का कारण, (२) सिद्धान्त की रूपरेखा, (३) सिद्धान्त के पक्ष तथा विपक्ष मे प्रमाण।

९७ भूसन्तोल के सिद्धान्त के विकास का सुव्यवस्थित विवरण प्रस्तुत कीजिये। भारतवर्ष की भूसन्तोल सम्बन्धी दशाओ पर प्रकाश डालिये।

९८ सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) क्षतिपूर्ति का समतल, (२) ग्वाकृष्टि की विचालित्र, (३) भूसन्तोल के सम्बन्ध मे हेफोर्ड, जौली तथा एरी की धारणाये।

९९ पर्वतो के निर्माण को स्पष्ट करने के लिये प्रस्तुत किये गये सिद्धान्तो के नाम बतलाइये। किसी एक सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना कीजिये।

१००. हिमालय पर्वत के सन्दर्भ मे इस कथन की व्याख्या कीजिये—पर्वत भूद्रोणियो मे विकसित हुए है।'

१०१ निम्नलिखित सिद्धान्तो मे से किसी एक का सचित्र विवरण प्रस्तुत कीजिये तथा उसके गुण-दोष इगित कीजिये—

(१) तापीय सकोचन का सिद्धान्त

(२) भूद्रोणी विषयक उपकल्पना

(३) होम्स का सवाहन की धाराओ का सिद्धान्त।

१०२ पूर्वकालीन हिमयुगो के कारणो को स्पष्ट कीजिये।

१०३ अटोल कैसे बन जाते है ?

१०४ शीतोष्ण चक्रवात की तुलना उष्णप्रदेशीय चक्रवात से कीजिये। प्रत्येक की उत्पत्ति को भी स्पष्ट कीजये।

१०५ ज्वार-भाटा विषयक प्रमुख सिद्धान्तो का सचित्र वर्णन कीजिये।

१०६ भूद्रोणियो पर एक सक्षिप्त निवन्ध लिखिये।

१०७ इस कथन की व्याख्या कीजिये—भूद्रोणी की अवधारणा का श्रेय हाल तथा डाना नामक विद्वानों को है, किन्तु इस सिद्धान्त का विकास, वास्तव में, हाग ने किया है।'

१०८—सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये—(१) भूद्रोणियो का वर्गीकरण, (२) कोबर का भूद्रोणीय गिरि-निर्माण का सिद्धान्त, (३) अवसादन की अधोगति।

## परिशिष्ट ५

# मरुस्थलीय क्षेत्रों में अपंक्षरण-चक्र

(The Cycle of Erosion in Arid Regions)

मरुस्थलो मे वायु तथा जल के प्रभाव के आपेक्षिक महत्व के विषय मे विवाद है। हम जानते है कि भूतकाल मे जलवायु के महान विभेदन हुए है। मरुस्थलो मे पाई जानेवाली बडी आकार की वादिया तथा विस्तृत झील-निक्षेप निश्चय ही वर्तमानकालीन उष्ण दशाओ मे नही बन सकते थ। वायु आर्द्र भूमि का अपक्षरण करने मे असमर्थ होती है, अतएव मरुस्थलीय अपक्षरण-चक्र का आधार-तल (Base Level) जल-पटल (Water table) होना है।

मरुस्थलीय अपक्षरण-चक्र की विभिन्न प्रावस्थाओ का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

**युवावस्था**—विषय के सरल प्रतिपादन के लिये हम ऐसा आरम्भिक भूरूप ले ले रहे है, जिसमे भूपर्पटी की गतियो से बने उभार और गड्ढे है। युवावस्था मे प्रत्येक बेसिन अपने निकटवर्ती बेसिन से पृथक होगा। उच्चस्थलो मे छोटी, अस्थायी तथा सविराम नदियाँ विकसित होगी, जो कालान्तर मे वादियो और केनियनो का रूप ग्रहण कर लेगी। शिला-क्षेप्य (Rock waste) सागर तक नही पहुँचता, वरन वह व्यजनो (Fans) का निर्माण करता है तथा निम्नतो मे फैलता जाता है, जिससे वे रेतीले मैदानो मे परिणत होते चले जाते है। युवावस्था मे विषमताये महत्तम होती है तथा जलोत्सारण के बेसिनो की बहुलता होती है, जो स्थानीय आधार-तल (Local Base Level) को प्रदर्शित करते है। उच्च-स्थलो की चोटियाँ शुष्क ऋतुक्षरण से क्रमश नीची होती चली जाती है।

**प्रौढावस्था**—मरुस्थलों मे वर्षा के सीमित होने के कारण युवावस्था से प्रौढा-वस्था का परिवर्तन अत्यन्त मन्द वेग से होता है। पर्वतीय अग्र (Mountain fronts) अपक्षरण द्वारा पीछे की ओर कटते जाते है, विभाजक (Divides) सकरे होते जाते है तथा मध्यान्तरीय बेसिन निक्षेपण के कारण चौडे और ऊँचे होते जाते है। नदियो के कछार और पर्वतीय अग्र के मध्य मे सकरे शैल-अपक्षरित मैदान होते है, जिन्हे पैडिमैण्ट्स (Pediments) कहते है। कछारी व्यजन परस्पर मिलकर मैदानो का निर्माण करते है, जिन्हे बजादा (Bajada) कहते है। कभी-कभी कछारी व्यजनो के मिल जाने से छोटे बेसिन भी बन जाते है। हम अपने पूर्व ज्ञान से यह जानते है कि आर्द्र अपक्षरण के क्षेत्रो मे प्रौढावस्था मे विषमताये अधिकतम होती है। इसके विपरीत मरुस्थलीय प्रदेश मे प्रौढावस्था की विशेषता विषमताओ का घट जाना है।

**वृद्धावस्था**—वृद्धावस्था मे उच्च स्थल घिसकर निचले समतल मैदान मे परिणत हो जाता है। समतल के नीचे हो जाने से वर्षा की मात्रा और भी घट जाती है। इस अवस्था मे अपक्षरण तथा परिवाहन का प्रमुख साधन वायु होती है। वायु धूलिकणो को मरु-स्थल के बाहर तक परिवाहित करती है जिससे मरुस्थल का धरातल नीचा होता है तथा विस्तार बढता है। वृद्धावस्था की प्रमुख विशेषता विस्तृत रेतीला मैदान है, जिसमे बालुका-कूट (Sand dunes) तथा प्रपाती प्रवण वाले टीले, जिन्हे इन्सेलबर्ग (In-

selberg) कहते है, पाये जाते है। इन्सैल्बर्ग की व्याख्या पृष्ठ ९६ मे की गई है। इनकी तुलना मौनडनोक (पृ० १०९) से की जा सकती है। ऋतुक्षरण के अवरोध के कारण ये अवशिष्ट रह जाते है।

## लौयस क्षेत्र मे अपक्षरण चक्र
## (Cyclo of erosion in a Loess Region)

**युवावस्था**—लौयस पठारो के उच्चस्थित समतल धरातलो मे प्राय प्राकृतिक कुये अथवा गड्ढे पाये जाते है। ये गड्ढे बहुधा जलदरिया (Ravines) अथवा कैनियनो की प्रधि (Rims) के निकट पाये जाते है। इन गड्ढो का निर्माण रासायनिक प्रक्रियाओ (जैसे घोल) से नही होता। नीचे के पदार्थ के हट जाने से धरातल की मिट्टी नीचे धँस जाती है, जिससे ये अस्तित्व मे आ जाते है। इन गड्ढो के बीच म स्थित नालियाँ आकार मे बढते-बढते कभी-कभी प्राकृतिक सेतुओ (Natural Bridges) का रूप ग्रहण कर लेती है।

**प्रौढावस्था**—मे नालियो की बहुलता से बैडलैण्ड भूदृश्य (Badland Landscape) अस्तित्व मे आ जाता है। जल की क्रिया से निर्मित 'बैडलैण्ड' मे घाटियाँ V आकृति की होती है, किन्तु इस दशा मे घाटियो के पार्श्व लम्बवत होते है। ये घाटियाँ आवागमन की दृष्टि से सुविधाजनक होती है, अतएव प्राकृतिक पथो का कार्य करती है।

**वृद्धावस्था**—मे लौयस क्षेत्र घाटियो द्वारा पृथक नुकीले टीलो के प्रदेश में परिणत हो जाता है।

## परिशिष्ट ६

# परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

(क) आगरा विश्वविद्यालय की बी० ए० तथा बी० एस-सी० परीक्षा के प्रश्न

### १९६०

१ आग्नेय शिलाओ का वर्गीकरण कीजिये तथा उनके प्रमुख लक्षणो को स्पष्ट कीजिये। वे मानव के किन उपयोगो मे आती है?

२. ज्वालामुखी की क्रिया के विभिन्न रूपो की सक्षिप्त व्याख्या कीजिये और उनसे सम्बन्धित भूआकारो का वर्णन कीजिये।

४ 'अपक्षरण-चक्र' से क्या तात्पर्य है? 'सामान्य अपक्षरण-चक्र' की प्रक्रिया की सक्षिप्त विवेचना कीजिये।

५. 'विभगन' से क्या तात्पर्य है? विभगन कब होता है? विभगो के कुछ प्रमुख प्रकारो का विवरण कीजिये।

६ स्थानीय हवाये क्या है? निश्चित उदाहरण देते हुए उनकी उत्पत्ति की रीति तथा स्थानीय मौसम पर उनके प्रभाव को स्पष्ट कीजिये।

७. उष्णप्रदेशीय चक्रवात क्या है? वे कैसे उत्पन्न होते है? उनका भौगोलिक वितरण दीजिये।

८. ज्वार-भाटा की उत्पत्ति को चित्रो की सहायता से स्पष्टत. समझाइये।

९. प्रवाली रचनाये तथा द्वीप क्या है? उनके विकास तथा वर्तमान भौगोलिक वितरण को स्पष्ट कीजिये।

१०. निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —

(क) उच्चतामितीय वक्र (ख) रिया तट (ग) प्रवाह-मोड़

(घ) पैंगेइया (ङ) फैरल का नियम (च) निर्झर

### १९५९

१ झीले क्या है? वे कैसे निर्मित होती है? विभिन्न प्रकार की झीलो का विवरण दीजिये तथा मनुष्य के लिये उनकी उपयोगिता बतलाइये।

२. भूमिगत जल के अपक्षरण एव निक्षेपण के कार्य का वर्णन कीजिये।

३. 'भूद्रोणियो में से ही पर्वतो का जन्म हुआ है' इस कथन पर उदाहरण सहित टिप्पणी लिखिये।

४. अपक्षरण, परिवाहन तथा निक्षेपण के अभिकर्त्ता के रूप में पवन के कार्य की व्याख्या लिखिये।

५. भूकम्प पर एक भौगोलिक निबन्ध लिखिये।

६. नदी के मथ की विभिन्न प्रावस्थाओ मे उसके कार्य का वर्णन कीजिये।

७. सागर-नितल के निक्षेपो का वर्णन कीजिये।

८ समुद्री धाराओ को उत्पत्ति के कारणो को व्याख्या कीजिये तथा हिन्द महासागर की धाराओ का विवरण दीजिये।

९ पृथ्वी पर सनातन हवाओ की व्यवस्था का विवरण दीजिये और बतलाइये कि वायु-भार की पेटियो का उनके ऊपर क्या प्रभाव पडा है?

१० भूपृष्ठ पर सौर्यातपन के वितरण की व्याख्या कीजिये।

११ निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर टिप्पणी लिखिये —
(क) नदी अपहरण (ख) तापान्तर (ग) प्रति चक्रवात (घ) फियर्ड (ङ) रासायनिक ऋतुक्षरण।

१९५८

१ ज्वालामुखी की क्रिया के कारणो की विवेचना कीजिये तथा यह बतलाइये कि ज्वालामुखी के उद्‌गमन के समय कौन कौन से पदार्थ बाहर निकलते हैं।

२. पृथ्वी की आन्तरिक रचना का व्याख्यात्मक विवरण दीजिय।

३ 'भूसन्तोल' क्या है? इसके सिद्धान्त एवं उपयोग को स्पष्ट कीजिये।

४ मैदानो की उत्पत्ति तथा उनके विभिन्न प्रकारो की विवेचना कीजिये।

५ निम्नलिखित मे से किसी एक भूदृश्य का भौगोलिक विवरण दीजिये —
(क) हिमनदी द्वारा प्रभावित प्रदेश (ख) समुद्रतटीय भू-दृश्य।

६ निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर टिप्पणी लिखिय —
(क) आश्चुताश्म तथा निश्चुताश्म, (ख) पातालतोड कुँआ, (ग) पूर्व-गामी नदियाँ, (घ) नदी के उत्तल।

७ धाराओ की उत्पत्ति के कारणो की व्याख्या कीजिये तथा उनकी आर्थिक महत्ता बतलाइये।

८ महासागरो के पृष्ठ के तापक्रम के वितरण का सकारण भौगोलिक वृतान्त लिखिये।

९ उष्ण कटिबन्ध और शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो का अन्तर इन शीर्षको के अन्तर्गत स्पष्ट कीजिये —
(क) उत्पत्ति, (ख) समभार रेखायें, (ग) वर्षा तथा पवन।

१०. पृथ्वी पर तापक्रम के क्षैतिज वितरण को प्रभावित करनेवाले प्रतिकारको की सचित्र व्याख्या कीजिये।

१९५७

१. 'हिमनदी और उसके कार्य' पर भौगोलिक निबन्ध लिखिये।

२ भूकम्प क्या है? भूकम्प के कारणो की विवेचना कीजिय।

३ अपक्षरण, परिवाहन तथा निक्षेपण के अभिकर्त्ता के रूप मे पवन के कार्य का सचित्र विवरण दीजिये।

४. पृथ्वी की उत्पत्ति सम्बन्धी प्रमुख विचार-धाराओ को स्पष्ट कीजिय तथा उनकी आलोचनात्मक परीक्षा कीजिये।

५. झीलें कैसे बनती हैं? विभिन्न प्रकार की झीलो का विवरण दीजिये तथा उनके आर्थिक महत्व को स्पष्ट कीजिये।

६ अपक्षरण-चक्र पर एक विस्तृत भौगोलिक लेख लिखिये।

७ अटलांटिक महासागर की धाराओ का वर्णन कीजिये तथा उत्तर अटलांटिक ड्रिफ्ट के आर्थिक महत्व को स्पष्ट कीजिये।

८ प्रवाल क्या है? ससार मे उसके विकास तथा वितरण की भौगोलिक दशाओ का वर्णन कीजिये।

९ शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात की उत्पत्ति तथा प्रकृति का व्याख्यात्मक विवरण दीजिये।

१०. विषुवतीय वर्षा के कारणो को स्पष्ट कीजिये तथा उसके मौसमी वितरण का वर्णन कीजिये।

१९५६

१ उष्ण मरुस्थलीय प्रदेश के लाक्षणिक भूमितीय रूपधेयो की उपस्थिति तथा निर्माण को स्पष्ट कीजिये तथा उनका वर्णन कीजिये।

२ परिचित उदाहरण देते हुए पर्वतो के प्रमुख प्रकारो के नाम बतलाइये। प्रत्येक के निर्माण को आप यथाशक्ति स्पष्ट कीजिये।

३ 'तेजोद्गरण तथा भूपटो की गतियाँ' शीर्षक एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

महासागरो एव महाद्वीपो के वितरण को स्पष्ट कीजिये।

४ 'विनाश, परिवाहन तथा निक्षेपण करना वर्षा एव नदी का कार्य है' सावधानीपूर्वक तथा सुव्यवस्थित ढग से नदी के कार्य को शीर्ष से मुहाने तक स्पष्ट कीजिय।

५. आग्नेय, जलज तथा रूपान्तरित शिलाओ के प्रदेशो मे क्या अन्तर पाये जाते है?

६ निम्नलिखित मे से किन्ही चार पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —

(क) ग्रिया तट (ख) नदी अपहरण (ग) भूद्रोणी, (घ) विदर-प्रवाह, (ङ) तृतीयक युग, (च) पातालतोड कुँआ।

७ उष्णप्रदेशीय चक्रवात की उत्पत्ति तथा लक्षणो का वर्णन कीजिये।

८ 'भूमध्यसागरीय प्रदेश उष्ण एव शीतोष्ण कटिबन्धो के अन्तर्वर्ती है' स्पष्ट कीजिये वे किस प्रकार अन्तर्वर्ती है?

९ विषुवतरेखा के दक्षिण की धाराओ का सचित्र एव पूर्ण विवरण दीजिये। निकटवर्ती स्थलखण्डो के जलवायु पर उनके प्रभाव को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

महासागरो तथा सागरो मे कौन से निक्षेप एकत्र हो रहे है? ६०० फुट के नीचे के निक्षेपो की उत्पत्ति एव प्रकारो का वर्णन कीजिये।

१० निम्नलिखित मे से किन्ही दो पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —

(क) जल राशियाँ, (ख) समय और ज्वार, (ग) एशिया अथवा यूरोप की दो स्थानीय हवाये (घ) शीतल अग्र।

## १९५५

१ भूद्रोणी क्या है? 'भूद्रोणी की उत्पत्ति तथा उसका भरा जाना उसी स्थिति पर भजित पर्वत श्रेणी की रचना का पूर्व संकेत है' विवेचना कीजिये।

२ समुद्वर्तन से आप क्या समझते हैं? अभिनवकालीन आसाम तथा जापान के भूकम्पो पर विशेष ध्यान देते हुए भूकम्प द्वारा प्रस्तुत वृत्त (स्थलीय तथा महासागरीय) का पूर्ण एव युक्तियुक्त विवरण दीजिये।

३ विभिन्न प्रकार की शिलाओ का वर्गीकरण कीजिये। आप प्रत्येक को कैसे पहचानेगे? आग्नेय शिलाओ के आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिये।

४. ऋतुक्षरण क्या है? कार्स्ट अथवा मरुस्थलीय प्रदेश मे ऋतुक्षरण द्वारा कौन से लाक्षणिक भूरूप उत्पन्न होते है?

५ महाद्वीपो के प्रवाह से क्या तात्पर्य है? वैजेनर ने अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिये कौन से प्रमाण एकत्र किये थे?

६ निम्नलिखित मे से किसी एक पर टिप्पणी लिखिये —

(क) झील की प्रकारे, (ख) हरित-गृह (Green house) का प्रभाव (ग) तापक्रम का उत्क्रमण, (घ) नदी अपहरण, (ङ) मर्क (च) तेजोद्गर तत्व।

७ 'बदली वाले दिन धूपदार दिनो की तुलना मे ठण्डे होते है, किन्तु बदलीवाली राते चाँदनी रातो की अपेक्षा उष्ण होती है' इस कथन के तथ्य का आप कैसे सिद्ध करेंगे।

८. सूर्यातपन क्या है? आगन्तुक सौर विकिरण तथा बाहर जानेवाले धरातलीय विकिरण को वायुमण्डल क्या करता है? भूपृष्ठ पर सौर्यातपन के वितरण को स्पष्ट कीजिये।

९ प्रवाली रचनाये तथा द्वीप क्या है? वे किन भौगोलिक दशाओ के अन्तर्गत निर्मित होते है? उनका ससार मे वितरण दीजिये तथा उनके महत्व की विवेचना कीजिये।

१०. महासागरो मे लवण की उत्पत्ति को स्पष्ट कीजिये और सागर पृष्ठ पर लवणता के विभेदनो का कारण बतलाइये।

## १९५४

१ भूसन्तोल के सिद्धान्त को तथा उससे सम्बन्धित भूद्रोणीय निक्षेपण तथा पर्वतो के उन्मज्जन को स्पष्ट कीजिये।

२ मैदानों के निर्माण की विवेचना कीजिये। उनके विभिन्न प्रकारो के नाम बतलाइये तथा उनके उपयोग लिखिये।

३. स्पष्ट कीजिये शिलाये भूदृश्य को कैसे प्रभावित करती है। अपने उत्तर को ग्रेनाइट अथवा चूने के पत्थर से सम्बन्धित भूदृश्य के उदाहरण द्वारा पुष्ट कीजिये।

४ हिमनदी अथवा नदी-हिम्य अपक्षरण से सम्बन्धित भू-रूपों का कुछ विस्तार से वर्णन कीजिये।

५. ज्वालामुखी की क्रिया से सम्बन्धित भूरूपो का सोदाहरण वर्णन कीजिये।

६. निम्नलिखित मे से किन्ही ३ पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —
(क) धूल का भूत, (ख) तट-रेखाओ की प्रकारे, (ग) निर्झर (घ) नदी-अपहरण (ङ) प्रवाली रचनाये।

७ किन्ही ऐसे दो आशिक ममावृत सागरो मे जिनके लक्षण असमान हो जल की तापीय मरचना की परीक्षा कीजिये।

९ 'ऋतुओ का कारण पृथ्वी का सूर्य के चारो ओर परिक्रमा करना है' इस कथन मे क्या दोष है, इगित कीजिये। शीतोष्ण कटिबन्ध मे ऋतुओ के कारणो को पूर्णत स्पष्ट कीजिये।

१०. ममार के अधिकाश उष्ण मरुस्थल महाद्वीपो के पश्चिमी किनारो पर उन अक्षाशो मे स्थित है, जहाँ नियमित व्यापारिक हवाये प्रवाहित होती है' इस कथन की विवेचना कीजिये। ससार के किन और भागो मे मरुस्थल पाये जाते है?

## १९५३

१ भूपर्पटी की शिलाओ के एक वर्गीकरण को सुझाइये तथा उनकी उत्पत्ति के ढग का मक्षिप्त वर्णन कीजिये।

२ नदी के जीवन के इतिहास की ३ प्रावस्थाओ के प्रमुख लक्षणो तथा उनसे सम्बन्धित भूरूपो का वर्णन कीजिये।

३ अपक्षरण, परिवाहन तथा निक्षेपण के अन्तर्गत हिम नदी के कार्य का वर्णन कीजिये।

४ झील वनने के प्रमुख कारण क्या है। विभिन्न प्रकार की झीलो का वर्गीकरण कीजिये तथा उनके आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिये।

५ निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत भूकम्प की विवेचना कीजिये—(क) कारण (ख) भूकम्प की लहरो की प्रकृति (ग) वितरण।

६ निम्नलिखित मे मे किन्ही ४ पर टिप्पणियाँ लिखिये—(क) अटोल (ख) बरखन (ग) गेसर (घ) प्रच्छद (ङ) पक ज्वालामुखी (च) रिया तट।

७. पश्चिमी यूरोपीय प्रकार की जलवायु के प्रमुख लक्षण वतलाइये। वह सैण्ट लॉरेन्स प्रकार की जलवायु से किस प्रकार भिन्न है?

८ चक्रवात के विकास की विभिन्न प्रावस्थाओ का वर्णन कीजिये तथा उष्ण प्रदेशीय एव शीतोष्ण प्रदेशीय चक्रवातो के सामान्य पथो की विवेचना कीजिये।

९ निम्नलिखित मे मे किन्ही ३ की विवेचना कीजिये—(क) सूर्यातपन (ख) प्रति-चक्रवात (ग) जल तुण्ड (घ) महाद्वीपीय निधाय (ङ) महासागरीय अथाह।

१० समुद्री धाराओ के प्रमुख कारण क्या है? उनके महत्वपूर्ण प्रभावो पर प्रकाश डालिये तथा प्रशान्त महासागर की प्रमुख धाराओ का वर्णन कीजिये।

## १९५२

१ पृथ्वी की रचना का सक्षिप्त चित्राकन कीजिये। पृथ्वी के आन्तरिक भाग के ज्ञान के लिये भूकम्पलेख किस प्रकार सबसे मबल साधन है।

२ जलज शिलाओ की उत्पत्ति की रीति तथा प्रमुख लक्षणोका वर्णन

कीजिये। उनकी सामान्य प्रकारो को बतलाइये तथा उनके आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिये।

३ निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत ज्वालामुखी की क्रिया का वर्णन कीजिये—(क) कारण (ख) सम्बन्धित भूरूप तथा (ग) वितरण।

४ प्रातिनूतन हिमयुग से आप क्या समझते हैं? यूरोप तथा उत्तरी अमरीका मे उसके कुछ प्रमुख भौम्याकारिकीय प्रभावो पर प्रकाश डालिये।

५ अपक्षरण, परिवाहन तथा निक्षेपण के अन्तर्गत भूमिगत जल के कार्य की विवेचना कीजिये।

६ निम्नलिखित मे से किन्ही चार पर टिप्पणियाँ लिखिये—(क) सर्क (ख) (ख) रोशे माउटोनीज (ग) अध्यारोपित प्रवाह (घ) लौयस (ड) ऋतुक्षरण (च) भूद्रोणी।

७ विषुवनीय प्रदेश मे वर्षा संवाहन प्रकार की होती है। ऐसा क्यो है? स्पष्ट कीजिये तथा तापक्रम, वायुभार और वर्षा के पारस्परिक सम्बन्ध को लिखिये।

८ निम्नलिखित मे से किन्ही ३ की विवेचना कीजिये—(क) फॉन वायु (ख) तापक्रम का उत्क्रमण (ग) आर्द्रता (घ) मौसमी हवायें (ड) मेघ।

९ 'समुद्र का पानी सदैव नमकीन होता है किन्तु उसका खारापन सर्वत्र एक सा नही होता' महासागरो, आंशिक समावृत सागरो तथा दशान्तरीय सागरो और झीलो का उदाहरण देते हुए इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

१० ड्रिफ्ट, धारा तथा स्ट्रीम को स्पष्ट कीजिये तथा अन्ध महासागर की प्रमुख धाराओ का वर्णन कीजिये।

## १९५१

१ भूपर्पटी की गतियो के प्रमुख प्रकारो तथा धरातल पर उनसे निर्मित भूरूपो का वर्णन कीजिये।

२ हिमनदी से प्रभावित क्षेत्र का सचित्र विवरण लिखिये।

३ भूपृष्ठ पर तापक्रम तथा सौर्यातपन के वितरण की विवेचना कीजिये इस वितरण को प्रभावित करनेवाले प्रतिकारको को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो की उत्पत्ति को स्पष्ट कीजिये। वे उष्णप्रदेशीय चक्रवातो से किस प्रकार भिन्न होते हैं? मौसम पर उनके प्रभाव की विवेचना कीजिये।

४ मैदानो के निर्माण की विवेचना कीजिये। उनकी विभिन्न प्रकारो का वर्णन कीजिये तथा उनके उपयोग बतलाइये।

अथवा

डैविस द्वारा विकसित भौगोलिक चक्र के विचार का विवेचना कीजिये। नदी-घाटियो के निर्वचन मे यह विचार कहा तक उपयोगी है?

५. निम्नलिखित मे से किन्ही तीन की विवेचना कीजिये—(क) समुद्री धारायें (ख) प्रवाली रचनायें (ग) झीलें (घ) मरुस्थलीय भूदृश्य (ड) पृथ्वी की रचना।

१९५०

१ महासागरो और महाद्वीपो की उत्पत्ति को स्पष्ट कीजिये।

२ समतलन के अभिकर्ता के रूप मे लहरो के कार्य का वर्णन कीजिये।

३. भूपृष्ठ पर आर्द्रता तथा वृष्टि के वितरण एव ऋतुवत विभेदन की विवेचना कीजिये।

अथवा

भूमध्यसागरीय जलवायु का विस्तृत वर्णन कीजिये।

४ पर्वत क्या है? वे कैसे बनते है? उनकी उत्पत्ति से सम्बन्धित सभी विचारधाराओ को दीजिये।

५ निम्नलिखित मे से किन्ही तीन पर टिप्पणियाँ लिखिये—(क) कार्स्ट भूदृश्य (ख) मेघ (ग) तडितझझा (घ) भूसन्तोल (ड) नदी अपहरण।

१९४९

१. समुद्वर्तन क्या है? वह भूरूपो को किस प्रकार प्रभावित करता है? उदाहरण दीजिये तथा उससे सम्बन्धित अति सामान्य भूरूपो को स्पष्ट कीजिये।

२ भूपृष्ठ पर औसत वायुभार के वितरण के तापीय तथा गत्यात्मक नियन्त्रण की विवेचना कीजिये।

अथवा

मध्य अक्षाशो मे चक्रवातो की उत्पत्ति को स्पष्ट कीजिये। उन क्षेत्रो के मौसम पर उनके प्रभावो की विवेचना कीजिये।

३ अपक्षरण, परिवाहन तथा निक्षेपण के अन्तर्गत हिम नदी के कार्य का वर्णन कीजिये।

४. भूरूपो के विकास मे बहते हुए जल के कार्य का कुछ विस्तृत वर्णन कीजिये तथा नदी प्रवाह की विभिन्न प्रावस्थाओ को स्पष्ट कीजिये।

५ निम्नलिखित मे से किन्ही तीन की विवेचना कीजिये—सागर की लवणता, प्रवाली रचनाये, झीले, भूकम्प तथा मरुस्थलीय भूदृश्य।

१९४८

१. शिलाओ के रूपान्तरण से आप क्या समझते है? उदाहरण देते हुए इसकी विभिन्न रीतियो को बतलाइये।

२. कार्स्ट भूदृश्य क्या है? उन प्रक्रियाओ का वर्णन कीजिये जिनसे यह विकसित होता है।

३. मैदानो के निर्माण की विवेचना कीजिये। उनके विभिन्न प्रकारो तथा उपयोगो का वर्णन कीजिये।

४ महाद्वीपीय तथा महासागरीय जलवायु मे क्या अन्तर है? इन अन्तरो का कारण बतलाइये।

५. किन्ही ४ की विवेचना कीजिये—भूकम्प का अभिकेन्द्र, नदीका आधारतल, रिया तट, अन्त्य हिमोढ, भूपर्पटो की क्रिया से निर्मित घाटी, गेसर।

१९४७

१. समुद्री धाराओ की विभिन्न प्रकारे क्या है? वे कैसे उत्पन्न होती है?

संसार की प्रमुख उष्ण धाराओं को निर्धारित कीजिये तथा यह बतलाइये कि वे प्रत्येक दशा में निकटवर्ती स्थलखण्ड को कैसे प्रभावित करती हैं।

२. भूपृष्ठ पर सौर्यातपन के वितरण की विवेचना कीजिये। इस वितरण को प्रभावित करनेवाले प्रतिकारकों का वर्णन कीजिये।

३. पश्चिमी यूरोपीय महासागरीय जलवायु का वर्णन कीजिये। उसके प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिये।

४. अपक्षरण, परिवाहन तथा निक्षेपण के अन्तर्गत भूमिगत जल के कार्य का वर्णन कीजिये।

५. 'भूसन्तोल' के सिद्धान्त की विवेचना कीजिये तथा उसके उपयोग को बतलाइये।

---

## (ख) आगरा विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा के प्रश्न

### 1960

1 Summarize and discuss the significance of the main features of the location and structure of the Caledonian, Hercynian and Alpine orogenic areas of any part of the world.

2 By appropriate sketches and diagrams only (description is not necessary) illustrate any five of the following—(*a*) Tetrahedral distribution of continents and oceans (*b*) Types of faults (*c*) types of lava (*d*) Types of cloud (*e*) Pangaea (*f*) Solar system (*g*) Polar front theory (*h*) Desert dunes and sand sheets (*i*) Springs, stalactites and stalagmites (*j*) Normal cycle of erosion (*k*) Zones of the earth's interior

3 'A Geosyncline is essentially a result of earth-movements the precursors of the vigorous revolutionary movements that follow at a later date' Discuss

4 Comment critically and briefly on any two of the following.—

(*i*) Classifying climates is like classifying air-masses, there are too many transitional types giving rise to dissatisfaction.

(*ii*) The crust of the earth sinks with loading and rises with unloading

(*iii*) Glaciers are large scale natural thermometers

(*iv*) According to Griggs.' 'There is a possible correlation between the successive stages of an orogenic cycle and a convection current cycle'.

5. Write a well-composed essay on any one of the following (*a*) Metamorphic cycle of rock-change (*b*) Significance of fossils (*c*) Phases of mountain-building (*d*) Lakes and swamps (*e*)

Earthquakes

6 Account for the topographic features characteristic of the glaciated lowlands, giving appropriate examples

7 In June and December the sun is overhead at the Tropics of Cancer and Capricorn respectively Explain how this is brought about and show what effect it has on the difference in (a) temperature and (b) length of daylight between summer and winter in India

8 Define the term 'Relative Humidity' What effect has the change of air temperature upon the relative humidity of the air? What is dew point temperature?

9. 'The surface of the oceans consists of saline water varying considerably in composition and density, in temperature and in colour, and disturbed by waves, tides and currents'. Comment briefly

10 Give an account of the nature and origin of the deposits on the different parts of the ocean floor

**1959**

1 Discuss the various theories of the origin of the earth and show which is more acceptable

2 Write an essay on the physical state of the earth's interior.

3 Give a comparative account of the works of wind and water erosion in humid regions

4 'Landscape is a function of structure, process and stage'. Discuss.

or

What factors make the hydrology and topography of a limestone district distinctly peculiar? Give a concise account of the drainage and topography of such a district

or

'Land and sea are almost everywhere antipodal' Discuss

5 Write notes on any two of the following (i) Law of unequal slopes (ii) Successive cycles of erosion (iii) Isostasy (iv) Terraces (v) Antecedent drainage

6. Account for the ocean currents of the Southern hemisphere end discuss their influence on the climate of the coastal areas

7 Write an essay on any one of the following (a) Permanancy of ocean basins (b) Hypsographic curves (c) Coral reefs (d) Deep sea deposits.

8 Classify fronts according to the motion of air How far does this classification help in weather forecasting.

9 'Cloudy days are cooler than clear days, whereas cloudy nights are warmer than clear nights' How would you justify the truth of this statement.

10. 'A broad division of the earth's surface into zones is necessary as a first step into any systemetic study of climates' Discuss this statement dividing the earth into climatic zones

## 1958

1 'The concept of geocynclines is due to Hall and Dana but the theory of their development is really due to Haug' Elucidate Describe the characteristics and types of geosynclines in details

2 Discuss Holme's convection current theory in detail as an explanation of the forces responsible for mountain building and continental drift

3 'Glaciation is not a rare and unique occurrence but a systematic phenomenon, fully entitled to careful study as one of the surface processes affecting relief' Comment on this with sp ref to the Pleistocene Ice Age

4 Explain the development of shore profiles giving familiar examples of both constructional and destructional forms.

5 Write detailed notes on any three of the following (i) Superimposed drainage (ii) Laccoliths and bathyliths (iii) Hanging Valleys and Roches Moutonees (iv) Zeugen and Yardangs (v) Lappies.

6 What is meant by ocean salinity ? Account for the difference in ocean salinity and describe its effect on ocean currents

7 Explain the origin of Kurosiwo current and its influence on the N W Coast of Canada

8. Discuss the formation of anticyclones and describe the main types

9 Describe fully the inversion of temperature of various types What is the economic significance of the inversion of temperature ?

10 Write notes on any three of the following (a) Mountain and Valley breezes (b) Tornado (c) Equinoctial Tides (d) Oozes

## 1957

1 Show how the evidence of Seismology has been helpful in determining the constitution of the earth's interior

2 Examine critically the theory of Isostasy. How do the views of Airy differ from Pratt's findings on the concept of compensation

3 Describe the principles governing the accumulation and movement of underground water and the role it plays in the sculpture of terrestrial relief in limestone regions

4 Compare and contrast the tropical cyclones and the depressions of the temperate regions Describe their mode of origin

5. Write notes on (i) Harmattan (ii) Fohn (iii) Sirocco (iv) Bora.

6 Give a reasoned account of the principal types of oceanic deposits and discuss their distribution

7 Write a critical account of the various theories regarding the formation of coral reefs and islands

## 1956

1 Present a critical analysis of the inter-continental drift theory of Wegener.

2 Describe the nature and causes of vulcanicity and show how the mechanism of vulcanicity is basic to further landscape evolution. Give examples

3 Write notes on any three of the following (*i*) Fault-line scarps (*ii*) Antecedent drainage (*iii*) Glacio-fluvial deposits (*iv*) Offshore bars

4 Give an explanatory account of the plant and animal life in the ocean

5 Discuss briefly the composition and distribution of salinity and gases in the waters of the ocean and also mention the particular areas where they exhibit peculiar conditions

6 Write notes on any 3 of the followidg (*i*) The heat balance of the atmosphere (*ii*) Tropical cyclone (*iii*) Temperature inversions (*iv*) Thunderstorms

7 Describe the structure and life cycle of extra-tropical cyclones in Polar front theory

## 1955

1. Examine critically the important theories which have been advanced to explain the origin of the earth

2 'Out of the geosynclines have come the mountains' Elucidate and elaborate

3. Write notes on any one (*i*) Elastic rebound theory of earth quakes (*ii*) Isostasy (*iii*) Longitudinal and transverse coasts (*iv*) Water-table.

4. What is an air-mass ? Suggest a classification of air-masses and mention the air-mass sources of the northern hemisphere in water

5 Summarixe the present state of our knowledge of the atmospheric layers and their characteristics

6 Discuss briefly the origin of tides and account for the phenomena of diurnal inequality in tides

7. Give an account of the various views regarding the formatiou of coral reefs

## 1954

1 Summarize the various views about the thermal state of the interior of the earth

2. Describe the character and duration of the Quaternacy Ice age. What effects did it produce in the extra-glacial areas ?

3. Describe the influence of rock strength and structure in the evolution of landscape Give examples

or

Give a detailed description of the geomorphology of any area which you have studied personally

4 Discuss the importance of fronts in the growth and development of cyclones

5 Divide Koeppen's B climate into sub-divisions and describe the characteristic features of each

6. Give an account of the configuration of the bottom of the Atlantic Ocean and locate the important deeps

7 Write notes on (i) Equinoctial tides (ii) Inversion of temperature (iii) Temperature efficiency (iv) Thermal anomaly.

## 1953

1 'It is the general applicability of the uniformitrianism dictum that gives validity to the concept of geomorphic cycle'. Examine this Statement critically and discuss the value of the cycle concept in the anatomy of landscape.

2 Discuss the relative merits of various theories advanced to explain the fundamental division of the earth's crust into continents and ocean-basins

3 Describe with examples relief features associated with vulcanism

4 What evidence is there of changes of climate in post-Pliocene time ? How have these changes been explained ?

5. Suggest a classification of thunderstorms and describe the characteristic features of each type you mention

6 Discuss the origin and composition of oceanic salts.

7. Give an account of the nature and origin of deposit on different parts of the ocean floor.

8. Write notes on—

(1) Gravity anomaly, (3) Kratogenic Movement
(2) Coral islands (4) Glacial varves

## 1952

1 Describe fully the conditions that lead to river capture. Discuss the part played by this capture in the development of a river valley.

2 What do you understand by a normal fault ? How does it differ from a thrust fault ? Discuss fully the conditions that produce the above faults.

3. Discuss fully the structural and meteorological conditions that produce springs Name the parts of India in which springs are common

4 'The soil considered as a rock links common stones with the atmosphere and the dead dust of the earth with the continuity of life'. Discuss.

5. Describe fully the formation of sand dunes. In which part of India are sand dunes commons ?

6 Discuss fully the vertical distribution of temperature in the atmosphere How, if at all, does the distribution effect the horizontal distribution of temperature on the surface of the earth ?

7 Describe fully an occluded front and the weather associated with it Give diagram

8 Describe fully the characteristics of an air-mass Name the principal air masses that prevail in India

9 How are tides caused ? Discuss the various theories of tides

## 1951

1 'Equation of time is necessitated because of the planetary relations of the earth, Discuss the statement fully, and point out how this equation is actually done

2 Discuss fully the heat budget of the earth Point out the practical implication of the budget

3 What do you understand by 'Crustal Movements' of the earth ? Discuss briefly the origin and main results of such movements

4 Discuss fully the cycle of river erosion How far is the use of the word 'Cycle' justified here ?

5 Discuss fully the 'Law of Glacial erosion' and its results

6 How are limestones formed ? What kinds of landforms are generally associated with them and under what condition ? Point out the main economic uses of limestanes.

7 Describe the main features of the Koeppen's classification of climates In what way is this classification superior to others

8 Discuss fully the causes and practical implications of inversion of temperature

9 Why are ocean currents formed ? Discuss this in connection with the currents of the North Atlantic. In what way do the ocean currents influence the fishing industry.

10 Discuss briefly the origin ocean basins

## 1950

1 Describe the various types of land-forms associated with volcanic landscape Give examples from India and adjacent countries wherever possible

2 Give a concise account of the important seismic belt of the world. Locate the important seismic zones in the Indian Union

3 Discuss the important agents of denudation which have carved out typical landforms in different parts of India

4 Write notes on any five of the following—

(1) V—Depression,
(2) The Mistral,
(3) Obsequent streams,
(4) Incised Meanders,
(5) Recession of a water-fall and
(6) Off-shore bar

5 Give an account of the cold currents of the southern hemisphere and discuss their influence on man

6 Discuss fully the origin and passage of a cyclone from the the Bay of Bengal to the Indian Union

## 1949

1 Give a detailed description of the geomorphology of any area with which you are personally acquainted

2 Give a concise account of the various types of shore lines connected with the elevation and sub mergence of land Give examples preperably from India

3 Write a reasoned account of the evolution of desert topography, giving examples wherever possible

4 Discuss how structure may influence the topography in different rigions, the geology remaining the same Give examples

5 Give a concise account of the important theories of the origin of cyclonic depressions developing in both tropical and temperate latitudes

6 Discuss concisely the various theories which have been advanced to explain the origin of forces responsible for the disruption of continents, maintain-building and continental drift Give examples

7. Write an essay on any one of the following—

(1) The Coral Reaf Problem,

(2) Upper atmosphere investigation, and

(3) A normal cycle of erosion

8 What testimony would you offer in proof of the occurrence of recent earth movements Give examples, preferably from India.

## 1948

1. Give a concise account of the theory of Isostasy illustrating your answer with examples from India.

2. Give a brief account of the problem of soil erosion in India, with sp. ref to the reclamation of the ravine lands

3 Describe briefly, with sp ref to India, landforms connected with volcanic activity.

4 Write notes on—

(1) River Corrasion,

(2) Chemical Weathering,

(3) Coast-lines connected with general subsidence and faulting, and

(4) Nunataks.

5 Why should a geographer study rocks? What is the importance of divisional planes in the development of landforms?

6 Give a concise account of the influence of the parent rock and climate in soil-formation Give examples preferably from India.

7. Discuss the factors that modify the equatorial climate, giving examples in each case

8. What factors make the hydrology and topography of a limestone district distinctly peculiar? Give a concise account of the drainage and topography of a limestone district, preferably in India

9 Give a short account of the history of a folded maintain range What other agencies may be responsible for mountain formation Give examples preferably from India

## 1947

1 Write a critical account of the inter-continental drift theory of Wegener

2 Discuss, with illustrations, the importance of the conception of the normal cycle of erosion in the study of landforms

3 Compare and contrast between glacial and fluvioglacial deposits Is there any evidence of glaciation in India during the Pleistocene ice age ?

4 'Out of the geo-synclines have come the mountains' Elaborate this statement with ref to either the Himalayas or the Alps.

5 Describe the characteristics of a Karst topography and explain the causes of such characteristics In what ways may a cycle of erosion be initiated in Karst regions

6 What types of coast lines were recognized by Suess ? Mention their characteristics and on an outline map of the world indicate their distribution

7 Describe fully main features of the Atlantic bottom relief

8 Write on explanatory account of the principal types of deposits on the different parts of the ocean floor

9. Analyse carefully the climates of the following regions and account for the differences between them—

(i) The Sahara, and

(ii) The East Indies

10 Discuss the principal theories of the origin of cyclonic depressions

# परिशिष्ट ८

## प्रमुख सहायक ग्रन्थों की सूची


1. Ahmad, Kazi Saied-ud-din : Major Natural Regions.
2. Bahl and Tuli. : Essentials of Physical Chemistry.
3. Basu and Chatterji : General Properties of Matter and Heat
4. Bennett, H. H. : Elements of Soil Conservation.
5. Blair, T. A. : Climatology.
6. Brunt, David. : Meteorology
7. Byers, H. R. : General Meteorology.
8. Bygott, John : An Introduction to Map work and Practical Geography.
9. Carrington, Richard. : A Guide to Earth History.
10. Chamberlin, T. C. : The Origin of the Earth.
11. Chatterji, S. B. : Indian Climatology.
12. Chatterji, S. C. : The Physical Basis of Geography.
13. Chhibber, H. L. ; India Part one.
14. Chhibber, H. L. : The classification and origin of plateaux with special reference to India and adjacent countries (Bulletin No. 8, National Geographical Society of India)
15. Chhibber, H. L. : The origin of forces responsible for disruption of continents, mountain—building and continental drift : origin and permanence of ocean basins and distribution of land and sea (Bulletin No. 5, National Geographical Society of India
16. Coleman : Ice ages.
17. Colman, J. S. : The sea and its mystries.
18. Cotton, C. A. : Geomorphology.
19. Cotton, C. A., : Climatic accidents in landscape formation.
20. Cotton, C. A. : Volcanoes as landscape forms.
21. Daly, R. A. : Our mobile earth.
22. Datta, A. K. : Introduction to physical geology.
23. Davis , W. M. : Geographical essays
24. Douglas, T. S. : The wealth of the sea.
25. Dubey, R. N. : Physical Basis of Geography.
26. Du Toit, A. L. : Our wandering continents.
27. Dwerryhouse, A. R. : Geological and topographical maps.
28. Finch and Trewartha : Physical elements of geography.
29. Finch, Trewartha and Shearer : The Earth and its Resources.
30. Flint, R. F. : Glacial geology and the pleistocene epoch.
31. Fox, C. S. : Physical geography for Indian students.
32. Freeman and Raup : Essentials of Geography.
33. Gamov, George. : Biography of the Earth.

34. Geikie, James. : Earth sculpture.
35. Glover, Harold : Soil erosion (Oxford pamphlet)
36. Gregory and Barrett : General stratigraphy
37. Haurbi z d Austin : Climatology.
38. Henderso J. : G ol gy and its relation to landscape.
39. Hind : Geomorphology.
40. Hobbs, W. H. : Earth features and their meaning.
41. Hobbs, W. H. : Earth Evolution and its facial expression
42. Holmes, Arthur : Principles of Physical Geology.
43. Hora, S. L. : An outline of the field sciences in India.
44. Horrocks, N. K. : Physical geography and Climatology.
45. Humphreys, W. J. : Physics of the air.
46. Huntington and Cushing : Principles of human geography.
47. Jenkins, H. : A text book of Oceanography.
48. Johnstone, J. : An Introduction to Oceanography.
49. Joly, John : The surface-history of the Earth.
50. Kapur, A. N. : College Geography made easy.
51. Kellaway, G. P. : A Background of Physical geography.
52. Kendrew, W. G. : Climatology.
53. Kendrew, W. G. : The Climates of the continents.
54. Koeppe and Long. : Weather and cl mate.
55. Krishnan, M. S. : Geology of Ind a and Burma
56 Lake, Philip : Physical Geography
57. Lobeck, A. K. : Geomorphology.
58. Lyon, Buckman and Brady : The nature and properties of soils.
59. Madras Govt. Publication : Soil Erosion its prevention and control.
60. Marmer, M. A. : The sea.
61. Marr, J. E. : The scientific st dy of scenery.
62. Martonne, E. De A shorter physical geography.
63. Milham, W. J. : Meteorolo y.
64. Miller, A. A. : Climatology.
65. Milne, J. : Earthquakes and other earth-movements.
66. Monkhouse, F. J. : The Principles of physical geography.
67. Moore, W. G. : A Dictionary of Geography.
68. Murad and Bhargava : General Properties of Matter and Heat.
69. Newbigin, M. I. : Animal geography.
70. Newbigin, M. I. : Plant and animal geography.
71. Ommanney, F. D. : The ocean.
72. Peel, R. F. : Physical Geography.
73. Penck, W. : Morphological Analysis of landforms.
74. Petterssen, Sverre : Introduction to meteorology.
75. Preece and Wood : Foundations of Geography.
76. Salisbury, R. D. : Physiography.
77. Shand, S. J. : The study of Rocks.
78. Skeats, E. G. : The principles of geography.
79. Scott, W. B. : An introduction to geology.
80. Smart, W. M. : The origin of the earth.
81. Stamp, L. D. : Asia
82. Stamp, L. D. : The earth's crust.

83. Steers, J. A. : The unstable earth.
84. Stommel, Henry : Science of the seven seas.
85. Sverdrup, H. U. : Oceanography for meteoroloists.
86. Sverdrup, Johnson and Fleming : The oceans—their physics, chemistry and general biology.
87. Tarr and Martin : College physiography.
88. Tarr and Von Engeln : New physical geography.
89. The National Geographic Magazine (several issues).
90. Thornbury, W. D. : Geomorphology.
91. Trewartha, G. T. : An introduction to climate.
92. Tyrell, G. W. : The Principles of petrology.
93. Tyrell, G. W. : The earth and its mystries.
94. Von Engeln, O. D. : Geomorphology.
95. Wadia, D. N. : Geology of India.
96. Wegener, A. : The origin of continents and oceans.
97. Willows, R. S. : A text book of physics.
98. Woolridge and Morgan. : An outline of geomorphology.
99. Worcester, P. G. : Geomorphology
100 Wright, W. B. : The quaternary ice age.
101 कपूर, अमरनाथ : भौगौलिक शब्दकोष और परिभाषायें
102 'नवनीत' के अनेक अंक
103 मिश्र, बिहारीलाल : भारतवर्ष भाग १
104 शर्मा निरंजन लाल : भारतवर्ष को खनिजात्मक सम्पत्ति
105 शिक्षा (अप्रेल १९४८)
106 श्रीवास्तव, जनार्दन प्रसाद-भौमिकीय निबन्धावली
107 श्रीवास्तव जनार्दन प्रसाद : मध्य-पूर्व की भौगौलिक भूमिका
108 ज्ञानोदय (विज्ञान-अंक १९५९)

# परिशिष्ट १

## प्रामाणिक भौमिकीय कालक्रम सारिणी

(Table showing standard geological eras)

| कल्प (Eras) | युग (Periods) |
|---|---|
| तुरीय कल्प<br>(Quaternary) | अभिनव (Recent)<br>प्रातिनूतन (Pleistocene) |
| तृतीयक कल्प<br>(Tertiary) | अतिनूतन (Pliocene)<br>मध्यनूतन (Miocene)<br>आदिनूतन (Oligocene)<br>प्रादिनूतन (Eocene) |
| मध्य कल्प<br>(Mesozoic) | खटी (Cretaceous)<br>महासरट (Jurassic)<br>रक्ताश्म (Triassic) |
| पुराकल्प<br>(Palaeozoic) | गिरि (Permian)<br>अगार (Carboniferous)<br>मत्स्य (Devonian)<br>प्रवालादि (Silurian)<br>अवरप्रवालादि (Ordovician)<br>कैम्ब्रियन (Cambrian) |
| उषः कल्प (Eozoic) | आदि (Algonkian) |
| आद्य कल्प (Archaean) | आद्य (Archaean) |

**भूल सुधार : पृष्ठ २५७ और २५८ के बीच की अन्तर्वस्तु जो यथा-स्थान नही दी जासकी :—**

### (ख) महासागरीय वनस्पति

महासागरीय वनस्पति का महत्व इसी कथन से स्पष्ट है कि उस पर ही वहाँ के जीव-जन्तुओ का जीवन निर्भर है।

जिस प्रकार भौम-पादपो मे अनेक प्रकारे पाई जाती है, उस प्रकार महासागरीय वनस्पति मे प्रकारे नही पाई जाती। यह उसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। इसका कारण महासागर के वातावरण की मौलिक विभिन्नता है। प्रकाश एव अन्य स्तर केवल सुवेला-प्रदेश (Eulittoral Zone) मे पाये जाते है, जो सागर-नितल का केवल २ प्रतिशत अश है।

समस्त वनस्पतियो को हम चार विभागो मे बाट सकते है —

(१) सूत्रोद्भिद (Thallophyta) (२) हरितोद्भिद (Bryophyta) (३) पर्णांगादिका (Pteridophyta) (४) बीजोद्भिद (Spermatophyta)

इनमे से केवल पहली और चौथी प्रकार की वनस्पति सागर मे मिलती है। इन विभागो का उपविभागो और उपविभागो को पुन अन्तर्विभागो मे बाटा जा सकता है, किन्तु यह कार्य वनस्पतिशास्त्र के विशेषज्ञो का है, हमारा अभिप्राय तो निम्नाकित संक्षिप्त वर्गीकरण द्वारा सिद्ध हो जाता है।

### (१) सूत्रोद्भिदः (Thallophyta)

प्राय समस्त सागरीय वनस्पति इस विभाग के अन्तर्गत है। इसमे ऐसे आद्य-पादप आते है, जिनके शरीर मे वर्धी अग का विभेदन (Differentiation of vegetative organ) नगण्य होता है अर्थात् इनमे यथार्थ मूल, पत्र कुछ भी नही होते। इन पादपो मे महासागरीय आप्यका (Marine algae) एव महासागरीय कवलानि (Marine fungi) विशेषकर शाकाणव (Bacteria) प्रमुख है। लाक्षणिक वर्ण के अनुसार इन्हे पुन पाच श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है —

(क) नील-हरि आप्यका ( Blue green algae )
(ख) हरित आप्यका ( Green algae )
(ग) बभ्रु आप्यका (Brown algae)
(घ) रक्त आप्यका (Red algae)
(ङ) पीत हरित आप्यका (Yellow green algae)

इनमे से प्रथम चार (नील-हरि आप्यका की कुछ प्रकारो को छोड़कर) आसक्त-पादप (Attached plants) है और पीत-हरित आप्यका प्लावी-पादप (Floating plants) है।

### (क) नील-हरि आप्यका.

यह सबसे कम महत्वपूर्ण है। अलवण (Fresh) एव आवलण (Brackish) जल मे यह बहुत पाई जाती है। उष्ण-जल मे यह अधिक मिलती है।

### (ख) हरित आप्यका:

यह वेला प्रदेश के ऊपरी भाग मे लगभग १० मीटर की गहराई तक पाई जाती है। उष्ण सागरो मे इसका बाहुल्य है।

### (ग) बभ्रु आप्यका.